॥ श्रीहरिः ॥

प्राक्कथन

तव कथामृतं तप्तजीवनम् ।
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततम् ।
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥

आज इस 'भागवत चरित' महाग्रंथको प्रेमी पाठक पाठिकाओं के सम्मुख समुपस्थित करनेमें हमें बड़ा ही हर्ष हो रहा है। संकीर्तन भवनसे पद्यमें प्रकाशित यह सर्वप्रथम विशाल ग्रन्थ है। श्री महाराज जी जो 'भागवतीकथा' नामक ग्रन्थ लिख रहे हैं, जिसका १०८ खंडों में निकलनेका आयोजन है और जिसके ३८ खंड अब तक छपकर प्रकाशित भी हो चुके हैं। उसी दधि समुद्र रूपी ग्रंथको मथकर उसमें से घृत रूपसे यह निकाला गया है। कहना चाहिये भागवती कथा इन्हीं पद्योंका भाष्य है। भाष्य पहिले प्रकाशित हो गया। मूल ग्रंथ अब पीछेसे प्रकाशित किया जा रहा है। जिन्होंने भागवती कथा को पढ़ा होगा; वे जानते होंगे कि उसके प्रत्येक अध्यायके आदि अन्त में एक एक छप्पय रहता है। अध्याय चाहे चार पृष्ठोंका हो अथवा ४० पृष्ठों का आदि अन्तके दो छप्पयोंमें उनका सार आ जायगा। आप भागवती कथाके गद्य भागको छोड़कर केवल पद्यों ही पद्यों को पढ़ते जायँ, पूरी कथा समझमें आ जायगी। बड़ी बड़ी कथायें

कितनी चातुरीके साथ वर्णन की गयी हैं, उन्हें पढ़कर आश्चर्य होता है। एक कथा है ब्रह्माजीसे रावणने अपनी मृत्युके सम्बन्धमें में तब पूछा जब दशरथजी विवाह करने जा रहे थे। ब्रह्माजीसे यह सुनकर कि कौशल्याके गर्भसे उत्पन्न दाशरथी राम मुझे मारेंगे। वह दौड़ कर अवध आया। दूल्हा दशरथ नौकासे विवाह करने जा रहे थे। नौकाको डुबो दिया। कौशल्याजीको एक पेटीमें बंद करके एक तिमिंगिल मत्स्यको दे गया। इधर किसी प्रकार दशरथ जी भी वहीं बहते हुए पहुँच गये। दोनोंका विवाह हो गया। कथा बहुत बड़ी है। भागवती कथाके २६ पृष्ठोंमें लिखी गयी है। उसका वर्णन इसी ग्रथमें एक छप्पयमें सुनिये—

रावण जैसो शूरवीर बलको गरवीलो।
पुरुषारथ लखि व्यर्थ भयो चिन्तित अति ढीलो॥
दशरथ हों वर वधू कुमरि कौशल्या वरिहैं।
तिनितें होवें राम वही तोकूँ रन मरि हैं॥
ब्रह्मदेवतें सुनी यों, कुमर डुबाये कुमरि लै।
लंका आयौ परि भयो, व्याह देखि खल कर मलै॥

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पग पग पर ध्यान दिया गया है। इतने बड़े महाग्रन्थमें कहीं भी भारतीय मर्यादाका उलङ्घन नहीं किया गया। उन मर्यादाओंका इतनी सरसतासे वर्णन किया गया है, कि पढ़ते पढ़ते हृदय फड़क उठता है। भाव गोपनमें इतना स्वारस्य आ गया है, कि कुछ कहते ही नहीं बनता।

बहुत दिनोंकी प्रतीक्षाके पश्चात् हस्तिनापुरसे श्यामसुदर द्वारका पधारे हैं। सभी मातायें अत्यन्त उत्कंठित हैं और सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियोंकी उत्कंठाका तो कहना ही क्या। भारतीय सभ्यताके अनुसार पहिले भगवान् माताओंके महलोंमें जाते हैं। चिरकालके पश्चात् अपने प्राणाधिक पुत्रको पाकर माताओंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। कुशल क्षेम पूछते पूछते

-ही बड़ी देर हो गयी। रानियोंकी उत्कंठा पराकाष्ठाको पहुँच चुकी थी, किन्तु सासोंके सम्मुख पतिके पास जाना मर्यादाके विरुद्ध है, अतः वे ओटमें से छिपकर अपने हृदयधनके दर्शन करनेकी असफल चेष्टायें करने लगीं। खिड़की ऊँची थी। उचकनेसे पैरोंके कड़े छड़े झंकृत हो उठे। चूड़ियाँ बजने लगीं। इस खनखनाहट और झनझनाहटसे माँ देवकीका ध्यान उधर गया। वे भी नारी थीं। नारी हृदयकी पीर समझती थीं। तुरन्त उठ कर खड़ी हो गयीं और पुचकारती हुई बोलीं—"अच्छा, बेटा! फिर बातें होंगीं, तू थका होगा। जा भीतर कपड़े बदल ले।" भीतर जाकर कपड़े बदलने का अर्थ क्या है इसे श्यामसुन्दर समझ गये और मुसकराते हुए घर चले। अब देखिये महलके भीतर भी भारतीय सभ्यताका कितना ध्यान रखा गया है। भारतीय सभ्यतामें किसीके भी सम्मुख पत्नी अपने पतिका स्पर्श नहीं कर सकती। किन्तु इतने दिनोंके पश्चात् पति आये हैं उनका आलिंगन करना अत्यावश्यक है। अतः उन्होंने अपने छोटे बच्चोंको पतिकी गोदमें दे दिया। पतिने उनका मुख चूमा प्यार किया हृदयसे लगाया। फिर पत्नीको दे दिया। अब पत्नीने उसका मुख चूमा छातीसे लगाया। मानों पतिका ही आलिंगन मिल गया। आलिंगन तो पतिका किया, किन्तु पुत्रको बीचमें डाल कर—मर्यादाके भीतर। कविके शब्दोंमें इसी भावको पढ़िये—

सुनि नूपुरकी झनक चुरिनिकी खनक मनोहर।
माँ बोलीं-'अब जाउ वस्त्र बदलो भीतर घर॥
मन्द मन्द मुसकात महलमें मोहन आये।
नारि निरखि नँदनंद नयनते नीर बहाये॥
मनते मोहनतें मिलीं, नयन ओटतें चोट करि।
शिशु सौंप्यो पुनि लाइ उर, आलिंगन यों किये हरि॥

श्रीराम चरित मर्यादा चरित है और श्रीकृष्ण लीला माधुरी रस मय-चरित्र है। नौ अध्यायोंमें इसमें राम चरित्रका भी वर्णन है उसमें

पदपदपर मर्यादाका पालन किया गया है और श्रीकृष्ण चरित्रमें तो रसका ऐसा प्रवाह बहाया है, कि पढ़ते पढ़ते छप्पयमेंसे रसकी अविरल वर्षा सी होने लगती है। रासका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

व्रज-युवतिनिके कंठ डारि कर नृत्यत नटवर।
रुनुझुन नूपुर बजत झनक चुरियनिकी मनहर॥
हिलत छीन कटि केश लोल लोचन अति चंचल।
पीताम्बर सँग मिलत हिलत युवतिनिके अंचल॥
पग पटकत कुंडल हिलत, मुख मटकत लचकत कमर।
हिलत हार मुख मुख मिलत, करत गान इत उत भ्रमर॥

इसी प्रकार मोहिनी भागवान्के वर्णनमें कविने सरसताकी सरिता बहा दी है। इतना सरस प्रसंग कितनी मर्यादा और विशुद्धता के साथ व्यक्त किया है। इसे पाठक ही विचारें। मोहिनी देवीके रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पग युग अटपट परत उदर कृश नमत निरंतर।
कंदुक श्रमतें स्वेद-बिन्दुयुत मुख अति सुन्दर॥
अलकनि पलकनि और कपोलनिकी झलकनिपै।
छटकि सरसता रही भामिनीके अंगनिपै॥
तिरछी चितवनितें लखै, भूलि अपनपौं शिव गये।
छाँड़ि शील संकोच सब, मृगनयनी सँग चलि दये॥

इस संकुचित स्थलमें किसी भी उपमा, यमक, अनुप्रास, रस, रीति आदि का उदाहरण नहीं दिया जाता। उसका स्वारस्य तो पाठक इसके पाठसे प्राप्त कर सकेंगे। हमारी बहुत दिनसे इच्छा थी कि जिस प्रकार भाषामें पाठ करनेको रामायण है उसी प्रकार भागवत भी हो। भगवान्ने यह इच्छा पूर्ण की। इसमें साप्ताहिक पारायण पाक्षिक तथा मासिक सभीके स्थल विभक्त कर दिये हैं, जिससे पाठकोंको सविधा हो। इतने बड़े ग्रन्थको इतनी सुन्दरता और

शीघ्रताके साथ हम कभी भी न निकाल सकते, यदि आर्ट प्रिन्टर्स व लक्ष्मी फोटो इन्ग्रेविङ्ग कम्पनी इलाहाबाद के स्वामी बाबू रामनाथजी अग्रवाल हमारे इस काममें हमारी सहायता न करते। उन्होंने जिस उत्साह और लगन के साथ निस्वार्थ भावसे हमारी यह सुन्दर पुस्तक मुद्रित की है उसके लिए हम आपके चिरऋणी रहेंगे। श्रीमहाराजका कृपाप्रसाद तो उन्हें सपरिवार प्राप्त ही है। अन्तमें हमारी पाठकोंसे विनय है, कि इस परम पुण्यमय पावन ग्रंथका जितना वे प्रचार प्रसार कर सकें अवश्य करें। हमारा एक मात्र उद्देश्य भागवत चरितोंका प्रसार प्रचार करना ही है। लगभग एक सहस्र पृष्ठोंकी पुस्तक जिसमें चार रंगीन और इतने अधिक सादे चित्र हों सुन्दर पक्की जिल्द बाजारमें १५) से कम में नहीं मिल सकती। ५।) तो लागत भी नहीं। इतनी बड़ी पुस्तक दुबारा शीघ्र नहीं छप सकती। अतः पाठक मँगानेमें शीघ्रता करें। हम चाहते हैं घर घरमें इसका प्रचार हो किन्तु यह सब जनता जनार्दनकी इच्छाके ही ऊपर निर्भर है। अन्तमें अपने सभी कृपालु दयालु महानुभावोंका आभार प्रदर्शित करते हुए इसी ग्रंथकी एक छप्पय लिखकर हम अपने इस वक्तव्यको समाप्त करते हैं—

छप्पय—अति ही निरमल चरित भागवत भक्तनिको धन।
जामें ज्ञान विशुद्ध भक्ति भगवंतको बरनन॥
करम त्याग वैराग्य यथा थल सबई भाखे।
अति समास, सब कहे शेष कोई नहिं राखे॥
श्रवन मनन अरु पाठ नित, करें प्रेमतें नारि नर।
देहिं भक्ति अरु मुक्ति तिनि, प्रभु परमेश्वर परावर॥

विनीत

प्रतिष्ठानपुर (झूसी)
संकीर्तन भवन
मार्ग० शु० ५।२००७

व्यवस्थापक

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीभागवत चरित

[सप्ताह]

की

विषय-सूची

अथ प्रथमाह (१)

अथ द्वितीयाह (२)

अथ तृतीयाह (३)

इति सप्ताह

इति विषय-सूची

चित्रसूची

रंगीन चित्र

सादे चित्र

समर्पण

अपने श्याम के प्रति

छप्पय

(१)

नैंक ठहरि जा श्याम ! बात इक सुनि जा मेरी ।
दौर्‌यौ जावै कहाँ दीठि चंचल अति तेरी ॥
ब्रजमें मच्यो चवाउ बात फैली घर घरमें ।
कीरति रानी-लली धँसी है तेरे उरमें ॥
निज नयननि निरख्यो न कछु, सुन्यो सुनायौ ई कह्यो ।
गोरी भोरी छोहरी—को चेरो तू बनि गयो ॥

(२)

चंचलताकूँ त्यागि बात मेरी सुनि नटवर ।
तेरो लिख्यो चरित्र सूततें सुनिकैं सुखकर ॥
लिखवायौ सो लिख्यो करूँ अब काकूँ अरपन ।
है तेरी ही वस्तु करूँ पुनि तोइ समरपन ॥
अरे, बबाके लाड़िले, मोइ सनाथ बनाइ जा ।
पुण्य भागवतचरितकूँ, परसि तनिक मुस्काइ जा ॥

संकीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग)
मार्गशीर्ष—शु० २।२००७ विक्रमी

तेरा ही कोई
प्रभुदत्त

श्रीहरिः

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः

अथ

श्री भागवत-चरित

[सप्ताह]

अथ प्रथमाह

प्रथमोऽध्यायः

[१]

मङ्गलाचरण

श्लोक

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

छप्पय

श्रीनारायण विमल विशालापुरी निवासी ।
नर नारायण ऋषी तपस्वी अज-अविनासी ॥
माता वीणापाणि सरसुती वाणी देवी ।
कियो वेदको व्यास परासरसुन गिरिसेवी ॥
धरि सिर सबके पादकी, पांवन पुण्य पराग अति ।
भनूँ भागवत भव्य भव-भयहर भाषा यथामति ॥

तीरथराज प्रयाग याग कमलासन कीन्हें।
अक्षयवट-वर विटप मनोवांछित फल दीन्हे॥
गंगा यमुना रलीं मिलीं मन मोद बढायो।
सोमेश्वरने जहाँ सोमको शाप छुड़ायो॥
वेणीमाधव बसैं वर, बारह वेष बनायकें।
वन्दन करि विनती करें, चरन कमल सिर नायकें॥

व्यासतनय वाशिष्ठ विज्ञ वैराग्यवान् अति।
कृष्ण नाम मधु मधुर मधुप मदमत्त महामति॥
भक्ति भागवत भनी पार भव सिन्धु कियो है।
कलि कल्मष करि दूर दिव्य आलोक दियो है॥
परमहंस शुकदेव वर, सुन्दर सुखकर नाम है।
तिनिके पद पाथोजमहँ, श्रद्धा सहित प्रनाम है॥

इति मंगलाचरण

कथारम्भ

सुरसरि उत्तर ओर त्रिवैनी पार मनोहर।
प्रतिष्ठानपुर यज्ञ तीर्थ झूसी अति सुन्दर॥
मनीराम मम शिष्य चपल चचल अज्ञानी।
ताहीके प्रति सुधा सरिस रस-कथा बखानी॥
दैहिक दैविक मानसिक, चाहिं होहि भवकी व्यथा।
सब रोगनिकी एक है, ओषधि भागवती कथा॥

नैमिषार सुखसार हार भूको है भारी।
सहस अठासी शौनकादि ऋषि जहँ व्रतधारी॥
सहस सालको सत्र रच्यो सुनि सूतहु आये।
सब इतिहास पुरान अठारह गाय सुनाये॥
किन्तु भागवत मधुर अति, सब शास्त्रनिको सार है।
पढ़त सुनत गावत गुनत, होत जगत् उद्धार है॥

कहूँ परे कुश कहूँ कमण्डलु जलके सोहे।
मत्त मृगनिके झुन्ड मुनिनिके मनकूँ मोहें॥
समिधा वल्कल चीर मूल फल फूल सुहावें।
भई भीर सुर असुर नाग किन्नर नर आवें॥
यज्ञभूमि पावन परम, सब विधि सुखद शरण्य है।
शौनकादि सुखतैं बसहिं, नाम नैमिषारण्य है॥

पृथिवीपति पृथुराज आदि भूके भूपाला।
विषम भूमि समकरी रचे पुर नगर विशाला॥
मागध सूत बनाय बहुत विधि विनती कीन्हीं।
दये देश द्वै मुनिनि वृत्ति वाचक करि दीन्हीं॥
क्षत्रिय पितु माँ ब्राह्मणी, सकरतातैं सूत हैं।
उग्रश्रवा अति विमल मति, कथा कहनतैं पूत हैं॥

सोरठा—कही कथा कमनीय, शौनकादितैं सूतजी।
हर्षित होवै हीय, भव-भय-भजन होय सुनि॥

आये मखमहँ सूत, अति प्रसन्न सब मुनि भये।
करि पूजा अति पूत, शौनक मुनि पूछन लगे॥

छप्पय—पढ़े शास्त्र इतिहास पुरानादिक सब तुमने।
कही कथा अति मधुर सुनी श्रद्धातैं सबने॥
अब सब शास्त्रनि सार सूतजी शीघ्र सुनाओ।
कृष्ण चरित कहि पुण्य प्रेम पीयूष पियाओ॥
शास्त्र ज्ञान पय दधि करहु, मथि तिहि सार जनाइ दे।
खट्टो मट्ठो पृथक् करि, मक्खन मधुर चखाइ दे॥

कलियुग आयो जानि आनि बैठे हम वनमें ।
विष्णु बताई बाट चक्र लै आयो छिनमें ॥
जानि वैष्नव क्षेत्र यज्ञकी दीक्षा लीन्हीं ।
कृष्ण कथा नित सुनें सबनि शुभ सम्मति कीन्हीं ॥

सूत ! जगतूतैं मोरि मुख, कृष्ण चरनमहँ चित दियो ।
कृष्ण कथा कलिमल हरनि, कही कृपा करि हित कियो ॥

परमधर्म है जिही भक्ति भगवतमें होवै ।
होवै हर्षित हियो मलिनता मनकी खोवै ॥
हेतु रहित निष्काम भक्ति अति सरस सुहाई ।
सब शास्त्रनिको सार यही मेरे मन भाई ॥

शौनकजी ! सच सच कहूँ, सब संतनि सम्मत जिही ।
भक्ति भनी भागीरथी, विषय बासना विष्र कही ॥

कथा श्रवण नित करें श्रवण वे ही हैं सुखकर ।
वाणी बिमला वही कृष्ण कीर्तनमें तत्पर ॥
मन मोहनमें मिलै सतत हरि चरननि सेवै ।
कर्म करे जो कछू कृष्ण अर्पण करि देवै ॥

ध्यान खड्गतैं कर्मकी, कतरहिँ ग्रन्थि सुतीक्ष्ण अति ।
जिनिको यश पावन परम, को न कथामें करहिं रति ॥

भगवत भक्ति सहाय भागवत ते कहलावें ।
अज अव्यक्त अनादि सगुण साकार लखावें ॥
लै अनन्त अवतार अमित लीला बिस्तारें ।
नाम, रूप, गुण, धाम जगत् जीवनकूँ तारें ॥

जो इनकूँ गावे सुने, नित सेवन सुखतें करहिँ ।
भक्त भागवत हैं वही, करत जगत पावन फिरहिँ ॥

जिनके चरित पवित्र हृदयकूँ पावन करिहैं।
सुनिकें श्रद्धा सहित मनुज भवसागर तरिहैं॥
तदनुरूप ही भक्तचरित अति ही सुखदाई।
अपनेतें हूँ अधिक स्वयं हरि महिमा गाई॥

भक्त कहो भगवन्त वा, भेद न, एक सरूप हैं।
भक्ति भवनके भूप हैं, दोऊ चरित अनूप हैं॥

जिनिको यश गुन नाम गान है सुखकर अतिशय।
कथा कीरतन करहिं कलुष काननिकूँ मधुमय॥
साधु जननिके सुहृद् सबनिके जो हैं स्वामी।
अच्युत अजर अनादि अगुण अज अन्तरयामी॥

कृष्ण कथाके रसिक वर, श्रोता तिनिके हृदय बसि।
अशुभ वासना मलिन मति, देत तुरत हैं नाथ नसि॥

सेवनीय जो सदा सुलभ सुखदाई सबकूँ।
माखनचोरचरित्र, मधुर अति ही श्रवननिकूँ॥
श्रोत्रमार्गतें प्रविशि हृदयमें जब आ जावें।
करें ज्ञान परकाश तुरत अज्ञान नसावें॥

ज्ञान सूर्यके उदयतें, मोह मलिनता दूर हो।
सब सशय छिनमें नसें, हृदय प्रेम परिपूर ह

दो०—सूत परम हर्षित भये, शौनकके सुनि प्रश्न।
अवतारनिकी कथा सब, कहे हृदय धरि कृष्ण॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें शौनक सूत सम्वाद नामक प्रथम अध्याय समाप्त।

———

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

पुण्य पुरान महान व्यास भगवान बनाई ।
परमहंस शुकदेव पुत्रकूँ पूर्ण पढाई ॥
गंगातटपै नृपति परिक्षित् ह्वैकें शापित ।
मुक्ति द्वारको मार्ग मुनिनितें पुनि पुनि पूछत ॥
आये श्रीशुकदेव तहँ, कही कथा नृपतैं विमल ।
कहूँ ताहि मुनिवर सुनहु, तहाँ सुनी मैंने सकल ॥१

श्रीनारायण बीज अमल अंकुर चतुरानन ।
श्रीनारद तनु तनो व्यास शाखा अति शोभन ॥
श्रीशुक पावन पुष्प गंध है सरस सुबानी ।
कृष्ण कथा फल मधुर खाइँ मुनिवर विज्ञानी ॥
नृपति परीक्षित् शौनकहुँ, सेवें ऋषि मुनि सहित हैं ।
वृक्ष भागवत भव्य अति, सब सुख जामें निहित हैं ॥२

हैं अनन्त भगवन्त असन्त न उनकूँ जानें ।
प्राणी प्रेम विहीन कहो कैसे पहिचानें ॥
पावन उनको चरित अमित मधुमय सुखदाई ।
लीला ललित ललाम लखें जिनि देहि लखाई ॥
छाँड़ि कपट छल प्रेमतें, करहिं समर्पण कर्म सब ।
नाम, रूप, गुण, धामको, समुझि सकें सतसार तब ॥३

ये अगणित ब्रह्माड रहे सरसों सम जिनमें।
जड, चेतन, चर, अचर सृष्टि उपजावें छिनमें॥
निहित तत्व चौबीस आदि औतार कहावें।
इनहीतें उत्पन्न इन्हींमें फिरि मिलि जावें॥

अज, अनादि, अव्यक्त, प्रभु, अमित ज्ञान विज्ञान हैं।
नारायण अव्यक्त विभु, वे विराट भगवान हैं॥

दिव्य दिगम्बर फिरैं सबहिं सम जगमें जिनिकूँ।
पाँच वरषके सदा जरा व्यापै नहि तिनिकूँ॥
राग द्वेषतें दूरि ऊर्ध्वरेता व्रतधारी।
अव्याहत गति रहे सकल जीवनि हितकारी॥

सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार कुमार वर।
मन तिनि पद पंकजनिकी, रज श्रद्धातें धारि सिर॥

सनकादिकने सृष्टि कार्यमें योग न दीन्हों।
कह्यो कर्यो न कुमार कोप कमलासन कीन्हों॥
मनु सतरूपा भये देहतें द्वै नर नारी।
उनने श्रद्धा सहित सीख सब सिरपै धारी॥
आयसु पाई पिताकी, दोऊ दुलहिन दुल्हा मिलि।
सृष्टि रची सुखतैं गई, हृदय कमलकी कली खिलि॥

हैं मनमौजी नाथ सूत्रधर विश्वविहारी।
नये नये नित स्वाग रचैं लीला विस्तारी॥
एक रूपतें रचैं एकतें जगको पालन।
रुद्र रूप धरि करें विश्वको वे संहारन॥

कच्छ, मच्छ, बाराह वपु, धरिकें धरनी धारते।
धर्म, धेनु, द्विज पालते, दैत्य दुष्ट सहारते॥

हैं कुमार, बाराह, कपिल, नारद, अवतारा।
नर नारायण, ऋषभ, दत्त, पृथु, यज्ञ, अपारा॥
धन्वन्तरि नरसिंह, मत्स्य, कच्छप, बामन हरि।
परशुराम, श्रीराम, व्यास, बलराम, रूप धरि॥
कला अंश संभव सकल, शुभ अवतार महान हैं।
कृष्ण स्वयं भगवान हैं, सबके आदि निधान हैं॥

सो०—सुनि अवतार चरित्र, सुखी सकल ऋषि मुनि भये।
कथा भागवत वृत्त, शौनक पूछहिं सूततैं॥

छ०—सूत! कहो अब कथा कहाँ कब काके द्वारा।
प्रकट भागवत भई कहाँ कीयो विस्तारा॥
व्यासदेव मुनि महा तनय उनके अति ज्ञानी।
पागल प्रेत समान फिरैं मानों अज्ञानी॥
सुनी कथा कैसे कही, नृपति परिक्षित् प्रति सबहिं।
सूत! सुनाओ सब कथा, होहि तोष हमकूँ तबहिं॥

सुत अभिमन्यु नृपाल, उत्तराके सुखदाता।
पाडुवंशके बीज दीन दुखियनिके त्राता॥
चिन्तामनिके सरिस सबनिकी चिन्ता नासत।
कल्पवृक्षकी भाँति सबनिकूँ पोषत पालत॥
भरतखण्डकी प्रजाको, सुत समान पालन कियो।
न्यासभूत निज देहकूँ, तृन समान ज्यौं तजि दियो॥

दो०—सूत कहें मुनिवर प्रथम, कहूँ व्यासमुनि वृत्त।
फेरि परिक्षित्को चरित, भनूँ सुनो दै चित्त॥

छ०—लीला अमित अपार पार प्रानी नहिं पावें।
विविध रूपतें उतरि अवनिपै अच्युत आवें॥
सूकर सिंह नरूप मत्स्य कच्छप वपु धारें।
अंश कला अवतार धारि असुरनिकूँ मारें॥
सत्यवती, मुनि पराशर, द्वापर युगमें धन्य हैं।
विष्णु रूप श्रीव्यासजी, जिनिके तनय अनन्य हैं॥

कमल पंकतें होय काक बिष्ठातें पीपर।
मृग मद मृगकी नाभि मांस मेदाके भीतर॥
मोती उपजै सीप शंख हड्डी ही होवै।
वाघ पाइकें चरम अशुचिता अपनी खोवै॥
गुणी गुणनितें पूज्य हैं, क्षेत्र परीक्षा नहिं कही।
व्यास, विष्णु भगवान हैं, मातृवंश त्रुटि नहिं लही॥

बदरीवनमें वसैं कसैं तनु व्यास महामुनि।
नित्य हवन करि वेद, शास्त्र इतिहास पढ़ैं पुनि॥
ऋक्, यजु, साम, अथर्व, एकके चारि बनाये।
चारिहु शिष्य बुलाइ, वेद क्रम यथा पढ़ाये॥
शूद्र, नारि, व्रतहीन द्विज, हित भारत रचना करी।
तऊ शान्ति मन नहिं लही, अन्तरातमा नहिं भरी॥

पाराशर्य प्रवीण परम चिन्तित है सोचत।
विधिवत् पढ़िके वेद लगायो श्रीहरिमहँ चित॥
गुरु सुश्रूषा करी अग्नि अव्यग्र अराधी।
करी तपस्या उग्र ग्रीष्म पंचानल साधी॥
वेद-व्यास इतिहास रचि, पुण्य पुराण कथा कही।
चिन्ता चिततें नहिं गई, कछू खटक खटकति रही॥

बदरीवनके निकट विराजें मुनिवर ज्ञानी।
वेदव्यास इतिहास रचे मुनि शान्ति न मानी॥
चिन्ता चितमें चुभी मलिनता मनमहँ आई।
रही कौन सी कमी आतमा अति अकुलाई॥
इतनेमें वीणा लिये, राम कृष्ण गुण गावते।
नारद देखे आवते, प्रेम वारि बरसावते॥

नारदजीने कह्यो—व्यास! तुम सब गुण आकर।
वेद-पुराण प्रवीण सबहिं शास्त्रनिके सागर॥
ब्रह्मज्ञानी आप अज्ञवत् क्यौं पछितावें।
का कारण है कहो? भेद क्यौं नाहिं बतावें॥
बोले व्यास विनीत ह्वै—मुनि! मन मैल मिटाइ दे।
काज कौन कीयो नहीं, सच्ची बात बताइ दें॥

बोले नारद—सबहिँ आपने धर्म बताये।
किन्तु कृष्णके ललित चरित अति विषद न गाये॥
भक्ति भावते हीन कुकवि जो कविता करिहैं।
काकतीर्थ सम समुझि हंस मुनि नहिँ आदरिहैं॥
अब सब तजि मुनि! भक्तिको, प्रेम प्रवाह बहाइ दें।
भक्ति भाव दर्शाय दें, भगवतचरित सुनाइ दें॥

सो०—हौं हरि चरितनि गाइ, शूद्रासुत पुनि मुनि भयो।
सब संशय मिटि जाइ, रचहु भागवत चरित वर॥

छ०—मदमातेकूँ यथा मद्यको हित जतलानों।
तथा कर्ममें निरत पुरुषकूँ विषय बतानों॥
पुनि बोले मुनि व्यास—होइगी आशा पूरी।
किन्तु कथा कछु कही आपने अबहिँ अधूरी॥
दासी-सुत कैसे भये, संत संग कस लगी मति।
चरित सुखद सब सुनाओ, होत हृदयमें हर्ष अति॥

सो०—भये प्रेममहँ लीन, व्यास वचन सुनि देवऋषि।
प्रवचनपरमप्रवीन, लगे कहन निज चरितकूँ॥

छं०—मुनिवर! मैंने महा मोहवश दुरगति पाई।
किन्तु कृष्णकी कृपा पाइ वह विपति बिताई॥
चारु चरित हैं मधुर कृष्णके अति सुखकारी।
उनिको अभिनय रच्यो मुनिनि आज्ञा सिर धारी॥
लीला रास विलासकी, अति रहस्ययुत मधुमई।
निरखि मुनिनिकी सुधि गई, मति मोहित सबकी भई॥

रंगभूमि अति रम्य रासको रसमय अभिनय।
निरखि सबनिको चित्त चमत्कृत भयो सुअतिशय॥
मेरे मनमे मैल धँस्यो, रस विरस भयो सब।
नारद! लम्पट होहु मुनिनि मिलि शाप दयो तब॥
वन्दन करि विनती करी, होय शापको अन्त कस।
सत्सगति हरि भक्ति लहि, होओ मुनि पुनि कह्यो अस॥

गई सृष्टि तैं पूर्व कल्पमे अति ही सुन्दर।
उपबर्हण गन्धर्व नामको हो हौं मुनिवर॥
नखतैं शिखलौं सुघर मनोहर मेरी मूरति।
दिव्य गन्धयुत देह सुघर वर मानों रतिपति॥
मेरे मनहर रूपपै, अबला अति आसक्त ह्वैं।
मदन मथित मदमत्त ह्वैं, सब समान अनुरक्त ह्वैं॥

भयो यज्ञ इक विषद सबहिं गन्धर्व बुलाये।
विश्वसृजनिकी आयसुतें हम सबहू आये॥
मृगनैनिनितैं घिर्‌यो रूप मदमें मतवारो।
अविनय मेरी निरखि शाप सबने दै डारो॥
जा, पृथिवीपै अबहिं तू, शूद्रयोनिमें प्रकट हो।
मेरी अनुनयपै कह्यो, संत समागम निकट हो॥

दासीको हौं पुत्र किन्तु शुभ कर्मनिमहँ रुचि।
साधुसंगतैं बुद्धि भई मेरी कछु कछु शुचि॥
चातुर्मास्य निमित्त तहाँ मुनिवर बहु आये।
सेवा सौंपी मोइ सुने हरिचरित सुहाये॥

सीथप्रसादी पाइकैं, पाप पहाड़ ढये सकल।
जग सूनो सूनो लगत, रहत कृष्ण बिनु चित बिकल॥

कृष्ण कीरतन कथामाँहिं आसक्त भयो चित।
सेवा श्रद्धा सहित करूँ सन्तनिकी हौं नित॥
सुनत मनोहर चरित मैल मनको सब छूट्यो।
श्रीपतिपद-रति भई जगततैं नातो टूट्यो॥

चित्त भ्रमर सतसंग मधु, श्रीहरिगुन गावन लग्यो।
मनमें मोद महा भयो, हृदय प्रफुल्लित ह्वै गयो॥

चातुर्मास्य समाप्त भयो मुनि चालन लागे।
रोयो ह्वै अति दीन दयालु मुनिनिके आगे॥
करुना कीन्ह कृपालु प्रेमतैं पास बुलायो।
प्रेम प्रकाशक मधुर कृष्ण कीर्तन करवायो॥

कृष्ण कीरतन करत ई, भवको भय भागन लग्यो।
प्रेम हृदय जागन लग्यो, गृह बन्धन लागन लग्यो॥

निर्मोही ये संत प्यार करिकैं अपनावें।
किन्तु अन्तमे बधिक सरिस हिय छुरी चलावें॥
गहकि मिलैं जब तलक रहे रस नित बरसावें।
कसक हियेमे छोड़ि निठुर बनिकैं भगि जावें॥

साधुनि सँग अति प्रेम करि, जग सुख काहू नहिं लह्यो।
बिलपत ई जीवन गयो, रुदन शेष ई रहि गयो॥



श्री नारद जी

छीन दीन कुलहीन, कृष्णकूँ कैसे पाऊँ।
करुणासिन्धु कृपालु, मिलें केहि मारग जाऊँ॥
हौं सोचूँ नित जिही गीत माता कछु गावै।
होवै बेटा वड़ो वहू वटुआ—सी आवै॥
माँके मनकी नहिँ भई, मृत्यु फाँसमें फँसि गई।
दूध दुहन घरतें गई, काल नागने डसि लई॥

मोहमयी मम मातु मरी मैं घरतें भाग्यो।
जरी जगत्‌की आस, कृष्ण चरननि चित लाग्यो॥
देश, नगर, नद, नदी नाँघि निर्जन बन आयो।
न्हायो सरिता सलिल, पान करि ध्यान लगायो॥
ध्यान करत ई चित्तकी, चिन्ता सबरी नसि गई।
मनमोहनकी माधुरी, मन मेरेमें बसि गई॥

भक्ति भावतें भरित हृदयमें हरिजी आये।
करत दरश तनु पुलक, अश्रु नयननिमें छाये॥
अति उत्कठा वढ़ी शान्ति सरिता पय पूरयो।
प्रेम बाढ़में बह्यो चित्त आनँदमें डूब्यो॥
ध्यान ध्येय ध्याता सबहिँ, ध्येय वस्तुमें मिलि गये।
दरशन दैकें दयानिधि, तुरत चित्ततें चलि दये॥

है अतृप्त तब गिरयो मोहि मूर्छा सी आई।
यह तनु दरश न होयँ दई नभ गिरा सुनाई॥
कृष्ण कीरतन करत, कालकी करूँ प्रतीच्छा।
तनु तजि नारद भयो, भई भगवतकी इच्छा॥
वीणाकी झन्कार सुनि, हरि हियमें प्रकटे तुरत।
दौड़ी आवे धेनु ज्यों, मोहनकी मुरली सुनत॥

करि नारद उपदेश व्यासतें बोले बानी।
कृष्णकथा सतसंग जनित निज कही कहानी॥
तुमहूँ संशय त्यागि भक्त भगवत गुन गाश्रो।
कृष्ण कथाके कहत शान्ति सुखसागर न्हाश्रो॥

यों कहि लै बीणा चले, राम कृष्ण गुन गावते।
व्यास बिचारें धन्य मुनि, ये सबके मनभावते॥

धनि नारद मुनि धन्य-धन्य वर बीना इनिकी।
हरि यश गावैं नित्य सुरसना धनि धनि तिनिकी॥
सब जग दुख संतप्त फिरें जे हरि गुन गावत।
दुखको मेटत मूल शान्तिको पाठ पढ़ावत॥

धनि अवनी जिनि चरनकी, पद पराग परसत विमल।
ह्वै ई दूरि करें दुरित, सत-संग सुरसरि सलिल॥

दो०—नारद अरु श्रीव्यासको, परम सुखद सम्वाद।
पढ़ैं सुनैं जे प्रेमतैं, पावैं प्रभुपरसाद॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें व्यासनारद सम्वाद नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।



अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

नारदजी जब गये व्यास बैठे वर आसन।
चित्तवृत्तिकूँ रोकि कियो इन्द्रिनिपै शासन॥
माया सहित महेश हृदयमे दिये दिखाई।
भवभयभजनि भक्ति प्रकट ह्वै सम्मुख आई॥
मनमें मोद महा भयो, भव्य भागवत रचि लई।
निज सुत शुककूँ स्वर सहित, सबरी कंठ करा दई॥

बोले शौनक—सूत! सुनाओ शुककी शिक्षा।
बैरागी बनि फिरे, करें घर-घरतें भिक्षा॥
कैसे आके पढ़ी संहिता शाश्वत सबरी।
कैसें बाँची कथा मिटाओ शंका हमरी॥
बोले सूत—सुने सरस, अति मधुमय भगवतचरित।
फँसे प्रेमके फंदमे, ज्यों मृग बीना स्वर सुनत॥

भरतवंशमें भूप भये शतनु सुखदाता।
विदुर, पाडु, धृतराष्ट्र, पौत्र तिनिके विख्याता॥
पाडव पाचों पाडु-तनय धृतराष्ट्र पुत्र शत।
पाडव परम प्रसिद्ध, किंतु कौरव अति निंदित॥
राज्य हेतु भारत भयो, पाडु-पुत्र विजयी भये।
भीम सुयोधन जाघकूँ, तोरि छोरि निज घर गये॥

जघा टूटी युगल सुयोधन अति दुख पायो।
कंक काक अरु गृद्ध नोंचि व्रण मज्जा खायो॥
अश्वत्थामा सुनत शीघ्र शोकाकुल धायो।
दुर्योधनकी दशा देखि नयननि जल छायो॥
द्रोणतनय नायक करे, सासा तक आशा रहत।
जैसे जल डूबत तृणहिँ, पकरि पार पावन चहत॥

अश्वत्थामा चल्यो पापमति मनमहँ आई।
पितृमृत्यु करि याद धर्म गति दई भुलाई॥
पाडव कुलको बोज नाश कैसे हूँ होवै।
प्रतिहिंसामहँ धर्म सत्य सबही नर खोवै॥
द्रुपदसुताके सुत सबहिं, सोवत सुखतें शिविरमें।
तुरत तीक्ष्ण तरवारितें, सिर काटे निशि तिमिरमें॥

पुत्र शोकतें दुखी द्रौपदी अति अकुलाई।
मूर्छित ह्वैकें गिरी पार्थप्रिय कहि समुझाई॥
त्यागहु चिन्ता शोक तीर लै तुरतहिं जाऊँ।
जिहि काटे सुत शीश काटि सिर ताको लाऊँ॥
केशवकूँ करि सारथी, चले शत्रु पीछो कियो।
ब्रह्म अस्त्र निज अस्त्रते, काटि पकरि गुरुसुत लियो॥

पशु समान दृढ़ बाँधि लाइ पत्नीकूँ दीन्हों।
गुरुसुत सम्मुख समुझि, चरन बन्दन उठि कीन्हो॥
दयादृष्टितें देखि द्रौपदी बोली बानी।
छोड़ो इनकूँ अबहिँ, दंडदे, होगी हानी॥
कृष्णा, कृष्ण, कनिष्ट, बड़, सबहीको कहनो कर्‌यो।
मूँड़ि बार बाहर कर्‌यो, माथेको मुक्ता हर्‌यो॥

गुरुसुत विप्र विचारि पुत्रघाती नहिं मार्यो।
अति अपमानित भयो युद्ध करि सम्मुख हार्यो॥
मैल न मनको गयो हिये प्रतिहिंसा धारी।
पाडुबंशको नाश करूँ यह बात विचारी॥
घाव पुरै गढ़हा भरै नर अपमान न भूलहीं।
खल-मन, मोती, दूध ये, जुरत फेरि फटिकें नहीं॥
दो०—राज युधिष्ठिरकूँ दयो, हथिनापुरमहँ आइ।
पाडव सेवैं श्यामकूँ, प्रेम न हिये समाइ॥
छ०—कृष्णा करी कृतार्थ, पाडुनन्दन नृप कीन्हे।
सबकूँ सब समुझाइ द्वारका हरि चलि दीन्हे॥
इतनेमें अति दुखित उत्तरा आगे आई।
स्वर गद्‌गद भयभीत, विपतिकी बात बताई॥
देव! निहारो दहकतो, आवै अस्त्र अमोघ है।
मारै मोकूँ किंतु मम, गर्भ बिभो! रक्षित रहै॥
अश्वत्थामा कुपित क्रोध करि सर छै छोड़े।
आवत देखे चक्र सुदर्शनतैं हरि तोड़े॥
दुर्योधन दल दल्यो दुसह दारुन दुख दीन्हे।
करी उत्तरा अभय पाडु-सुत निरभय कीन्हे॥
पलमें जो जगकूँ रचैं, करें निमिषमें नाश हैं।
दुष्ट दलन भक्तनि भरन, महँ तिनि कवन प्रयास हैं॥
चले द्वारकाधीश पृथा पुनि आगे आई।
भ्रातृपुत्रकूँ पकरि प्रेमते विनय सुनाई॥
प्रभो! पुत्र परिवार सहित सब भाँति उबारी।
किन्तु जिही है एक अन्तमें भीख हमारी॥
विपति बारि बारिद भरे, बार बार बरसा करें।
दरशन देवें दयावश, छत्र छाँह करि भय हरें॥

हे बिश्वम्भर ! बिभो ! आपु हैं सबके स्वामी।
अच्युत अलख अनन्त अगोचर अन्तरयामी ॥
सुरसरिको शुभ सलिल सदा सागरमें जावै।
मेरो चंचल चित्त चरन तल तव त्यों धावै ॥

बूआकी बिनती सुनी, प्रेम सहित प्रभु हँसि गये।
माया मोहित मन भयो, वासुदेव मन बसि गये ॥

नहीं द्वारका गये लौटि महलनिमें आये।
धरमराज रण-पाप सोचि पुनि पुनि पछिताये ॥'
कैसी मम मति मलिन भई भाई निज मारे।
निज सम्बन्धी हने सबहिँ निरदोष बिचारे ॥

अश्वमेध करि कवन विधि, परम पुण्य पुनि मिलि सके।
कीचड़की कालिख कबहुँ, कीचड़तें का धुलि सके ॥

हूँ पापी अति अधम मोहि नर नारि न निरखें।
पत्नी पतितें पृथक करीं बिधवा बनि बिलखें ॥
सबके सुत पितु मातु करुनक्रंदन करि कोसें।
पाडव पापी परम बन्धु बधि निज तनु पोसें ॥

कृष्ण ! कहो कैसे करूँ, रक्त सुरंजित राजकूँ।
कौन करै सुख स्वजन बधि, ऐसे कुत्सित काजकूँ ॥

धर्म नीति कहि बार बार सबने समुझाई।
किंतु काहुकी बात धर्मसुत मन नहिं भाई ॥
कृष्ण कहे—श्रीभीष्म हमारे अति ही प्यारे।
भक्ति भाव सुनि सबहिं दरसकूँ शीघ्र सिधारे ॥

शोभित भीषम शर बिँधे, अवनि उतरि जिमि रवि गिरे।
पाँडव पुरजन प्रभु सहित, सबने पद बंदन करे ॥

शरशैयापै परे भीष्म विद्युत् सम दमकें।
शोणित शर कच कांति इन्द्र धनु सम मिलि चमकें॥
बंधु सहित ढिंग जाय युधिष्ठिर शिशुसम रोये।
अश्रुबिंदु बरसाय, युगल पद-पंकज धोये॥
पाडुपुत्र पद पासमे, पग पकरे रोवत निरखि।
बोले उनतें पितामह, नंदनँदनकी ओर लखि॥

जिन्हे सारथी सुहृद सखा सेवक तुम मानों।
उन्हें सगुण साकार सर्वस्वामी करि जानों॥
कैसे कैसे कठिन काज सब करे तुम्हारे।
भाववश्य भगवान भक्त भय हरिवे वारे॥
कमठ अंड सेवै सदा, भाव रखें त्यों दासमे।
दरशन दैवे दयानिधि, आये सेवक पासमें॥

हैं नटनागर नवल नित्य नाटक नव खेलें।
देखि दयाके दृश्य दुःख दर्शक बहु झेलें॥
कब करवावैं कहाँ कौनतें कैसो कारज।
भेद न जानें देव, दैत्य, दानव, शंकर, अज॥
अंतकालमें कृष्ण कहि, नर अघ तजि हरिपुर गये।
ते मम मृत्यु समय समुझि, स्वयं श्याम सम्मुख भये॥

भये अशुभ सब छीन शुद्ध मन मोहन धारे।
शस्त्र शूल सब शांत भयो प्रभु निकट निहारे॥
इन्द्रियवृत्ति विलास रुकी हरि हियमें आये।
गद्‌गद गिरा गँभीर गीत गोविंदके गाये॥
मति हो मेरी कृष्णमें, गति हों गोवरधनधरन।
चंचल चित चितवे चरन, रटि रसना राधारमन॥

भीष्म स्तुति

मेरो मन प्रभु चरननि रमि जावै ।
मोर मुकुट कच कुटिल मनोहर फँसि तिनिमें उरझावै ॥१॥ मेरो मन०
भाल तिलक धनु सम शुभ भौंहनि नयननिमें गड़ि जावै ।
लोल कपोल श्वेद युत सुन्दर निरखि निरखि सचु पावै ॥२॥ मेरो मन०
सुघर नासिका दंत मनोहर अधरनिपै बलि जावै ।
शंखग्रीव केहरि सम कंधनि पीताम्बर फहरावै ॥३॥ मेरो मन०
बाहु विशाल करधनी कटिम चरनकमल नित ध्यावै ।
कृष्ण कृपालो करुना सागर रसना नामनि गावै ॥४॥ मेरो मन०

छप्पय—हे अनाथके नाथ ! ज्ञान गीताके दाता ।
हे अरजुनके सखा ! सारथी दुखके त्राता ॥
हे बूढ़ेकी कठिन प्रतिज्ञा पूरनकर्ता !
हे ब्रजवल्लभ ! अखिल विश्वके हर्ता भर्ता !!

हरि हियमें धारन करे, करत बिनय बिह्वल भये ।
कृष्ण ! कृपालो ! कृपानिधि, कहत भीष्म सुरपुर गये ॥

सो०—सब धरमनिको सार, भीष्म धरमसुततें कह्यो ।
भये श्याम लखि पार, तनु तजि पायो परम पद ॥

छ०—भये भीष्म जब शांत कृष्ण पांडव पछिताये ।
दाह आदि सस्कार करे कुल करम कराये ॥
सेवक स्वजन समेत हस्तिनापुरमें आये ।
भये युधिष्ठिर भूप, विविध विधि हरि समुझाये ॥

सबको सब संतोष करि, श्याम सकुचि बोले बचन ।
जाउँ द्वारका तहाँ हूँ, चिंतित होंगे सब स्वजन ॥

इतिश्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें भीष्म परलोक गमन नामक तृतीय अध्याय समाप्त ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

जावेंगे यदुनाथ बात फैली घर-घरमें।
व्याप्यो सब थल शोक राज रनिवास नगरमें ॥
सबही कहिवे लगे—कृष्ण कब दरसन देंगे।
कब पुनि पुण्य पराग पादपद्मनिकी लेंगे ॥
नरतनु फल है नयन ये, नंदनँदन निरख्यो करें।
काज करें कर कृष्णके, मनमोहन मनकूँ हरें ॥

दुखित भये नर नारि नयनतें नीर बहावें।
नाथ! अनाथ बनाइ बिलखते तजि घर जावें ॥
हाय! विधाता वाम श्यामको साथ छुड़ावै।
हमकूँ कुटिल कराल कालहू क्यौं नहिं आवै ॥
भोजन आसन शयनमें, साथ श्याम सबके रहें।
पाडव पालित प्रेमके, प्रभु वियोग कैसें सहें ॥

नयन नीरतें धूरि कीच भइ चली सवारी।
पीछे पुरजन पाडुपुत्र आत चले दुखारी ॥
साग्रह सब लौटाइ सैन सँग श्याम सिधारे।
पथके नृप नर-नारि निरखि अति भये सुखारे ॥
पद-रजतें पावन करत, देश नगर, पुर, वन विकट।
पहुँचे प्रभु सन्ध्या समय, दिव्य द्वारकाके निकट ॥

पाञ्चजन्यको शब्द सुन्यो अति भये सुखारे।
स्वागत को सामान सजायो सबहिं सिधारे॥
नगर, द्वार, गृहद्वार, मार्ग सब सुघड़ सजाये।
दधि अक्षत फल लाइ सजल घट दीप जराये॥

रथमें शोभित श्याम घन, छत्र श्वेत माला गले।
नयन सफल सबके करत, हरत चित्त चितवत चले॥

नव जलधर सम श्याम सुमन बर बरसा बरसैं।
जनता करि जयघोष दरसतें अति ही हरसैं॥
श्याम अंग पटपीत गरे बनमाला सोहै।
मानों घनमें तड़ित इन्द्र धनु मनकूँ मोहै॥

प्रेम सुधा बरसावते, हियमें सुख सरसावते।
पुरबासिनि हरसावते, सुने श्याम गृह आवते॥

अति उत्कंठित महल माहिं महिषी माता सब।
आवें प्रिय यदुनाथ पुरावें चिर आशा कब॥
इतनेमें घनश्याम महल माताके आये।
सब मातनिके मृदुल चरनमहँ शीश नवाये॥

अंक लाय सिर सूँघि सब, प्रेम बारि बरसा करति।
चूमि चाटि गौ बत्स जिमि, विरह बिथा हियकी हरति॥

सुनि नूपुर की झनक, चुरिनि की खनक मनोहर।
माँ बोलीं—अब जाउ बस्त्र बदलो भीतर घर॥
मन्द मन्द मुस्कात, महलमें मोहन आये।
नारि निरखि नँदनंद नयनतें नीर बहाये॥

मनतें मोहनतें मिलीं, नयन ओटतें चोट करि।
शिशु सौंप्यो पुनि लाइ उर, आलिङ्गन यों किये हरि॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें भगवद्द्वारका प्रवेश नामक चतुर्थअध्याय समाप्त।

[मासिक परायण-प्रथम दिवस विश्राम]

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

बोले शौनक—सूत ! सुधा सम कथा सुनाई ।
कहो परीक्षित जन्म, कर्म, बल, बीर्य बड़ाई ॥
कहे सूत—सब सुनो कुक्षिगत बालक जरते ।
निरखैं निरमल रूप गदातें रक्षा करते ॥
करैं परीक्षा कौन ये, सुन्दर श्याम सुरूपयुत ।
दसम मासमें तिरोहित, भये प्रकट अभिमन्युसुत ॥

सुनत परीक्षित जन्म हर्ष चहुँदिशिमें छाये ।
नगर राज सरवत्र विविध विधि बजत बधाये ॥
वेदविज्ञ बहु बिप्र युधिष्ठिर बेगि बुलाये ।
दिये दान बहु ग्राम अन्न धन रतन लुटाये ॥
कहे बिप्र—ये जगतमें, विपुल अमल यश पायँगे ।
विष्णु वीर्य रक्षित नृपति, विष्णुरात कहलायँगे ॥

पृथापुत्र पुनि कहे—पुत्रके ग्रह फल भाखें ।
बोले विप्र—तुम्हार पौत्र कुल गौरव राखे ॥
विप्र भक्त, दुरधरस दया रत दाता दुस्तर ।
क्षमा शील गुणवान सत्यबादी सब सुखकर ॥
शूर सिंह सम समर प्रिय, बीर बिश्व विजयी बड़े ।
रहे द्वारपै बाँधि कर, आज्ञा हित भूगति खड़े ॥

होंगे कृष्ण समान कुलागत काज करिङ्गे।
करि दुष्टनिको दमन दुखिनिके दुःख हरिङ्गे॥
क्रोधित बालकविप्र शापतें शापित हुङ्गे।
सर्व संग निर्मुक्त होहि हरि कथा सुनिङ्गे॥
श्रीशुक स्वेच्छातें स्वतः, आवैं कथा सुनाइँगे।
मुनिमंडलमें त्यागि तनु, पुण्य परमपद पाइँगे॥

सो०—सुनि विप्रनिके बैन, धरमराज प्रमुदित भये।
भरे नेह जल नैन, कछुक बढ़े अभिमन्यु सुत॥

छप्पय—पुरुष पुरुष प्रति पेखि परीक्षा करहिं सबनिमें।
गर्भमाँहि जो लख्यो ताहि ते लखहिं नरनिमें॥
हरि हयमेध हितार्थ हस्तिनापुर फिरि आये।
देखत दौरे गोद बैठि हरषे किलकाये॥
बोले विप्र वचन सफल, कृष्ण अकमें निरखि सुत।
नाम परीक्षितें विदित, होय नृपति अति भक्तियुत॥

लखे युधिष्ठिर दुखी कहे हरि—मत घबराओ।
सब अघनाशक पुण्य यज्ञ हयमेध कराओ॥
सब समर्थ हैं आपु तऊ चिंतित ह्वै रोवें।
अश्वमेध करि युद्धजनित पातक नृप धोवें॥
अश्वमेधकी बात सुनि, मौन युधिष्ठिर ह्वै गये।
रिक्तकोष लखि दुखित ह्वै, मनही मन चिंतित भये॥

सोचें राजा—हने नृपति सम्बन्धी सबई।
जब होवे हयमेध टरिङ्गे पातक तबई॥
मम चिंतातें भला कहो का काज सरिङ्गे।
वे होवे सम्पन्न जाहि श्रीकृष्ण करिङ्गे॥
हरि भक्तनिके काज प्रभु, करता बनि करतें करें।
जे शरणागत ह्वै गये, तिनिके सब दुख हरि हरें॥

दो०—धरमराजकी विकलता, लखि बोले घनश्याम।
अश्वमेध मख नृप! करो, पावै मन विश्राम॥

छप्पय—कुन्तीनन्दन कहे—कृष्ण! केहि विधि मख होवें।
कौन काज करि कहो कालिमा कुलकी धोवें॥
छुटे अंश अरु दण्ड द्रव्यतें काम चलावें।
भूमिपालकी जिही वेदवित वृत्ति बतावें॥
हरि बोले—हिम शिखरपै, धन है विपुल मरुत्तको।
लाइ करो मख जिही तो, सदुपयोग है वित्तको॥

अच्युत आज्ञा पाइ हिमाचल पांडव धाये।
शिवकूँ करि सन्तुष्ट मरुत मखको धन लाये॥
करि कृष्णार्पण सबहिं यज्ञके कारज कीन्हे।
अन्न वस्त्र धन धाम ग्राम विप्रनिकूँ दीन्हे॥
इन्द्र सरिस कुन्ती तनय, नव जलधर सम श्याम हैं।
स्वर्ण वारि बरसैं विपुल, पूरें सबके काम हैं॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें परीक्षित् जन्मोत्कर्ष नामक पञ्चम अध्याय समाप्त।



अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

दो०—कहे सूत—मुनिवर ! सुनो, विदुर आगमन धन्य ।
शूद्र भये यम शाप वश, जो हरि भक्त अनन्य ॥

छप्पय—मुनि माडव्य महान् मनस्वी मौनी दुष्कर ।
करें तपस्या तीव्र द्वार आश्रमके तरुतर ॥
करिकें चोरी चोर ओर आश्रमकी आये ।
देखि दूरतें दूत द्रव्य धरि तहाँ लुकाये ॥
पूछें मुनितें दूत सब, मौनी उत्तर देहिं कस ।
यही चोर सरदार है, सब मिलि निश्चय कियो अस ॥

बाँधे चोरनि सहित निकट नरपतिके लाये ।
बिनु बिचारि मुनि सहित चोर शूली लटकाये ॥
तबतें मुनि नहिं मरें मरम भूपति जब जान्यो ।
क्षमा याचना करी दोष मुनि अपनो मान्यो ॥
क्रोधित लखि यमने कही, छेदे कृमि छोड़े अबश ।
शाप दयो यम शूद्र हो, भये विदुर मुनिकोपवश ॥

सो०—ते ई बनि परिब्राज, तीरथ हित रनतैं प्रथम ।
धरमराजको राज, आये देखनहेतु पुनि ॥

छप्पय—आये चाचा विदुर युधिष्ठिर सुनि हरषाये।
करि स्वागत सत्कार प्रेमतें पुरमें लाये॥
पुनि पूछी कुशलात कृष्णकी कहो कहानी।
तिरोभावकूँ त्यागि विदुरने सबहिं बखानी॥

स्वयं धरम शत वरष तक, शूद्र भये मुनि शाप सुनि।
शूलीके कारन कुपित, शाप दयो माण्डव्य मुनि॥

विदुर देवव्रत लखे अग पांडव न समाये।
मानों मृतक शरीर प्रान फिरितें फिरि आये॥
पूछें पांडव—चचा! हमें क्यों अस बिसराये।
कुन्ती बोलीं—लला! भूलि तुम इत कित आये॥

प्रणय कोपयुत मधुर अति, सुनत विदुर बोले वचन।
भाभी! भाग्य अधीन हैं, सुख दुख अरु बिछुरन मिलन॥

सो०—पाइ परम सत्कार, विदुर बसैं धृतराष्ट्र ढिंग।
करन बन्धु उपकार, नित प्रति सोचत ही रहत॥

छ०—धरम रूप वे विदुर बन्धुतैं बोले बानी।
राजन्! कुटिल कराल कालकी कछु गति जानी॥
देखो, दौर्यो काल सबनिके सम्मुख आयो।
चलो त्यागि तत्काल विलम क्यौं यहाँ लगायो॥

सगे सबहिं सुरपुर गये, देह जरजरित ह्वै गई।
जीवन आशा नहिं गई, अन्त समय दुरगति भई॥

जिनकूँ तुमने देव! दुसह दुख दारुन दीन्हे।
दारा दूषित करी द्रव्य हरि भिच्छुक कीन्हे॥
श्वान समान अमान उनहिंके टुकड़े खाओ।
रक्त सुरजित भोग भोगतें नहीं लजाओ॥

चलो उत्तराखंडकूँ, मोहपाश छेदन करो।
जनम सफल तप करि करो, सब तजि हरि हियमें धरो॥

सुनत बिदुरके बचन बन्धुवर अति हरषाये।
गद्गद गिरा गँभीर नीर नयननिमें छाये॥
धन्य धन्य लघुभ्रात हाथ गहि तात उबार्यो।
अन्धकूपमें पतित—पतितकूँ पकरि निकार्यो॥
सबकूँ सोवत छोड़िकें, गान्धारीके साथमें।
विदुर बताये मार्गतें, चले हाथ दै हाथमें॥

नित्य नियम अनुसार युधिष्ठिर गुरु बन्दनकूँ।
आये, देखे नहीं, विदुर अरु कुरुनन्दनकूँ॥
सुनि संजयतैं वृत्त बहुत रोये पछिताये।
आये नारद समाचार सब सत्य सुनाये॥
ताऊ ताई तव चचा, ससश्रोत सब जायँगे।
पाप पुण्यतें पृथक् ह्वै, पुण्य परम पद पायँगे॥

दो०—यों कहि नारद मुनि गये, धर्मराज अति दीन।
सूनो सूनो सब जगत्, दीखत अति श्रीहीन॥

छ०—कहे युधिष्ठर भीम! भयानक काल भयो है।
आयो अरजुन नहीं द्वारकामाहि गयो है॥
भये धरम विपरीत रीति कुलकी सब त्यागें।
जाइँ पुत्र परलोक पिता माताके आगें॥
पिता पुत्र, भाई सगे, पति पत्नीमें कलह नित।
असगुन नित नूतन निरखि, चचल होवै मोर चित॥

त्यागयो सबने धर्म कर्म कछु करें न हितकर।
पालें पापी पेट पाप करि सबहिं नारि नर॥
करे नहीं विश्वास परस्पर प्रेम न राखें।
तनिक द्रव्यके हेतु हाल मिथ्या सब भाखे॥
निरखि नित्य उत्पात अति, मन मलीन मेरो भयो।
कपटबन्धु कलिकाल का, धरा धामपै छा गयो॥

फरकें बाईं बाहु हृदयमें कम्पन होवै।
करि मुँह मेरी ओर श्वान निर्भय ह्वै रोवै॥
उल्लू और कपोत मृत्युके दूत कहावें।
करकश कठिन कराल शब्द करि हृदय हिलावें॥

लीला विग्रह त्यागि का, श्याम धाम गमने कहीं।
करूँ कहा चित दुखित अति, अरजुन हू आयो नहीं॥

गैयाँ रोवें नित्य, घास घोड़ा नहिं खावें।
बहै वायु बीभत्स, रक्त बादर बरसावें॥
पृथिवी, प्रेत, पिशाच, पाप प्रानिनितै पूरन।
भई गई शुभ कान्ति, लड़ैं नभमें सब ग्रहगन॥

देवमूर्ति मुख मलिन करि, अश्रु विन्दु बरसावतीं।
अति अपशकुन जतनावतीं, दुखद दृश्य दिखलावतीं॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें विदुर धृतराष्ट्र गृहत्याग नामक षष्ठम अध्याय समाप्त।



अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

धरमराज भयभीत भये अरजुन तहँ आये।
मुखमण्डल अति मलिन दुखित चिंतित घबराये ॥
सब ई हर्षित भये नही अरजुन हरषाये।
पकरि पैर गिरि परै बचन नहिं कछू सुनाये ॥
बार-बार पूछे नृपति, बन्धु ! बताओ बात सब।
सम्बन्धी सब सुखी हैं, कहो तहाँतैं चले कब ॥

अरजुन बोलें नहीं बहुत बिलपैं पछितावें।
धरमराज पुचकारि, प्यार करि धीर बँधावें ॥
दुखको कारन बन्धु ! शोक तजि मोइ बताओ।
यदुनन्दनके सबहिं सुखद संबाद सुनाओ ॥
बचन कठिन काहू कहे, अथवा अपमानित भये।
या तनु तजिके भुवनपति, नित्य धाम तो नहिं गये ॥

दुखको वारापार न अरजुन कतहूँ पावैं।
कृष्ण कृपाकूँ सुमिरि, नयनतैं नीर बहावैं ॥
नाथ ! सारथी सदा सुहृद सम्बन्धी बनिकें।
नित नित नेह बढाय, छोंड़ि गमने छल करिकें ॥
हाय ! प्रभो ! अब जायँ कित, इत उत नहिं संतोष सुख।
अश्रु पोंछि बोले बचन, तात बाततैं बढ़्यो दुख ॥

जिनकी कृपा कटाक्ष पाइ हम भये सुखारे।
राजन् ! कैसे कहूँ श्याम निजधाम पधारे॥
जिनके प्रेम प्रसाद प्रिया कृष्णा-सी पाई।
यन्त्र मत्स्यकूँ बेधि द्रुपदपुर लही बड़ाई॥
कामसत्त सब नृपनिकै, सिरपै पैर जमाइकें।
द्रुपदसुता हमने बरी, गये अनाथ बनाइकें॥

जिनकी लहिकें कृपा अकारज कारज कीन्हे।
विप्र बेषमहँ वह्नि आइ बर मागे दीन्हे॥
सन्निधि समुझी श्याम भोज बहु खांडव दीन्हों।
अति प्रचण्ड धरि रूप दाह वन सबरो कीन्हों॥
देवराज रक्षा करी, किन्तु पराजित वे भये।
धराधाम तजि धाम निज, अज अच्युत अब चलि दये॥

राजन् ! अति कमनीय कृष्णकी अकथ कहानी।
प्रेमामृत में सनी सरस सुखदायक बानी॥
खांडवको करि दाह अग्नि भरि पेट अघाये।
दोउनिकूँ बर दैंन देवपति दौरे आये॥
मैंने मागे अस्त्र वर, मांग्यो हरि वर हिय भरै।
अरजुनके सँग मित्रता, मेरी नित बढ़िबौ करै॥

राजसूयके समय सबहिं भूपति वश आये।
जरासन्ध नहिं नम्यो आपु अतिशय घबराये॥
मगधेश्वरके दमन करनकी युक्ति बताई।
अभय करत वा समय श्याम सब कहँ सुझाई॥
राजन् ! अरजुन, भीम, मैं, तीनिहु गिरिव्रज जायँगे।
जरासन्धकूँ युक्तितें, मारि मगधतें आयँगे॥

आज्ञा लैके चले साथ हम दोऊ लीन्हे।
छत्री बानों बदलि बेष बिप्रनिके कीन्हे॥
ज्येष्ठ बन्धुतैं भिड़ा दुष्ट मरवायौ इनतै।
बन्दी भूपति मुक्त करे बोले हरि उनतैं॥
धरमराजके यज्ञमें, बहुत भेंट लै आउ सब।
वे ही हमरे हृदयधन, श्याम सिधारे धाम अब॥

राजन्! कहँ कहँ कहूँ, करी हमरी रखवारी।
दुष्ट फन्दमें फँसी द्रौपदी प्रिया तुम्हारी॥
जिनिमें छींटा राजसूय पयके शुभ लागे।
खोले खींचे केश खलनिने सबके आगें॥
रोई अति ही दीन ह्वै, रच्छा नहिं काहू करी।
कृष्ण पुकारे करुणस्वर, कान भनक उनके परी॥

भरी सभामें आइ चीरकूँ अच्छय कीन्हों।
दुखित दयानिधि भये दण्ड दुष्टनिकूँ दीन्हों॥
जिन कच खींचे बधू बनीं बिधवा उन सबकी।
खोलें डोलें केश, प्रतिज्ञा पूरी तब की॥
सदा दुखी दुखमें रहे, सुखी सबनि सुख दै भये।
किन्तु अन्तमें अकेले, सब तजि निज पुर चलि गये॥

मूर्तिमान जो कोप तपस्वी दुर्वासा मुनि।
शाप दिवावन शत्रु पठाये बन वैभव सुनि॥
अच्छय रविको पात्र खाइ मलि कृष्णा निबटी।
अतिथि भये लै शिष्य सबनि चित चिन्ता चिपटी॥
दुखमें सुखमें शोकमे, हैं जाकी गोविन्द गति।
श्याम पुकारे करुन स्वर, भई द्रौपदी दुखित अति॥

सुनत प्रियाकी टेर वेर नहिं करी पधारे।
'अति भूखो कछु देहु' आइ ये बचन उचारे॥
रोई कृष्णा पात्र लयो आगे धरि दीन्हों।
शाकपत्रकूँ पाइ, तृप्त सबरो जग कीन्हों॥

न्हात मुनिनि फूले उदर, लेत डकार पलायँ सब।
टारी वृहद विपत्ति जिनि, गये त्यागि ससार अब॥

अश्वत्थामा भीष्म द्रोण अरु कर्ण धनुरधर।
डरत रहत नित आप चारिहू अति बलवत्तर॥
दीक्षा दैकें मोइ आपने अस्त्र लैन हित।
पठयो प्रकटे इन्द्र कह्यो तपमें तुम हो रत॥

तुमरे तपते तुष्ट ह्वै, तुरत त्रिलोचन आयँगे।
लोकपाल शिव अस्त्र निज, आइ सबहिँ दै जायँगे॥

उल्ला०—इन्द्र,वरुण, यम,धनद आ, अस्त्र सहित दरशन दिये।
करी कृपा जिन कृपातें, कृष्ण कहाँ अब चलि गये॥

देखि देवपति मुदित मन, पुत्र प्रेम परगट कियो।
सिर सूँघ्यो मुँह चूमिकें, आधो सिंहासन दियो॥

छ०—करत तपस्या भील वेष धरि शिव तहँ आये।
जानि जगली जाति लड़्यो हर अति हरपाये॥
भयो युद्ध घनघोर भई नहिं कुठित मो मति।
कृष्ण कृपातें उमा सहित शिव तुष्ट भये अति॥

जिनकी कृपा प्रसादतें, नर तनुतें सुरपुर गयो।
अर्ध सिंहासन हरि दयो, अब उन बिनु निरबल भयो॥

कछुक काल सुखसहित स्वर्गसुख भोगे भारी।
दिव्य अस्त्र सब सीखि चलनकी करी तयारी॥
देवराज सब देव कहे—इक कारज कीजे॥
अस्त्र-शस्त्र तो लये दक्षिणा गुरुकी दीजे॥
हैं निवात कवचादि अति, प्रबल दैत्य तिनते लरो।
मारो रणमें सबनिकूँ, निष्कंटक सुरपुर करो॥

मारि सके नहिं देव तिनहिँ तैं हौं जा जूझ्यो।
कृष्ण कृपातें कछू कठिन कारज नहिं सूझ्यो॥
दिव्य अस्त्रते मारि शत्रु सबही सहारे।
माया छलतें लड़े तऊ रणमें सब हारे॥
कालिकेय पौलोम सब, स्वर्णपुरी वासी हने।
जिनिके बलतें बली बनि, राजन्! अब तिनु बिनु बने॥

कौरव और त्रिगर्त सन्धि करि करी चढ़ाई।
करें वास अज्ञात जहाँ हम पाँचहु भाई॥
भीष्म, कर्ण,गुरुद्रोण, सुयोधन सब मिलि करिकें।
मत्स्यदेशपै चढ़े चले गोधन बहु हरिकें॥
बृहन्नलातें सारथी, बन्यो हरष हियमें अमित।
कहे उत्तरा—सुघर पट, लावें मम गुड़ियानि हित॥

उत्तर उत ही चल्यो जायँ कौरव गौ लूटें।
सेना लखी महान् कुँवरके छक्के छूटे॥
निज परिचय करवाइ युद्धकी करी तयारी।
सधान्यो गाडीव शत्रु-सेना संहारी॥
लही विजय मूर्छित करे, मुकुट, वस्त्र गोधन लये।
करे काज जिनि कृपातें, हाय! कृष्ण वे तजि गये॥

कैसी किरपा करी हमारे ऊपर रनमहँ।
भीष्म द्रोण सम वीर बान तकि मा।हिं तनमहँ॥
जाहिं सरँ करि निकरि तनिक तनमहँ नहिं लागैं।
लागत मेरे बान शत्रु रन तजि सब भागैं॥
मेरे रथपै बैठिकें, सबकूँ निरबीरज कर्‌यो।
दृष्टि डारि मृत सरिस करि, ओज, तेज, वय, बल हर्‌यो॥

बार-बार यों कहे फिरैं रनमहँ लै मोकूँ।
शत्र पलके अस्त्र परखि पावैं नहिं तोकूँ॥
दरसावैं निज कला विविध विधि रथकूँ हाकैं।
तजैं तेज बल वीर जाहि तिरछे ह्वै ताकैं॥
राजन्! रनमें काल बनि, संहारे सब ही जने।
अवनि त्यागि अत्र अखिलपति, बर बिकुंठवासी बने॥

जिनिके कमल समान पूजि पग मुनि न अघावें।
हृदय कमलमहँ ध्याइ पार भवसागर जावें॥
नहिँ पूजे पद पदुम निन्द्य कारज करवायो।
मनमोहनतें महामोहबश रथ हँकवायो॥
समुझि सक्‌यो नहिं श्यामकूँ, मोह्यो तब मैं मन्दमति।
हाय! लुट्‌यो वञ्चित भयो, हृदय फटत मन दुखित अति॥

कहूँ कहाँ तक प्रभो! श्याम मोकूँ अपनायो।
घोड़ा घायल भये चलैं नहिं मैं घबरायो॥
सब शत्रुनितें घिर्‌यो डर्‌यो हरि नेह निहार्‌यौ।
समुझि श्याम संकेत बानतें नीर निकार्‌यौ॥
हय प्याये तैराइकें, शर निकारि मलि जोरि रथ।
चले शत्रु मोहित करे, गये त्यागि अब ह्वौ विरथ॥

राजन् ! हरिने ठग्यो घट्यो बल मेरो सवरो ।
गये सुदिन वे बीति अंत अब आयो हमरो ॥
अस्त्र न आवें यादि शस्त्र सब भूले अबई ।
पुरुषोत्तमतैं रहित भयो गुन गमने सबई ॥

गंगातटपै तापसी, शाप क्रोध करि जो दयो ।
सम्मुख आयौ आजु वो, अबला सम हौं लुटि गयो ॥

एक दिना बन माँहिं तापसी तीन खड्ग धरि ।
बैरी मेरे तीन बतावै जब पूछी हरि ॥
बाँधे माखन हेतु यशोदा ताकूँ मारूँ ।
दीन्हौं कृष्णा कष्ट पार्थहित तीसरि धारूँ ॥

तीन शाप क्रमशः दिये, बहु समुझायो श्याम जब ।
सुत बियोग पति उपेक्षा, दस्यु पराजित करहिँ तब ॥

हरि आज्ञा सिर धारि नारि लैकें मैं आयो ।
डाँकू मगमें मिले मोइ मिलिके धमकायो ॥
अपनो परिचय दयो नाम अरजुनहुँ बतायो ।
किन्तु न माने दुष्ट नारि लखि चित चलायो ॥

हरिकी सोलह सहस प्रिय, पत्नी तिनि ढाढस दयो ।
तऊ लूटि लै भगे हौं, देखतको देखत रह्यो ॥

जीत्यो भारत युद्ध दिव्य रथ घोड़ा वेई ।
धनुष वही गाडीव समरबिजई सर वेई ॥
बिश्वबिदित हौं रथी साज सामान वही हैं ।
किन्तु नहीं हैं श्याम सारथी व्यर्थ सभी हैं ॥

बुझी आगमहँ हवन जिमि, ऊसर बोयो बीज ज्यों ।
जिमि सेवा कंजूसकी, व्यर्थ होइ ह्वै गयो त्यों ॥

राजन्! पथकी व्यथा बताई सबरी हमने।
पूछी जिनिकी कुशल नाम लै-लै के तुमने॥
वे सबतो बनि मूढ़ परस्पर लरे बिचारे।
मद पीकें मदमत्त भये मरि स्वर्ग सिधारे॥

जैसे जलचर दीर्घ लघु, खायँ बली निरबलनिकूँ।
त्यों यदुवंशी लरि मरे, मरवाये हरि सबनिकूँ॥

कैसी क्रीड़ा करें कौतुकी श्याम खिलारी।
विषय बासना बद्ध न समुझति बुद्धि बिचारी॥
जीव जीव सों करें जीवतें पुनि मरवावें।
करहिं परस्पर प्यार शत्रुता पुनि करवावें॥

महाराज! सब काज तजि, चलो बिजन बन तनु तजो।
राज, पाट, धन, धाम, गृह, छोरि मोरि मुख हरि भजो॥

भयो भोर सब ओर शोक घर घरमें छायौ।
कुन्ती माता सुन्यो द्वारकातें सुत आयौ॥
स्वामी सरवसु सगे बाहिरी प्रान हमारे।
वे हरि हमकूँ त्यागि हाय! बैकुंठ सिधारे॥

नाश भयो यदुवंशको, लरि भिरिकें सब मरि गये।
कुन्ती तनु त्याग्यो तबहिं, शोकाकुल सुत सब भये॥

स्वरग सिधारी मातु धरमसुत नहिं घबराये।
धन्य-धन्य मम मातु बिरह-हरि प्रान गँवाये॥
अश अभागे हमहिं बज्रसम हिये हमारे।
सुनत श्याम संवाद प्रान हरि सँग न सिधारे॥

जलज मीन फणि-बारि मणि, बिनु न रहे जीवित अधिक।
मातु निबाह्यो प्रेम भल, हम जीवित अस नेह धिक॥

धरमराजने लख्यो, राजमहँ दम्भ कपट अति ।
कलिकूँ आयो जानि, कीन्ह परलोक गमन मति ॥
वन परवत नद नदी, ससागर सबरी पृथ्वी ।
के कीन्हे सम्राट् परिक्षित् परम यशस्वी ॥
हथिनापुरमहँ परीक्षित, बज्र ब्रजेन्द्र बनाइकें ।
गुणी पौत्र लखि मुकुट निज, सिर धरि दियो सिहाइकें ॥

कहे परीक्षित्-प्रभो ! प्रजापालन अति दुष्कर ।
हौ मतिमद मलीन अज्ञ अतिशय हे नृपवर ॥
कृपासिन्धु ! करि कृपा काज सब मोइ सिखावैं ।
आश्रयहीन अनाथ नाथ ! अबहीं न बनावैं ॥
कहु पिपीलिका हिमालय, कैसे निज सिरपर धरै ।
कस कपोत निज पंखपै, धरनीधर धारन करै ॥

किये परीक्षित् नृपति चले सब पांडव बनकूँ ।
राज-पाट परिवार सबहिंतें खैंच्यौ मनकूँ ॥
चीर बसन आहार तजे, कच कुंचित खोलें ।
जड़ उनमत्त समान न काहूतें कछु बोलें ॥
जैसे बीती यामिनी, नहिँ लौटति पुनि जाइकें ।
उत्तर दिशिकूँ चलि दिये, हरिपद हियमें लाइकें ॥

गान्धारी धृतराष्ट्र बिदुर कुन्ती हरि हिय धरि ।
पांडव पतिनी सहित गये परिवार दुखित करि ॥
तनु त्यागो यश छाँड़ि धाम वैकुण्ठ सिधारे ।
सबके सुखकर मधुर चरित हैं अतिशय प्यारे ॥
जे श्रद्धाते सुनहिं नर, पढ़हिं प्रेमतें गायँगे ।
पुण्य परम पद पायँगे, भवसागर तरि जायँगे ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें पांडव स्वर्गारोहण नामक सप्तम अध्याय समाप्त ।

अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

पूज्य पितामह परम पुण्य परलोक पधारे।
भये परीक्षित् नृपति सुनत सब संत सुखारे॥
यज्ञ याग बहु करे दान दुखियनिकूँ दीन्हे।
इरावतीमें चारि गुणी सुत पैदा कीन्हे॥
कृपाचार्यकी कृपातैं, अश्वमेध कैई करे।
यों ऋषि-ऋण सुरपितर-ऋण, तीनिहु ऋणतें नृप तरे॥
सुन्यो परीक्षित राजमांहिं कलियुग घुसि आयो।
धावा बोल्यो तुरत सुनत कलियुग घबरायो॥
पूछें शौनक—सूत! कर्यो कलि कैसे वशमें।
नृपति वेषमें शूद्र गऊ ताड़त किहि थलमें॥
राजवेषधारी वृषल, वृषभ गऊ ताड़न करत।
बलपूर्वक कस वश कर्यो, कस नृप सबके दुख हरत॥
दो०—सूत कहे शौनक सुनहु, कलि निग्रहको वृत्त।
भूप परीक्षितको सुखद, जामें पुन्य चरित्र॥
छ०—कुरु जागलमहँ बसत युद्ध अवसर नहिं आवें।
धीर धनुरधर नृपति विना रन हाथ खुजावें॥
कलि प्रवेश सुनि कुपित शीघ्र सब सेन सम्हारी।
दशहुँ दिशानिकूँ विजय करनकी करी तयारी॥
जायँ जहाँ जहँ जनेश्वर, तहँ निज कुल कीरति सुनत।
कहँ कहँ कृष्ण करी कृपा, सुनत होत अति मन मुदित॥

कहें विप्रवर आइ कृष्णने करी कृपा कस।
बने सारथी, दूत, भृत्य, घनश्याम दयाबस॥
भक्तवश्य भगवान् दीनताते बँधि जावें।
किन्तु करें अभिमान तिनहिं यमसदन पठावें॥

करें कृपा करुनायतन, जीव क्षुद्रता नित करें।
शरनागतके अघ अखिल, अखिलेश्वर छिनमें हरें॥

बोले ब्राह्मण वृद्ध—युद्धकी बात बताऊँ।
सुनहु नृपति! इक कथा सरस शुभ सुखद सुनाऊँ॥
करी प्रतिज्ञा भीष्म अवनि पाडव बिनु करिहौं।
सब शंका-सताप सुयोधनके अब हरिहौं॥

सुनत हँसे हरि दयामय, लै कृष्णा कौतुक कियो।
'हो सौभाग्यवती सती', भूलि पितामह बर दियो॥

कृष्णाते यों कहे कृष्ण—कछु बात सुनी है।
पाडव मारूँ कालिह प्रतिज्ञा भीष्म करी है॥
कहे द्रौपदी दुखित—दयालो! दया दिखाओ।
पावकमें जरि मरूँ नाहिं पति पाँच बचाओ॥

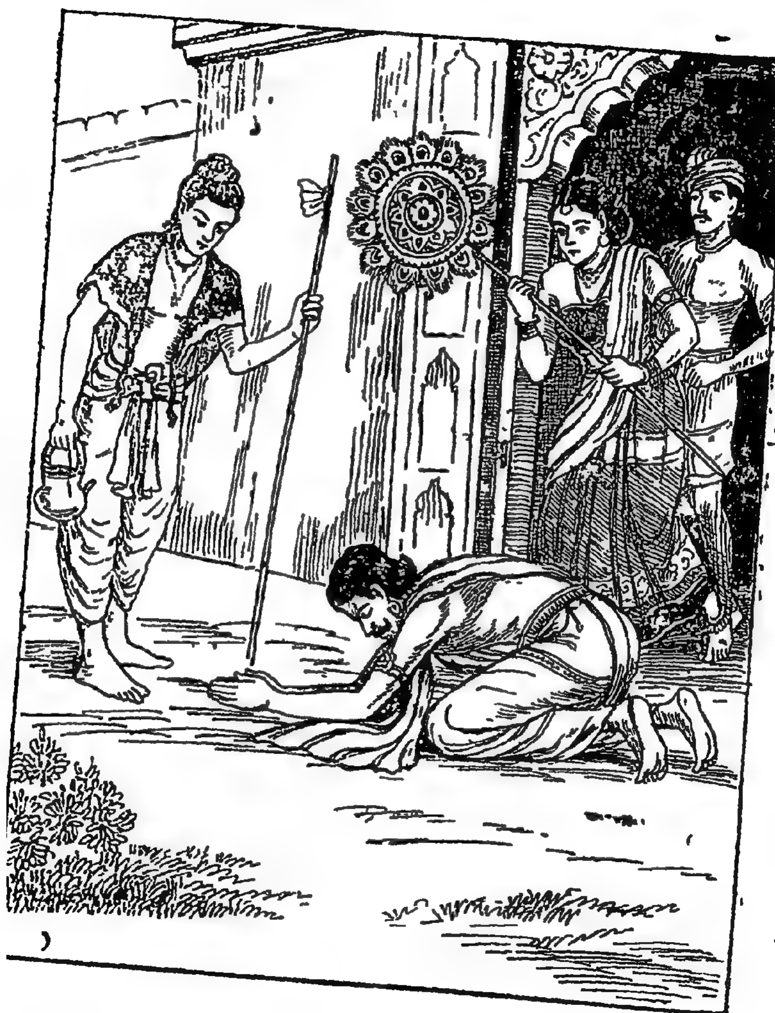
रची चिता फेरीनि मिस, भीष्म द्वारपै लै गये।
गंगासुत आसिस दई, तब पाडव निरभय भये॥

हरिलीला अति मधुर आइ सब नृपहिं सुनावहिं।
सब समाजके सङ्ग सुनहिं अति हिय हरषावहिं॥
तबई शिविर समीप घटी घटना अद्भुत अति।
एक पैरते धरम वृषभ बनि चलहि मन्द गति॥

धेनु रूप धरनी धरे, रोवै सुत बिनु मातु ज्यों।
मातु दुखित पूछहिं तनुज, धरम बरनिते कहे यों॥



कलिकी शरणागति पृ० ४२



शापका संवाद पृ० ४६

बीतत सुखद बसंत ग्रीष्ममें गरमी आवै।
प्रथम पक्ष शशि छीन द्वितियमहँ पुनि खिलि जावै॥
महामोदमें हँसै वही दुखमें पुनि रोवै।
त्यों कलियुग पश्चात् सुखद शुभ सतयुग होवै॥

जननी ! दुखतें दुखित है, काहे अश्रु बहावती।
कान्तिहीन मुख म्लान करि, कस डरि-डरि डकरावती॥

बोली वसुधा—वत्स ! विपतिकी बात बताऊँ।
प्राननाथ पदपदुम परस बिनु अति अकुलाऊँ॥
जिनकी कृपाकटाक्ष पाइ पावन सब होवें।
मधुर मन्द मुसकान नारि लखि धीरज खोवें॥

तिनु बिनु हौं विधवा भई, सब सुहाग सुख लुटि गयो।
शम, दम, बल, तप, तेज, गुन, गये धैर्य मम छुटि गयो॥

जलज सरिस जे चरन, योगिजन जिनकूँ ध्यावें।
जिनमें वज्र, त्रिशूल, कमल, ध्वज शोभा पावें॥
दुखहर सुखकर पाद पदुम मम हिय जब परसत।
रोमाचित करि देह सकल अँग अँग अति हरषत॥

आज तिनहितें हीन है, भाग्यहीन अबला भई।
श्री, ह्री, लज्जा, कान्ति, धृति, सुख समृद्धि बिनु है गई॥

जहाँ धरनि अरु धरम करें सम्वाद परस्पर।
करत दिग्विजय तहाँ परीक्षित पहुँचे नृपवर॥
बने वृषभवर धरम, धेनु तनु धरनी धारे।
छद्मबेषमें वृषल नृपति बनि तिनकूँ मारे॥

वृषभ एक पदतें व्यथित, कामधेनु लखि दुखित अति।
शूद्र हनै थर-थर कँपै, कर्यो क्रोध बोले नृपति॥

अरे दुष्ट ! तू कौन बड़ो बलवान् बन्यो है ।
बलहीननिकूँ हने, ठहर, यह तीर तन्यो है ॥
पुनि पूछें—गोतनय ! दुखित क्यों तीन पैरतें ।
राजवेषमें वृषल हनहि कहु कौन बैरतें ॥

जो हो कारन कष्टको, बेगि बताओ वृषभ अब ।
दुष्ट मारि बदलो लऊँ, सच सच बात बताउ सब ॥

धरम कहैं—हे देव ! दुःख देवै को काकूँ ।
होवै कारन एक बताऊँ हौं तब ताकूँ ॥
ईश्वर, कर्म, स्वभाव भिन्न मुनि भिन्न जनावें ।
समुझें अपने आप काहि दुख बीज बतावें ॥

कहे नृपति—तुम धरम हो, धरम बिना अस को कहै ।
अघकारीके पाप कहि, सूचक हू अघगति लहै ॥

हरिकी माया अमित न पहुँचै मन अरु बानी ।
शौच, दया, तप, पाद बिना तुम्हरे मन ग्लानी ॥
गऊरूप ये धरनि पदुम पद प्रभुके सोचति ।
चरन चिहतें रहित दुखित है अश्रु बिमोचति ॥

धरहु धीर धरनी ! धरम ! क्षत्रिय हौं शर धनु धरूँ ।
नृप लाञ्छन कलि क्रूरको, सिर धड़तें न्यारो करूँ ॥

यों कहिके भूपाल तीक्ष्ण तरवारि निकारी ।
ज्यों आगेकूँ बढ़े तुरत कलि युक्ति बिचारी ॥
पापी पैरनि पर्यो कृपाकी भिक्षा माँगी ।
धरी म्यानमें खड्ग दया दुखिया लखि लागी ॥

कहैं—क्रूर ! यह का करै, काहे मम पग सिर धरै ।
असि कुरुवंशिनकी कबहुँ, नहि शरनागतपै परै ॥

प्रानदान तो देउँ किन्तु अबई तुम जाओ।
ब्रह्मावर्त सुदेश भूलि इत कबहुँ न आओ॥
विप्र करें इत याग भाग देवनिकूँ देवें।
सबही सुखतें सदा सर्वपति शिवकूँ सेवें॥
बोल्यो कलि—सर्वत्र है, राज तुम्हार वसूँ कहाँ।
मोकूँ ठौर बताइ दें, आज्ञा मानि रहूँ तहाँ॥

बोले नृप—मम द्वार विमुख याचक नहिं जाहीं।
वेश्या, हिंसा, द्यूत, मद्यमहँ बसहु सदाहीं॥
सोची भूपति यही चार अति निन्दित थल हैं।
आसक्ती, मद, झूठ, क्रूरताके ये बल हैं॥
गिड़गिड़ाय पुनि कलि कहै, निन्दित अधम सबहिं दये।
एक मनोहर नाथ! दें, तब राजा सोचत भये॥

स्वर्ण एक संसारमाहिं हत्याकी जर है।
स्वजन विजन बनि जायँ वैरको यह ही घर है॥
कौरव पाडव लरे नाश सब जगको कीन्हों।
दोष खानि लखि नृपति पाँचवों सोनों दीन्हों॥
सुखी स्वर्ण सुनि कलि भयो, अति प्रसन्न ह्वै हँसि गयो।
स्वर्ण मुकुट नृप सिर निरखि, तुरत ताहिमहँ घँसि गयो॥

पूछें शौनक—'सूत! दुष्ट कलि क्यों नहिं मार्‌यो।
काहि न क्रूर कराल राज्यतें पकरि निकार्‌यो॥
सूत कहें—नृप भ्रमर सरिस रसग्राही ऋजु अति।
सोच्यो कलिमहँ लगहिं पाप करि पुण्य होयँ मति॥
यह खल कलि कायरनिकूँ, डरपावै वृकके सरिस।
धीर वीर हरिभक्त लखि, डरै कँपै नहिं करहिं रिस॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें परिच्छित् कलि निग्रह नामक अष्टम अध्याय समाप्त।

अथ नवमोऽध्यायः

[९]

शौनकादि मुनि कृष्ण कथा सुनि अति हरषाये ।
आशिष दीन्हीं दौरि हृदयतें सूत लगाये ॥
अश्रु विमोचन करैं सूततें पूछैं पुनि पुनि ।
तृप्त न होवैं मधुर सुखद हरिलीला सुनि सुनि ॥

सब ऋषि बोले—सूतजी, कछु दिन तुम मखमहँ रहहु ।
नृपति परिच्छित्‌चरित शुभ, हरिलीला बरनन करहु ॥

गद्‌गद ह्वैकें सूत ऋषिनितें बोले बानी ।
कृष्णकृपाको पात्र बन्यो अब मैंने जानी ॥
कृष्णचरित हैं अमित सबहिं मति सरिस सुनावैं ।
निज बलके अनुसार पच्छि नभमाँहि उड़ावैं ॥

कीर्तनीय गुन करम अति, जिनिके परम उदार हैं ।
धनि धनि ते नर तिनहिं जे, सुनहिं गुनहिं बुनितें कहैं ॥

मुनिवर ! उत्तरचरित उत्तरासुत को सुनु अब ।
है अति भावी प्रबल करहिं अनुभव मुनि ये सब ॥
दच्छिन दिशिकूँ एक दिवस नृप धनु धरि धाये ।
भूख प्यासतें दुखित भये मुनि आश्रम आये ॥

करहिं तपस्या तहाँपै, मुनि शमीक बैठे अचल ।
पानी माँग्यो मुनि नहीं, सुन्यो भये नृप अति विकल ॥



परीक्षित मुनिके कंठमें मृतसर्प डाल रहे हैं पृ० ४५



कलिनिग्रह पृ० ४४

आयौ नृपकूँ कोह द्रोह मुनिवरतें कीन्हों।
मर्‌यो स्यापु मुनि नारि डारिकें भूपति दीन्हों॥
कबहुँ न ऐसो कर्‌यो कालकी कैसी गति है।
होनी जैसी होय तबहिं तस होवै मति है॥

विधि विधान है कैं रहै, कबहुँ होय नहि व्यर्थ वह।
पांडव नल अरु रामके, चरित बतावे तत्त्व यह॥

रावण जैसो सूर वीर बलको गरबीलो।
पुरुषारथ लखि व्यर्थ भयो चिन्तित अति ढीलो॥
दशरथ हों वर वधू कुमरि कौशल्या वरिहैं।
तिनतें होवें राम वही तोकूँ रन मरिहैं॥

ब्रह्मदेवतें सुनी यों, कुमर डुबाये कुमरि लै।
लंका आयो परि भयो, ब्याह देखि खल कर मलै॥

होनहार नहिं होय अन्यथा काहू विधितै।
मृत्यु टरै नहिं जोग, जज्ञ, तप, रिद्धि सिद्धितैं॥
नृप सोचें—मुनि नेत्र मूँदि का ध्यान लगावैं।
अथवा देखत मोइ अकड़िकें ढोंग बनावै॥

लैंन परीक्षा मुनि गरे, मृत अहि डार्‌यो कुपित अति।
आश्रमतें निकसे तुरत, पहुँचे निजपुरमहँ नृपति॥

पूछैं शौनक—सूत! सर्प तहँ किनने डार्‌यो।
मुनि आश्रम अति शान्त जीव किहि अहिकूँ मार्‌यो॥
सबहिं भाग्यवश करहिं सूत समझावहिं पुनि पुनि।
मारे किनकूँ कौन—कौन जीवन देवै मुनि॥

अजी, कहा पूछहिं प्रभो! विधि विधान अति विकट है।
बने बुद्धि वैसी वहीं, मृत्यु जहाँ जिहि निकट है॥

हो मुनिको इक पुत्र संयमी परम तपस्वी।
धरम करममहँ निरत तपोनिधि महायशस्वी॥
पिता अवज्ञा सुनी कोप अति मनमहँ आयौ।
मुनि पुत्रनिके निकट क्रोध करि वचन सुनायौ॥
अरे, दुष्ट क्षत्रिय अधम, ऐसो साहस करि सके।
गरुड़ गरेमें काटि अहि, कहु का जीवित रहि सके॥

डार्यो पितु उर स्याँपु शाप हौं देहौं वाकूँ।
डसै सातवें दिवस महा अहि तक्षक ताकूँ॥
यों देके सुत शाप पूज्य पितुके ढिग आयौ।
मर्यो स्याँपु उर निरखि बहुत रोयो चिल्लायौ॥
जगे महामुनि सुनी सब, बात बहुत दुख मन कर्यो।
धिक्कार्यो सुत विविध विधि, नृपसन वृत्त पठै दियो॥

इत नृप पुरमहँ पहुँचि कनक जब मुकुट उतार्यो।
आश्रम कर्यो कुकृत्य चित्तमहँ फेरि विचार्यो॥
अरे बुद्धि मम भ्रष्ट भई अनुचित यह कीन्हों।
योगनिष्ठ ते महा तपस्वी मुनि अब चीन्हों॥
सोचें—अब मुनि कोपते, मम सरवसु नसि जाइगो।
वाही छिन सन्देश लै, शिष्य नृपतिढिँग आइगो॥

सुन्यो शिष्य आगमन नृपति तहँ तुरतहिं आये।
भूप निरखि भयभीत शिष्यने बचन सुनाये॥
राजन्! ऋषिसुत शाप दयो सो सब सुनि लीजे।
सात दिवसमहँ होहि मुक्ति सो कारज कीजे॥
सुनी शापकी बात नृप, सौंपि सुतहिं सब राजधन।
कृष्ण चरनमहँ चित्त दै, चले गङ्गतट मुदित मन॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें परीक्षित्शाप नामक नवम अध्याय समाप्त।

अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

कमल बसै जलमाँहिं किन्तु निरलेप रहे नित।
त्यों ही नृप सब करत रहे कारज रखि हरि चित ॥
शापित सुरसरितीर चले सुनि सबई धाये।
ऋषि मुनि त्यागी संत बिरागी तपसी आये॥
मुनिनिमाहिँ सुरपति लसैं, श्रीपृथु सोहे सत्रमहँ।
त्यों संतनितैं घिरे नृप, अतिशय शोभित होयँ तहँ॥

माघ मकरके मध्य मनुज माधव ज्यों धावैं।
त्यों सब दिशितैं सबहिं संत गंगातट आवैं॥
उठें अरघ दें नृपति योग्य आसन बैठावैं।
चरन धूरि धरि शीश बिनयतैं बचन सुनावें॥
पाप करम करि क्रूर अति, बिप्र शाप शापित भयो।
किन्तु संत दरसननितें, धन्य आज हौं ह्वै गयो॥

बार-बार सिर नाइ नृपति बोले यों सबतें।
कर्यो अकारज काज चित्त चचल मम तबतें॥
मूर्तिमान् हैं बेद आपु ऋषि मुनि तनु धारी।
दरशन दैके सपदि बिपति चिन्ता मम टारी॥
मुनि प्रेरित अहि डसै भल; शुभ कर्तव्य बताइ दें।
भ्रम भय भेद मिटाइ दें, कृष्णकथा सुनवाइ दें॥

सब मुनि मोकूँ महा मन्त्र दै पार लगावें।
कृष्णचरनमहँ चित्त लगे सो गैल बतावें॥
विद्या, साधन, शास्त्र सबहिं हैं न्यारे न्यारे।
जो जिनकूँ अनुकूल परैं ते तिनिकूँ प्यारे॥
सरल सुगम सुन्दर सरस, मिलि सब सुठि साधन कहैं।
जिहि कलियुग नर नारि गहि, भक्ति मुक्ति दोऊ लहैं॥

मधुर बचन नृप कहे मुनिनिके मनमहँ भाये।
ताही छिन निरपेच्छ व्याससुत शुक तहँ आये॥
तरुन अरुन कर चरन कमल सम नयन रँगीले।
मनहर लोल कपोल अङ्ग सुकुमार गँठीले॥
कंध सिंह सम बिपुल उर, कारे कुञ्चित केश अति।
मृदु मुसकावन श्यामतनु, मत्तगयन्द समान गति॥
धूरि भर्यो तनु दृष्टि इष्ट चरननिमहँ लागी।
रतिपति सम अति सुघर देहकी सुधि बुधि त्यागी॥
वेष दिगम्बर केश खुले सँग बालक भागें।
निरखि नारि सौन्दर्य चलीं सब कारज त्यागें॥
ऋषि-मुनि निरखे व्याससुत, जानि सबनि आदर दयो।
बैठे पूजित पीठपै, नृप मन अति आनँद भयो॥
विधिवत् पूजा करी नृपति यों बचन उचारे।
दीये दरशन देव! दुरित सब हरे हमारे॥
जिनिको सुमिरन करत रागयुत होहिं बिरागी।
तिनिको दरशन पाहिँ भाग्यशाली बड़-भागी॥
अहो, आज द्विज-द्रोह करिकें हूँ हौ पावन भयो।
अतिथि आइ श्रीशुक भये, निन्द्य कृतारथ ह्वै गयो॥
प्रभो! परम पुरुषार्थ कृपा करि मोहिं बतावें।
मरनशील कस तरहिं तुरत ताकूँ समुझावें॥
सुने सुधासम बैन नीर नयननिमहँ आयौ।
बोले शुक—नृप! धन्य जगततें चित्त हटायौ॥
नृपवर! सब चिन्ता तजहु, मनमोहनमहँ मन धरहु।
कहूँ भागवत तत्व अब, दत्त चित्त ह्वैकें सुनहु॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें शुक परीक्षित्सम्मिलन नामक दशम अध्याय समाप्त।

[इति मासिक पारायण-द्वितीय दिवस विश्राम]

अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

छप्पय—भरतवंश-अवतंस ! प्रश्न अति उत्तम कीन्हों।
मुनिमण्डलके मध्य मोइ आदर बहु दीन्हों॥
भूप ! मूढजन विषय-भोगमहँ समय बितावें।
प्रभुपद प्रेम न करहिं अन्तमहँ पुनि पछितावें॥
नृपवर ! नरतनु नाव दृढ़, कृष्णकथा पतवार है।
केशवकूँ केवट करै, सो भवसागर पार है॥

दो०—वटतर सुरसरिके निकट, जैसे शशिहिं चकोर।
घेरे बैठे सकल मुनि, सब निरखत शुक ओर॥
कहन लगे शुकदेव मुनि, दै नृपकूँ सन्तोष।
शुद्ध भागवत तत्त्व अब, कहूँ धरम निरदोष॥

छ०—है प्रपञ्च बहु विषयभोगमहँ फँसे नरनकूँ।
हरिलीलातें सुखद और अवलम्ब न मनकूँ॥
आकरषित अति भयो रूप हरिलीला सुनिकें।
भूल्यो निरगुन ब्रह्म सगुनके गुनकूँ गुनिकें॥
भव्य भागवत भूपवर ! तुमहि सुनाऊँ सरस अति।
सुनत श्यामपद कमलमहँ, होहि तुरन्त अनन्य मति॥
अल्प कालकी कछू आपु चिन्ता नहिं करिहैं।
सात दिवस तो बहुत कथा सुनि छिनमहँ तरिहैं॥
एक मुहूर्तहिँ माँहिं तरे खट्वाङ्ग बिरागी।
शेष आयु सप्ताह आपु तो सरबसु त्यागी॥
अन्तकालकूँ निकट लखि, गेह देह ममता तजहिं।
ते ध्रुव पावहिं परमपद, जे सब तजि प्रभुपद भजहिं॥
जीवनधन बिनु जीवन जीवन नहीं कहावै।
भक्तिहीन नर मृतक सरिस है काल बितावै॥

खावें पीवें लड़ें वृद्ध बनि यमपुर जावें।
बार-बार ते जनमि जगतमें जावें आवें॥
कोटि कल्पको कालहू, भक्ति बिना निस्सार है।
छिन भरि हरि हियमहँ बसैं, सोहि समय सुखसार है॥
सो०—श्रोता वक्ता आइ, सुरसरि तटपै मिलि गये।
शौनक हिये सिहाइ, पूछत पुनि मुनि सूततैं॥
छ०—सूत! सुनाओ सुखद परीक्षित-शुक-प्रश्नोत्तर।
जहाँ सन्तजन मिलहिं तहाँ सम्बाद होइ बर॥
गङ्ग यमुन मिलि हरैं महापातकहू भारी।
तैसे ही शुक विष्णुरात वार्ता अघहारी॥
केवल कृष्णकथा सदा, श्रवननिकूँ श्रवनीय है।
करें कृष्ण कैंकर्यकूँ, तेही कर कमनीय हैं॥
पायौ पुण्यशरीर मनुष क्यौं पाप बटोरै।
अरे, अमृतमहँ अधम व्यर्थ क्यौं बिषकूँ घोरै॥
पतिनी, पशु, परिवार, पुत्र, धन सङ्ग न जावे।
मलि मलि धोवै देह अन्तमहँ गीदड़ खावें॥
काहे भूल्यो बावरे, मेला जगको है दिवस।
कृष्ण कृष्ण रटि कृष्ण जपि, कृष्ण कथा सुनि अहरनिस॥
जिनिको बन्दन, श्रवन, कीरतन, सुमिरन दरशन।
पूजन अरचन नामगान करि नर हों पावन॥
सजीवनि रुज हरै मृतनिकूँ सुधा जियावै।
हरै दीप ज्यों तिमिर तूल तृन अग्नि जरावै॥
त्योंही अघकी राशिकूँ, जिनिको नासै नाम है।
तिनि प्रभुके पद-पद्ममहँ, पुनि-पुनि पुन्य प्रनाम है॥

इति श्रीभागवत चरितकेप्रथमाहमें शुकाभिनन्दननामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

[पाक्षिक पारायण—प्रथम दिवस विश्राम]

अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

दो०—शौनककी शका सुनी, सूत कहैं हरि कृष्ण ।
हैं सचेन कहिवे लगे, भूप करयो ज्यों प्रश्न ॥

छ०—बोले राजा—प्रभो ! सृष्टि उत्पत्ति बतावैं ।
निरगुनतें यह सगुन भयो कैसे समुझावैं ॥
शुक बोले—विधि निकट यही पूछी नारद मुनि ।
कहूँ भागवत भूप ! समाहित मन करिकें सुनि ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश बनि, रचि पालहिं मारहिं सबहिं ।
हरि अवतारनिकी सुखद, कथा कहहुँ नृप सुनु अबहिं ॥

बनिगे सूअर श्याम मेघ सम लम्ब तड़गे ।
घुरु घुरु करि घुसे नीरमहँ नग धड़गे ॥
आयो भीषण दैत्य भिड़े नख दाँत चलावैं ।
गई सिटिल्ली भूलि बली लखि मुँह मटकावैं ॥
पटक्यो फिरि सटक्यो तुरत, भटक्यो लटक्यो चोटतें ।
चट्ट पट्ट मार्यो असुर, धरणी देखे ओटतें ॥

हे सूकर भगवान् ! चरण तव शीश नवावें ।
यज्ञ रूप हैं आपु शास्त्र अरु वेद बतावें ॥
स्वामिन् ! सूकर रूप धर्यो क्यों भेद बताओ ।
ऊँच नीच नहिं जीव यहीका मर्म जताओ ॥
जिनि पृथिवी उद्धार करि, मुदित करे सब देवगन ।
तिनि वराह भगवान्की, जय बोलो सब सतजन ॥

सूकर, हरि अरु कपिल, दत्त सनकादि तपस्वी।
नरनारायन, ऋषभ, बिष्णु ध्रुव परम यशस्वी॥
हयग्रीव, पृथु, कच्छ, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि।
परशुराम, श्रीराम, हंस मनु बनि प्रकटे हरि॥
श्रीबलदाऊ, व्यासजी, बुद्ध, कल्कि आनन्दमय।
सब अवतारनिके परम, अवतारी यशुमतितनय॥

है अपार परपुरुष पार नर कैसे पावें।
का लै पूजा करें कौन सी वस्तु चढ़ावें॥
श्रीपति सबके ईश कोटि ब्रह्माण्डनिनायक।
मन बानीतें परें चरित कस गावैं गायक॥
सहसबदन श्रीशेषजी, सृष्टि आदितें अंत तक।
करें गान गुनगननिको, पार न पायो अब तलक॥

मधुर मूर्ति रघुनाथ साथ सीता सुकुमारी।
अनुपम जोरी सुघर मनोहर अतिशय प्यारी॥
कैसी हियहर चलनि उठनि चितवनि बर बोलनि।
नगे पगतें कठिन अवनिपै बन बन डोलनि॥
मनुज सरिस क्रीड़ा करी, करुनाकर कीन्हे चरित।
तिनकूँ गावत सुनत अति, नर नारिनिको होइ हित॥

चञ्चल चपल चटोर चोर वे अति ही खोटे।
बरबस खेंचे चीर लगें देखनमें छोटे॥
बाहर भीतर श्याम नयन तिरछे अनियारे।
तीखे विषतें बुझे बान सम तोऊ प्यारे॥
मनमन्दिरमहँ मोहना, माखनके हित मचलि जा।
अरे, लड़ैते नन्दके, आ जा, मोकूँ पिचलि जा॥

कल्कि बुद्ध बनि व्यास करहिं जगकारज नटवर ।
माया अपरम्पार विलक्षण अतिही दुस्तर ॥
ब्रह्म, रुद्र अरु देव दैत्यहू पार न पावैं ।
वेद भेद बिनु लखें नेति कहिकें समुझावें ॥
तोऊ श्वपच, किरात, शठ, पशु पक्षीहू तरि गये ।
जो सब तजि श्रद्धा सहित, चरन शरन हरिकी भये ॥
सो०—हरि अवतार चरित्र, जिही भागवत तत्त्व है ।
हैं अति परम पवित्र, विधि नारद सन कहत पुनि ॥
छप्पय—बोले ब्रह्मा—वत्स ! बजाओ बीना बरतर ।
भनों भागवत तत्त्व सुनत भवपार होयँ नर ॥
करम बन्धके हेतु किन्तु हरिचरित ललित अति ।
कहत सबनिकी होय राधिकापति चरननि रति ॥
सब संसारी सुख लहैं, जग विषयनितें मन हटे ।
मुक्त मुमुक्षू बद्ध सब, सेवें भवबन्धन कटे ॥
कहें परीक्षित—"गुरो ! आप विस्तार बतावें ।
जाकूँ नारद कह्यो ताहि अब मोहिं सुनावें ॥
बरषा बीते शरद स्वच्छ करि देवै जलकूँ ।
त्यों हरि-लीला, नाम हियेके मेंटै मलकूँ ॥
पीवत पानी पन्थको, निज पुर पहुँचे पान्थ ज्यों ।
हरषित होवै हृदय हरि—भक्त परसि पद शान्त त्यों ॥
ब्रह्मन् ! यह संसार भूमि आकाश नदी नद ।
बन, परवत, ग्रह, दिशा, स्वरग, पाताल, कमल हृद ॥
इन सबकी उतपत्ति, प्रलय रक्षा बतलावें ।
धरम काम अरु अरथ मोक्षको मार्ग दिखावें ॥
वरन धरम आश्रम नियम, भगवत चरित सुनाइकें ।
शंका नाथ मिटाइदें, शरनागत अपनाइकें ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें संक्षिप्त अवतारचरित नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

हैं प्रसन्न शुक कहें-भूप ! सुनु सुतके मगकूँ ।
माया ब्रह्म प्रकाश भाइ दरसावै जगकूँ ॥
सोचे ब्रह्मा—सृष्टि करूँ कस, नभधुनि आई ।
तपही सबको सार, करो तप भ्रम मिटि जाई ॥

दिव्य सहस्रवत्सर परम, तप कीन्हों विधि उग्र अति ।
परमधाम बैकुंठमहँ, लखे मुदित मन रमापति ॥

परम दिव्य बैकुंठ कान्ति ऐश्वर्य अमित जहँ ।
सुखासीन परिवार पारषद सह श्रीहरि तहँ ॥
नारायनकूँ निरखि नीर नयननिमें छायौ ।
पकरि बाँह भगवान् पुत्रकूँ ढिंग बैठायौ ॥

बेदगरभते विष्णु वर, बोले बचन सुधासने ।
वत्स ! बताओ बात सब, सृष्टि समय क्यों अनमने ॥

बोले ब्रह्मा—विभो ! जीव जग तत्त्व बतावें ।
दिव्य भागवत परम सार सच्छिप्त सुनावें ॥
हँसि हरि बोले—मोइ कृपा ही तें सब पावें ।
आदि अन्त मैं रहूँ, नेति कहि निगम जनावें ॥

बिना भये दीखै गुही, माया मेरी मानियो ।
अन्वय अरु व्यतिरेकतें, सदा मोइ पहिचानियो ॥

वेदगर्भ ! सुनु सबहि शास्त्रको सार सुनाऊँ।
हूँ व्यापक सर्वत्र सर्वदा नहीं लखाऊँ॥
जाहि जानि जग रच्यो मोह होवै नहिं कबहूँ।
दैकें सद् उपदेश भये अन्तरहित हरिहूँ॥
वीणावादक देवऋषि, सुनी पितातें भागवति।
तिनि उपदेशे मम जनक, तोहिं सुनाऊँ सो नृपति॥
जामे सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊती सब।
मन्वन्तर, ईशानुकथा, सुनु लच्चण नृप ! अब॥
है निरोध पुनि मुक्ति दशम आश्रय बतलावें।
दशम तत्त्वकी सिद्धि हेतु नौऊ कहलावें॥
श्रुतितें अरु बहु अर्थतें, साकछात कोई कहे।
जापै हरि किरपा करें, भक्ति अहैतुकि ते लहे॥
आश्रय सबके वही अखिलपति अलख अगोचर।
रचनाकूँ विधि बनें भरनकूँ हों विश्वम्भर॥
सृष्टि समेटें सबहि तबहिँ हरि शिव कहलावें।
यों वे व्यापक ब्रह्म त्रिविध विधि रूप बनावें॥
भौतिक दैविक आतमिक, तीनिहुकूँ नियमन करे।
बालकवत् क्रीड़ा करें, रचैं ताहि पोसे हरे॥
कर्यो सृष्टि संकल्प रच्यो जल बसे उदरमहँ।
इन्द्रिय, मन, तनु-शक्ति रची पुनि प्राण उदित तहँ॥
भूख प्यास जब लगी कर्ण गोलक सब निकसे।
अन्तःकरण, प्रकाश, अहं, मन, चित, धी विकसे॥
कर्ता भोक्ता हरि नहीं, सदा रहैं निरलेप हैं।
धरैं रूप तोऊ विविध, उदासीन रचिकें रहैं॥
प्रभु विराटतें ओज और सह बल प्रकटे सब।
पुनि उपजे ये सबहि विषय इन्द्रिय देवहु तब॥

तालुमाँहिं नभ देव रसन इन्द्रिय रस चाखै।
मुखमहँ वाचा, अग्निदेव वाणी बहु भाखै॥
घ्राण, चक्षु, श्रोत्रहु, त्वचा, गन्ध, रूप, शब्दहु, परस।
वायु सूर्य दिश प्राण सब, क्रमशः देव भये हरष॥
भये हस्त जिनिकाज ग्रहण सुरपति देवहु तहँ।
चलिवेकूँ द्वै चरण, विषय गति, विष्णु देव जहँ॥
विषय कामना हेतु उपस्थ प्रजापति जामें।
पायु गुदा मल त्याग देव मित्रहु हैं तामें॥
तनु तजि जावै अन्यमहँ, नाभि अपानहु मृत्यु भय।
कुक्षि आत नस नदी-पति, देव तुष्टि पुष्टी विषय॥
निराकार निरलेप निराश्रय नित्य निरंजन।
माया आश्रय करत होहिं साकार सगुन तन॥
उद्भिज अंडज और जरायुज होवें स्वेदज।
स्थावर जंगम रूप जीव बनि प्रविशें हरि अज॥
कर्म रहित कर्ता बनहिं, नाम रूप धारन करहिं।
स्वय वाच्य वाचक नृपति! धरि तनु धरणी दुख हरहिं॥
उल्ला०—विष्णुरात सम्वाद शुक, सुनि शौनक बोले बचन।
हृदय हरष गद्‌गद गिरा, कृष्ण चरनमहँ फँस्यो मन॥
छप्पय—अजी सूतजी! याद बात इक आई अबई।
गये विदुरजी तीर्थ भ्रमण हित तजिकें सबई॥
मुनि मैत्रेय समीप ज्ञान पायौ कहँ उनने।
का का कीन्हें प्रश्न दयौ उत्तर का तिनने॥
संत समागममहँ सदा, कथा कृष्णकी होहि नित।
सूत! सुनाओ सरस सब, शुभ सम्वाद प्रसन्न चित॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें सृष्टिउत्पत्ति नामक तेहरवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण तृतीय दिवस विश्राम]

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

(१४)

सूत सुने मुनि-बैंन नैंन भरि आये उनके।
बोले गद्‌गद गिरा प्रश्न सुनिकैं निज मनके॥
शौनकजी ! सर्वज्ञ आपु सब जानें बूझें।
कहा करें कस प्रश्न आपुकूँ तत्त्वण सूझे॥

अजी यही तो नृपतिने, कर्‌यो प्रश्न शुकदेवतें।
दै हुँकारी तो कहूँ, विवश देव ! निज टेवतें॥

श्रीशुक बोले—भूप ! विदुरने येही बातैं।
मैत्रे मुनितें सुनी कहूँ तिनहींकूँ 'तातैं'॥
राजा पूछें-प्रभो ! विदुरजीकी मुनिवरतैं।
भेंट भई कब कहाँ ? गये जब बनकूँ घरतैं॥

श्रीशुक बोले—का कहूँ ! विदुरभवन मुनि-मनहरन।
तिहि तजि तीरथकूँ गये, जहँ निवसे राधारमन॥

राजन् ! बनिके दूत देवकीनन्दन आये।
कौरव करि सत्कार राजमहलनिमहँ लाये॥
नाना व्यंजन धरे न तिनिकी ओर निहारे।
करिकैं शिष्टाचार विदुरके भवन सिधारे॥

पतिनी पगली प्रेमकी, छिलका हरिहिँ जिमा रहीं।
विदुर मिगी केला दई, खाय कही वो रस नहीं॥

ता घरमहँ वसि विदुर बन्धुकूँ सम्मति देवैं।
विदुरनीति विख्यात जाहि सज्जन सब सेवैं॥
पूछी जब धृतराष्ट्र सत्य सम्मति यह दीन्हीं।
राजन्! घोर अनीति बन्धु पुत्रनिसँग कीन्हीं॥

भ्राता! भूलो गई जो, आगेकी सोचो सई।
धर्मराजके राजकूँ, देहु गई सो तो गई॥

जिनिके सिरपै श्याम तिनिहिँ फिर कौन अँदेसो।
निश्चय ताकी विजय जासु रथ हाँकें केशो॥
धर्मनीतितें डरो राज्य यह सग न जावै।
पाप पुण्य ही जायँ विपुल धन काम न आवै॥

आये मुट्ठी बाँधिकें, हाथ पसारे जायँगे।
पुण्य करें सुख पायँगे, पाप करें पछितायँगे॥

उल्ला०—विदुर वचन धृतराष्ट्र सुनि, बोले-भैया! सुत सगे।
त्यागूँ कैसे?' विदुर तब, मर्म बचन कहिबे लगे॥

छ०—राजन्! निकसै मैल देहतें कोइ न राखै।
डींगर तनमहँ होयँ तनय कोई नहिं भाखै॥
विष्ठा बहु मल मूत्र देह ही तें नित होवैं।
तनतें होवें पृथक् परसिकें सब तन धोवैं॥

स्वयं तरें तारें कुलहिं, ते सत्पुत्र कहावते।
नहिं तो मलके कीट सम, ऋषि मुनि तिनहिँ बतावते॥

यह दुरयोधन दुष्ट इष्टकूँ नहिं पहिचानें।
मधुसूदनकूँ मूर्ख मन्दमति मानुष मानें॥
कपटी कुटिल कुबुद्धि कूर कलिकी यह मूरति।
तैसे ई सब सचिव शकुनि दुस्सासन खलमति॥

राजन्! चाहो कुशलता, कुलकी यह कारज करो।
कृष्णार्पण जाकूँ करो, सब जगको संकट हरो॥

सुनत बिदुरके बचन दुष्ट दुरयोधन अन्नमति।
भौंह चढी म्हौं लाल अधर फरके कोप्यो अति ॥
तिरस्कार करि कहै—क्रूर कौनें बुलवायो।
काहे दासीपुत्र राजपरिषदमहँ आयो ॥
कान पकरिकें कुटिलकूँ, करि कारो म्हौं मूड़ि सिर।
देहु निकासो देशतें, लौटे नहिं यह अधम फिर ॥

भौचक्के-से भये बन्धुकूँ बिदुर निहारें।
करै नीचता नीच न ताकूँ तनिक बिचारें ॥
किन्तु अन्धकूँ मौन निरखिकें अति घबराये।
सोचें-अब तो अन्त दिवस इन सबके आये ॥
बोले—भैया! स्वयंही, तेरे घरतें जाउँगो।
अब कब हूँ जा भवनमहँ, म्हौं तोकूँ न दिखाउँगो ॥

परम भागवत बिदुर भये बाहर जब पुरतें।
मानौं सद्गुण पुण्य सबहिं निकसे वा घरतें ॥
करिबेकूँ व्योपार बनिक् धन लैकें धावें।
त्यों लीये सँग पुण्य, बृद्धि हित तीरथ जावें ॥
सभाद्वारपै धनुष धरि, नंगे पाँइनि चलि दये।
शत्रु मित्र सम्बन्ध तजि, त्यक्तदंड मानौं भये ॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें बिदुर हस्तिनापुर त्याग नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

दो० सूत कहे-मुनि ! बिदुर तब, सबईतें मुख मोरि ।
तीरथ करिबे चलि दये, हथिनापुरकूँ छोरि ॥

छप्पय—बन उपबन वर पुण्य सरोवर सरिता सुन्दर ।
चिह्नित देखे शंख चक्रतें मनहर मन्दिर ॥
कहूँ कृष्ण धरि विष्णु रूप श्रीरंग विराजे ।
विश्वनाथ श्रीशम्भु विविध रूपनिमहँ राजें ॥
सब तीरथकी सार जो, आये ता ब्रज-भूमिमहँ ।
नीलबाल क्रीड़ा करी, माखन खायो चोरि जहँ ॥

देखी रसमय भूमि बिदुर हियमहँ हरषाये ।
कृष्ण बिरहमें बिकल तहाँ श्री उद्धव आये ॥
पथ भ्रम वश ज्यों भूलि मिलै परकीया उपपति ।
गंगा यमुना सरिस मिले मन मोद भयो अति ॥
उद्धवतें बोले बिदुर, कुशल कृष्ण कुलकी कहो ।
कृष्ण बिना कस भ्रमत हो, संग सदा तुम तो रहो ॥

धन्य भाग हैं आज भक्त उद्धव जी भेंटे ।
दर्शन दैकें देव ! दुरित दुख सब ई मेंटे ॥
भयो तिरस्कृत फिरूँ न मनमहँ हर्ष शोक है ।
विषय भोगमहँ फँस्यो वहिर्मुख अज्ञ लोक है ॥
यह हरिकी माया प्रबल, रचै खेल ठगिनी नये ।
जाते ते जगमहँ बचे, जे हरि शरणागत भये ॥

सखे ! कहो अब कुशल कुशलके कारण जे हैं ।
शरणागत प्रतिपाल अवनिके त्राता ते हैं ॥
संकर्षण बलरामदेवकी कुशल सुनाओ ।
हैं सुखतें वसुदेव सबनिकी बात बताओ ॥
उद्धवजी ! प्रद्युम्न अनु-रुद्धादिक जे स्वजन हैं ।
ते यदुवंशी कुशल हैं, जे सब हरिकी शरन हैं ॥

पांडव प्रभुके भक्त सबनिकी कुशल सुनाओ ।
अघ-बन्धु धृतराष्ट्र करैं का सब समुझाओ ॥
करिकें दर्शन यादि आपके आये सबई ।
इस्मृति पटपै खिंचे चित्र जीवितसे अबई ॥
अथवा छोड़ो सबनिकूँ, चर्चा हरि ही की करौ ।
तृषित हृदयकी शान्ति हित, कर्णनि हरि गुनतें भरौ ॥

सुनि उद्धव हरिनाम देहकी सुधि बिसराई ।
नाम धामतै रूप यादि लीला ह्वै आई ॥
गद्गद बानी भई रूप सागरमहँ न्हाये ।
रोमाञ्चित वपु भयो, अश्रु नयननिमहँ आये ॥
भूले या संसारकूँ, नयन मूँदि तन्मय भये ।
नित्य धाम बृन्दाविपिन, ध्यान धरत मनतें गये ॥

उद्धव देखे विकल विदुर पहिले घबराये ।
प्रेम दशा पहिचानि कानमहँ नाम सुनाये ॥
देखी दशवीं दशा बहुत मनमहँ हरषावैं ।
जानि कृतारथ कृष्ण-कृष्ण कहि चेत करावैं ॥
मङ्गलमय मधुमय मधुर, मनमोहनके नाम सुनि ।
शनैःशनैः सम्हले सखा, परत श्रवनमहँ मधुर धुनि ॥

बोले उद्धव सम्हरि धरी सिर रज ब्रज-थलकी ॥
बन्धु बिदुर ! अब कहूँ कुशल कैसे यदुकुलकी ॥
भाग्यहीन यह लोक अधिक यदुवशी तामें ।
पहिचाने प्रभु नहीं भये परगट कुल जामें ॥

अजी, कुशल अब का कहे, यादवेन्द्रके सँग गई ।
समृधिशालिनी श्रीसहित, द्वारावति विधवा भई ॥

हाय ! कहाँ वो परम सुखद श्रीहरि को झाँकी ।
मन्द मन्द मुसकान चित्तहर चितवन बाँकी ॥
आँखिनिकूँ वा छटापानको चसको लाग्यो ।
भये न जौलौं तृप्त, हमें हरि तौलौं त्यागो ॥

उठवनि चितवनि कर परसि, हँसनि अंक भरि-भरि मिलनि ।
चेष्टा ये सब श्यामकी, परम मधुर बोलनि चलनि ॥

कारे-कारे कुटिल केश मलि तेल सम्हारें ।
गोरोचनको तिलक मोर मुकुटादिक धारें ॥
ककन कुंडल हार करधनी अगद नूपुर ।
शोभित होवें स्वयं पाइ तनु सुन्दर मनहर ॥

निरखहिं निज प्रतिबिम्बकूँ, अपन पपनपौ भूलिकें ।
मुख मलूक मनहर स्वय, चकित होहिं छबि देखिकें ॥

देश देशके भूप यज्ञवर राजसूयमहँ ।
निरखि मुग्ध सब भये नन्द नन्दनकी छबितहँ ॥
घन-चातक, जल मीन शलभ-पावक उपमा सब ।
फीकी सबरी भईं एकटक लखें रूप जब ॥

रचना विषयक चातुरी, विधिकी सब पूरी भई ।
सब थलकी सुषमा सकल, कृष्ण-मूर्तिमहँ धरि दई ॥

जिनिकी मधुमय हँसनि हृदयमहँ मिश्री घोरति।
जिहिँ चितवहि चितचोर भटू पगली ह्वै डोलति॥
मुरली अधरनि धरे बजावहिं स्वरतें गावहिं।
छोडि-छोड़ि गृहकाज विवश ब्रज-बाला धावहिं॥
लखि मोहनकी माधुरी, चुप्प होहिं नहि कछु कहँति।
आँखि मीचि थिर चित्त करि, आभीरिनि योगिनि बनति॥

केशपाश ई पाश पास आवें फँसि जावें।
भौंह कमान समान नाइ लखि डोरि चढ़ावें॥
चितवन तिरछी तीर लगे घायल करि जावें।
नहिं जीवे नहिं मरें अधमरी ह्वै बिललावें॥
तब गोदीमहँ सिर धर्‌यो, भक्त भुक्तभोगी विदुर।
अजी, अबतलक जाँघमें, चिन्ह परम शुभ है मधुर॥

विदुर! अजन्मा होहि जन्म लीयो मनमोहन।
करुनावश बनि तनय करहिं गैयनिको दोहन॥
मथुरामहँ लै जन्म भागि गोकुलमहँ आये।
चोरीके अपराध दामतें श्याम बँधाये॥
अज अविनाशी गुन रहित, वेद जाहि अच्युत कहहिं।
डर डरपै जातें सतत, सो डरिकें ब्रजमहँ रहहिं॥

व्यापक प्रकटै वह्नि काष्ठमहँ मथन करिकें।
जलतें हिम ह्वै जाय उछारो करपै धरिकें॥
इक्षु अमल रस जमें मधुर मिश्री ह्वै जावै।
माखन पयमहँ व्याप्त मथे तें सो बिलगावै॥
मुकुन्द मनोहर मधुर रस, घनी भूत नर तनु भयो।
नेत्रनिकूँ ललचायकें, अन्तरहित अब ह्वै गयो॥

जैसी पूजा करे देव तैसो फल देवे ।
वैसो वेतन मिलहिं भूपकूँ जिहि विधि सेवें ॥
किन्तु कृष्णकी बानि सबनितें परम निराली ।
भाव कुभावहु आइ द्वारतें जाय न खाली ॥
बालघातिनी पूतना, रक्तपान राक्षसि करहि ।
दई दयावश मातुगति, तिहि बिनु को भवदुख हरहि ॥

नाम जाति कुल कर्म भाव सम्बन्ध न पेखें ।
कहहु जीव अल्पज्ञ अलखकूँ कैसे देखें ॥
कैसे हूँ आ जाय ताहि श्रीहरि अपनावें ।
दुर्जनता दुख मेंटि परम निज धाम पठावें ॥
पापी, द्वेषी, गुनरहित, नित निन्दे नित अघ करें ।
तामस, क्रूर, पिशाच खल, देखि मरें तेहू तरें ॥

श्रीवृन्दावन परम रम्य कालिन्दी कुंजनि ।
नित बसंत जहँ बसै मधुर स्वर मधुकर गुंजनि ॥
गावें रोवें हँसें तहाँ नर नाट्य दिखावें ।
स्वरमय बेनु बजाय ग्वाल सँग गाय चरावें ॥
मामाजी सौगातमहँ, भेजे भीषन असुर गन ।
खेले तिनितें बालवत, मारि दई चरननि शरन ॥

नाथ्यो कालिय नाग नीर—हृद निर्मल कीन्हों ।
इन्द्रयागको भाग राज गिरवरकूँ दीन्हों ॥
कर्‌यो कोप सुरराज प्रलयको जल बरसायौ ।
व्रजबासिनि करि अभय शैल कर कमल उठायौ ॥
ग्वाल बाल गोपी गऊ, सब जलतें निर्भय भये ।
रस बरसायौ रासमहँ, हरि अन्तरहित ह्वै गये ॥

वृन्दावनमहँ प्रकट चरित अनुपम दरसाये।
मथुराजीतें गये फेरि मथुरामहँ आये॥
मामाको आतिथ्य ग्रहण करि हरषि पधारे।
गज मुष्टिक चाणूर दुष्ट सब पकरि पछारे॥
सब असुरनिके मुकुटमनि, कुलकलंक वा कंसकूँ।
मारि घसीट्यो गलिनिमहँ. अभय कर्यो यदुवंशकूँ॥

विदुर! कृपावश कृष्ण करें क्रीड़ा जो जगमहँ।
जहँ जहँ सुमरहिं भक्त, होयँ परकट प्रभु तहँ तहँ॥
कहूँ पुत्र बनि प्रेम सहित पितु पगकूँ पूजें।
कहूँ धारिकें अस्त्र शस्त्र लै रनमहँ जूझें॥
जाकी बानी वेद हैं, सबहिं शास्त्र उच्छ्वास हैं।
जाँहिं पढ़न चटसार ते, सब उनिके परिहास हैं॥

मथुराहूँतें भगे डरे द्वारावति आये।
करै न कोई ब्याह दाव अरु पेच भिड़ाये॥
कर्यो राक्षसब्याह छीनिकें कन्या लीन्हीं।
रुक्मी क्रोधित भयौ दुरदशा ताकी कीन्हीं॥
बाणासुर, शम्बर, द्विविद, दंतवक्त्र, वल्वल असुर।
मरवाये मारे कछू, हर्यो भार भू सुरेश्वर॥

हरि सोचें—भू भार न उतर्यो सबरो अबई।
यदुकुलको संहार होइ उतरैगो तबई॥
बहुत बढ़्यो यदुवंश अंश मेरे हैं सब ये।
मदमाते है लड़ैं परस्पर नशिहैं तब ये॥
प्रेम प्रदर्शित कर्यो बहु, पुनि मरवाये बन्धु सब।
भार उतार्यो अवनिको, गवने हरि गोलोक तब॥
४॥

जाते जब जे श्याम करावें जहँ जो जैसे ।
सो तब तुरतहि तहाँ करे प्रेरित ह्वै तैसे ॥
यदुकुलको संहार करन चितमहँ जब आयौ ।
तबई तपते पूत मुनिनितें शाप दिवायौ ॥

ज्यों बाजीगर बानरहिं, नाच नचावै जब जहँ ।
त्यों ईं ईश अधीन है, जीव नचै यह स्ववश नहिं ॥

द्वारावतिमहँ कृष्ण दरश हित मुनिगन आये ।
कर्यो हास परिहास कुमारनि बहुत खिजाये ॥
कुपित तपोधन भये शाप कुलभरिकूँ दीन्हों ।
सुन्यो श्याम जब शाप समर्थन हँसिकें कीन्हों ॥

सब मिलि गये प्रभासमहँ, भयौ परस्पर युद्ध अति ।
वंश अग्नि-कलितें जरे, हरिप्रेरित अत भई मति ॥

मोतें हरिने कही—जाहु बदरीवन ऊधो ।
किन्तु दैवगति समुझि चल्यो हरि पीछे सूधो ॥
यदुकुलको संहार कर्यो हरि पीपर तरुतर ।
बैठे, हौं ढिंग गयो विहँसि बोले श्रीयदुवर ॥

भले मिले उद्धव सखे ! आये तुम हो विमल मति ।
कहूँ भागवत सरस अति, सुनें पढ़ें होवै सुमति ॥

भूखेकूँ ज्यों खीरि पिपासितकूँ ज्यों पानी ।
त्यों अतिशय प्रिय लगी मधुर श्रीहरिकी बानी ॥
विनय करी—हे प्रभो ! भक्तिको तत्त्व बतावें ।
शुद्ध भागवत ज्ञान दान करि दुःख मिटावें ॥

कमलनयन बिनती सुनी, परमतत्त्व मोतें कह्यो ।
आयसु सिर धरि बन्दि पग, बदरीवनकूँ चलि दयौ ॥

सूधो आयौ यहाँ आपुने दरशन दीन्हों।
शोक मोह संताप आपुने सब हरि लीन्हों॥
विदुर कहे-हे सखे! कृपा हमहूपै कीजे।
हरितें पायौ ज्ञान ताहि हमहूँकूँ दीजे॥
उद्धव बोले—विदुरजी! बड़भागी हैं आपु अति।
जिनकूँ हरि सुमिरन करें, अन्त समयमहँ अखिलपति॥
मुनि मैत्रेय समीप कही हरिने यह बानी।
मोर भक्त है विदुर परमप्रिय अतिशय ज्ञानी॥
तिनिकूँ मेरो ज्ञान अवशि मुनिवर! उपदेशें।
जिनिकूँ सुमिरें श्याम सराहैं तिनिकूँ कैसें॥
आपु पधारें गङ्ग तट, हौं बदरीवन जाइकें।
हरि आराधन करौं तहँ, कंद मूल फल खाइकें॥
कीन्हीं हरिने सुरति दीनकी अन्त समयमहँ।
विदुर भये अति बिकल गिरे मूर्छित ह्वै कें तहँ॥
करिकें दण्ड प्रणाम चले उद्धव बदरीवन।
विदुर भये यों दुखित कृपनको ज्यों खोयो धन॥
कृष्ण-कथा सबरी सुनी, सस्कार पिछले जगे।
सुमिरि सुमिरि लीला ललित, ढाह मारि रोवन लगे॥
विदुर संग नहिं गये चेतना उद्धव सँगई।
गई, चेतना शून्य भये व्याकुल वे तबई॥
धरयो धीर पुनि उठे शून्य सब देह दिखाई।
पुनि कृपालुकी कृपा यादि तबई ह्वै आई॥
मुनि मैत्रेय समीप वे, तुरत तहाँतें चलि दये।
सुरसरि-तटकी बाट गहि, हरिद्वार पहुँचत भये॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें विदुर उद्धव सम्वाद नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त

अथ षोडशोऽध्यायः

(१६)

पिता गोदते जहाँ अवनिपै आई गङ्गा।
हर-हर गायन करति तालदे तरल तरगा॥
कुशावर्त अति विमल द्वार-गंगा मायापुर।
सप्त स्रोततें बहै देवसरि अति उमगै उर॥
वास करे तहँ भक्तवर, मुनि मैत्रेय कृपायतन।
भये विदुर संतुष्ट अति, सुठि स्वभाव लखि मुदित मन॥

देखे मुनि आसीन प्रेममहँ तन्मय विह्वल।
परम शान्त गम्भीर निरामय निरमल निश्चल॥
करिकैं दरशन शोक मोह सब भय भ्रम भागे।
जाइ दड-वत परे अवनिपै मुनिके आगे॥
करत दडवत विदुरकूँ, लखि मुनिवर ठाढ़े भये।
बरबस तुरत उठाइकैं, निज हियमे चिपटा लये॥

विधिवत करि आतिथ्य कुशल पूछी सबकी मुनि।
कछु करिकैं विश्राम चलाई बात विदुर पुनि॥
हँसि बोले मुनि—विदुर! यादि हरि तुमरी कीन्हीं।
करूँ तुम्हे उपदेश मोइ यह आयसु दीन्हीं॥
पूछो जो शका तुमहिं, सब संशय अबही हरहुँ।
जो उपदेस्यो मोहिं हरि, समाधान तावे करहुँ॥

तब बोले श्रीविदुर—विभो! इक बात बतावें।
काहे ये सब जीव करम करि दुखही पावें॥

दुख निवृत्ति सुख हेतु करहिं शुभ अशुभ करम नर।
किन्तु न दोऊ होयँ क्लेश ही पाहिं निरन्तर॥
नर सुरतरु तर ज्यों मुदित, संत दरश त्यों सुख लहे।
साधहिं पर-कारज सतत, संत देह धरि दुख सहे॥

विभो! विशुद्ध चरित्र श्यामके मोइ सुनावें।
पावें शाश्वत शान्ति सुगम-सी गैल बतावें॥
धर्म काम अरु अर्थ पिता सन सब सुनि जाने।
तृप्ति न तिनितें भई क्षुद्र कैतवयुत माने॥
कृष्ण कथाकी लगन ई, विषय विरक्त बनावती।
मनमहँ मोद बढ़ावती, सबरे दुःख मिटावती॥

नित झारू जहँ लगै न कूरो करकट होवै।
त्यों मनके सब मैल कथा-जल तिनिकूँ धोवै॥
सुनिके सिंह दहाड़ शशक गीदड़ भगि जावें।
कामादिक सब भगें कथातें हिय हरि आवें॥
शोचनीय ते पुरुष अति, हरि चरचातें जे विमुख।
कथा-श्रवन कीर्तन बिना, जीव लहहिं नहिं शान्ति सुख॥

सुनी विदुरकी बात बहुत मुनि हियमहँ हरषे।
रोमाचित तनु भयो नयन बरषा सम बरषे॥
विदुर धन्य तुम धन्य धरम हो नर तनुधारी।
पावन कुरुकुल कर्यो व्याससुत दृढ़व्रतधारी॥
पर उपकार विचारि हिय, प्रश्न कर्यो पावन परम।
ज्यों हरि सिखयो त्यों कहहुँ, परमधरमको सुनु मरम॥

खोजें जे सुख विषय-वासनामहँ ते जड़-मति।
जगके चचल विषय भोगतें रोग बढ़हिं अति॥
सूआ सेमरि सेइ अंतमहँ सो पछितावै।
रोपै वृक्ष बबूर आम फल कैसे खावै॥

दुःख नाश सुख जे चहहिं, विषवत विषयनिकूँ तजहिं।
है अनन्य अविलेशकूँ सर्वभावतें नित भजहिं॥

नटनागरकी नाट्य भूमि जा जगकूँ जानों।
जहाँ दृष्टि मन जाहि ताहि सब माया मानों॥
लीलातें गुण कर्म गहें पुनि बिहरें तामें।
लीला ललित ललाम करहिं बहु तनु धरि जामें॥

बालकवत् क्रीड़ा करहिं, हरष, शोक इच्छा रहित।
कटहि तुरत बन्धन जगत, सुनहि चरित श्रद्धा सहित॥

अन्तःकरण समेत बाह्य करणादिक सबई।
विषयनितें उपराम होइ दुख कटिहैं तबई॥
माया, मिथ्या-ज्ञान अविद्या-भ्रम भगि जावें।
होवे ज्ञान यथार्थ प्रतिष्ठा निज पद पावें॥

मायापति मैत्री करहु माया चरचा त्यागिकें।
चवर—चवर दुलहिनि करै, पति लखि जावै भागिकें॥

कहे विदुर—हे प्रभो! सृष्टिको सार बतावें।
नाना रूप बनाय विश्वपति काहि लुभावें॥
हँसि बोले मुनि—विदुर! धन्य कुरु-कुलके भूषन।
कहूँ भागवत सुनत दूर होवें दुख दूषन॥

नकरषन भगवानने, सनकादिक मुनि सन कही।
तिनितें सांख्यायन सुनी, पूज्य पराशर पुनि लही॥

मैंहूँ चाहूँ किन्तु भागवत तत्त्व लहूँ कस।
श्रद्धा संयम रहित जाइ गुरु निकट कहूँ कस॥
मुनि पुलस्त्यने कही—चलो हम तुम्हें दिवावें।
शक्ति—पुत्र मम मित्र प्रेमतें तुम्हे सिखावें॥

करी कृपा गुरुदेवने, गुह्य ज्ञान मोकूँ दयौ।
तात! तुरत तिहि तुम गहौ, हरिहू ने जो पुनि कह्यौ॥

अच्छा, अब उत्पत्ति सृष्टिकी तुमहिँ सुनाऊँ ।
ज्यों हरि माया संग रचें सब क्रम बतलाऊँ ॥
नाभिकमलतें ब्रह्म भये जल ई जल पेखें ।
ऊपर नीचे निरखि जनक हरिकूँ नहिं देखें ॥
विफल मनोरथ जब भये, योग ध्यानमहँ लगि गये ।
योग-भाव भावित हृदय, महँ दरशन हरिके भये ॥
इस्तुति विधिनें करी ईश हँसि आयसु दीन्हीं ।
सृष्टि पूर्ववत रचौ सुनत दश विधिकी कीन्हीं ॥
अत्रि, अंगिरा, पुलह, दक्ष, भृगु, श्रीनारद मुनि ।
रचे वशिष्ठ मरीचि और क्रतु मुनि पुलस्त्य पुनि ॥
इनि मानस सब सुतनितें, वृद्धि सृष्टिकी नहिं भई ।
चिंतित चतुरानन भये, युक्ति विचारी पुनि नई ॥
सृष्टि करनकूँ कहें जिनहिँ तें ते खिसिआवें ।
'बेमनतें कछु करें, कछू वहु बात वनावें ॥
विधि हरिको करि ध्यान देहतें नारि बनाई ।
आधेतें नर भये नारि लखि बुद्धि लुभाई ॥
हक्के बक्के सब भये, सृष्टि करन इच्छा भई ।
मृगनयनी मनहरमुखी, शतरूपा मनुकूँ दई ॥
विधि सामग्री सुखद सृष्टिकी लखि हरषाये ।
उदासीन जे पूर्व निरखि तेऊ ललचाये ॥
बोले ब्रह्मा—वत्स ! ब्याह हम सबको करि हैं ।
कुंजी अब तो मिली सृष्टि करि जगकूँ भरि हैं ॥
नारद बोले—पिताजी ! श्रीहरिके गुन गाऊँगो ।
कारेसिरकीके नहीं, हौ चक्करमहँ आऊँगो ॥

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें सृष्टिवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।

(मासिक पारायण चतुर्थ दिवस विश्राम)

अथ सप्तदशोऽध्यायः

(१७)

सुन्दर दुलहिनि पाइ कहें मनु पितु सन बानी।
करहुँ कहा अब काज रचहुँ कहँ निज रजधानी॥
विधि हँसि बोले—अनघ! सृष्टिको चक्र चलाओ।
पुत्र, पौत्र परपौत्र रचौ, बहु वंश बढ़ाओ॥
पयमहँ पृथिवी परी प्रभु, ताकूँ बाहर करहिं अब।
बसहिं जीव सुख लहहिं सब, होहिं मही उद्धार जब॥
सुनिकें मनुके वचन, ध्यान चतुरानन कीन्हों।
पृथिवी तो पाताल गई विधिने सब चीन्हों॥
अति ही चिंतित भये करूँ का अब हौ भाई।
सृष्टि चक्र तब चलै करें जब श्याम सहाई॥
हम तो उनके यन्त्र हैं, वेही कारण काम हैं।
अपनेतें होवै न कछु, करनहार घनश्याम हैं॥
ध्यान करत विधि युगल नयन सरसिज सम विकसे।
हरि शिशु सूकर वेष धर्यो नासातें निकसे॥
लघु अंगुष्ठ समान यज्ञ तनु वेद बखानें।
केवल किरपा प्राप्त मनस्वी जिनिकूँ मानें॥
अति अद्भुत तनु निरखिकें, विधि विस्मितवत् ह्वै गये।
तब तक सूकर रूप हरि, हस्ती सम नभमहँ भये॥
तुरत शिला सम बढ़े पर्वताकार भये पुनि।
कान्ति तेज ऐश्वर्य निरखि निर्वाक् भये मुनि॥
विधि सोचें—ये यज्ञपुरुष मन मेरो मोहें।
रूप अनूप बनाय अधर नभमहँ अति सोहें॥
सूकर हरि पयमहँ घुसे, लाये पृथिवी दाढ़ धरि।
हिरण्याक्ष मार्यो असुर, धरी धरा जलके उपरि॥

सुनी विदुर हरि कथा सुखद संक्षित सरस अति।
तृप्ति न मनमहँ भई कथा कीर्तन महँ दृढ़मति ॥
बोले—मुनि ! बाराह चरित का पूर्ण भयो है।
नहिं सुनिके सन्देह हमारो नाथ गयो है ॥
हिरण्याक्ष काको तनय, कहाँ भेंट हरितें भई।
युद्ध भयो कस कहँपै, कस पाताल मही गई ॥

कृष्णकथा रुचि होहि सफल जीवन है जबई।
सुनें सुयश सब समय श्रवन सार्थक हैं तबई ॥
सोवें खावें करें पुत्र पैदा पशु पच्छी।
नर तनु यही विशेष लगें हरि लीला अच्छी ॥
संत सरल चित-जगत् जन, चरण गहत सब सुख लहहिं।
यदपि भक्त नहिं हौं तदपि, कथा कृपा करिके कहहिं ॥

बोले मुनि मैत्रेय विदुर ! विस्तार बताऊँ।
जस विधि सन इतिहास सुन्यों तस तोहि सुनाऊँ ॥
इक दिन सन्ध्या समय दक्ष दुहिता दिति देवी।
हैके कामातुरा गई, जहँ पति हरिसेवी ॥
कजरारे नैनानितें, घूँघट महँ तें चोट करि।
चाहति पतितें रति तुरत, शील त्यागि पटुका पकरि ॥

साम दाम अरु भेद दंडतें मुनि समुझावहिं।
असमयमहँ यह कार्य निन्द्य पुनि पुनि बतलावहिं ॥
भीषण बेला कह्यो रुद्र को भय दिखलायो।
किन्तु काम वस भई धर्म मत मन नहिं भायो ॥
कामातुर नर नारि है, सत्य, शील, संयम तजहि।
विनय विवेक बिसारिकैं, विषय बासना ही भजहि ॥

हाथी वशमहँ करें सिंहकूँ पकरि पछारे ।
परबत डारें तोरि सिन्धु तें रतन किनारें ॥
जायँ रसातल फोरि गगनमहँ अधर उड़ावहिं ।
विष हालाहल तीक्ष्ण खाहिं पुनि ताहि पचावहिं ॥
कबहुँ न पग पीछे परयो, सदा समर बिजयी भये ।
किन्तु कामके कुसुम सर, लगत तुरत ते गिरि गये ॥

अहंकार अबिवेक कामकूँ तुरत बुलावे ।
नर नारिनि संमोह मान मद खींचि गिरावे ॥
विद्या, जप, तप, शास्त्र, मौन व्रत सबहिं भुलावैं ।
रहे न बिरति बिबेक कुसुम सर हिय धँसि जावैं ॥
कृष्णकथा कीर्तन सतत, होय काम आवे न तहँ ।
जिनको मन मन्मथ मथ्यो, ते पुनि पावे शान्ति कहँ ॥

कश्यप दितिकूँ ऊँच नीच सब विधि समझायो ।
किन्तु कामवश भई धर्म मत मन नहिं भायो ॥
होनहार अति प्रबल प्रजापति मनमहँ मानी ।
विधिको यही विधान अवश्यम्भावी जानी ॥
नारि विरोध अनिष्ट अति, तासु व्यथा मुनिने हरी ।
करिके गर्भाधान तब, दिति इच्छा पूरी करी ॥

होत कामके शान्त भई दिति लज्जित भारी ।
बोली गद्गद् गिरा छिमहु प्रभु चूक हमारी ॥
मुनि बोले—तव पुत्र होहिंगे पापी कामी ।
बली साहसी बड़े हनहिं तिनि अन्तरयामी ॥
किन्तु पौत्र हरि भक्त है, यस जगमहँ फैलायगो ।
वाके भक्ति प्रभाव तें, कुल समस्त तरि जायगो ॥

इति श्रीभागवत चरित्रके प्रथमाहमें दिति गर्भ स्थापन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त



लक्ष्मीजी का वैकुंठ विलास पृ० ७१



कुमारोंको रोकना पृ० ७५

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

सुने पुत्र अति क्रूर अधम सबकूँ संहारैं।
शंकित ह्वै शत बरष रही गर्भहिं दिति धारे॥
उग्र तेजतैं भये हीन सूरज शशि जबई।
ब्रह्मलोककूँ गये देवता मिलिकैं सबई॥
इन्द्रादिक बोले—प्रभो! ओज तेज सबको गयो।
दशहुँ दिशनिमहँ दयामय! अन्धकार काको भयो॥

आप कालके काल जगत्पति अन्तरयामी।
भूत-भविष्यत-वर्तमान सबईके स्वामी॥
हस्तामलक समान विषय सब विदित जगतके।
करहिं कर्म नित सोहिं होयँ जो जगके हितके॥
देव, दैत्य, दानव, असुर, को प्रविस्यो दिति उदरमहँ।
तेजहीन सबई करे। व्यथित भये अब रहहिं कहँ॥

हँसिकैं ब्रह्मा कहें—विष्णु-पार्षद ये आये।
सनकादिक ह्वै कुपित शाप दै भूमि गिराये॥
बोले विस्मित देव विभो! सब बात बताओ।
माया रहित कुमार दयो कस शाप सुनाओ॥
ब्रह्मा बोले—मम तनय, हरि लीलामहँ नित निरत।
हरि दरशनकूँ गये मिलि, विष्णु-लोक घूमत फिरत॥

दिव्य धाम बैकुंठ बसे हरि शुद्ध सत्वमय।
जहाँ न ईर्ष्या द्वेष दम्भ छल कपट कष्ट भय ॥
नैःश्रेयस वन जहाँ दिव्य पादप सुखकारी।
सब ऋतु है साकर रहे अतिशय प्रियकारी ॥

कमल कुमुदिनी सोहिं सर, लता माधवी मधुमयी।
मधुप गुञ्जि गावें जहाँ, कृष्ण कथा नितई नई ॥

कमला तुलसी हिलीं मिलीं निज नाथ रिझावें।
हृदय कंठमहँ लिपिटि प्रेम परिरंभन पावें ॥
तजि लक्ष्मी चाञ्चल्य गहे कर कमल घुमावें।
मानो मनिमय भवन माँहि मार्जनी लगावें ॥

कथा कीरतनतें विमुख, तिनको नर तनु ही वृथा।
ते नहिं निरखें नाकपुर, हरिपुरकी पुनि का कथा ॥

श्रद्धा संयम सहित सुयश हरि सुनें सुनावें।
प्रेम पुलक तनु होंहि गिरैं हँसि रोवें गावें ॥
तुलसी पूजन करें भागवत भगवत मानें।
परधन लोष्ठ समान मातु सम परतिय जानें ॥

त्रिभुवनकी सम्पति मिलै, तऊ न जावे विषय मन।
स्वाँस-स्वाँस पै हरि रटें, ते निरखें बैकुंठ जन ॥

चित्र विचित्र विमान विभूषित परम दिव्य जहँ।
सनकादिक मुनि मुदित योग बलतें पहुँचे तहँ ॥
चित्त न चंचल भयो निरखि शोभा उपवन की।
मनमहँ अतिई उग्र लालसा हरि दरशनकी ॥

महल मनोहर मनि जटित, श्रीहरिके देखत भये।
द्वारपालके बिनु कहैं, नंग धड़गे घुसि गये ॥



कुमारोंकी अभ्यर्चना पृ० ७६



जयविजयको शाप पृ० ७७

छै ड्योढ़िनिकूँ लाँघि सातवींपै पहुँचे सब।
दौवारिक द्वै कुपित लखे कर वेत्र लिये तव॥
ड्योढ़ी भीतर घुसे तुरत तिननें ते टोके।
मुनि बोले करि क्रोध क्रूर कस हम सब रोके॥
भू पै जन्मो दैत्य है, फिर ऐसो न करो कहीं।
सुन्यो शाप पग परि कहैं, होवें हरि बिसरें नहीं॥

दयासिन्धुने सुनी ब्रह्म मानससुत आये।
अपमानित है शाप दयो मुनिके घबराये॥
नगे चरननि चले चरनदासी हूँ त्यागीं।
छत्र चँवर लै भृत्य भगे कमला सँग लागीं॥
जिन चरननिकी चाहमहँ, चारिहुँ चंचल चित भये।
मुनि ध्यावें हियमहँ जिन्हें, करि नगे तिनकूँ गये॥

गरुड़ कन्ध कर धरे कोटि मनमथ मन मोहैं।
पद्मा पद्म घुमाय संग विद्युत् सम सोहैं॥
अस्त व्यस्त पग परे अनुग्रह हित अति आतुर।
प्रेम स्रोत बहि चल्यो हियो करुणाते कातर॥
नयननिमहँ संजीवनी, अंजन रंजन सो करत।
सम्मुख निरखे मुनिनि हरि, शशि सम तम हियको हरत॥

लखिकें रूप अनूप मुनिनिके भव भय भागे।
चरण कमलमहँ परे विकल ह्वै रोवन लागे॥
क्षमा प्रार्थना करी कह्यो सब दोष हमारो।
किन्तु कृपानिधि कहे कियो अपराध तिहारो॥
कर्‌यो मालिन जय विजय ने, मुनिगन ! मेरो अमल यश।
अज न जानें मर्म मम, पराधीन हौ भक्तवश॥

मेरी वानी वेद ताहिं जो तप करि धारें।
अति चंचल जो चित्त योग करि ताकूँ मारें॥
पूजनीय ते विप्र तृप्ति करि तिन्हे जिमावें।
परम धाम बैकुंठ मुकुति ते निश्चय पावें॥

भुज उठाय करि शपथ हौ, सत्य सत्य बानी कहहुँ।
सबहिं सहन तो करहुँ परि, बिप्र निरादर नहिं सहहुँ॥

सनकादिक पुनि कहें प्रभो! हम दास तिहारे।
दया दीन जन जानि करी नहिं दोष बिचारे॥
आपु न ऐसो कहहिं बिप्रकूँ फिर को माने।
जगमहँ बिप्र न रहहिं धर्मकूँ फिर को जाने॥

वेद धर्मके मूल हैं, बिप्र तिनहि धारन करहिं।
हानि होहि जब धर्मकी, तब तनु धरि प्रभु भय हरहिं॥

काम अनुज बस भये शाप हम दयो भूलतें।
अहंकार अब नाथ! हमारो नस्यो मूलतें॥
हरि हँसि बोले—नही विप्रवर! दुख मत मानो।
शाप अनुग्रह माहिं सदा मम इच्छा जानो॥

तुष्टि भई हरि दरसतें वचन सुनत निरभय भये।
चरण कमल सिर धूरि धरि, सनकादिक मुनि चलि दये॥

इति श्रीभागवत चरितके प्रथमाहमें जय विजय शाप नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

(पाक्षिक पाठ द्वितीय दिवस विश्राम)



हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु जन्म पृ० ७८



कर्दम वरदान पृ० ८३

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

[१९]

जो जगकी उत्पत्ति प्रलय पालनके स्वामी।
अच्युत अखिल अनादि अखंडित अन्तरयमी॥
जिनकी माया कठिन पार पंडित नहिं पावहि।
वेद दामसहँ बँधे जगतकूँ नाच नचावहि॥
जगकूँ जिनने रच्यो है, जो जाको पालन करहि।
जीव करे फल होहि का, श्रीहरि ही संकट हरहिं॥

नर तनुको फल जिही विष्णु शरणागत होनों।
विषय वासना माँहि व्यर्थ जीवन नहिँ खोनों॥
स्वेच्छाते को रोग शोककूँ पुरुष बुलावे।
विनु प्रयत्न आ जाहिं सुक्ख त्यों ही आजावे॥
कृपा प्रतीक्षा नित करहु, दुःख दयामय हरिहैं।
मानि बचन विधि चले सुर, प्रभु सब मंगल करिहैं॥

दिति देवी इत डरी करहिं नहि प्रसव सुतनिकूँ।
कश्यप आयसु दई निकारो अब दैत्यनिकूँ॥
पति आज्ञा सिर धारि यमज सुत जनमे दुरधर।
स्वर्ग भूमि नम माँहि भये उतपात भयंकर॥
ब्रह्माजी पडित बने, नामकरण तिनको कर्यो।
हिरनकशिपु बड़ नाम धरि, हिरण्याक्ष लघुको धर्यो॥

दिति देवीके पूत भूत सम पल पल बाढ़े ।
सिरते छूये स्वर्ग होहिं जब दोऊ ठाढ़े ॥
सब डरिकें भगि जायँ दूरितें दैत्यनि देखे ।
तेज हीन ह्वै जायँ जिनहिं स्वभाविक पेखे ॥

करहिं उपद्रव नित नये, तीन लोक वशमहँ करे ।
कबहुँ न कोई कछु कहे, दुबके देव रहे डरे ॥

हिरनकशिपुने जगत कर्‌यो बश बिधिके बरतें ।
हिरण्याक्ष लै गदा बिजयकूँ निकस्यो घरतें ॥
स्वर्गलोकमहँ गयो भयो कोलाहल अतिशय ।
इत उत सुर सब भगे छिपे सबकूँ भारी भय ॥

सुरनि नपुंसक समुझि खल, दैत्य हँस्यो गरजन करी ।
घूमि घामिकें चलिदयो, देव बिपति सिरतें टरी ॥

स्वर्गलोकते निकसि दैत्य जलनिधि ढिंग आयो ।
सुनि गर्जन गम्भीर समुझि ललकार रिसायो ॥
गदा वेगतें तरल तरङ्गनि तोरत फोरत ।
वरुणलोकमहँ गयो मत्त मद मूँछ मरोरत ॥

अद्‌भुत जान्यो जन्तु जिहि, जलचर जीव भगे डरे ।
किन्तु वरुणजी असुर लखि, सिंहासनते नहिं टरे ॥

पहुँचि कर्‌यो उपहास बिहँसि खल बचन उचार्‌यो ।
लोकपाल डडौत लट्ठ सिरपै जनु मार्‌यो ॥
वरुण देवने कही—असुरपति इत कित आये ।
कैसे किरपा करी कहो कस भूप रिसाये ॥

को करिके अपकार तुव, रहे जगतमें कुशल बसि ।
वचन सरल मधुमय सुने, असुर अकड़ि बोल्यो बिहँसि ॥



शूकर भगवान और हिरण्याक्ष पृ० ८०



पृथिवी उद्धार पृ० ८१

लोकपाल हैं आपु जगतमहँ यश बहु छायो।
शौर्य वीर्य बल कीर्ति सुनी तुम्हरे ढिँग आयो ॥
द्वै—द्वै होवैं हाथ गदा मेरी सहि लीजै।
गदा युद्ध वा द्वन्द युद्धकी भिक्षा दीजै ॥
बरुण हँसे बोले असुर! ते दिन तो अब लदि गये।
लक्ष्मीपति तोतें लड़हिं, अब हम तो बूढ़े भये ॥

को लक्ष्मीपति कहाँ रहे कैसे वो पावे।
किहि विधि वो बल बीर समरमहँ सम्मुख आवे ॥
असुर सुनत रिस भर्‌यो चल्यो श्रीहरिकूँ खोजत।
सम्मुख नारद लखे सुघड़ वीना कर शोभित ॥
वर वीणाके सुरनिपै, गुन गावत गोविन्दके।
मत्त मधुप मकरन्दके, श्रीहरि पद अरविन्दके ॥

हिरण्याक्ष मुनि लखे मन्द हँसि कीन्हो आदर।
दैत्यराज कहँ चले कहे नारद मुनि सादर ॥
बोल्यो-मुनि मम हाथ खुजावहिं युद्ध दिवाओ।
कैसेहूँ मुनिनाथ विष्णुतें मोहिं मिलाओ ॥
मुनि बोले—पातालमहँ, हरि वराह वपु धारिकैं।
विचरहिं नाशहिं गरबकूँ, असुर! तोहि वे मारिकैं ॥

विष्णु वीर्य बल सुनत चल्यो निज गदा घुमावत।
श्रीवराह भू लिये लखे सम्मुख ही आवत ॥
बोल्यो सूअर! शूर! कहाँकूँ भाग्यो जावे।
पूँछ दबाये भजत लाज तोकूँ नहिं आवे ॥
विकट असुरको रूप लखि, पृथिवी देवी डरि गई।
तातें सो हरिने तुरत जलके ऊपर धरि दई ॥

धम्म धरा धरि दई उलटिके असुर निहारो।
बोले आओ असुर! करूँ सत्कार तिहारो॥
दाँत पीसि खल कहे—बके का सूअर! आजा।
मोकूँ जाने नहीं तीनि लोकनिको राजा॥
हरि बोले—बक-बक न करि, बीर न बात बनावते।
नहिं वे डींग बघारते, रण-कौशल दिखलावते॥

असुर सुने हरि बैन क्रोध रग—रग महँ छायो।
किटकिटायकें दाँत, गदा लै आगे आयो॥
लपकि दुष्टने गदा हृदयमहँ हरिके मारी।
करी व्यर्थ पुनि झपटि चोट करि फिरे मुरारी॥
गदा गदामहँ लगहिं परि, दोउनिके बल नहिं घटहिं।
चटचटायँ धम धम बजहिं, चिनगारी चहुँदिशि उठहिं॥

इतते मारै दैत्य देवपति उततें मारहिं।
छिन-छिन करहिं प्रहार किन्तु दोनों नहिं हारहि॥
असुर गदातें विष्णु गदा गिर गई महीमहँ।
चतुरानन अति डरे विष्णुतें विनय करी तहँ॥
मङ्गलमय है शुभ घरी, अभिजितको शुभ योग है।
अबई मारें जाइ हरि, जिह सब जगको रोग है॥

विधिके भोरे बैन सुने हरि अति हरषाये।
चक्र तानि बाराह दैत्यकूँ मारन धाये॥
मायावी खल कपट कर्यो हरिपै पुनि झपट्यो।
ओठ काटि करि क्रोध विष्णुके तनुतें लिपट्यो॥
निकसे वाकी भुजनितें, एक तमाचो जड़ि दयो।
धम्म धड़ाको सो भयो, कटे वृक्ष सम गिरि गयो॥

योग समाधि लगाइ जिनहिं योगी जन ध्यावहिं ।
नेति-नेति नित कहें वेदहू पार न पावहिं ।।
अन्तकालमहँ अवस नाम लै नर तरि जावहिं ।
चौरासीतें छूटि जगत महँ फिरि नहिं आवहिं ।।
बड़भागी दितिसुत असुर, हरि निरखत निज तनु तज्यो ।
प्रभु प्रहार तेंई मर्‌यो, शत्रु भावतें हरि भज्यो ।।

इति श्रीभागवतचरितके प्रथमाहमें हिरण्याक्ष वध नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।

इति प्रथमाह ।

अथ द्वितीयाह

अथ प्रथमोऽध्यायः

[१]

हे सरवेश्वर ! श्याम ! वेष तुम विविध बनाओ ।
करि नित नव नव चरित जगतकूँ सुख पहुँचाओ ॥
कमलासन सन कही कथा निज सुख उपजावनि ।
तिनतें नारद सुनी व्यासतें कही सुहावनि ॥
सुत शुकते तिनने कही, सुनी परीक्षित नृपति पुनि ।
शौनकजीके सत्रमहँ, सूत कही शुकवदन सुनि ॥

प्रथम दिवस सवाद सूत शौनकको सुंदर ।
नारद व्यास चरित्र परीक्षित कथा मनोहर ॥
निजलीला सवरन सुनाई करुन कहानी ।
भक्तनि हित साकार नचाई भक्ति भवानी ॥
कह्यो वराह चरित्र अब, करी कृपा ध्रुव पै यथा ।
प्रभु पद पदमनि नाइ सिर, कहूँ द्वितिय दिनकी कथा ॥

शौनक पूछें—सूत विदुरकी बात बताओ ।
पुनि जो पूछी कथा ताहि अब सौम्य ! सुनाओ ॥
कृष्ण कथा अति विमल गङ्ग सम सब अघ हरनी ।
भव सागरके पार करनकूँ दृढ़तर तरनी ॥
खर कूकर सूकर सरिस, वृथा भार तनुको वहहिं ।
हतभागी मृत वत पुरुष, जो न कथा सुनि सुख लहहिं ॥

शौनक मुनिको प्रश्न सूत सुनि हरषे मनमहँ।
प्रेम बिकल अति भये रोम पुलके सब तनमहँ॥
बोले—ऋषिवर! सुनहु गये मनु सतरूपा सँग।
दम्पतिमहँ अति प्रीति प्रेमते पुलकित अँग अँग॥
द्वै जनमे अति सुघड़ सुत, प्रियव्रत अरु उत्तानपद।
जाई तनया तीन जग, यश छायो जिनतें बिशद॥

देवहूति जिहि भाँति बिबाही कर्दम ऋषितें।
कहूँ भयो कस प्रथम ब्याह सो वैदिक बिधितें॥
बिधिकी आज्ञा पाइ चले कर्दम तपके हित।
विषयनितें मन रोकि लगायो श्रीहरिमहँ चित॥
बरस सहस दश तप कर्यो, तनुतें कृश अतिई भये।
भीषन तपतें तुष्ट है, कमलनयन दरशन दये॥

इत नारद मुनि देवहूति पितुके ढिग आये।
कन्या हित अति खिन्न लखे तब बचन सुनाये॥
कन्या दान निमित्त जाहु ढिग कर्दम मुनिके।
अति प्रसन्न नृप भये बैन मुनिवरके सुनिकें॥
यदि कर्दम कन्या गहहि, मन बाँछित फल पाउँगो।
पुत्री पत्नी संग लै, कालि तहाँ हौं जाउँगो॥

तपपति तपतें तुष्ट भये निज रूप दिखायो।
अद्भुत शोभा सहित निरखि मुनि चित्त लुभायो॥
चरन अधर कर अरुन मधुर सिर मुकुट मनोहर।
आयुध अस्त्र समेत कमल कर लिये गदाधर॥
श्रीपति सम्मुख निरखिकें, परम मुदित मुनिवर भये।
हड़बड़ायकें दड सम, बिकल महीपै परि गये॥

कीन्हीं बहु विधि विनय बताई इच्छा अपनी ।
कामधेनु सम सुखद सुन्दरी चाहूँ घरनी ॥
हरि हँसि बोले—बहू मिलेगी सरसिजनयनी ।
मनुपुत्री अति सुघर सुशीला कोकिलबयनी ॥

नौ तव तनया होयँगीं, निज यशतें जग भरिङ्गी ।
देहुँ ज्ञान तव तनय बनि आप तरें मॉंतरिङ्गी ॥

दीन्हों हरि वर विन्दु अश्रु नयननितें निकसे ।
बिन्दुसरोवर भयो, विमल जल सरसिज बिकसे ॥
इत मनु पत्नी सहित संग कन्याकूँ लीन्हे ।
नारद आज्ञा मानि बिन्दुसर नृप चलि दीन्हे ॥

जहँ कदम्ब, चम्पक, बकुल, कुटज, कुंद, मन्दार नग ।
पहुँचे मुनि आश्रम निकट, चहुँ दिशि कूजहिं वृन्द-खग ॥

आवत देखे भूप उठे मुनि स्वागत कीन्हों ।
वर आसन बैठाय अर्घ्य विधिवत पुनि दीन्हों ॥
भावीपतिकूँ कुमरि ओटतें निरखे पुनि-पुनि ।
दृष्टि बचाय तरेरि नेत्र लखि तेहिं कबहुँ मुनि ॥

चीरबसन सरसिज नयन, जटा मुकुट मुनिवर बदन ।
मन्द हँसनियुत मधुर मुख, निरखि कुमरिको लुभ्यो मन ॥

कर्दम पूछें—प्रभो ! कहो कस किरपा कीन्हीं ।
सह परिवार पधारि बड़ाई मोकूँ दीन्हीं ॥
मनु बोले—मुनिराज ! दयायुत मोहि निहारे ।
चिन्ता सागर मग्न पकरिके हाथ उबारें ॥

परम सुशीला गुणवती, कन्या स्यानी है गई ।
चितचिन्ता निशि दिन यही, ब्याह योग तनया भई ॥

मुनि नारदतें सुनी गृहस्थाश्रम कूँ भगवन्।
स्वीकारेंगे यही सोचि आयो तव चरनन॥
कन्या तव अनुरूप जाहि मुनिवर स्वीकारें।
पुत्री चिन्ता उदधि मग्न हौं नाथ! उबारें॥

मुनि बोले इच्छा हती, परि झंझटतें हौ डरूँ।
तनया लै आये स्वयं, फिरि नाहीं कैसे करूँ॥

कपट रहित मुनि बचन सुने नृप मुदित भये अति।
देवहूति मुखकमल खिल्यो समुझी मुनि अनुमति॥
सबकी सम्मति समुझि ब्याहकी विधि सब कीन्हीं।
राजा रानी हरषि सुता मुनिवरकूँ दीन्हीं॥

दुलहा दुलहिनि मिलि गये, जगलमहँ मंगल भयो।
कनक अँगूठी जस सुघड़, तस सुन्दर नग जड़ि गयो॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें कर्दम देवहूति विवाह नामक प्रथम अध्याय समाप्त।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

भये नृपति निश्चिन्त ब्याह करि मिलि कर्दमतें।
दोउनिकूँ समुझाय चले मनु मुनि आश्रमतें॥
तनया निरखि वियोग मातु पितु हिय भरि आयो।
छातीतें चिपटाय नेहको नीर बहायो॥

वत्स धेनु बिलगत समय, बार बार घबराय जस।
मनु शतरूपातें लिपटि, देवहूति बिललाय तस॥

मातु पिता पुर गये कुमरिने धीरज धार्‌यो।
पतिसेवा सर्वस्व सतीको धर्म विचार्‌यो॥
तजे दम्भ, छल, कपट, कामतें चित्त हटायो।
संयम शौच समेत धर्म सेवा अपनायो॥

असन वसन सुधि नहि रही, मलिन, कटिल कच सब बदन।
तन मनते सेवा निरत, करहिं सतत इन्द्रिय दमन॥

दृढ़तर प्रेम कपाट कृपा करि मुनिवर खोले।
सेवाते सन्तुष्ट प्रियातें हँसिके बोले॥
हे मनुनन्दिनि! मोहि कर्‌यो सेवाते वशमें।
देहुँ अतुल ऐश्वर्य्य दिव्य सुख भामिनि! अब मैं॥

वर माँगौ दुख भगि गयो, अब आई सुखकी घड़ी।
अष्टसिद्धि नव निद्धि ये, कर जोरे सम्मुख खड़ी॥

प्रीति युक्त पति वचन सुने बोली प्रिय बानी।
हे द्विजवृषभ! तुम्हारि अतुल महिमा अब जानी॥
मुनि बोले—मनुपुत्रि! मोहि कस बैल बतावै।
देवहूति हँसि कहे—धेनुपति वृषभ कहावै॥

हँसे बात वर मुनि सुमिरि, प्रिया अंकमहँ भरि लई।
कटि कदली सम सिथिल ह्वै, पिय हियमहँ सटि गिरि गई॥

बोली अब हृदयेश! तपस्या सिद्धि दिखाओ।
गृही सरिस सुख भवन सुभग इक नाथ बनाओ॥
सुनत तुरत मुनि दिव्य योगतें भवन बनायो।
मणिमय सम्पतियुक्त भवन लखि चित्त लुभायो॥

सब सुख उपयोगी जहाँ, विविधि वस्तु भवननि भरीं।
सुन्दर सैया सुखद अति, स्वर्ण जटित चौकी धरीं॥

दासी दास विहीन मलिन तनु भवन न भायो।
समुझि भाव मुनि बिन्दुसरोवर जल परसायो॥
भई दिव्य जल परसि सहस वर दासी आईं।
करि सेवा शृंगार भवनमहँ मुनि ढिंग लाईं॥

इत मुनि मौजी मूँजकी, तजि सुर सम सुन्दर भये।
उततें हँसि आई प्रिया, उभय प्रेमतें मिलि गये॥

सोलहहू शृंगार करैं कर कमल घुमावत।
कमला सम निज नारि निरखि मुनि मन मुसकावत॥
नव यौवन सम्पन्न अधर मुसुकानि मनोहरि।
शोभा भई सजीव तपस्या अथवा तनु धरि॥

जस मनुतनया मुनिहु तस, शोभे सुन्दर तनु धरैं।
मानौ अंग अनंग धरि, रति सँग सुख क्रीड़ा करैं॥

बोली भामिनि-बिभो ! विश्व वैभवकूँ देखूँ ।
सुखद स्वर्ग सौन्दर्य इन्हीं नैननितें पेखूँ ॥
सुनि मुनि उड़्यो बिमान कुलाचलपतिपै आयो ।
सुख क्रीड़ा वर भूमि दिव्य ऐश्वर्य दिखायो ॥
नन्दन, सुरसन, चैत्ररथ, वैभ्रम्भक, मानस सुवन ।
पुण्यभद्र उद्यान सब, लखे भयो अति मुदित मन ॥
जहँ शुभ सुखद समीर सुगंधित सब श्रमहारी ।
मन्द-मन्द ढ़रि बहे काल अनुरूप बिचारी ॥
कोकिलकी कल कूँज गूँज मधुमय मधुकरकी ।
देवहूति है चकित लखै शोभा गिरिवरकी ॥
देव सिद्ध सुरबधुनि तैं, पूजित मुनि बिहरत भये ।
निरखि निखिल भूगोल पुनि, निज आश्रमकूँ चलि दये ॥
आये आश्रम लौटि सुरति सुख अतिशय दीन्हों ।
नवधा करि निज वीर्य यथाबिधि थापित कीन्हों ॥
नौ कन्या वर भईं उभय कुल यश बिस्तारिनि ।
कमल गंधमय देह जनक जननी सुखदायिनि ॥
बाल मरालिनिके सरिस किलकें कूजें सुता सब ।
कुटुम बढ़त जब मुनि लख्यो, भयो उदित वैराग्य तब ॥
गह्यो कमण्डलु हाथ चले तप हित मुनि बनकूँ ।
कह्यो गृहथी निरखि तपस्विनिके दुख मनकूँ ॥
अञ्जलि बाँधे डरपि विनययुत बोली बानी ।
करी प्रतिज्ञा पूर्ण महामुनि हौं अब जानी ॥
किन्तु प्रभो ! पुत्रीनिकूँ, योग्य वरनितें ब्याहि कें ।
कछु अवलम्बन छाँड़ि पुनि, करहिँ तपस्या जाइकें ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें देवहूति कर्दम विहार नामक द्वितीय अध्याय समाप्त

(मासिक पारायण पञ्चम दिवस विश्राम)

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

आई वरकी यादि कमण्डलु पुनि धरि दीन्हों।
मुनि दयार्द्र ह्वै गये दूरि दयिता दुख कीन्हों ॥
बोले-भामिनि ! दुःख शोक चिन्ता तजि डारो।
गर्भ माँहि तव प्रकट होहिं हरि शुभव्रत धारो ॥
हरषित ह्वै तव व्रत करहिं, हरि प्रसन्न अतिशय भये।
उपजै अरणी तैं अनल, त्यों प्रभु परगट ह्वै गये ॥

प्रकटे प्रभु परमेश पितामह सुनि तहँ आये।
अत्रि अंगिरा पुलह आदि नव ऋषि सँग लाये ॥
कर्दम निरखे पिता यथाविधि स्वागत कीन्हों।
ऋषि सँग पूजा करी सबनिकूँ आसन दीन्हों ॥
करहु व्याह तनयानिके, विधि बोले इन ऋषिनितैं।
कपिल रूप धरि पुत्र बनि, हरि आये निज बरनितैं ॥

विधि आज्ञा सिर धारि ऋषिनिकूँ कन्या दीन्हीं।
वैदिक विधितैं व्याह करे विनती बहु कीन्हीं ॥
सब ऋषि पत्नी लईं चले हिय हरिकूँ सुमिरत।
कर्दम चिन्ता मिटी भयो मन अतिशय हरषित ॥
गृही बने सब सुख लहे, हरि प्रकटे कन्या दईं।
करुणाकरकी कृपातें, सब इच्छा पूरन भईं ॥

पुत्र रूप हरि लखे एक दिन बैठे बनमहँ ।
आज्ञा लै घर त्यागि चलूँ सोची मुनि मनमहँ ॥
करिकें दंड प्रणाम बिनय श्रद्धायुत बानी ।
बोले—हे अखिलेश ! तुम्हारी महिमा जानी ॥
माया मोहित मूढ़ हौ, तुम महेश अज अखिलपति ।
साधन सुलभ न दरश तब, प्रकटे कीन्ही कृपा अति ॥

भयो कृतारथ देव, पितृ, ऋषि ऋण तें छूट्यो ।
जगके भोगे भोग मोहको नातो टूट्यो ॥
एक कृपा अब करो मूर्ति हियमहँ तव धारूँ ।
बिचरूँ है निरद्वन्द तुमहिं सर्बत्र निहारूँ ॥
इच्छा द्वेष विहीन बनि, देह गेह ममता तजहुँ ।
सुख दुख महँ सम भाव करि, है अनन्य तुमकूँ भजहुँ ॥

जनक बचन सुनि कपिल कहे जाओ पितु बनकूँ ।
चंचल चितकूँ रोकि लगाओ मोमें मनकूँ ॥
परम मधुर अति सरल बचन श्रीहरिके सुनिके ।
प्रभु बियोगकूँ सुमिरि नैन भयि आये मुनिके ॥
चले मोह ममता तजी, बनि बिरक्त बन बन फिरहिं ।
पाई भागवती गती, सुनत चरित कलिमल टरहिं ॥

इत माता ने आइ करी हरितें जिज्ञासा ।
प्रभो ! उबारो मोइ लगाई कबतें आसा ॥
प्रकृति पुरुषको भेद बताओ संशय नासो ।
तम अज्ञान मिटाइ हृदय रवि ज्ञान प्रकासो ॥
भव भय भंजन करहु प्रभु, भक्त बछल अशरन शरन ।
पार जगत जलनिधि करन, तरणि रूप तव शुभ चरन ॥

सुनिकें परम पवित्र मोक्ष रतिकर बर बानी।
जिज्ञासा ह्वै गई मातु हिय हरिने जानी॥
हरि बोले—अध्यात्मयोग साधन भल सुखकर।
जाके आश्रय तरैं जगत् जलनिधि अति दुस्तर॥

जो मन विषयनि महँ फँस्यो, सो बन्धन को हेतु है।
हरि चरननि महँ जो लगै, तो जग तारन सेतु है॥

मोक्ष भवनको द्वार संत—संगम मुनि भाखैं।
सरस कथा जहँ होहिं कृष्ण हिय जहँ सब राखैं॥
सत्संगतितैं वेगि होहि श्रद्धा सत्-पथ महँ।
श्रद्धातैं रति होहि भक्ति पुनि पद भगवत महँ॥

भक्ति भवानी हिय बसै, जग सुख विषवत होहिं सब।
करत करत अभ्यास दृढ़, होहिं कृतारथ पुरुष तब॥

भक्तियोग अति सरस सरल सबके हितकारी।
बिप्र, शूद्र, नर-नारि सबहिं जाके अधिकारी॥
परमात्मा परब्रह्म पुरुष भगवान कहो हरि।
ज्ञानी करिकें ज्ञान लहैं नर भक्त भक्ति करि॥

कपिल देवके बचन सुनि, मुदित मातु मन अति भयो।
हट्यो मोह आवरन सब, द्वन्द कटे तम नसि गयो॥

सिद्ध भई जब जननि जोरि जुग कर सिर नायो।
गद् गद गिरा गँभीर मातु गुरु गौरव गायो॥
हौं मतिमंद गँवारि नारि निज नाम सिखायो।
जाकूँ लैकें श्वपच परम शुचि श्रेष्ठ कहायो॥

जाको कीर्तन करत हो, कलि कल्मष छिनमहँ कटहिं।
बड़भागी ते नारि-नर, जे तव नामनि कूँ रटहिं॥

इस्तुति सुनकें कपिल मातु तैं आज्ञा लीन्हीं ।
गृह तजि बनकूँ गवन करनकी इच्छा कीन्हीं ॥
ज्ञान लाभ हू भयो तऊ जननी बियोग भय ।
बछरा बिछुरत गऊ होहि व्याकुल ज्यौं अतिशय ॥
सुर मुनि पूजित कपिल हरि, गंगासागर ढिँग गये ।
हरषि उदधि आलय दयो, सुखासीन प्रभु तहँ भये ॥
कन्या निज गृह गईं पुत्र पतिने घर त्यागो ।
मातु हृदय वैराग्य ज्ञान सुनि अतिशय जाग्यो ॥
बहु वैभव सम्पन्न सबं सुखमय तजि निज घर ।
सत् चित् आनँद रूप ब्रह्ममें निरत निरन्तर ॥
वस्त्रहीन सब खुले कच, तपो योगमय दिव्य तनु ।
परमानन्द निमग्न मन, सिद्धि भई साकार जनु ॥
छऊ भूमिका पार करीं सतवींमहँ निशि दिन ।
रहैं, करैं नहिं कछू काज भगवत् चिन्तन बिन ॥
यों माताने तुरिय भूमिका प्रगट दिखाई ।
प्रेमयोगतैं पराभक्तिकी पदवी पाई ॥
मातृगया जो सिद्धपद, सिद्धि मातु पाई जहाँ ।
दैहिक मलतैं रहित तनु, सरिता बनि बिहरैं तहाँ ॥
बोले मुनि मैत्रेय—कह्यो सम्बाद विदुर वर ।
कपिल चरित अति रहस गूढ जिहि सुनहिं नारि नर ॥
तिनिके शुभ अरु अशुभ करम सब ही नसि जावैं ।
प्रभुपद प्रकटैं प्रेम परमपद प्रियवर ! पावैं ॥
देवहूति करदम कथा, कपिल ज्ञानके सँग कहीं ।
सुनु आकूति प्रसूतिकी, कथा सुता मनुकी रहीं ॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें कपिलचरित नामक तृतीय अध्याय समाप्त

(मासिक पारायण षष्ठ दिवस विश्राम)

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[५]

देवहूतिकी कथा सुनी मनुपुत्री मॅझली।
आकूती रुचि वरी प्रसूती पुत्री पिछली॥
दक्षनारि बनि जने पुत्र पुत्री अति श्रेष्ठा।
यज्ञ पुरुष अवतार जननि आकूती ज्येष्ठा॥

अनसूया कर्दम सुता, तीन देव वश करि लये।
पुत्र होहिं प्रकटैं उदर, तैं तीनों मिलि वर दये॥

पतिप्राना जगमाहिं सरिस अनसूया नारी।
को है वश जिन किये अखिलपति, विधि, त्रिपुरारी॥
पुरुष योग जप करैं सिद्धि वाकूँ नहिं पावैं।
जाहि पाहि पतिप्रिया सहज जगतैं तरि जावैं॥

जाके डरतैं देव, मुनि, इन्द्र, चन्द्र, रवि सब डरहिं।
पतिव्रता तिहिके चरन, बार-बार बन्दन करहिं॥

सरस्वती श्रीरमा शिवा तीनिहुँ यह मानैं।
पतिव्रता हम श्रेष्ठ याहि सबरो जग जानैं॥
नारद सबके भरे कान अनसूया को सम।
निज निज पतितैं कहैं पातिव्रत देखैं चल हम॥

विधि, हरि, हर भिक्षुक बने, अनसूया आश्रम गये।
पतिव्रताकी परीक्षा, हित भिक्षा मांगत भये॥

देवी भिक्षा देहिँ, कहें--हम तब लैं भिच्छा।
वस्त्रहीन है देहु यही हम सब की इच्छा॥
सती ध्यान तें जानि, कही--तीनिहु सुत होवें।
पतिव्रता प्रन सत्य भयो, बनि वालक रोवें॥

उमा, रमा, बाणी विनय, करी देव फिरितैं भये।
तीनिहुँ तव सुत होहिँ हम, है प्रसन्न सब बर दये॥

पतिव्रता जग माहिँ अलौकिक चरित दिखावें।
जीवित मृतपति संग सती है सुरपुर जावें॥
पति परमेश्वर मानि अनलकूँ शीत बनावें।
सूर्य्य चन्द्र गति रोकि काल बिनु प्रलय करावें॥

पतिप्राना वेश्यासदन, कोढ़ी पति इच्छा समुझि।
जाति रही मुनि मग मिले, पति पग तिनतैं गो उरझि॥

कर्‌यो कोप मुनि शाप दयो जिहि कीन्ह अवज्ञा।
सूर्योदयके होत मरे मेरी यह आज्ञा॥
सती कहे रवि उदय होहिगो नाहीं अबई।
तीन दिवस तक राति भई घबराये सबई॥

सुर अनसूया लै गये, सती सखी संतोष करि।
पति जिवाय रवि उदय करि, गई सबनिको दुःख हरि॥

अत्रि करें तप उग्र वायु भक्षन करि बनमें।
जगत ईश निज सरिस पुत्र दैं सोचे मनमें॥
सिरतें निकली अग्नि तपस्या तेज दिखावै।
सर्व भाव मुनि भये विश्वकूँ आँच जरावै॥

सुर मुनि लखि लौ अनलकी, तपतैं सब विस्मित भये।
बर दैवेकूँ विष्णु शिव, विधि तीनिहुँ मुनि ढिँग गये॥

देखे तीनिहुँ देव तेजतैं दिशा प्रकासत।
हंस, गरुड़, वृष चढ़े पूर्ण शशि सम शुभ भासत॥
यश गावैं गंधर्व अप्सरा नाचैं आगे।
करि दरशन मन मोद भयो मुनिके दुख भागे॥

अविरल जल नयननि बहै, परे लकुटि सम अवनि पै।
है अधीन ममता भरी, डारी दृष्टी सबनि पै॥

चकाचौंध है गईं चक्षु चित चरन लगायो।
हाथ जोरि सिर नाइ विष्णु विधि हर गुन गायो॥
जा जगके जो ईश पुत्र हित एक पुकारे।
किन्तु कृपाके सिन्धु! दया करि तीनि पधारे॥

सुनि मुनि वच बोले सबहिं, तीनिहु ही जगदीश हम।
इच्छा वर माँगो अनघ! अब तुमकूँ सबई सुगम॥

बोले मुनिवर अत्रि—नाथ! माँगत सकुचाऊँ।
तुम सम सुन्दर सुघर सलौनो सुत हौं पाऊँ॥
हँसिकैं बोले देव-हमारे सम हम तीन्हों।
जन्म रहित हम तऊ उग्र तप तुमने कीन्हों॥

जाओ हम हीं होंहिंगे, तनय तुम्हारे तपोधन!
सुनि मुनि अति हरषित भये, गहे चरन है मुदित मन॥

दै दुरलभ वरदान भये अन्तरहित देवा।
आये आश्रम अत्रि करें श्रीहरिकी सेवा॥
काल पाहि विधि चन्द्र नामतें प्रकटे आई।
शिव दुर्वासा भये शापकी छटा दिखाई॥

योगेश्वर श्रीहरि भये, दत्तात्रेय महान मुनि।
तरैं जगत्के जीव बहु, जिनको सुन्दर सुयश सुनि॥

दत्तदेव वपु परम सुघर सुन्दर सुठि सोहत।
जनु सौन्दर्य्य शरीर धरैं घूमे जग मोहत॥
एक बार जो लखैं संग सो फिर नहिं छोरत।
मातु पिता घर कुटुम सबनिते मुखकूँ मोरत॥
खाँय अखाद्य पदारथनि, माया रचि कौतुक करहिँ।
जानि अघोरी शुचि रहित, ऋषि कुमार सँगतैं भगहिँ॥

देवासुर सग्राम भयो सुर सबरे हारे।
देखि देवपति दुखी देवगुरु बचन उचारे॥
दत्तात्रेय समीप सफल हों काज तिहारे।
शरण गये लहि विजय पाइ श्री भये सुखारे॥
सहसबाहु अरजुन भये, ऋद्धि सिद्धि जगमहँ लहीं।
पायो अन्तहु परमपद, कहुँ हरि बिनु हारे नहीं॥

अगिनि सरिस अवधूत खाहिँ सब तुरत पचावैं।
करहिं अल्प अनुकरन पतित नर ते है जावैं॥
अनल अनिल रवि अशुचि शुचिहुमहँ नहिं लपटावैं।
समरथकूँ का दोष, उमापति विषकूँ खावैं॥
बाहिरके आचरन लखि, दत्तदेवतैं घिनि करहिं।
उभय लोक सुखते रहित, होहिँ नरकमहँ मरि परहिँ॥

जे श्रद्धायुत धैर्य्य धारि सेवें नित इनकूँ।
है प्रसन्न सब सिद्धि मुक्ति देवें हू तिनकूँ॥
यदुने पूछ्यो प्रश्न यथारथ उत्तर पायो।
नृप अलर्क सुख लह्यो दत्तने ज्ञान सिखायो॥
असुरराज प्रहलादहू, सुनि शिक्षा निरभय भये।
आयु नृपति सेवा करी, नहुष सरिस सुत हरि दये॥

श्रद्धा पत्नी सती अंगिरा मुनि की गुणवति ।
कन्या राका कुहू सिनीवाली अरु अनुमति ॥
गुरु, उतथ्य द्वै पुत्र कहूँ अग्रिम संतति पुनि ।
ऋषि पुलस्त्यकी पत्नि हविर्भूने अगस्त्य मुनि ॥

द्वितिय विश्रवा सुत जने, धनाधीश तिनके तनय ।
कुंभकरन रावन भये, और विभीषन महाशय ॥

गति पत्नी तैं पुलह जने प्रिय तीनि योगयुत ।
कर्मश्रेष्ठ अरु वरीयान तीसर सहिष्णु सुत ॥
क्रतुकी पत्नी क्रिया वालखिल्यादिक मुनिवर ।
जने अरुन्धति माँहिं वशिष्ठहु शक्ति गुणाकर ॥

अमल अथर्वण पत्नि चिति, के दधीचि सुत है गये ।
भृगु सुत धाता ख्यातितैं, और विधाता श्री भये ॥

भृगु पुत्री श्री संग व्याह कमला पति कीन्हों ।
तिहिके कारन शाप विष्णुकूँ मुनिवर दीन्हों ॥
हँसिके शौनक कहे-सूत जी ! गप्प न मारो ।
देवै हरिकूँ शाप जगतमें कौन विचारो ॥

हँसे सूत बोले-विभो ! लीलापति लीला करैं ।
बैठे बनियाँ बाट गहि, तोलैं इतकी उत धरैं ॥

बोले शौनक—सूत ! सुनाओ- शाप कहानी ।
कस भृगु दीयो शाप खुंस च्यौ हरितैं मानी ॥
सूत कहे- मुनि ! सुनो नगर इक विष्णु बनायो ।
ऋद्धि-सिद्धि युत निरखि ताहि मुनि निज बतलायो ॥

बोले विष्णु विनोद प्रिय, दुहिता धन कस लेहु मुनि ।
वक्र भृकुटि भृगुकी भई जामाताके वचन सुनि ॥

शाप दयो तुम विष्णु जन्म दश भूपै धारौ ।
हरि बोले—मुनि शिरोधार्य है शाप तिहारौ ॥
पाणिग्रहण यों विष्णु कर्‌यो भृगु पुत्री श्रीतैं ।
श्री भ्रातनि ने कर्‌यो ब्याह आयति नियती तैं ॥

तिनके तनय मृकण्ड अरु, प्राण भये भृगु तृतिय सुत ।
कवि तिनके उशना भये, असुर पुरोहित तेजयुत ॥३

तीसरि पुत्रि प्रसूति दई मनु दक्षप्रजापति ।
सोलह कन्या जनीं कमल नयनी सुन्दरि अति ॥
श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, उन्नति अरु तुष्टी ।
क्रिया, तितिक्षा, बुद्धि, मूर्ति, मेधा, ह्री, पुष्टी ॥

तेरह दीन्हीं धर्मकूँ, स्वाहा अगिनीकूँ दई ।
स्वधा बिवाहीं पितृगण, सती शम्भुपत्नी भई ॥४

शुभ श्रद्धाके पुत्र दयाने अभय जन्यो सुत ।
मैत्री पुत्र प्रसाद शान्ति सुत सुख शोभायुत ॥
तुष्टि पुष्टिके तनय मोद अरु अहंकार बर ।
योग क्रियाके लाल दर्प उन्नतिके सुखकर ॥

बुद्धि, अर्थ, मेधा सिमृति, क्षेम तितिक्षाने जने ।
लज्जाके प्रश्रय तनय, देव सरिस ये सबजने ॥५

सर्व गुननिकी खानि मूर्तिने पुरुष पुरातन ।
विश्वम्भर श्रीकृष्ण जने हरि नर नारायन ॥
जन्म समय सुर कुसुम गगनतैं बहु बरसावें ।
गावें शुभ गन्धर्व देव बर वाद्य बजावें ॥

सब जगमहँ मंगल भयो, साम गान ऋषि मुनि करहिं ।
प्रभु प्रकटे अब जगत्‌को, शोक मोह तम सब हरहिं ॥६

मूर्ति तनय सुकुमार मार सम मोहक मनहर।
नर-नारायन अमित तेज तपबल युत ऋषिवर॥
लै अवतार प्रभाव तपस्याको प्रकटावैं।
जनक जननितैं कहैं, तीव्र तप हित हम जावैं॥

त्यागी तनयनि तप करन, हित गृह त्यागत माँ निरखि।
करि दृढ़ हिय आज्ञा दई, बिकल भई रोई बिलखि॥

उग्र तपस्या निरखि इन्द्र मन संशय करहीं।
करिकें तप ऋषि प्रवर इन्द्र आसनकूँ हरहीं॥
काम कलामहँ कुशल कामिनी तप नाशनकूँ।
भेजीं बहु देवेन्द्र डिगा सकि नहिंते इनकूँ॥

भक्तराज प्रह्लाद हू, लखि प्रभाव विस्मय भये।
नीमसारमहँ निवसि फिर, बदरीवन तप हित गये॥

नर नारायण देव दया दीननिपै कीजै।
भवसागर भयहरन शरन चरननि की दीजै॥
लोकसंग्रही बने करैं तप बदरीवन महँ।
होहि विश्व कल्याण यही सोचैं नित मन महँ॥

तव चरननितें विमुख नर, जाहिं कालके गाल महँ।
भक्त तरैं बिनु भक्तिके, फँसे जीव जग जाल महँ॥

चौदहवी जो दक्षसुता स्वाहा पितु प्यारी।
अग्निदेव ने बरी कमलनयनी सुकुमारी॥
पावक शुचि पवमान जने हविभुक तीनिहु सुत।
पौत्र पाँचचालीस अग्नि सबई तेजोयुत॥

वेदविज्ञ जन यज्ञमहँ, आगनेय इष्टी करहिं।
उनचास सब मिलि भये, यज्ञ यागमहँ जो जरहिं॥

एक अग्नि सर्वत्र रहे व्यापक सब थल महँ।
एक करहिं पयपान रहैं नित सागर जल महँ॥
जठर माँहि जो रहैं पचावे अन्न पानकूँ।
एक भाग यज्ञीय पठावैं उभय यानकूँ॥
एक असंस्कृत घरेलू, अग्नि पाक जिहितैं करहिं।
आदि अग्नि तो एक ई, रूप बिविधि तेई धरहिं॥

नित्य पितरगन षष्ठ बर्हिषद सोमक साग्निक।
अग्निष्वात्ता और आज्यपा कहे निरग्निक॥
इन सबने मिलि स्वधा बिवाही दक्षकुमारी।
इनतैं तनया उभय भई जो प्रभुकी प्यारी॥
कन्या वयुना धारिनी, स्वधा जनीं जगतें बिरत।
पारंगत परमार्थमहँ, ब्रह्मवादिनी तप निरत॥

जे श्रद्धातैं करैं श्राद्ध बिधिवत तिल तरपन।
तिनपै किरपा करैं प्रजा हित निरत पितरगन॥
अन्न श्राद्ध शुचि खाँय बिप्रमुखतैं स्वीकारें।
प्रजा वृद्धि बहु होय यही मन सदा बिचारैं॥
पितर स्वधा उच्चारतैं, सुर स्वाहा तैं लेत हैं।
दाता श्रद्धा निरखिके, मन वाँछित फल देत हैं॥

दो०—मनु पुत्रिनिके वंशकी, कथा कही शुभ धन्य।
पढ़ैं सुनैं जे प्रेमतैं, होहि तिनहिं अति पुन्य॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें मनुपुत्री वंशवर्णन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

दक्षकुमरि लघु सती रूप गुन की जो खानी।
'व्याही शिवके संग भक्तितैं भईं-भवानी॥
अर्ध अङ्ग दै भये अर्धनारीनट ईश्वर।
सती सरिसको सती तज्यो तनु तत्छिन नश्वर॥
हठ अघको शोधन कर्यो, जग कीरति अक्षय करी।
पति निन्दा रूपी अनल, लगी देह छिनमहँ जरी॥

बोले विस्मय सहित बिदुर मुनिवरतैं बानी।
प्रभो! कही का दक्ष-सती की अकथ कहानी॥
पुत्री प्रान समान प्रजापति दक्ष पियारी।
शान्त मूर्ति श्रीशम्भु चराचर गुरु त्रिपुरारी॥
जामाता अरु ससुरमहँ, किहि कारन अनवन भई॥
जा दुखतैं दुहिता दुखी, भई क्रोध करि जरि गई॥

बोले मुनि मैत्रेय—विदुर! सुनु शम्भु चरित प्रिय।
हर गुन अघ हरि लेत होत हरषित अतिशय हिय॥
तीरथराज प्रयाग याग मिलि करें प्रजापति।
आये ऋषि मुनि देव सत्र शोभे अद्भुत अति॥
श्वेत नील बसना बहिन, सुरसरि अरु रविजा जहाँ।
मिलैं मध्य वटके निकट, भीर भई भारी तहाँ॥

दूरि दूरितैं दौरि दौरि देवादिक आये।
गङ्गा यमुना मध्य यज्ञ लखि सब हरषाये॥
उच्चासनपै विश्वजनक श्रीब्रह्म बिराजैं।
चन्द्रमौलि ढिंग दिव्य तेज रविसम बिभ्राजैं॥
दक्ष प्रजापति मानयुत, आये सब ठाढ़े भये।
विधि सम अपनी पीठ पै, बैठे ही हर रह गये॥

समुझि अवज्ञा दक्ष कोपतैं भ्रष्ट भई मति।
अरुनबरन मुख भयो, भृकुटि चढ़ि बक्रभई अति॥
नयन रक्त सम भये कोपकी किरनें छिटकें।
कटकटाइकें दाँत पैर पृथिवीपै पटकैं॥
भुज उठाइ शिवकूँ निरखि, अगड वगड बोले बचन।
ज्यों द्विप लखि भूखे कुकुर, कछु न कहे हर त्यों मगन॥

बलबलाइ ज्यों ऊँट झूठ बानी बहु जलपै।
अहि सम उगलै गरल मनों बड़ पागल प्रलपै॥
बोल्यो-यह शिव अशिव मुंड माला नित धारै।
चिता भस्म तन लेपि हँसै रोवै किलकारै॥
हाय! अधम निरलज्जकूँ, सती सरिस तनया दई।
विधि हठ मानी व्यर्थई, कन्या बिनु बर सम भई॥

बके बात बहु बुरी बुद्धि बिधिने हरि लीन्हीं।
क्रोध मान बश भयो पेट भरि निन्दा कीन्हीं॥
तऊ नहीं संतोष भयो जल हाथ उठायो।
सम्बोधन करि शाप सबनिकूँ दक्ष सुनायो॥
सुनहु सभासद श्रवन दै, सत्रनि महँ शिव जायगो।
तो यह देवनिमें अधम, यज्ञभाग नाहिं पायगो॥



शिव पार्वती पृ० ११५



श्रीविष्णुकी बहू और साली पृ० १०६

देकैं शिवकूँ शाप क्रोधमें भरि चलि दीन्हों।
कछुने अनुचित कह्यो कछुक अनुमोदन कीन्हों॥
नन्दी दीन्हों शाप दक्ष अज्ञानी होवै।
बकराको मुख होहि प्रतिष्ठा अपनी खोवै॥

शिवद्रोही जो विप्रगन, ते जगमहँ याचक रहैं।
भृगु—बोले जो नासके, शैव अशुचि बनि दुख सहैं॥

शौनक बोले-सूत! शापकी कथा सुनाई।
शिवनिन्दा तो हमें नेकऊ नाहिं सुहाई॥
शिव महिमा कछु कहो जगत् दृढ़ बन्धन तोरै।
मनमहँ उपजै मोद सुधा श्रवननिमहँ घोरै॥

काशीवासी शम्भु हर, त्रिपुरारी शिव सतीपति।
नाम रटत भवभय कटत, गुन सुनि होवे चरन रति॥

सूत कहैं—'सुत जाम्बवतीने हरितैं माँग्यो।
लखि सौतिनि सुत डाह सौतिया मनमहँ जाग्यो॥
श्रीहरि हँसिकैं कहे—होहि सुत शिव आराधें।
विषय भोग तजि नियम कठिनव्रत यदि हम साधें॥

हरि पत्नी आग्रह लख्यो, गरुड़ चढ़े हिम गिरि गये।
निवसें जहँ उपमन्यु मुनि, लखि आश्रम हरषित भये॥

मुनिनें निरखे कृष्ण यथाविधि स्वागत कीन्हों।
अक्षत, तुलसी, पुष्प, अर्घ्य चन्दनयुत दीन्हों॥
करि पूजा स्वीकार कहे—मुनि! हर गुन गाओ।
शिवके सुखद प्रसंग प्रेम तैं मोहि सुनाओ॥

मुनि बोले—इहि थल विभो! बहुत बरसतैं हौं रहूँ।
सिद्धि असुर सुर जिन लही, कछुक कथा तिनकी कहूँ॥

हिरनकशिपुने प्रभो! यहीं बर दुरलभ पाये।
बिद्युन्प्रभ मन्दार बली बनि देव हराये॥
याज्ञवल्क्य श्रीव्यास और शाकल्य महामुनि।
ग्रन्थकार बड़ भये नाम शिव रटि हरगुन सुनि॥
और कहाँ तक अब कहूँ, हौं दरिद्रता तैं दुखी।
मातु बचनतें शिव भजे, भयो शम्भु बरतैं सुखी॥

मुनितैं पूछें कृष्ण—कहो सब कथा बिप्रबर।
ब्याघ्रपाद सुत कहैं—सुरभि नहिं रही मोर घर॥
एक दिना कहुँ पियो दूध घरपै नहिं होई।
माँग्यो मातें आइ सुनत जननी मम रोई॥
मैंने हठ जब करी बहु, चून घोरि जलमहँ द्यो।
पीयो परि पय स्वाद नहिं, मेरे मन अति दुख भयो॥

अम्मा! यह पय नाहिं मोहिं तू क्यों बहकावै।
अमृतोपम अतिश्वेत मधुर पय क्यों न पिआवै॥
मम हठ निरखी मातु नयनतैं अश्रु बहावै।
बार बार पुचकारि हृदयतैं मोइ लगावै॥
मैं पूछ्यो—घर सुरभि पय, होइ न क्यों हे जननि! कह।
बोली—बेटा! बिष्णुकी, सालीकी करतूत यह॥

पुनि पूछ्यो—हे मातु! भगै यह कुलटा कैसे?
सुनि माँ बोली-बत्स! बताऊँ जावे जैसे॥
आशुतोष भगवान शम्भुकूँ जो आराधें।
तिनके दुरलभ काज कपर्दी छिनमहँ साधें॥
मधुसूदन! मम मातुने, महादेव महिमा कही।
उपजी सुनि शिवभक्ति हिय, शरन चरन हर की गही॥

आराधे शिव सहस बरस सब सुख तनु त्यागे।
दये देवने दरस दुःख दारिद सब भागे॥
अजर अमर बपु कर्यो दूधको सागर दीन्हों।
कृपा कपर्दी करी कृतारथ किंकर कीन्हों॥

सुनि हरिहूने हर भजे, सहस सुतनि शिववर दये।
ह्वै सतकृत ऋषि मुनिनि तैं, कृष्ण द्वारकाकूँ गये॥

ऐसे शिवकूँ शाप दक्षने दारुन दीन्हों।
कर्यो न हरने कोप शाप शिर धारन कीन्हों॥
शापाशापी निरखि बिमन शिव निज गिरि धाये।
सहस सालको सत्र पूर्ण करि सब मिलि न्हाये॥

सुखद सिद्धिप्रद अघहरन, पावन पुण्य प्रयाग महँ।
अवमृत मज्जन कर्यो सब, गङ्गा यमुना मिलहिं जहँ॥

दो०—दक्ष प्रजापति मंदमति, हरतैं राखै द्वेष।
जिनको मंगल नाम शिव, किन्तु असंगल वेष॥

इति श्री भगवत चरितके द्वितीयाह्नमें दक्षशाप नामक पंचम अध्याय समाप्त

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

कछुक कालमहँ बात सत्रकी भई पुरानी।
किन्तु ईरषा अधिक दत्तके चित्त समानी॥
सोच्यो अब इक यज्ञ करूँ यह प्रथा चलाऊँ।
सती शम्भुकूँ यज्ञमाँहिं हौं नाहिं बुलाऊँ॥

इहि बिधि मन महँ सोचिकें, यज्ञ बृहस्पतिसव रच्यो।
पशुपति निन्दा रूप जो, पाप हृदयमहँ नहिँ पच्यो॥

नाहिँ द्रव्यकी कमी यज्ञके ठाट जमाये।
दौरि दौरि सब ठौर ठौर धावन धरि धाये॥
देव, उरग, गन्धर्व निमन्त्रन सबनि पठाये।
किन्तु यज्ञके अधिप सदाशिव नाहिँ बुलाये॥

अति उमंग ललना भरीं, सत्रमाँहि सजिबजि चलीं।
प्रिय पति सग बिमानमहँ, लागें बिद्युत् सम भलीं॥

निरखी प्रमदा सती पतिनि सँग सुखतैं गावति।
बैठि विमाननि विहँसि सिहावति अति हरषावति॥
पूछें—"भैना! कहहु जाउ कहँ सब सुकुमारी"।
बोलीं—'तव पितु गेह यज्ञ उत्सव है भारी॥

अबहुँ तुम क्यों नहिं गईं, का कछु अनबन ह्वै गई।
अथवा रिस ह्वै प्रजापति, पत्री मखकी नहिं दई॥

विस्मय, लज्जा, हरष, मोद, उत्सुकता सब सँग ।
भये महोत्सव सुनत पिता घर पुलके अँग अँग ॥
शिव समीप पुनि दौरि गईं बोलीं सुनु अघहर ।
श्वसुर तुम्हार उदार करहिं इक बृहत यज्ञवर ॥
हँसि भोले बाबा कहे—यह जग पथिक निवास है ।
हाय हाय होवे कहूँ, कहुँ उत्सव उल्लास है ॥

सती प्रेमयुत कहहिं—प्रभो ! मति ज्ञान सिखाओ ।
मोइ संग लै चलो नाथ ! पितु यज्ञ दिखाओ ॥
दीना हूँ अति विभो ! व्यर्थ अब मत बहकाओ ।
चलो बैलपै चढ़ो मोइ हर ! पकरि चढ़ाओ ॥
शिव बोले—नहिं निमन्त्रण, कस जावें भामिनि ! सुनो ।
छोटी बेटी बापकी, व्यर्थ लड़ैती तुम बनो ॥

बात सत्य है- पिता मित्र गुरु घर बिनु बोलें ।
जावे यदि वे निरखि नेहते हियकूँ खोलें ॥
दोष दृष्टितें देखि रोषवश मुँह मटकावें ।
तिनके घरमहँ भूलि कबहुँ नहिं सज्जन जावें ॥
सती तुम्हारे बापने, कहनी अनकहनी कहीं ।
सबके सम्मुख सभामहँ, भली बुरी गारी दईं ॥

सती कहे—तुम कृपा-सिन्धु योगेश्वर ज्ञानी ।
वेद न पावें भेद पाहिं फिर कस अभिमानी ॥
थूको जो कछु भई गईकूँ नाथ बिसारो ।
पिता यज्ञ लै चलो, आसरो एक तिहारो ॥
शम्भु कहैं—"दाक्षायणी ! त्यागो हठ हरि-हरि भजो ।
हौं कबहूँ नहिं जाऊँगो, जिह आशा मोतें तजो ॥

समुझाई शिव सती बहुत विधि तऊ न मानी।
भई बुद्धि विपरीत विश्वपति हियमहँ जानी॥
पितृ नेह इत शम्भु रुष्टताको भय भारी।
फिरि फिरि आवें जाइँ, हिडौले सरिस विचारी॥
सर्पिनि सम निश्वास लै, कपै देह विह्वल भईं।
आँखिनिमहँ आँसू भरे सती अनमनी ह्वै गईं॥

बहुरि विचारें चलूँ शम्भु नहिं दैंगे अनुमति।
छिन-छिन बीते कल्प कोटि सम चित चंचल अति॥
राम करैं सो होहि चलूँ होवै सो होवै।
वह पीछे पछिताय सुअवसर जो नर खोवै॥
सती सतिनि महँ शिरोमणि, विकल वासना वश भईं।
आज्ञा उल्लंघन करी, बिनु पूछे ही चलि दईं॥

समुझे शिव सर्वज्ञ सतीके सुकृत सिराये।
अनुचर नन्दी आदि तुरत हर संग पठाये॥
विनती सब मिलि करी भवानी वृषभ विराजीं।
चँवर छत्र सिर लगे दुँदुभी तुरहीं बाजीं॥
यों सजि बजि पितु घर चलीं, असगुन बहु मग महँ भये।
परि न ध्यान उतकूँ दयो, नन्दी खगपति सम गये॥

शिव इच्छाके बिना पात नहिं हिलैं नगनिके।
नाहिं सती कछु कर्यो काज करवाये इनिके॥
धर्यो सती सिय रूप शम्भु तब मन तें त्यागीं।
इष्ट शक्ति मम मातु सरिस समुझी तब भागीं॥
गाजे बाजे बजहिं बहु, चहल पहल चहुँ दिशि हती।
चढ़ि नन्दी पै गणनि सँग, यज्ञ माँहि पहुँची सती॥

पिता न आदर कर्यो देखि म्हौं अपनो फेर्यो ।
डरके मारैं सती माँहि कोई नहिं हेर्यो ॥
जननी भगिनी मिलीं प्रेमतें हिये लगाईं ।
किन्तु न कोई बात सतीकूँ फेरि सुहाईं ॥
जग जननी जगदम्बिका, अपमानित अतिशय भईं ।
व्यापौ तनमहँ कोप अति, आग बबूला है गईं ॥

इत उत निरखें कहूँ शम्भुको भाग न पायो ।
तातैं लाखनि गुनों कोप देवीकूँ आयो ॥
यज्ञ अनल तैं प्रबल सती हिय ज्वाला व्यापी ।
काली चण्डी बनी पिताकूँ समझ्यो पापी ।
पापी तैं पैदा भयो, नहिं तनु शिव उपभोग्य है ।
अशुचि ताहि पितुयज्ञ महँ, तजौं जिही तो जोग्य है ॥

ऐसो निश्चय कर्यो कोपतैं बोलीं बानी ।
क्यौं रे मङ्गलरहित शम्भुद्वेषी, अभिमानी ॥
कर्मकाण्डमें फँस्यो शम्भु महिमा नहिं जानै ।
सबतैं हौं ही बड़ो बाप तू ऐसो मानै ॥
जिनके "शिव" जा नामकूँ, भाव कुभावहुँ जे रटें ।
तिनके सब दुख दुरित अघ, जगके छिन भरिमें कटें ॥

महत पुरुष मन मधुप चरन अरविन्द सरिसहर ।
पान करें मकरन्द मधुर भवभयहर सुखकर ॥
अर्थी पावे अर्थ काम सब पावें कामी ।
करे कामना पूर्ण सबनिकी अन्तरयामी ॥
अज अनादि सुख दुख न कछु, राग द्वेषतै जो रहित ।
तिनतै बैर बिसायकैं, कैसे होवे तोर हित ॥

धरमहीन जो कुटिल करै निन्दा हरि हरकी।
गरम सड़ासी पकरि जीभ खींचे वा नरकी॥
नाहिं तु मूँदे कान जपै शत नाम रामके।
हरि हर द्वेषी सगे बन्धुहूँ नाहिं कामके॥
तातैं उपजी देह जिह, शिव उपयोगी रही नहिं।
कैसे ऊँचो म्हो करूँ, जब हर दाक्षायणि कहहिं॥
ऐसे कहिकें सती ओढ़िकें पीरी सारी।
युगल नेत्र करि बन्द जगतकी सुरति विसारी॥
नाभि चक्र तैं प्रान उठाये हियमें लाई।
कंठ भृकुटिके मध्य अनिलतें अनल जराई॥
योग अगिनितें तनु तज्यो, लीन भई शिव ध्यानमें।
किन्तु कुटिल पितु दक्षके, जूँ रेंगी नहिं कानमें॥
देख्यो चरित विचित्र डरे सब जगके प्रानी।
जगत सून्य सम भयो प्रलय बेला सब जानी॥
धिक्कारैं सब लोग दक्षकूँ देवें गारी।
सम्मुख दुहिता मरी नहीं वरजी सुकुमारी॥
पिता नहीं अति पतित यह, शिवद्रोही कलुषित हृदय।
सिंह व्याघ्रहू सुता लखि, छाँड़ि क्रूरता हौं सदय॥
सती देह निरजीव लखी शिवगण रिसियाने।
यज्ञ नाश हित चले, अस्त्र निज निज सब ताने॥
भृगुने देखे भूत भयंकर विघ्न करिङ्गे।
यज्ञ करहिं विध्वस दक्षके प्रान हरिङ्गे॥
यज्ञ विघ्ननाशक ऋचा, पढ़ीं प्रकट ऋभु सुर भये।
उनने मारे शम्भु गण, भये पराजित भगि गये॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें सतीदेहत्याग नामक षष्ठ अध्याय समाप्त

[पाक्षिक पाठ तृतीय दिवस विश्राम]



शिव विवाह पृ० ११२



नरककी कोल्हू यातना पृ० २०५

अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

भूत प्रेत उत भगे, भगे इत नारद हरपै।
देखे विभु विश्वेश विराजें हिमगिरिवरपै॥
करी वन्दना विलखि बिनयतें बोले वानी।
पिता कर्यो अपमान जरी योगाग्नि भवानी॥

तब पार्षद गण अस्त्र लै, युद्ध करन उद्यत भये।
किन्तु करे भृगु प्रकट ऋभु, तिनहिँ देखि गण डरि गये॥

कर्यो क़परदी कोप अधर दाँतनितैं काटैं।
चढ़ी भ्रुकुटि मुख लाल ओठ जिह्वातैं चाटैं॥
भरिकैं रिसमें एक जटातैं बारु उखार्यो।
कटकटाइकैं दाँत पटृ पृथिवीपै मार्यो॥

मारत ई अति विकट नर, कारो अंजन गिरि सरिस।
प्रकट्यो भीषण सहस भुज, घेरीं तनुतैं दशहु दिस॥

बोल्यो—हे विश्वेश! बताओ किनकूँ मारूँ।
सोखूँ सबई सलिल सकल संसार सँहारूँ॥
रुद्र कोप करि कहे—अस्त्र अपने संहारो।
दम्भ यज्ञमें जाय दक्षकूँ अबई मारो॥

सुनत भयंकर रुद्र गण, हा-हा हू-हू करि चले।
कर कंकण माथे मुकुट, कटि किंकिणि माला गले॥

भूत, प्रमथ, बैताल, विनायक, बटुक, डाँकिनी।
गुह्यक, कर्पट, क्षेत्रपाल, सँग चली साँकिनी॥
नव दुर्गाऊ चलीं कोप करि गर्जति तर्जति।
वीरभद्रके संग नगनि मग मर्दति फर्दति॥

विकट भेष वाहन विविधि, भीषण कोलाहल करहिं।
वीरभद्र सेना निरखि, नर नारी सबहीं डरहिं॥

आव गिन्यो नहिँ ताव यज्ञकी आगि बुझाई।
ऋत्विक् लीन्हे पकरि धमाधम करी कुटाई॥
भृगु की दाढ़ी मूँछ सफाचट करी उखारी।
भगकी फोरीं आँखि बतीसी पूषा झारी॥

प्रजापतिनिके जज्ञमें, जिनि जैसें शिवकूँ लख्यो।
दक्ष यज्ञमें तिननि तस, ततछिन ताको फल चख्यो॥

सबतें पीछे शम्भुससुरकी बारी आई।
वीरभद्रने पटकि दक्षपै खड्ग चलाई॥
किन्तु न मार्यो-मरै सबनिकूँ चिन्ता व्यापी।
कौन जतनतें मरै सती-घाती जिह पापी॥

सहसा सूझी युक्ति इक, बलि पशु सम सिर मोरिकें।
फेंक्यों जरती अगिनिमें, धड़तें सिरकूँ तोरिकें॥

शौनक पूछें—'सूत! कलहको बीज बताओ।
मान्यों कस शिव वैर दक्षने सो समुझाओ॥
सूत कहें—"मुनि! कलह कामनातें ई होवै।
काम क्रोध तें उपजि सुमति सत्गुन सब खोवै॥

विधितैं उपज्यो काम जब, कामातुर ऋषि मुनि भये।
बरजे जब श्रीशम्भुने, तब सब लज्जित ह्वै गये॥

विधिने आज्ञा दई काम शिव चित्त बिगारौ।
निरविकार श्रीशम्भु काम का करै बिचारौ॥
मलयानिल सुबसन्त सबनि मिलि शक्ति लगाई।
किन्तु मलिनता नहीं महेश्वर मनमहँ आई॥
अपनोंसो मुँह मदन लै, ब्रह्मादिक ढिँग फिरि गयो।
निस्पृहता सुनि शम्भुकी, सबको मन विस्मित भयो॥

दक्ष कर्यो तप महाशक्ति आराधीं विधिवत।
प्रकटीं जगकी मातु कह्यो वर माँगो इच्छित॥
दक्ष कह्यो मम गेह प्रकट ह्वै चरित दिखाओ।
शम्भु संग करि व्याह प्रेमको मरम जताओ॥
"एवमस्तु" माता कह्यो, दै वर अन्तरहित भई।
ते ई रूद्राणी सती, दक्ष कुमारी बनि गई॥

शिव होवैं मम नाथ करे व्रत सती कुमारी।
विधिसन सुनि शिव प्रकट भये जहँ दक्ष दुलारी॥
देखि तेज, तप, शील शम्भुके मन अति भाई।
नित्य शक्ति निज जानि शिवा सहचरी बनाई॥
चन्द्र चन्द्रिका प्रभा रवि, सम अभिन्न दोऊ भये।
दक्ष यज्ञके कलहमें, प्राण सतीने तजि दये॥

सुनिकें शौनक कहे—कथा अब सूत! सुनाओ।
पिटि कुटि देवनि कर्यो कहा सो बात बताओ॥
सूत कहे—सब देव बहुत व्याकुल घबरावत।
छिन्न भिन्न सब अंग गये विधिसन बिललावत॥
घाव दिखावहिँ रोइ सब, अंग भग जो-जो भयो।
देखि दशा दयनीय विधि, देवनिकूँ ढाढ़स दयो॥

ब्रह्मा बोले—"बहुत बुरो तुम सब ने कीन्हों।
यज्ञनिके जो ईश तिनहिँ मख भाग न दीन्हों॥
किन्तु भई सो भई शम्भुकूँ जाय मनाश्रो।
चरननिमहँ सब परौ यज्ञ पूरो करवाश्रो॥

ऋषि मुनि बोले—'कृपानिधि ! हम सब शिवतें बहु डरें।
हम सबकूँ सँग लै चलें, दारुन दुख सबको हरें॥

मानि सबनेकी बात चले विधि गिरि कैलासा।
जहँ फूले वर वृक्ष केतकी, पनस, पलासा॥
देव, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध सब शिवकूँ सेवें॥
पशुपति तिनकूँ सदा मनोवांछित फल देवें।

बारह मास वसन्त जहँ, कुहू कुहू कोकिल करहिं।
विहरें, खग, मृग, विहगवर, करि कलरव मनकूँ हरहिं॥

चहुँ दिशि देखे सिद्धि विविध साधन सब साधत।
जप, तप, जोग, विराग श्रादितें हरि श्राराधत॥
श्रोषधितें इक सिद्ध अपर मंत्रनिकूँ जपिकें।
कोई ठाढ़े रहे बहुत नानाविधि तपिकें॥

सिद्धेश्वर शिवकूँ सदा, सेवैं सतत सुसिद्धगन।
पितर, देवता, ऋषिनिको, निरखि भयो अति मुदित मन॥

झरना झर झर झरहिँ, मनों गिरि हँसिकैं बोलत।
कारे घूमे नाग मनहुँ नग इत उत डोलत॥
कल्पवृक्षकी उठी शाख हिलि मनहु बुलावहिं।
थकित पथिक लखि अतिथि भावतें दया दिखावहिं।

श्राम, अनार, अशोक वर, वट, कदम्ब, पाटल, वकुल।
पीपर, पाकर, विटप शुभ, शोभें बहु शतदल कमल॥

कमल कुसुम अति सरल विमल सरवर महँ सोहे।
मँडरावें मदमत्त मधुपगन मुनि मन मोहें॥
रति विलासतें थकित चकित सुररमनी न्हावें।
तनु कुंकुमकूँ धोइ सलिलकूँ पीत बनावें॥

कहुँ किन्नर, किंपुरुष गन, प्रानप्रिया निज सँग लिये।
तनु पुलकित उल्लसित हिय, डोलें गलबाहीं दिये॥

सम्मुख निरख्यो विशद विटपवर वटको सुखकर।
सौ योजन अति सघन स्वच्छ सुन्दर अति मनहर॥
ता तरु तर तपयुक्त तापसनि मध्य महेश्वर।
भूतनाथ भगवान् विराजें शिव परमेश्वर॥

अक्षमाल गल चन्द्र सिर, जटा मुकट श्रीगंग युत।
करहिं ज्ञान उपदेश हर, जो पूछहिं कछु ब्रह्मसुत॥

सुनि विधिको आगमन उठे संभ्रम सह श्रीहर।
अगवानीकूँ गये चरनमहँ नायो निज सिर॥
करत दण्डवत देखि शम्भु विधि तुरत उठाये।
श्रद्धा भक्ति समेत प्रेमतें हिये लगाये॥

बोले—ब्रह्मा-देव! तुम, मकरी सम जगकूँ रचहु।
रचि पालौ क्रीड़ा करहु, जब चाहो छिनमहँ हरहु॥

यज्ञ अधूरो भयो, कृपा करि दक्ष जिवाओ।
भृगुकी दाढ़ी लगै देव भग नेत्र बनाओ॥
कस पूषा विनु दाँत खायँ कछु युक्ति बताओ।
जस जानो तस प्रभो, यज्ञकूँ पूर्ण कराओ॥

हर हँसि बोले—यज्ञपशु,को सिर शव धड़पै धरो।
जीवित होवे दक्ष—भृगु, दाढ़ी बकराकी करो॥

मित्र नेत्रतें निरखि भाग भग अपनो पावें।
पूषा सत्तू पिसे पोपले मुखते खावें॥
अध्वर्यू निज भाग अश्विनी करतें लेवें।
टूटे जिनके हाथ सबहिँ पूषा कर जेवें॥
छिन्न भिन्न जिनके भये, अंग नये फिरितें लगें।
जाओ, सबके दुख दुरित, देखत देखत ही भगें॥

साधु साधु सब कहें शम्भुकी करें बड़ाई।
बोले ब्रह्मा—'विभो! बिगारी बात बनाई॥
अब चलिकें सब साज सत्रके शीघ्र सजाओ।
फिरितें रोपौ ठाठ, यज्ञकूँ सफल बनाओ॥
विधि आयसु सिर धारि शिव, सबकूँ सँगलै चलि दये।
बकरा सिर धरपै धर्यो, तुरत दक्ष जीवित भये॥

निरखे सम्मुख शम्भु दक्ष हिय स्वच्छ भयो अति।
रुद्र द्रोह को मैल धुल्यो वर विमल भई मति॥
सती सुताकी यादि प्रजापतिकूँ है आई।
वाणी गद् गद् भई प्रेममें सुधि बिसराई॥
जैसे तैसे रोकि मन, बहु विधि शिव विनती करी।
दई सान्त्वना विविध विधि, ससुर लाज शिवने हरी॥

विधि हर आज्ञा पाइ यज्ञ आरम्भ कर्यो फिरि।
ऋत्विक्, होता, सभ्य कुण्ड चहुँ ओर रहे घिरि॥
भूत प्रेत संसर्ग जनित सब मेटि मलिनता।
पुरोडास हरि अरपि करी सब विधि पावनता॥
पुरोडास हवि हाथ लै, ज्योंही दक्ष ठढ़े भये।
ध्यान करत अखिलेश हरि, त्योंही परगट है गये॥

निरखि भये सब मगन उठे शिव सुरनि सहित विधि ।
नव जलधर सम बरन हरन दुख दुरित दयानिधि ॥
क्रीट मुकुट अति सुघर पीतवर वसन विराजै ।
श्वेत छत्र अरु चॅवर—गले वनमाला भ्राजै ॥
शङ्ख, चक्र, असि, गदा, सर, ढाल, पद्म, सारंग धनु ।
अष्टबाहु आयुध लसैं, गिरि फूली कनेर जनु ॥

इस्तुति प्रभु की करैं दक्ष, ऋत्विक, विद्याधर ।
लोकपाल, सुर, इन्द्र, सिद्ध, ऋषि, मुनि, योगेश्वर ॥
यजमानी अरु अग्नि, यक्ष, गन्धर्व, विप्रगन ।
विविध भाँति करि विनय, लगायो हरि चरननि मन ॥
सबकी सुन्दर सुनि विनय, अति प्रसन्न श्रीहरि भये ।
जैसी जाकी कामना, तैसे ताकूँ वर दये ॥

विप्र कहे—हे विभो ! आपई यज्ञ, सोम, घृत ।
मन्त्र, अग्नि, कुश, समिध देव ! तुम बलि पशु अरु व्रत ॥
पुरोडास, यजमान आपई हविकूँ पावैं ।
नाम कीरतन करत यज्ञ त्रुटि सब नसि जावैं ॥
प्यावैं प्रेम पियूष प्रभु ! पुनि पुनि पैरनि में परहिँ ।
शिवगणकृत विध्वंस मख, ताहि विभो ! पूरन करहिँ ॥

विष्णु भये सन्तुष्ट सबनिकूँ शिक्षा दीन्हीं ।
हौं, विधि, शिव सब एक भेदकी व्याख्या कीन्हीं ॥
सबई हरषित भये कर्‌यो आरम्भ यज्ञ फिरि ।
क्यौं न होहि मख पूर्ण जहाँ तीनिहु विधि, हर, हरि ॥
अति प्रसन्न ह्वै प्रजापति, शिवजीको पूजन कर्‌यो ।
सती यादि करि दक्षके, नेह नीर, नयननि भर्‌यो ॥

फिरि सब विधिवत विप्र पितर पूजे ऋषि मुनि सुर।
भयो यज्ञ परिपूर्ण, गये सब जन निज निज पुर॥
प्रजापतिनिके ईश, दक्ष मनमहँ अति हरषे।
बजे दुन्दुभी आदि कुसुम सुरद्रुमके बरषें॥

दक्ष-यज्ञकी कथा जिह, विदुर ! यथामति सब कही।
पूछो तुम जो हृदयमहँ, शंका अब जो कछु रही॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें दक्षयज्ञपूर्ति नामक सप्तम अध्याय समाप्त।

अथाऽष्टमोऽध्यायः

(८)

विदुर कहे—गुरुदेव ! सती तो शक्ति सनातन ।
शिव तजि अनत न जाहिं सुनी जिह प्रथा पुरातन ॥
कैसे तजिकैं देह मिली फिरि कस शंकरकूँ ।
जिहि ध्यावत तनु तजहिं फेरि पावहिं तिहि वरकूँ ॥

सुनि बोले मैत्रेय मुनि, विदुर ! सुनो इतिहास सब ।
हिमगिरि मैंनाकी सुता, सती भई जस कहूँ अब ॥

मैंना सेवा करी सुतासम सती देहमें ।
प्रकटीं तनया होय मातु गिरिराज गेहमें ॥
चन्द्रकला सम बढ़त निरखि पितु अति हरषाये ।
विरही शिव तप हेतु पास गिरिके इत आये ॥

सुनत शैल सेवा करन, सुता सहित शिव सन गये ।
कन्याकूँ कैंकर्य हित गिरि अरपी हरषित भये ॥

शिव योगी निष्काम विकार न मनमहँ आवै ।
इत तारक इक असुर प्रकटि सब सुरनि सतावै ॥
शिव सुत मारैं जाहि सुरनि मिलि निश्चय कीन्हों ।
भेज्यो शिव ढिंग काम छार हरने करि दीन्हों ॥

शिवहित तप गिरजा करहिं, ताप युक्तसब जग भयो ।
आशुतोष सन्तुष्ट है, मनवाञ्छित फल दै दयो ॥

विविधि भाँति तें करी परीक्षा शिव गिरजाकी ।
दृढ निष्ठा लखि वरी, कामना पुरी प्रजाकी ॥
विधि, हरि, सुर, गन्धर्व सबनि मिलि धूम मचाई ।
शिवकी निरखि बरात स्वयं शोभा सकुचाई ॥

नित्य शक्ति शिवकी प्रिया, अपनाई फिरतें वरी ।
शिव दुलहा दुलहिनि शिवा, रति लखि पति हित पग परी ॥

काली, गौरी भईं हँसीमें कोप जतायो ।
देवी दया दिखाइ मगरतें बाल छुड़ायो ॥
गनपति और कुमार पुत्र द्वै अतिही प्यारे ।
वाहन चूहो मोर भक्त भय हरिबे बारे

शक्ति युक्त शिव विविधि विधि, लीला प्राकृत वत् करहिं ।
जाहि सुनहिं जे भक्त जन, तिनिके अघ छिनमहँ कटहिं ॥

स्वामिन् ! पशुपति ! प्रभो ! दास के पाश छुड़ाओ ।
जगदम्बा ! माँ ! उमाँ वत्सकूँ हृदय लगाओ ॥
भटक्यो जगमहँ जनक ! शरन चरननिमहँ दीजे ।
माँ ! अब गोद बिठाय चूमि मुख सुतको लीजे ॥

यद्यपि हौं अति अधम हूँ, तऊ पिता ! अपनाइ लै ।
मैयो ! साधन रहित सुत, कूँ हियतें चिपकाइलै ॥

है अधर्म विधि पुत्र मृषा है ताकी जाया ।
द्वै तिनके सन्तान दम्भ सुत पुत्री माया ॥
ते पति पत्नी बने लोभ शठता द्वै जाये ।
दम्पति ह्वैकें तिननि क्रोध हिंसा उपजाये ॥

हिंसा क्रोध विवाह करि, कलि दुरुक्ति जनि सतती ।
अन्य युगनिमें छीन बल, होहिं बली कलिमहँ अती ॥

कलि द्विरुक्तिने जने मृत्यु भय दोऊ बालक।
दुलहा दुलहिनि बने क्रूर सब जग के घालक॥
तिनि दोउनितें नरक यातना भये मूढ़मति।
पापनिको दुख भोग करावें देहिँ दुःख अति॥

जे अधर्मके वंशकूँ, स्वयं पढै सबते कहैं।
तिनके मनकी मलिनता, मिटै अन्त सुरपुर लहैं॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें अधर्म वंश वर्णन नामक अष्टम अध्याय समाप्त



अथ नवमोऽध्यायः

(९)

दो०—विदुर ! कहूँ अब ध्रुव चरित, जिन कीये वश श्याम ।
बालकपनमहँ घर तज्यो, पुनि पायो ध्रुव धाम ॥

छप्पय– शतरूपा पति स्वायंभुव मनु तेज तपोयुत ।
प्रियव्रत अरु उत्तानपाद तिनके द्वै शुभ सुत ॥
द्वैं महिषी उत्तानपादकी सुरुचि सुनीती ।
किन्तु नृपतिकी अधिक सुरुचि पत्नीपै प्रीती ॥

सुरुचि पुत्र उत्तम जन्यो, नृपको अति प्रिय ह्वै गयो ।
बड़ी सुनीति तिरस्कृता, तिनको शुभ सुत ध्रुव भयो ॥

परम सुन्दरी सुरुचि भूप वशमें करि लीन्हे ।
ध्रुवकी मातु सुनीति दुःख ताकू बहु दीन्हे ॥
प्रभु सुमिरन नित करे पुत्रकू जिही सिखावें ।
बेटा ! जगमहँ पुरुष भाग्यहीते सब पावें ॥

हरि चिन्तन ही लाभ अति, हरि सुमिरन ही श्रेष्ठ सुख ।
परम कष्ट हरि विसमरन, शरणागतकूं कवन दुख ॥

एक दिनाकी बात गये ध्रुव महलनि भीतर ।
उत्तमकूँ लै गोद मोदयुत बैठे नृपवर ॥
ललकि गोदमहँ चढन मनोरथ ध्रुवने कीन्हों ।
किन्तु सुरुचि रुचि निरखि गोद सुतनृप नहिँ लीन्हों ॥

ध्रुव हियकी इच्छा लखी, सौतेली माँ हँसि परी ।
सुमिरि सौतिया डाहकूँ, ध्रुव माँकी निन्दा करी ॥

बालकतें यों विहँसि विमाता बोली बानी।
बेटा ! व्यर्थ विषाद करै तू अति अज्ञानी॥
यद्यपि राजा तनय किन्तु मम कोखि न जायो।
तू सुनीतिके गरभमाँहि किहि अघतें आयो॥
अब तप करि मम उदरतें, लेहि जनम सम्भव जबहिं।
उत्तम सम नृप अङ्कमहँ, बैठि सकैगो तू तबहिं॥

सुनत विमाता वचन क्रोध ध्रुवकूँ अति आयो।
फरके दोऊ ओठ रोष सब तनमहँ छायो॥
खिसियानों फिरि रोइ मातु ढिँग चल्यो रिस्यानों।
मार्यो बालक सर्प दण्डतें मणिधर मानों॥
रुदन करत निज सुत लख्यो, दौरि गोद माता लयो।
सुत मुखपै निज मुख धर्यो, चूम्यो पुनि धीरज दयो॥

बोली-बेटा ! बात बतादै क्यौं तू रोवै ?
क्यौं निकासिकें नीर नयनको काजर धोवै ?
पुनि पुनि पूछे मातु बात कछु नाहिँ बताई।
तब पुरवासिनि कथा आदितें अन्त सुनाई॥
सुनि सुनीति सब सौतिकी, सुत संबन्धी दुख कथा।
झुरसि अनलतें ज्यों लता, गिरै भई त्यों हियव्यथा॥

सुत समझायो मातु कृष्ण दुख दूरि करिङ्गे।
वे अनाथके नाथ शोक सताप हरिङ्गे॥
कमलनयन विनु नाहिँ ताप-त्रय हरिवे वारो।
दीनवन्धु विनु वत्स ! हमारो कौन सहारो॥
जो समृद्धि सुख परम पद, चाहो तो हरिपद गहहु।
रटि रसना हरि रूप दृग, सुमिरि चरित मधुवन वसहु॥

सुनी मातुकी बात पुत्र सुनि धीरज धार्‌यो।
ऊँच नीच सब सोचि फेरि करतव्य विचार्‌यो॥
जननीतें ध्रुव कहे मातु अब आज्ञा दीजे।
पथ मगलमय होहि कृत्य अब सोई कीजे॥
माँ इकलौते तनयकूँ, हिय लगाय आशिष दई।
पितुपुरतै ध्रुव चलि दये, फैलि बात घर घर गई॥

दये प्रलोभन बहुत न ध्रुव फिरि घरकू बगदे।
दुख वन पथके सोचि करी नहिं शका हिरदे॥
ज्योंही आगे बढ़े मिले मुनि नारद ज्ञानी।
जग उपकारक देव बात ध्रुव मनकी जानी॥
अघहर कर सिरपै धर्‌यो, बोले बेटा ! बाल तू।
अरे ! मान अपमानका, क्रीड़ासक्त कुमार तू॥

बेटा ! जगमें जीव भाग्यते दुख सुख पावै।
जा घर अपने लौटि व्यर्थ क्यौ धक्का खावै॥
ध्रुव बोले—हे विभो ! बात नहिं बैठे मनमें।
वाक बाण वहु बिँधे विमाताके मम तनमें॥
घर लौटूँगो तबहिं जब, सर्वोत्तम पद पाऊँगो।
नहिं तो मुनिवर ! घोर तप, करत करत मरि जाऊँगो॥

मुनि प्रसन्न अति भये देखि दृढता बालककी।
बोले—बेटा ! बात मातुकी अति ही हितकी॥
सब रोगनिकी एक औषधी हरि पद-सेवन।
जा कालिन्दी कूल धाम जहँ मनहर मधुवन॥
गोवरधन गिरिवर जहाँ, कृष्ण करे क्रीड़ा कलित।
ललित कुञ्ज झुकि भूमिके, चूमें हरि पद-रज सतत॥

जा करि मधुवन वास आश जगकी तजि दीजो।
कालिंदीमें तीन काल मज्जन नित कीजो॥
यम नियमनिकूँ साधि बाँधि आसन जो सुखकर।
पूरक कुंभक और नित्य रेचक करियो वर॥
मन इन्द्रिय अरु प्रान मल, मेंटो प्राणायामतैं।
प्रत्याहार सम्हारिकें, चित्त लगय्यो श्यामतैं॥

धरियो हरिको ध्यान भान जगको नहिं होवे।
श्रीहरिको शुभ ध्यान दुःख जगके सब खोवे॥
मधुमय सुखकर मृदुल सुवासम मनहर वैना।
सुन्दर लोल कपोल कमलमुख विकसित नैना॥
कर कङ्कण केयूर वर, कुंडल काननिमें लसें।
करुनासागर प्रनतप्रिय, मन्द मन्द माधव हँसें॥

करतल, पदतल, ओठ, अधर अति अरुन मनोहर।
मन्द मन्द मुसकान सजल जलधर वपु प्रियतर॥
काञ्चन की कमनीय करधनी कटि में भ्राजे।
शङ्ख चक्र अरु गदा पद्म करकमलनि राजे॥
यों बेटा! भगवान्‌को, ध्यान करेगो नेमतें।
तो निश्चय करुनायतन, प्रकट होयँगे प्रेमतें॥

पूजा प्रभुकी प्रेम सहित करियो मधुवनमें।
धरियो जो कछु मिलै भावतें हरि—चरननमें॥
तुलसी दल, जल, फूल, मूल, फल जो मिलि जावें।
भाववश्य भगवान् प्रेमतें सोई पावें॥
गोवरधनकी शिला वा, वटिया शालिगरामकी।
करियो सेवा नेमतें, कृपा होहि घनश्यामकी॥

द्वादश अक्षर सरिस श्रेष्ठ है मन्त्र न दूजो।
वाहीतें फल फूल सहित हरिकूँ नित पूजो॥
करि आवाहन प्रेम सहित आसन फिरि दैयो।
पाद्य अरघ आचमन स्नान जलतें करवैयो॥

वस्त्र और उपवीत दै, गंध धूप दीपादि करि।
तब नैवेद्य फलादि मुख, शुद्धि फेरि द्रव्यादि धरि॥

करिकें पूजा विविध भाँतितें विनती करियो।
यों सब मनके मैल मेंटि चितमें हरि धरियो॥
जो नर पूजै भावभक्तितें बेटा! उनकूँ।
मन वांछित फल देहिं कल्पतरु सम हरि तिनकूँ॥

अरथ धरम अरु काम सुख, मोक्ष देहिं आश्रितनिकूं।
किन्तु न चाहें भक्त कछु, केवल चाहें भक्तिकूं॥

शिक्षा दीक्षा पाइ गमनकी आज्ञा लीन्हीं।
अति प्रसन्न ध्रुव भये दण्डवत् चरननि कीन्हीं॥
मुनि सिरपै कर धर्यो, दई आज्ञा हिय हरषे।
दृढ़-प्रतिज्ञ है चले सुमन नभते बहु बरषे॥

करि प्रदक्षिणा प्रेमतें, बार बार विनती करी।
ध्रुव तप हित वन चलि दये, तनु पुलकित सुमिरत हरी॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें ध्रुव वनगमन नामक नवमा अध्याय समाप्त।

अथ दशमो ऽध्यायः

(१०)

इत सोचें उत्तानपाद नृप महलनिमाहीं।
क्यों गोदीमें चढ़त पुत्रकूं लीयो नाहीं॥
हाय! कुमति मन बसी फूलसो लाल गँवायो।
यों सोचत मन दुखित कमल मुख नृप कुम्हलायो॥
ध्रुवकूं इत करिकें विदा, नारद मुनि नृप ढिग गये।
विधिवत मुनि पूजा करी, अति हरषित भूपति भये॥

पूछें नारद—नृपति! कमल मुख क्यों मुरझायौ।
अरथ धरम अरु काम अपर करतव्य नसायौ॥
ह्वैकें नृप अति दुखित कहे "हौं नाथ! अभागी।
नारीके वश भयो कानि कुलकी सब त्यागी॥
प्रमदा क्रीड़ामृग बन्यो, सुधि बुधि मेरी नसि गयी।
कुसुम सरिस सुकुमार सुत, तज्यो कुमति मन बसि गयी॥

हँसि नारद मुनि कहैं—नृपति! चिन्ता नहिं कीजै।
प्रभु सरबज्ञ समर्थ चित्त तिनि चरननि दीजै॥
सुत प्रभाव नहिं विदित सुयशतै भवन भरैगो।
करि न सकैं जो लोकपाल सो काज करैगो॥
ह्वै कृतार्थ अति वेगि ही, तव चरननिमहँ आइगौ।
त्रिभुवनमहँ विख्यात ह्वै, यश तुम्हार फैलाइगौ॥

कहि सब सुत संबाद भये अन्तरहित मुनिवर।
नृप हिय फाटन लग्यो गये ध्रुवकी माता घर ॥
परे पैर झट खींचि देवि चरननि लिपटानी।
सुरुचि स्वच्छ हिय कही सेविका हौं तुम रानी ॥
त्याग बिना सुख होहि नहिं, त्याग प्रेम विकसित करत।
गृह तजि ध्रुव जब बन गये, तब तीनिहु हिलिमिलि रहत ॥

इत ध्रुव आयसु पाइ गये पावन मधुबनमें।
अधिक चटपटी लगी कृष्ण दरशनकी मनमें ॥
कालिन्दीके कूल पहुँचि अतिशय सुख पायो।
असित सलिलमें न्हाय ग्वा दिना कछु नहिं खायो ॥
तरणितनूजा तट बसहिं, हिय लागी लौ श्यामते।
अबतक वह थल ख्यात है, ध्रुवटीलेके नामतें ॥

फल फूलनितें लदे नम्र पादप जहँ मनहर।
शुक पिक मत्त मयूर करें कोकिल कलरव वर ॥
स्वच्छ सलिलतें भरे सरोवर सुखकर जहँ तहँ।
तिनमें विकसित कमल भ्रमरगन गुंजे जिनमहँ ॥
कालिन्दीकी कलितधुनि, सुनि सब संशय भगि गये।
ऐसे मधुबनमहँ निवसि, ध्रुवजी अति प्रमुदित भये ॥

करहि कठिन तप सततचित्त प्रभु चरन लगायो।
कछु दिन तीसर दिवस फेरि कछु छठवें खायो ॥
नौदिन बारह दिवस अंतमहँ भोजन त्याग्यो।
वायु खाइके रहे ध्यान भगवतमहँ लाग्यो ॥
एक पैरतें ठूँठ सम, निश्चल ह्वैकें थिर भये।
सबथल निरखें श्यामकूँ, तन्मय हरिमें ह्वै गये ॥

रोके इन्द्रिय द्वार चित्त इतउत न चलायो।
विश्वम्भर हियधारि ध्येयमें ध्यान लगायो॥
रुकी सबनिकी स्वाँस जीव सबई घबराये।
डगमग डोले धरनि लोकपालहु अकुलाये॥
सोचें- असमयमें प्रलय, किहि कारन जगमें भई।
हेतु- कहा सहसा अबहिं, स्वाँस सबनिकी रुकि गई॥

दीनबन्धुके द्वार गये दौरे देवादिक।
हाथ जोरि सब कहें प्रभो! जगके प्रतिपालक॥
भयो कहा जिह देव! चराचर क्यौ दुख पावैं।
सबकी स्वाँस प्रस्वाँस क्यौं नहीं आवैं जावैं॥
शरणागतवत्सल विभो! भयहारी सब भय हरहिं।
बेगि छुड़ावहु विपतितैं, बार बार विनती करहिं॥

सुनि देवनिकी विनय कहे- प्रभु मत घबराओ।
भयकी नहिं कछु बात न चिन्ता मनमें लाओ॥
मचल्यौ मेरो बालभक्त इक अबई जाऊँ।
करिकें प्यार दुलार विविधि विधितें समुझाऊँ॥
बाकबाणते बिद्ध है, करे तपस्या कठिनतर।
मुँह माग्यो बर देउँगो, सेवककूँ सब सुलभ वर॥

देव गये निजधाम सजे घनश्याम हमारे।
शङ्ख, चक्र, अरु गदा पद्म कर कमलनि धारे॥
पीताम्बर फहरात जात विद्युत सम चमकै।
मणिमय मनहर मुकुट अलक सँग दमदम दमकै॥
भक्त दरसकूँ व्यग्र अति, उपमा किहि सम देहिं कवि।
गरुड़पीठि चढ़ि जाहिं ज्यों, अस्ताचलकूँ सहसरवि॥

माधव मधुवन लख्यो तहाँ थिर बालक ठाढो।
देख्यो बालक हेज हियेमें हरिके बाढ़ो॥
अन्तरहित निजरूप हियेतें ध्रुवके कीन्हों।
इत उत निरखै नेत्र खोलि हरि सम्मुख चीन्हों॥

पर्यो दंडवत् भूमिमें, तनिक न तनकी सुधि रही।
तनु पुलकित गद्गद् गिरा, प्रेम समाधि दशा लही॥

प्रेम मगन ध्रुव भये सतत श्रीहरिहिं निहारें।
इस्तुति कैसे करूँ विकल है बाल बिचारें॥
जाना हरि हिय बात शङ्खतें बदन छुवायो।
भये वेदमय बचन ज्ञान विज्ञान लखायो॥

वेद शास्त्र सम्मत बचन, शङ्ख छुवत मनमहँ जगे।
गद्गद् बानी मुदितमन, विनती ध्रुव करिबे लगे॥

ध्रुव-स्तुति

जो सब हिय निवसहिँ घट घट प्रविसहि, सब करननि विकसावैं।
जो एक अनूपा, सब जगरूपा, तिनि चरननि सिर नावैं॥

जो रचहिं जगत्कूं, करन असत्कूं, जीव रूप ह्वै जावैं।
बनि एक अनेका, सबको लेखा, रखहिं फेरि भरमावैं॥

ते पुरुष अभागी, प्रभुपद त्यागी, विषय भोग जग माहीं।
जे तब पद ध्यावै, पद तब पावैं, जनम मरन छुटि जाहीं॥

है कथा तुम्हारी, सब दुखहारी, जो नर सुनैं सुनावैं।
ते होहिं कृतारथ, भक्त यथारथ, भुक्ति मुक्ति ठुकरावैं॥

पुनि पुनि पद ध्याऊँ, यह बर पाऊं, तब भक्तनि सतसंगा।
तव-जन अनुरागी, अतिबड़भागी, छिन छिन पुलकहिँ अंगा॥

तिनिके तुम स्वामी, अन्तरयामी, सब तुममहँ मिलिजावैं ।
जिनि अज शिव ध्यावैं, कमल कहावै, तिनि चरननि सिरनावैं ॥

जो अज अविनाशी, नित्य उदासी, जगहित धरि अवतारा ।
करि, पालि, सँहारें, खलदल मारें, होहि न नेक विकारा ॥

तुमकूं जो सेवत, अतिशय प्रियरस, समुझैं ते बड़भागी ।
हम मलिन मंदमति, दीन दुखित अति, विषयनिके अनुरागी ॥

कहुँ शरन नाहिमकूं, जननी तुमकूं, समुझि उतहिकूं धावैं ।
पद पङ्कज मनहर, अघहर सुखकर, तिन महँ शीश नवावै ॥

सुनि बिनती हरि कहे करूँ मन वाँछित तेरो ।
पावै दुरलभ श्रेष्ठ अन्त तू ध्रुव पद मेरो ॥
करि छत्तीस हजार वरष पृथिवीपै शासन ।
भोगो भोगनि किन्तु रहे मम चरननिमहँ मन ॥

यों बर दैकैं वरद हरि, अन्तरहित छिनमें भये ।
करिके पश्चात्ताप बहु, ध्रुव निज घरकूँ चलि दये ॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें ध्रुवनारायण दर्शन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।



काम करै कछु किन्तु न इच्छा फल की होवै।
सुखमें फूले नहीं दुःखमें दुखी न रोवै॥
कृष्णार्पण करि करै शुभाशुभ सौंपै उनकूँ।
करै करम करतव्य धरै हरि चरननि मनकूँ॥

कर्‌यो करूँ जो करुंगो, सब कछु प्रभु तुमईं करो।
कर्त्ता भोक्ता हौं नहीं, कर्‌यो तुमनि तुमईं भरो॥

जा विधि राखें राम रहे ताही विधि सज्जन।
जो करवावे करें भले ही निन्दैं दुरजन॥
कृष्ण प्रीति ही करम कामना जगकी त्यागें।
प्रेम छाँड़िकें भक्त कृष्णतें कछु नहिं मागें॥

ध्रुवजी यह सब सोचिकें, खिन्न मनहिं मन अति भये।
तप करिके अपवर्गपति, तें जगके सुखईं लये॥

पितानगर ध्रुव चले भाग्यकूँ दुरजय मानत।
इत नृप बार्ता सुनी सिद्ध ह्वै सुत पुर आवत॥
सुनत प्रेममें विकल भये निज भाग्य सराह्यो।
मानों मरि मम पुत्र मृत्युके मुखतें आयो॥

सुनत सुखद संबादकूँ, अति प्रसन्न भूपति भये।
अन्न, बस्त्र, धन, धान्य, मणि, मुक्ता विप्रनिकूँ दये॥

भूपति आयसु दई साज स्वागतके साजे।
शंख, दुंदुभी, पणव मांगलिक बाजे बाजे॥
वस्त्राभूषन पहिन कुमारी कन्या आवें।
दधि अक्षत लै फूल-खील ध्रुवपै बरसावें॥

आगे आगे विप्रगन, करत वेदध्वनि चलि दये।
मंत्री रानी सबनि लै, सुत स्वागत हित नृप गये॥

देख्यो उपवन निकट फूल सम सुत कूँ आवत।
गावत गुन गोविन्द अमीरस सो बरसावत॥
उतरे रथते झपटि तनयकूँ हृदय लगायो।
बार बार मुख चूमि गोद मे लाल बिठायो॥
पर्यो पैरपै पुत्र जब, पुलकित सब अँग है गये।
जनु प्रेमासव, पान करि, भूप भाव भावित भये॥

भेंटि पिताते तुरत मातुढिँग ध्रुवजी आये।
दोऊ मातनि पैर कपट छल तजि लिपटाये॥
भई सुनीती विकल सुरुचि उठि आशिष दीन्हीं।
भेंटे उत्तम ललकि मातु सुश्रूषा कीन्हीं॥
मातु प्रेम मूर्च्छा तजी, सुतकूँ हिये लगाइके।
सिर सूँघ्यो चूम्यो बदन, कीन्हों प्रेम अघायके॥

हथिनीपै इक संग चढ़े ध्रुव उत्तम भाई।
धूम धामते चले विविधि विधि-पुरी सजाई॥
गली, द्वार, गृह, चौक, राजपथ झरे झराये।
केरा बंदनवार बाँधि बहु भाँति सजाये॥
दधि, अच्छत, फल, फूल, जल, पीरी सरसौ खील सब।
छिरकें कन्या कुल वधू, ध्रुवजी जित जित जाहिं जब॥

सबते सतकृत भये गये महलनिके भीतर।
लालित पालित भये जनक जननीतें ध्रुववर॥
सब सुखके सामान सजे शालामें सुखकर।
दुग्धफेन सम श्वेत सुखद शैया शुभ मनहर॥
असन सरस अतिवर-बसन, शोभायुत मणिमय भवन।
विमल वाटिका कमलयुत, सर लखि होवै मुदित मन॥

पाइ पिताको प्यार बिताई बाल अवस्था ।
तरुन भये पितु संग करे सब राज व्यवस्था ॥
सबकी सम्मति समुझि भूप सिंहासन दीन्हों ।
मंत्री पुरजन प्रजा सबनि अभिनन्दन कीन्हों ॥
राज्य भार ध्रुवकूँ दयो, नृप तपहित बनकूँ गये ।
सुनत भूप ध्रुव अवनिपै, होवें मंगल नित नये ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें ध्रुवराज्य तिलक नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

बोली इक दिन मातु—बहू अब बेटा आवै।
मेरे पूजै पैर तोइ भोजन करवावै॥
रुनु झुनु रुनु झुनु करति फिरै मन मोद बढ़ावै।
बहू सग लखि तोहि सफल जीवन है जावै॥

हँसे जननि ममता लखी, मुदित मातु मन अति भयो।
कन्या भ्रमि शिशुमारकी, संग ब्याह ध्रुव करि लयो॥

पुत्र भये द्वै कल्प और वत्सर सुखदाई।
दूसरि जाया इला पुत्र उत्कलकूँ जाई॥
उत्तम मृगया हेतु गये अविवाहित बनमहँ।
भयो यक्ष सँग युद्ध प्रान त्यागे तिन रनमहँ॥

सुरुचि पुत्र ढूढन गई, दावानलमें जरि मरी।
यक्षनिपै अति कोप करि, तुरत चढाई ध्रुव करी॥

चढ़े चैत्ररथ चले यक्ष कुलकूँ संहारन।
देखी हिमगिरि पार पुरी अलका अति पावन॥
धूधू करिकें शङ्ख युद्धकूँ वेगि बजायो।
सुनि यक्षनिनें तुरत समरको साज सजायो॥

लड़िवे आये यक्ष मिलि, नहि अवसर ध्रुवने दयो।
मारे सबके सिरनि सर, बड़ विस्मय सबकूँ भयो॥

सबई मिलिकें यक्ष अकेले ध्रुवपै झपटे।
चाप चक्र सम चले चहूँ दिशि चटचट चटके ॥
खडग, परिघ, तिरसूल, परश्वध, शक्ति, भुशुन्डी।
चलें दनादन समरमाहि बिहरै रण चण्डी ॥

एक बार ध्रुवरथ ढक्यो, यक्षनि बाणनितें जबहिं।
रवि नीहारहिँ फारि ज्यों, प्रकटे रथ निकस्यो तबहिं ॥

ध्रुव फिरि मारे बान घुसे यक्षनिके तनमें।
घायल ह्वै कें गिरे भगे गिरि बन उपबनमें ॥
फिरि प्रकटाई बिकट कपट माया शत्रुनिने।
ध्रुवकूँ नाम महात्म्य जतायो स्वस्थ मुनिनिनें ॥

तुरत चढ़ायो धनुषपै, ध्रुव नारायन अस्त्रकूँ।
यक्ष असख्यहु मरि गिरे, बचे भगे तजि शस्त्र कूँ ॥

निरखि पौत्रको कृत्य दुखित मनु ध्रुव ढिंग आये।
प्रेम भरे अति सरस बचन कहि कहि समुझाये ॥
बस, बेटा ! वध व्यर्थ न उपदेवनिको करि अब।
बशवृद्धिके हेतु न यक्षनितें तू लरि अब ॥

सहनशीलता दया अरु, मैत्री समतातें हरी।
होहिं तुष्ट इन गुननितें, च्यौं हिंसा इनकी करी ॥

अरे, जगतमहँ कौन जिवावैं को किन मारें।
जगकूँ वेई रचे अंतमहँ वे संहारे ॥
जीवनिकूं उपजाय जीवतें जीव जिवावें।
मारें जीवनि जीव बडे छोटिनिकूँ खावें ॥

नहिँ यक्षनि तव बन्धुवध, कीन्हों सब है देवबस।
क्रोध बैरकूँ त्यागि अब, सब ईश्वरकृत समुझि अस ॥

लोकपाल शिवसखा, धनद यक्षनिके ईश्वर।
क्षमा याचना करौ देहिंगे तुमकूं शुभ वर॥
जब तक करें न क्रोध पैरपरि विनय सुनाओ।
हाथ जोरि ह्वै नम्र शरन उनकी तुम जाओ॥
विविधि भाँति समुझाइकें, मनु अन्तरहित ह्वै गये।
करिकें पश्चात्ताप बहु, अति विनीत ध्रुवजी भये॥

गुरुजन आज्ञा करे ताहि जे सिरपै धारें।
छाड़ें, तर्क कुतर्क करें झट बिना विचारें॥
ते जगमहँ धन धान्य सुयशके होवें भागी।
अन्त परमपद पाहिं बनें प्रभुके अनुरागी॥
ध्रुव सुनि श्रद्धा सहित सब, मनु आज्ञा स्वीकृत करी।
यक्षनि प्रति हिंसा जगी, ज्ञान अग्निमहँ सो जरी॥

ध्रुवकूँ समुझ्यो शान्त धनद ढिग उनके आये।
बोले बेटा! वीरका न करि काहि लजाये॥
यक्ष न मारे तुमनि उननि नहिं उत्तम मार्‌यो।
क्रूर काल सब करै कालतें सब जग हार्‌यो॥
मनु आज्ञा मानी तुमनि, अति प्रसन्न मम मन भयो।
बर माँगो मन भावतो, विहँसि धनद ध्रुवतें कह्यो॥

हाथ जोरि ध्रुव कहें—कृपा करुनाकर कीजे।
हरि चरननि अनुराग दयाकरि मोकूँ दीजे॥
शम्भुसखा सुनि कहें सदा तुम भक्त भूपवर।
कृष्ण चरनमहँ भक्ति तुम्हारी बढ़े निरंतर॥
यों कुबेर वरदान दै, ततछिन अन्तरहित भये।
स्वप्न सरिस घटना भई, ध्रुव देखत ही रहि गये॥

आये निज पुर करे यज्ञ बहु बैभव वारे।
पुण्य भोगते पाप यज्ञ तपते सब जारे॥
सुत, दारा, धन, धान्य जानि नश्वर सब त्यागे।
राज पुत्रकूँ सौंपि सतत तपमें ई लागे॥
करे सुकृत सब सुख लहे, फिरि ध्रुव बनवासी भये।
तजि सबरे गृह भोग सुख बदरीबनकूँ चलि दये॥

बदरीवनमहँ जाय अलकनदामें न्हाये।
ऋषि मुनि दीन्हे कंद, मूल, फल तेई खाये॥
रहे तहाँ ध्रुव करे साध्यहित नित प्रति साधन।
प्रेम भावमहँ मग्न निरन्तर हरि आराधन॥
परम प्रेमकी सब दशा, स्वतः प्राप्त तिनकूँ भईं।
द्रवित हृदय सागर बन्यो, अँखियाँ वर्षा वनि गईं॥

इक दिन लख्यो विमान उतरतो नभते आवत।
चकाचौंधसी करत छटा चहुँदिशि छिटकावत॥
अरुण कमल दल नेत्र निहारे पार्षद हरिके।
करि प्रणाम ध्रुव उठे तुरत आये ढिँग उनके॥
ध्रुव जीत्यो हरिपद तुमनि, बोले नंद सुनन्द तब।
भेज्यो दिव्य विमान हरि, चढ़े करे नहिं देर अब॥

आज्ञा सबतें लई चढ़ू ध्रुव जिही विचारें।
आयो तबई काल – प्रभो! मोकूँ स्वीकारें॥
बोले ध्रुव—तू बैठ मान राखौं तेरोऊ।
भक्त करे सत्कार चाहि आवे ढिँग कोऊ॥
मृत्यु शीश पद दै चढ़े, हरि विमान चट चलि दयो।
अपनो सो मोंहड़ौ लिये, मृत्यु खिसियानों रहि गयो॥

जब उड़ि चल्यो विमान यादि माताकी आई।
समुझि पारषद भाव मातु गनि तिननि बताई॥
तुमतें पहिले जात मात च्यौ चिन्तित होवें।
च्यौं नहिं पावें सुगति जासु तुमसम सुत होवें॥

सुनि अति हरषित ध्रुव भये, चित्त लगायौ श्याममहँ।
सत ऋषिनिकूँ पार करि, पहुँचि गये ध्रुव धाममहँ॥

ध्रुव जीत्यो हरि धाम जाइ नहिं पापी पावें।
समदरशी शुभ शान्त शुद्ध जनईं जहँ जावें॥
देवहु जिनके परम पुण्यको पार न पावें।
गुरुहू गुरता त्यागि शिष्य गुन गौरव गावें॥

धन्य धन्य ध्रुव धन्य तव, जननी मातु सुनीति है।
धन्य हृदय तुव जासुमहँ, प्रभुपदपंकज प्रीति है॥

सोरठा—नारद ध्रुव गुन गान, गुरु ह्वैके गायो मुदित।
बर बीनाकी तान, छेड़ि प्रचेतनि सत्रमहँ॥

पद

(१)

सुनीती धन्य जगतके माहीं।

जिनके लाल भक्त चूडामनि, जिन सम कोई नाहीं॥ सुनीती०
क्रोधित सुत समुझायो सब विधि, साँची सीख सिखाई।
शिक्षा पाइ गये ध्रुव वनकूँ, अति मनमहँ हरषाई॥ सुनीती०

जप व्रत साधे प्रभु आराधे, वनकी मेवा खाई।
प्रभु पद पायो रोष गँवायो, लखि ध्रुव सुरुचि सिहाई॥ सनीती०

(२)

धन्य ध्रुव भक्तनिके सिरमौर।
सौतेली माँ वाकबानने बेध्यौ हियो कुठौर ॥ धन्य०
क्रोधित है बनकूँ चलि दीन्हे छोड़ी पितुकी पौर।
बालक है हरि हियमहँ धारे, तजी आश जग और ॥ धन्य०
मधुवन गये मानि मेरी सिख, हरिजू आये दौर।
प्रभुपद पायो दुरलभ जगमहँ, पाइ सकै नहिं और ॥ धन्य०

छप्पय—अति पवित्र यह चरित जाहि जे निशिदिन गावें।
ते निश्चय नर नारि प्रेम प्रभुपदको पावें ॥
जे श्रद्धातें पढ़ें सुनें पढ़ि सबनि सुनावें।
पाइ परमपद पुण्य जगतमहँ नहिं फिरि आवें ॥
बालसुलभ क्रीड़ा तजी, तप करि अक्षय पद लह्यो।
उन ध्रुवजीको विदुर! यह, विमल चरित तुमतें कह्यो ॥

इति श्रीभागवत-चरितके द्वितीयाहमें ध्रुववैकुण्ठ पदाधिरोहण नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।

(मासिक पारायण सप्तमदिवस विश्राम)



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

छप्पय—अति आनंदित भये बिदुर बर बोले बानी।
भगवन ! ध्रुवकी कही, कलित कमनीय कहानी॥
कह्यो प्रचेता कौन कहाँ शुभ सत्र रचायौ।
कैसे नारद जाइ तहाँ ध्रुवको गुन गायौ॥
सुनि अति पावन प्रश्नकूँ, हँसि बोले मैत्रेय मुनि।
भये प्रचेता बंश ध्रुव, ताको बरनन बिदुर सुनि॥
ध्रुवके वत्सर पुत्र भये पुष्पार्ण तासु सुत।
तिनके बेटा व्युष्ट सर्वतेजस् सुत तपयुत॥
आकूतीमहँ पुत्र चक्षु मनु तिनके सुखकर।
मनुके उल्मुक भये तिनहिंके अग पुत्रबर॥
मृत्यु सुताको अंगने, पाणिग्रहण विधिवत् कियो।
ताहीतें अति क्रूरतर, वेन पुत्र पैदा भयो॥

सोरठा—भई क्रूर क्यौं मूढ, मृत्यु सुता गुरुवर ! कहौ।
विदुर प्रश्न सुनिगूढ़, कहन लगे मैत्रेय मुनि॥

छप्पय—जो-जो कारज करत सदा माता पितु दीखें।
वेई सबरे काज बालिका बालक सीखें॥
सुता सुनीथा मृत्यु पिताकूँ सब कू मारत।
निरखे नित अति दंड देत ताड़त हुँकारत॥
तप सुशङ्ख बनमहँ तपत, मृत्यु सुता तहँ जाइकें।
तड़ तड़ ताड़न नित करति, मारति तोत्र सिहाइकें॥

बरजें बहुत सुशङ्ख सुनीथा सदा सतावे।
दयो शाप अति क्रूर पुत्र तू दुष्टा जावे॥
भई खिन्न मुनिशाप समुझि नहिं ब्याह भयो जब।
तपश्वित बनमहँ गई अग सँग मेल भयो तब॥
रम्भाने तिकड़म करी, अग संग मन मिलि गयो।
भयो ब्याह रानी बनी, दुष्ट बेन ताकें भयो॥

अग कर्यो इक राजसूय सुर नहिँ तिहिँ आये।
कारन पूछ्यो भूप विप्र अघ पूर्व बताये॥
तिनकी आज्ञा मानि यज्ञ पुत्रेष्टि रचायो।
यज्ञेश्वरतें भूप पात्र पायसको पायो॥
सूघि सुनीथाकूँ दयो, खाइ गर्भ ताके रह्यो।
गर्भवती रानी लखी, मन प्रसन्न सबको भयो॥

गर्भवती बनि सदा सुनीथा जिही विचारै।
होवे पापी पुत्र क्रूरता मनमहँ धारै॥
अङ्ग अङ्गको पाप सिमिटि वीरजमहँ आयो।
शाप सुनीथा फल्यो क्रूरकर्मा सुत जायो॥
गर्भकालमहँ मातु जो, सोच सदा जैसो करै।
पूर्ण गर्भके होतई, सुत पैदा तैसो करै॥

भयो पापमति बेन सदा मदमातो झूमे।
तीर कमन्टा लिये मृगनि मारत बन घूमे॥
छोरनि बाँधे दुष्ट ऐंचिकें जलमें डारै।
मगमहँ मूरख पकरि मार मुक्कनिकी मारै॥
शठता सुतकी सुनि सबहि दुःख अङ्गकूं अति भयो।
सोचें मनुके वशमहं, कुल कलंक यह है गयो॥

समझायो बहुभाँति किन्तु खल बेन न मान्यो ।
नहिं समुझैगो दुष्ट अंग यह निश्चय जान्यो ॥
सोचें कुलमहँ कोढ़ भयो खलमति सुत पापी ।
कैसे त्यागूँ जाहि जिही चिन्ता चित व्यापी ॥
कहा करूँ कछु बस नहीं, अब तजि घर हरिकूँ भजूँ ।
तजै दुष्टता जिह नहीं, तो जाकूँ हौं ही तजूँ ॥

निविड़ तिमिरमय निशा नींद नृपकूँ नहिं आई ।
करिके इत उत बात वेनकी मातु सुआई ॥
सबकूँ सोवत छोड़ि राज घरते नृप निकसे ।
चन्द्रहीन लखि निशा अमित नभ उड़गन विकसे ॥
जनमे जा घरमें नृपति, बड़े भये राजा भये ।
कंचुल तजि अहि जाहि ज्यों, सुत दुखतें त्यो तजि गये ॥

ढुढवाये चहुँओर भूपको पतो न पायो ।
तब ऋषि मुनि मिलि दुष्ट वेनकूँ नृपति बनायो ॥
यद्यपि मत्री सचिव सबहि सहमत नहिं जाते ।
तऊ अगको तनय मुनिनि नृप कीन्हों ताते ॥
एक गिलोय स्वभावतें, कड़वी फिरि नीमहिं चढ़ी ।
त्यों सिंहासन पाइकें, वेन दुष्टता अति बढ़ी ॥

फिरै निरंकुश भयो करै अपमान सबनिको ।
मानें वेद न यज्ञ करै पूजन न सुरनि को ॥
डोंड़ी दई पिटाय यज्ञ मख दान करो मति ।
मैंई इन्द्र, कुवेर, वरुण, यम, रुद्र, बृहस्पति ॥
मोह छाँड़ि जे औरकूँ, जप-तप करिकें भजिङ्गे ।
समुझो मेरे खड्गतें, प्रान तुरत ते तजिङ्गे ॥

जब नास्तिकता करत बेन घूमे भुवि माहीं।
तब सब ऋषि मुनि बिप्र देवगन अति घबराहीं॥
कहें परस्पर—दुष्ट देहि अति सबनि यन्त्रणा।
धरम करम कस होहिं करहिं मिलि बिप्र मन्त्रणा॥
सबकी सम्मति जिह भई, पहिले चलि समुझाँइगे।
जो नहिं माने मन्दमति, तो फिरि ताहि बताइँगे॥

यों निश्चय करि गये भूपढिग मुनि उपकारी।
बोले बचन बिनीत—बेन! सुनु बिनय हमारी॥
क्यों करवाये बंद यज्ञ, ब्रत दान, धरम बर।
क्यों मेंटी मरजाद बेदकी अतिशय सुखकर॥
राजन! तुमरे राजमहँ, होहिं यज्ञ जो बिधि सहित।
तो होवें सबई सुखी, प्रजा ब्याधि पीड़ा रहित॥

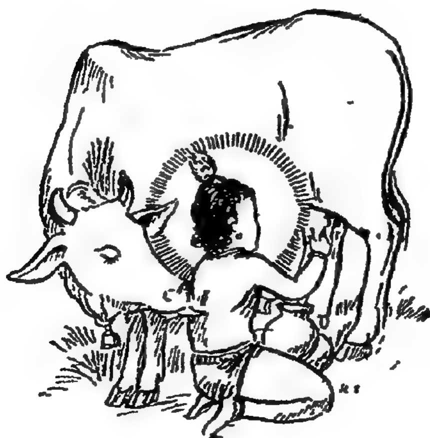
है मनुको अति बिमल बंश ध्रुव जनमे जामें।
भये भूप उत्तानपाद हरिपदरत तामें॥
बर्णाश्रम शुभ धर्म करो पालन तुम ताकूँ।
उज्वल कुलकी कीर्ति करो कलुषित क्यौं वाकूँ॥
बेन कोपकी अगिनिमहँ, मुनिगण—बच घृत सम भये।
बोल्यो करिकें कोप अति, ये आये मम गुरु नये॥

फिरि यों बोल्यो बेन—बड़े मूरख हो तुम सब।
मैंई सबको ईश मोइ पूजो तुम मिलि अब॥
मोइ छोड़िके और ईश कोई मति जानों।
मूरखताकूँ तजो, महेश्वर मोकूँ मानों॥
जो अब बकबक करी तो, लुंगो जीभ निकारिकें।
जोवित चाम उतारिकें, भुस दुगो भरवाइकें॥

सुनत कुपित मुनि भये पुकारें मारो मारो।
राजासनतें खैंचि दुष्टकूँ बेगि उतारो॥
पाइ परम ऐश्वर्य नीच अतिशय इतरावै।
करे वेद अपमान आज वाको फल पावै॥

यों कहि भरिकें क्रोधमें, सब मुनि मिलि हुंकृत करी।
तुरत बेनकी देह तहँ, प्रानहीन ह्वैकें गिरी॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें बेन चरित नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

छप्पय—छाँड़ि ताहि निरजीव गये निज-निज आश्रम मुनि ।
मातु सुनीथा दुखित भई निजपुत्र मृत्यु सुनि ॥
राज्यमाँहि बहु भई अराजकता अतिभारी ।
लूट, पाट, व्यभिचार, कलह, चोरी अरु जारी ॥
मुनिनि देश देख्यो दुखी, दया हिये उमड़ी प्रबल ।
होहि तहाँ तप कस जहाँ, निरबलकूँ ताड़े सबल ॥

मुनि समदरसी शान्त, शान्ति हित सब पुर आये ।
देखि बेनको मृतकदेह अति हिय हरषाये ॥
बेन जाँघकूँ युक्ति सहित मुनि मथिबे लागे ।
निकस्यो कारो पुरुष निरखि मुनि नहिँ अनुरागे ॥
वेनदेह कल्मष कस्यो, पृथक देहतें ह्वैगयो ।
मुनिनि निषीद कह्यो बचन, सो निषाद सञ्ज्ञक भयो ॥

मथीभुजा फिरि युगल भये लक्ष्मीनारायन ।
पृथुल कीर्ति पृथु पुरुष अर्चि कमला जगपावन ॥
तेज, वीर्य्य,बल, प्रभा सुलक्षण लखि मुनि हरषे ।
गावें गुन गन्धर्ब सुमन सुर नभतें बरषे ॥
दक्षिण करतें पृथु भये, वायेंते लक्ष्मी भई ।
प्रभु प्रकटे सुनि प्रजाकी, चिन्ता सब ही नति ह्वगई ॥

दो०—वेद, विप्र, सुर, साधु मख, करि इनको अपमान।
मर्‌यो बेन तब पुत्रबनि, प्रकट भये भगवान॥

छप्पय—विप्रवृन्द करि वेदगान हियमहँ अति हुलसैं।
धेनु दूधकी धार बहावैं सरसिज विकसैं॥
स्वरगलोकतें सिद्ध, पितर, सुर, मुनि मिलि आये।
भये चराचर सुखी चहूँदिशि बजत बधाये॥
कमलासन विधि चरन, कर, लखि लछन प्रमुदित भये।
प्रकटे प्रभु पृथु रूपमहँ, सत्य लोक यों कहि गये॥

मिलिके मुनि वेदज्ञ करन अभिषेक लगे तब।
बाजे तुरही शङ्ख राजसी साज सजे सब॥
आये नदी, पहाड़, पेड़, पत्ती, पशु, पयनिधि।
असन, बसन, मणि, रत्न, भेंट लाये बर बहुविधि॥
कनक सिँहासन धनद शुभ, दयो छत्र वर वरुनने।
वायु दये अति वर व्यजन, माला दीन्हीं धरमने॥

लोकपाल सुरपाल सबनि मिलि सेवा कीन्हीं।
जापै जो वर वस्तु हती ताने सो दीन्हीं॥
स्वीकारे उपहार कर्‌यो सम्मान सबनिको।
प्रजापाल प्रभु भये बढ़्यो उत्साह सबनिको॥
सिंहासन आसीन पृथु, सुर, नर, ऋषि, मुनि मन हरत।
उमड्यो आनँद दशहु दिशि, हिय हरषत जय जय करत॥

मिलि मागध अरु सूत लगे विरदावलि गावन।
तब लज्जित ह्वै लगे तिनहिँ हँसि पृथु समुझावन॥
अरे! मृषा गुन गाय समय च्यौं व्यरथ विताओ।
कीर्तनीय हरि एक तिनहिँकी कीरति गाओ॥

पौनी, सूत, कपास नहिं, बस्त्र प्रशंसा होय जस।
कीर्ति योग्य कछु कर्यो नहिं, करहु प्रशंसा फेरि कस॥

सुनि सहमे सूतादि कर्यो संकेत मुनिनि जब।
तजिकें सब संकोच करहिं गुन गान हरषि सब॥
ये ह्वगे अति सहनशील शरणागतबत्सल।
परम तेज सम्पन्न एक सम समुझें जल थल॥

एक छत्र शासक सबल, सेवा सबकी करिहें।
दुहिता करि धरनी दुहें, कष्ट सबनिके हरिहें॥

प्रजापाल पृथु भये आइ बोले जन सब अस।
पृथिवीपै नहिं अन्न, करे निर्वाह नृपति कस॥
नृप सोचे--सब बीज भूमि निज उदर छिपाये।
ताहीतें बिनु अन्न प्रजाजन अति घबराये॥

भूख प्यास पीड़ित प्रजा, पृथु लखि चोट हिये लगी।
तानि धनुष मारन चले, धेनु रूप धरि भू भगी॥

धरें धनुषपै बान लखे पृथु भागी धरनी।
ज्यों कर लीये पाश व्याध लखि भागे हरिनी॥
त्रिपुर बिनाशन हेतु मनहुँ सर शंभु सजायो।
धरमधेनु बधहेतु मनहुँ पंचानन धायो॥

मुरि मुरि निरखति भय सहित, जावै बसुधा जहाँ जहँ।
संधानें सर करें पृथु, पीछो ताको तहाँ तहँ॥

बोली बसुधा—विभो! व्यर्थ च्यौं मोकूँ मारौ।
अबला सदा अबध्य ताहि फिरि च्यौं सहारो॥
बिना बात च्यौ बान चलाओ बात बताओ।
निरपराधिनी मोइ मारिकें का तुम पाओ॥

पृथु बोले दुष्टे धरनि ! तो पै बान चलाऊँगो ।
सबकूँ सुखी बनाऊँगो, यमपुर तोहिं पठाऊँगो ॥

धरनी धरिके धीर बीरतें बोली बानी ।
मोइ न मारें नाथ ! आप ज्ञानी विज्ञानी ॥
गऊ तिहारी बनी सबनितें दूध दुहाओ ।
दुहनी दोग्धा लाइ बीरबर बत्स बनाओ ॥

युक्ति सहित यदि दुहेंगे, तो इच्छित फल देउँगी ।
प्रकट सबहि औषधि करूँ, दुहिता बनि यश लेउँगी ॥

सुनि बसुधाके बैन बेन-सुत दुहिबे लागे ।
मनुकूँ कीयो बत्स पात्र कर कीयो आगे ॥
सुर-गुरु दोही इन्द्र बत्स करि कनक पात्रमहँ ।
अमृत रूप जो दुग्ध, ओज बल वीर्य गात्रमहँ ॥

असुर दैत्य प्रह्लादकूँ, बछरा गौके करि लये ।
लोह पात्रमहँ सुरा अरु, आसव दुहिकें भगि गये ॥

विश्वावसु करि बत्स दुह्यो संगीत अप्सरनि ।
कपिल बत्स नभ पात्र सिद्धि लीन्हीं दुहि सिद्धनि ॥
करे रुद्रबर बत्स भूत प्रेतादिक गणने ।
लै कपालई पात्र दुह्यो रुधिरासव सबने ॥

पात्र बत्सके भेदतें, दुग्ध सबनि अभिमत लयो ।
तब पृथुने पुत्री करी, पृथ्वी नाम तबहिं भयो ॥

ऊबड़ खाबड़ भूमि परी कहुँ पर्वत भारी ।
ऊँची नीची कहूँ कहूँ जंगल कहुँ भारी ॥
लैके पृथुने धनुष करी चौरस सब वसुधा ।
गिरि उत्तर दिशि चुने करी खेतीकी सुविधा ॥

भूमि समान करी नृपति, घर, पुर, पत्तन रचे तब।
पहिले हते न नगर पुर, इत उत तरु तर बसे सब ॥

रचे नगर अरु ग्राम भवन, गृह अटा अटारी।
बापी कूप तड़ाग राजपथ अति सुखकारी ॥
नगरनि सीमा बनी पृथक सब प्रान्त बनाये।
मडलीक भूपाल सबनिके दुर्ग सुहाये ॥

करी व्यवस्था सबहिं विधि, दुःख सबनिके मिटि गये।
राज्य नियामक नृपति, पृथु, आदि राज भूके भये ॥

सुखी भये नर नारि बने घर सुखद सुहाये।
मिटे दम्भ पाखड धरम प्रिय अति हरषाये ॥
वेद पढ़ें द्विज करें प्रजा पालन भूपति गन।
कृषि गोपालन बनिज वैश्य करि जोरें सब धन ॥

करें शूद्र सेवा सतत, बरन व्यवस्था पुनि भयी।
पृथुल कीर्ति पृथुकी विदित, वसुधा बेटी बनि गयी ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वियीयाहमें पृथुराज्याभिषेक नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

वर्णाश्रमकी मिटी व्यवस्था थापित कीन्हीं ।
ये सब करिकें काज यज्ञ शत दीक्षा लीन्हीं ॥
बहे सरस्वति जहाँ पुण्यप्रद भूमि सुहावन ।
गंगा यमुना मध्य ब्रह्मऋषि सेवित पावन ॥

मखपूजा त्रेता कही, अश्वमेध तातें करहिं ।
कालक्षेप करि देहिं सिख, करहिं अनुकरन भव तरहिं ॥

होहिं यज्ञ अति विषद करें सुरगन सब सेवा ।
देहिं वृक्ष बहु मूल, फूल, फल, मधुमय मेवा ॥
दूध, दही, घृत, तक्र, खीरि सरिता सब लावें ।
रुचि प्रिय परम पदार्थं प्रेमतें पंडित पावें ॥

हलुआ पूरी जलेबी, माखन मिसिरी जो चहो ।
खाओ पीओ पेटि भरि, तानि दुपट्टा सो रहो ॥

यों नौ नब्बे यज्ञ भये अंतिम जब आयो ।
इन्द्रासन मम लेहिं अमरपति पेट पिरायो ॥
वेष बदलिकें विघ्न करन मख अश्व चुरायो ।
चोरी करिकें चल्यो अत्रि मुनि तुरत लखायो ॥

करनी सुरपतिकी लखौ, विषय भोग दुख मूल हैं ।
जे विषयनि अनुकूल ते, मोक्ष मार्ग प्रतिकूल हैं ॥

चोर इन्द्रकूँ अत्रि दिखायौ पृथु कुमारकूँ।
बत्स! बेगि जा पकरि पुरदर चोर जारकूँ॥
सुनत राजसुत शीघ्र शक्रकी ओर सिधार्‌यो।
साधु समझिकें सहृद कुमर फिरि नहिं सर मार्‌यो॥
अश्व विजय करि इन्द्रते, लायौ सुख सबकूँ भयो।
ऋषि मुनि मिलि बिजिताश्व बर, नाम कुँवरकूँ तब दयो॥

इन्द्र हृदयमहँ मची कुलबुली बिगरे मख कस।
अबकें चुपके जाइ अश्व लाऊँ सोच्यो अस॥
अधकार करि पकरि अश्वकूँ सुरपति भाग्यो।
अत्रि कीन्ह सकेत कुमर फिरि पीछे लाग्यो॥
साधुवेष लखि फिर कुमर, हिचक्यो मुनि मारो कह्यो।
छोड़्यो शर बिजिताश्व तब, अन्तरहित शतक्रतु भयो॥

मख बिध्वसन हेतु इन्द्र जो वेष बनाये।
ते पाखडिनि चिन्ह ऊपरी परम सुहाये॥
जटाजूट बनि नग्न लाल अरु श्वेत पहिन पट।
यही मोक्षको मार्ग अज्ञ नित करहिं सतत हट॥
तम प्रधान विद्यारहित, मानें धर्म अधर्मकूँ।
लिङ्ग धर्म कारन नहीं, समुझे नहिं जा मर्मकूँ॥

समुझी शक्र कुचाल क्रोध नृप पृथुकूँ आयो।
इन्द्र मारिबे हेतु धनुष अरु बान उठायो॥
ऋत्विज बोले बिभो! बिहित बध अब नहिं तुमकूँ।
हम सब कछु करि सके देहि आयसु यदि हमकूँ॥
मंत्र शक्तितें शक्रकूँ, अबई यहाँ बुलाईंगे।
स्वाहा करिके अग्निमें, यमपुर ताहि पठाईंगे॥

क्रोधित ह्वै पृथु कहैं, अवशि देवेन्द्र जराओ।
पढ़े विप्रवर मंत्र, अमरपति आओ आओ॥
गिरे स्वर्गते इन्द्र कलामुंडी सी खावत।
देखे सबने शक्र खिंचे पशु सम मख आवत॥

दौरे आये पितामह, अरे, अरे, का करत हो।
यज्ञ रूप इन इन्द्रके, व्यर्थ प्रान क्यों हरत हो॥

भैय्या श्रद्धा सहित जिन्हें मखमाँहि बुलाओ।
काहे तिनकूँ विप्र! अग्निमहँ आजु जराओ॥
राजन्! छोड़ो वैर व्यर्थ मति बात बढ़ाओ।
अब हठ करि पाखंड जगतमहँ मति फैलाओ॥

सौ मख करि का करोगे, मोक्ष मार्गके पथिक तुम।
इच्छा राखो इन्द्रकी, सबके हितकी कहहिं हम॥

विधि आज्ञा शिर धारि यज्ञ पृथु बन्द करायौ।
गुरु गौरवकूँ मानि बाद आगे न बढ़ायौ॥
जो जो मखमहँ देव विप्र ऋषि मुनिवर आये।
सबको करि सत्कार विविधि विधि दान दिवाये॥

पाइ दान सम्मान बहु, विप्र तुष्ट अतिशय भये।
दै आशिष अति मुदित ह्वै, अपने अपने घर गये॥

पृथु यज्ञनिते तुष्ट भये श्रीमधुसूदन अति।
भये यज्ञमहँ प्रकट शक्र लै संग यज्ञपति॥
पृथुते पूजित भये फेरि बोले मृदु बानी।
राजन्! सबहिं कुचाल शतक्रतुकी हम जानी॥

हौं प्रसन्न तुमपै भयो, सिद्ध होहिं तव काज सब।
अति लज्जित यह इन्द्र है, जाहि क्षमा करि देहु अब॥

राजन् ! यह तनु नाशवान छिन भंगुर गुनमय ।
आत्मा निरगुण शुद्ध सर्वगत साक्षी आश्रय ॥
करहिं दान तप धर्म त्रिबिध बिधि यज्ञ रचावें ।
करिके अरपें मोहिं परमपद ते नर पावें ॥

पृथु ! पृथिवी पालन करो, मेरी सेवा जानिकें ।
करहु प्रेम सब जननितें, सबमहँ मोकूँ मानिकें ॥

हरि आयसु सिर धारि चरनमहँ शीश नवायो ।
पर्यो पैंरपैं शक्र उठायो हिये लगायो ॥
पुनि विधिवत अति प्रेम सहित प्रभु पूजा कीन्हीं ।
अति प्रसन्न हरि भये प्रेमकी आशिष दीन्ही ॥

हरि दरशन नहिं करि सकें, प्रेम अश्रु नयननि भरे ।
कठ रुद्ध निश्शब्द हरि-हियतें आलिंगन करे ॥

पृथु पकरे प्रभु पाद पद्म पावन अति मनहर ।
स्रवे सदा मधु मत्त होहिं पी भक्त भ्रमर वर ॥
पलकनि पौंछि पराग नयन पयतें पुनि धोये ।
नखद्युतिके आलोक माँहि प्रिय पुनि पुनि जोये ॥
प्रभु प्रभुपनकूँ भूलिकें, पग पृथिवी परसत भये ।
भक्त और भगवान ऊ, दोऊ बेसुधि बनि गये ॥

भक्तवछल भगवान कहैं नृपवर वर मागौ ।
मोइ कृतारथ करौ निसपृहा ऐसी त्यागौ ॥
अश्रु पौंछि पृथु कहे प्रभो ! अब यह वर दीजे ।
हेहिं सहसदश कान, प्रतिज्ञा पूरी कीजे ॥

घर बैठे सब ठौरतें, सुयश तुम्हार सुन्यो करूँ ।
सुनत श्रवन गुन थकित नहिं, होहिं हिये तव छवि धरूँ ॥

सुयश सुधा मकरंद चरन कमलनितैं निसृत ।
साधु संग करि पान होहिं सबरो जग विसमृत ॥
कमला जाके पान हेतु पगली सी डोलें ।
सज्जन पीवहिं सतत दूसरी बात न बोलें ॥
साश्रु नयन गद् गद् गिरा, कहे परस्पर संतजन ।
इहि विधि हरि गुन श्रवन करि, अनत जाहि नहिं मोर मन ॥

पद्मा प्रभुके पाद पद्म प्रति पहर पलोटैं ।
सत पुरुष ऊ सदा धूरि पगकीमहँ लोटैं ॥
इच्छा मेरी जिही पलोटूँ तिन पाइनिकूँ ।
करुनासागर कृष्ण ! कृतारथ करूँ करनिकूँ ॥
लक्ष्मी मोतें लड़िङ्गी, प्रभु तिनकूँ समझाइलें ।
जगमाताकूँ घुड़किकें, सुतकूँ हिये लगाइलें ॥

जिन विषयनिकूँ छोड़ि भूमिपति वनकूँ भागें ।
तिनकूँ तुमरे दास भला च्यों तुमतें मागें ॥
जगदीश्वर तुम जनक तनय हम नाथ तिहारे ।
तो फिरि जगके भोग आपु ई भये हमारे ।
हौ वर माँगू जिही प्रभु ! तव पद पद्मनि प्रीति अति ।
सत्संगति हरि कथा रुचि, जग भोगनितैं भीति अति ॥

पृथुकूँ सब वर दये भये अन्तरहित श्रीपति ।
करि सबको सम्मान चले पुरकूँ पृथिवीपति ॥
सुनत आगमन प्रजा गई लैवेकूँ आगे ।
वीणा, वेनु, मृदग वाद्य सब बाजन लागे ॥
ध्वजा पताकातें सजे, नगरमाँहिं आये नृपति ।
निज पति लखि चिरकालमहँ, भये मुदित नर नारि अति ॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें पृथुयज्ञ नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

प्रविसे पुर पृथु करें, प्रजा सबको यों पालन ।
ज्यों माता पितु करें, नेहतें सुतको लालन ॥
महासत्र इक रच्यो धर्म की वृद्धि करनकूँ ।
फैले नास्तिकभाव धरातें तिन्हे हरनकूँ ॥

देश देशते सभ्यगन, आये जुर्यो समाज बर ।
तिनके सम्मुख कहन कछु, उठे भूप ज्यों दिवाकर ॥

अति सुन्दर अति मधुर भ्रान्तितें रहित बचन बर ।
बोले सबहिं सुनाय धर्म सम्मत अतिहितकर ॥
सुनो शास्त्रको सार सत-मुख सुनी सुनाऊँ ।
सेवा सौंपी सबनि पुरुष करतव्य बताऊँ ॥

वेद विहित सब यज्ञ तप, दान धर्म मिलि करहु अब ।
पितर, अतिथि, गुरु, देव, द्विज, पूजा सबकी करहु सब ॥

धन्य प्रजाके पुरुष करहिं जे पूजा प्रभुकी ।
ते अति आदरणीय करहिं जे अर्चा बिभुकी ॥
धरम मूल हैं धेनु यज्ञ हित घृत जे देवें ।
दूसर भूसुर कहे वेद जे विधिवत सेवें ॥

विप्र कमलपदरेणुकूँ, नित सिरतें धारन करहु ।
कृष्णार्पण करि करहु सब, करम व्यथा सबकी हरहु ॥

सुने बेन- सुत बैंन नैंन सबके भरि आये।
सुनि अभिभाषन साधु साधु सबई चिल्लाये ॥
उठे वृद्धसे पुरुष एक प्रतिनिधि परजाके।
धन्यबाद बहु दये मचके ढिगमहँ जाके ॥

पिता पुत्र द्वारा परम, प्राप्त पुण्य लोकनि करहिं।
भई सत्य बेदोक्ति जिह, पृथु पितुके पापनि हरहि ॥

भये कृतारथ आजु हमनि अच्युत पति पाये।
प्रभो! धन्य सुनि भये अबहिं जो हरिगुन गाये ॥
जुग जुग जीवें नाथ सदा अस सीख सिखावें।
सुनि श्रीमुख हरि सुयश हृदय हमरे हुलसावें ॥

मति मलीन अति दीन हम, नहीं भेंट सम्मान है।
केवल श्रद्धा सहित प्रभु! पद पद्मनि परनाम है ॥

सभामाहिँ सनकादि तबहिं नभ मारग आये।
प्रजा सहित पृथु उठे सबनि चरननि सिरनाये ॥
सिंहासन बैठाय बिबिधि विधि पूजा कीन्हीं।
राज, कोष, सम्पत्ति देह अरपन करि दीन्हीं ॥

हाथ जोरि गद् गद् गिरा, कहत बचन विह्वल भये।
करे कृतारथ कृपानिधि! सु दुरलभ दरसन दये ॥

अब हे दीन दयाल! मोक्षको मार्ग बताओ।
कस होवे कल्यान सरलतातें समझाओ ॥
भटके भव मगमाँहि प्रभो! अवलम्बन देवें।
भवजल डूबत नाव आप नाविक बनि खेवें ॥

तीनों तापनितें तपित, कबते जगमहँ भ्रमि रहे।
दुखित देखि दरशन दये, भई शान्ति तव पद गहे ॥

बोले—सनत्कुमार प्रश्न पृथुको सुनि करिकें।
करहु होहिं निस्संग काज सब हरिहिय धरिकें॥
शास्त्र बचन गुरु दया भक्ति भगवत भक्तनिकी।
योग, ज्ञान, हरिकथा, टेव नित हरिकीर्तनकी॥

ऐसे और अनेक हू, हैं उपाय उत्तम अनघ।
करहिं तिनहिंजे प्रेमतें, होहि शुद्ध मन कटहिं अघ॥

वासुदेव भगवान् भक्तितें होवें बश जस।
योग याग विज्ञान आदितें बश न होहिं तस॥
तातें तजि सब अन्य एक श्रीहरि आराधें।
छाँड़ि क्लेशकर काज सुगमसो साधन साधें॥

शेष न साधन तुमहिं कछु, सब तुम परहित करत हो।
ह्रास धरमको होहिं जब, तब तब तुम तनु धरत हो॥

नृप पृथु सनत् कुमार मुखामृत पान कर्यो जब।
सब तनु पुलकित भयो कहैं ह्वैकें प्रसन्न तब॥
प्रभो! सुधारस प्याइ कर्यो कृतकृत्य कृपानिधि।
पूजा प्रत्युपकार करहुँ हे मुनिवर केहि विधि॥

तन मन धन सब आपको, का तुमकूँ अरपन करूँ।
तातैं श्रद्धा सहित तव, चरन कमलमहँ सिर धरूँ॥

विदुर! विष्णु नट कुशल विविधि विधि वेष बनावैं।
वनि ठनि जगमहँ स्वयं नचें अरु सबनि नचावैं॥
जस जस बाने धरें आइ तस भाव दिखावें।
सुर, नर, मुनि, गन्धर्व खेलको पार न पावैं॥

रङ्गमंच यह दृश्य जग, नाटक जगके काज हैं।
यह माया ठगिनी नटी, निरविकार नटराज हैं॥

भूमि विषम सम करी नगर पुर ग्राम वसाये।
जरा जानि जनराज तपोवन सब तजि धाये॥
पृथिवी पुत्री बिरह ब्यथामहँ अश्रु बिमोचति।
तजी प्रजा सब दुखी बिरहमहँ बिलखति रोवति॥
सबतें मुखकूँ मोरिकें, निरमोही भूपति भये।
पत्नी लीन्हीं संगमहँ, बानप्रस्थ वनि बन गये॥
बसिके बनमहँ भूप अखिल पतिकूँ आराधें।
योग ध्यानमहँ निरत नियम व्रत मुनिके साधें॥
अति सुकुमारी अर्चि करें सेवा सब तजि सुख।
पाणिपरस पति पाइ भुलावें बनके सब दुख॥
कछु दिन खाये भूप फल, कछु दिन पय पत्ता परे।
बायु खाय कछु दिन रहे, यों इन्द्रिय गण वश करे॥
वेन-तनय तप करें, संग पतिप्राणा लैकें।
भगवत चिन्तन करत प्रेम प्लावित हिय ह्वैकें॥
कर्यो वासना रूप बन्ध मन शुद्ध भयो जब।
अन्त काल ढिँग जानि ब्रह्ममय भये भूप तब॥
त्याग ग्यान वैराग्यतें, हृदय भक्ति भावित भयो।
तब अहि कैंचुल जीर्ण पट, सम भूपति तनु तजि दयो॥
अर्चि गई पति निकट देह निष्प्राण निहारी।
बिलखी पतिशव निरखि दुखारी भई बिचारी॥
ईंधन चुनि चुनि चिता सतीने स्वयम् बनाई।
विधिवत कीन्हें कृत्य देह पति संग जराई॥
पृथु पत्नी सँग परम पद, विष्णु भक्तिईतें लह्यो।
यों समासतें पृथु चरित, विदुर! यथामति हौ कह्यो॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें पृथुवैकुण्ठगमन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण-अष्टमदिवस विश्राम]

अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

बोले मुनि मैत्रेय—प्रचेता जनमे जस दश ।
कहुँ सुनो, पृथु तनय भये बिजिताश्व पुण्य यश ॥
हविर्धान सुतभये बर्हिषद् तिनके आत्मज ।
शतद्रुति सँग करि व्याह, धरी आज्ञा सिर पद्मज ॥

शील, रूप, गुण, बय बिनय, एक सरिस सबके भये ।
ताते सबई प्रचेता, एक नामके ह्वै गये ॥

सब सुन्दर सब सुघर सरिस सद्‌गुनहिं सबनिके ।
भये प्रचेता नाम एकसे सबके तिनिके ॥
पिता कहे तब एक संग सबई मिलि आवें ।
जाओ जावें संग संग सबई मिलि खावें ॥

एक प्राण दश देहमें, संचारन सँग सँग करत ।
मानों मन दश रूप धरि, करत काज जगमहँ फिरत ॥

पिता कह्यो हे पुत्र ! तपस्या हित सब जाओ ।
तप करि संचय शक्ति करो फिरि प्रजा बढ़ाओ ॥
आयसु पितु सिर धारि चले सब मिलि जुलि भाई ।
मारगमहँ मनहरन पर्‌यो संगीत सुनाई ॥

सुनि बिस्मित सबई भये, इत उत सब निरखन लगे ।
शिव सम्मुख गण सहित लखि, त्रिविधि सबनिके भय भगे ॥

देखे सम्मुख शम्भु दौरि पकरे सब हर पग।
अति आनंदित भये लख्यो निष्कंटक निजमग॥
विनय सहित सब कहैं कृतारथ भये दरस करि।
दुष्कृत सबरे नसे नाथ निरखे नयननि भरि॥

नीलकंठ शंकर कहैं, तुम सब सुकृत स्वरूप हो।
राजकुमर ऋषि रूप हो, भक्ति भवनके भूप हो॥

रुद्र गीत हौं कहूँ जपो निश्चल है ताकूँ।
होहि सिद्धि अति शीघ्र, जपोगे जो तुम जाकूँ॥
प्रजापतिनिकूँ पूर्वकालमहँ जिह विधि दीन्हों।
पाइ तिननि अति हरषि सृजन परजाको कीन्हों॥

यों कहि योगाधीश हर, रुद्रगीत सबकूँ दयो।
पाइ शम्भु उपदेश अति, मन प्रसन्न सबको भयो॥

सुनिकें बोले बिदुर—तनिक गुरुवर! सुनिलीजे।
रुद्रगीत है कौन मोहि प्रभु शिक्षा दीजे॥
बोले मुनि मैत्रेय—प्रचेता दशहू मिलि जब।
करि शिव दरशन धन्य भये पग पकरि कहैं सब॥

सरवेश्वर दरशन भयो, भगवन्! अब भवभय भगे।
देहिं मन्त्र सुनि सतीपति, रुद्रगीत कहिवे लगे॥

रुद्र गीत

आपुही सर्वरूप घनश्याम।
करें पुनि पुनि प्रभुपाद प्रनाम॥

तुम्हारी जय होवै भगवान, करैं हम सबको प्रभु कल्यान।
कियो जग व्यास तेजके सहित; आप हैं क्षय वृद्धीतें रहित॥
नाम है वासुदेव अभिराम, प्रनतपालक प्रभुपाद प्रनाम॥१॥

भूत, चित, इन्द्रियगनके ईश, शान्त कूटस्थ स्वयं जगदीश ।
लेत अवतार प्रेमके हेतु, नाम तव भवसागरके सेतु ॥
पितामहके पितु शोभाधाम, जगत्पति तव पदपद्म प्रनाम ॥२॥

सूक्ष्म इस्थूल अनंत महान, आपही संकरसन भगवान ।
आपु प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, सच्चिदानंद शुद्ध अरु बुद्ध ॥
तुम्हारो तेजरूप है नाम, करें पदपद्मनि माँहि प्रनाम ॥३॥

आपुही स्वरग मोक्षके द्वार, आपु भवउदधि तरनि पतवार ।
आपु रवि अनिल अनल शशिरूप, आपुही जलजगविषयनिभूप ।
आपु अद्वैत जगत निश्राम, करें पुनि पुनि पद पद्म प्रनाम ॥४॥

कृपा करिवेकी तुमरी टेव, देहिं दरशन देवनिके देव ।
चतुरभुज सुन्दर सुघर सरूप, चरन, कर, नयन, कपोल अनूप ॥
रूप लखि लाजैं कोटिनि काम, अरुनपद पदमनि माँहि प्रनाम ॥५॥

कमलमुख मद मंद मुसकान, कनक कुंडल युत सुन्दर कान ।
भ्रमर अवली सम कुंचितकेश, पीतपट गहिरे प्रियवर वेश ॥
दिखावेंसुखकर रूप ललाम, देव पद पदमनिमाँ हिप्रनाम ॥६॥

करें जे नित प्रति तुमरो ध्यान, न तिनकूँ रहै तनिक अभिमान ।
प्रेम पीयूष करें नित पान, सुनहिं यश करहिं गुननिको गान ॥
भक्त जो हैं अनन्य निष्काम, करे ते नित पदपद्म प्रनाम ॥७॥

दयासागर निरमल अघहीन, शुद्धसुचिसरलसहज अतिदीन ।
हृदय जिनि जल पावन जिमि गंग, होहि निततिनिभक्तनिकोसंग ।
लेहिं तिनिसँगमिलि तुमरे नाम, करें सबमिलिपदपद्मप्रनाम ॥८॥

करेंसाधकतवचरननिमनन, न तिनि मनकरहिंविषय वनभ्रमन ।
रहैंनहिं तिनिके अरुदुख ताप, जगतमहँ दीखे आपुहिआप ।
रमि रहे जो जगमाहीं राम, गंगकारन पदपद्म प्रनाम ॥९॥

सकल जगही तुमरी काया, सृष्टिके पूर्व सुप्त माया।
रचैं जग ज्यों जालो मकरी, प्रकृतितें विकृति होहिं सवरी ॥
रूप तुमरे सव तुमरे नाम, अंश अंशीकूँ करै प्रनाम ॥१०॥

बनाओ अज है जगको जाल, करौ संहार फेरि वनिकाल।
भीत हम मरन शील प्रानी, अभय करि देहिं देव दानी ॥
प्रनतपालकप्रभुपालकश्याम, करें पुनिपुनि पदपदुम प्रनाम ॥११॥

दिखावें देव दौरि दाया, प्रवल प्रभु तुमरी यह माया।
शमु हरिहर तुमही स्वामी, अखिलपति अज अन्तरयामी।
तुम्हारे हैं हरि अगनित नाम, परावर! तव पदपदुम प्रनाम ॥१२॥

दो०—रुद्रगीत जो जन जपैं, होवैं तिनि अघनाश।
दरशन देकैं दयानिधि, करें सतत हियवास ॥

करिकैं हर उपदेश भये अन्तरहित तबई।
इत उत बिस्मित लखें जगे सपने से सबई ॥
सबने शिवकूँ करी दंडवत् मनई मनमहँ।
रुद्रगीतकूँ जपत चले आगे सब वनमहँ ॥
करत सहस दश वरष जप, जलमहँ सव ठाढ़े रहे।
जप तप रूपी अनलमहँ, कल्मप सवके सव दहे ॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें प्रचेता चरित नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

दो०—गये प्रचेता तप करन, इत नारद मुनिराज।
सोचें इनके पितु तरें, तजि सकाम सब काज॥

विदुर ! निरखि प्राचीनबर्हिकूँ फँस्यो करमभहँ।
करन ज्ञान उपदेश गये नारद भूपति जहँ॥
बोले—राजन् ! काम्य कर्म करि कहा विचार्यो।
क्यौं न ज्ञान वैराग्य खड्गतें मोह बिदार्यो॥
नृप बोले मुनि ! मूढ़ हौ, मुक्ति मार्ग जानूँ न कछु।
यज्ञ, याग, बलिदान पशु, स्वर्ग छाँड़ि मानूँ न कछु॥

मुनि बोले—'सुनु भूप ! पुरञ्जन नृप इक भारी।
पाऊँ पावन पुरी चल्यो मनमाहिं विचारी॥
चौरासी लख पुरों लखीं मन एक न आई।
हिमगिरि दच्छिन ओर लखी शुभ पुरी सुहाई॥
सजी-बजी नववधू सम, उपवन सर सौन्दर्ययुत।
निरखि नयन विकसित भये, भयो दरस करि चपलचित॥

तामें निरखी एक नयन अभिरामा नारी।
नूतन वययुत परम सुन्दरी अति सुकुमारी॥
सरसिज सम बर नयन बदन सुन्दर मधुमय अति।
अलकावलि अति कुटिल राजहंसनि सम शुभगति॥
नयन, नासिका, दन्त, मुख, भ्रुकुटि एकतें एक बर।
हिय श्रोणी उभरे पृथुल, कटि भीनो चितवन सुघर॥

प्रणयकटाक्ष सुवाण भृकुटि कोदंड चढ़ायौ।
मारि किराितिनि सरिस पुरंजन पङ्क गिरायौ॥
लड़खड़ात घबरात विनययुत बोल्यो बानी।
को तुम का की लली बनी कस पुरकी रानी॥

सकुच त्यागि मुखकमलकूँ, मेरी ओर घुमाइकें।
अपनाओ अब तुरत तुम, सेवक मोहिं बनाइकें॥

कहे पुरंजनि—प्रभो! नाम अरु गोत्र नजानूँ।
किन्तु तुम्हे हृदयेश प्रानधन सरवसु मानूँ॥
आओ हिलिमिलि रहैं नयो एक जगत बनावें।
आपसमें ही लखें और सब जगत भुलावें॥

तन-तनमें मन-मन मिलहिं, प्रान-प्रानतें एककरि।
हृदय सौंपि तव अंकमहँ, सोऊँ सुखतें शीशधरि॥

को अबला अस पाहि तुमहिं नहिं धीर गँमावै।
को तव हियलगि नहीं मनोवाछित फल पावै॥
मधुर मंद मुसकानमयी चितवन हिय लागै।
मिटें त्रिविधि संताप प्रबल रतिपति भय भागै॥

आओ, अब सब दुख दुरित, दोउनिकेई मिटि गये।
फँसे प्रेमके फन्द यों, पति पत्नी दोऊ भये॥

फँस्यो प्रेमके फन्द अन्ध सम भयो पुरञ्जन।
निरखि नारि सब करै भुलाये भवभयभंजन॥
पीवे वह तो पान करै खावे तो खावै।
रोवे वह तो रुदन करै गावे तो गावै॥

नारी धनकी, धर्मकी, बनी स्वामिनी गेहकी।
करे कितव अनुकरन यों, जैसे छाया देहकी॥

तनकी कोमल दिखे भीलिनी भोरी भारी।
किन्तु चित्तकी कुटिल बनी ज्यों लट घुँघरारी ॥
रूप पास लै हाथ पशुनिकूँ तुरत फँसावे।
निज बस करिकें बिबिध भाँतिके खेल खिलावे ॥
पूँछ हिलावत फिरत ज्यों, स्वान स्वामिके सगमें।
त्यों मदमातो फिरै नर, फँस्यो नारिके अगमें ॥

सो०—फँसे प्रेमके जाल, दोऊ प्यासे से रहें।
जात न दीखत काल, उमय अघायँ न मुख निरखि ॥

छप्पय—यद्यपि जाया सग त्यागिबो अति दुखकारी।
तोऊ रथ चढ़ि चल्यो पुरंजन बन धनुधारी ॥
मृगया लोभी भयो गयो बर बहु मृग मारे।
सूकर, स्याही, सिंह, शशक, शावक संहारे ॥
मनमाने मारे मृगा, मृगया मतवारो भयो।
भूख प्यासतें थकित ह्वै, लौटि नगर निज नृप गयो ॥

न्हाय खाय विश्राम कर्यो दारा सुधि आई।
काम बानतें व्यथित चल्यो नहिं दई दिखाई ॥
अन्तः पुरकी नारि निरखि पूछै पछितावै।
स्वामिनि तुम्हरी कहाँ महलमें नाहिं दिखावै ॥
रमनी बोलीं भूपबर ! आज स्वामिनी रिस भरीं।
असन बसन भूषन तजे, खटपाटी लैकें परीं ॥

सुनत विकल अति भयो गयो महिषी जहँ सोवे।
अस्त व्यस्त सी परी पुरंजन पग परि रोवे ॥
अपराधी हौं सदा उचित शिक्षा अब दीजे।
देहु दासकूँ दंड क्षमा स्वामिनि अब कीजे ॥
तिलकहीन अति म्लान मुख, मुरझायो अरबिन्द सम।
राग रहित सुन्दर अधर, फटत हृदय लखि दशा मम ॥

अब हौं समुझ्यो प्रिये ! पंचशर अवसर पायौ।
जानि अकेली तुम्हें दुष्टने अधिक सतायौ ॥
पति अनुनय अस सुनत मानिनी मृदु मुसकाई।
प्रनय कोप ततकाल प्रियाको गयो विलाई ॥

पति पत्नीके प्रेमकूँ, प्रनय कोप उज्वल करत।
वह मुँह फेरे तुनुकके, यह पुनि पुनि पगमहँ परत ॥

दृढ़ आलिंगन करत पुरंजन अति हरषावत।
तजि निज परको ग्यान राति दिन व्यर्थ गमावत ॥
बाहु पाशमहँ कस्यो अज्ञ सो भयो विचारो।
सूझत नहिं कब दिवस भयो कब भयो अँध्यारो ॥

फँस्यो पुरंजन मोहमहँ, सरबसु समुझी कामिनी।
गई युवा लौटी न वय, जैसे बीती यामिनी ॥

ग्यारह सौ सुत भये शूरता बलमहँ भारी।
दश ऊपर सौ भईं सुता अति ही सुकुमारी ॥
पुत्रनिकें हू पुत्र भये चित चहुँ दिशि भटक्यो।
पुत्र, पौत्र, गृह, कोश, दास, दासिनिमहँ अटक्यो ॥

ममतामहँ मद मत्त ह्वै, अंध कूपमहँ धँसि गयो।
विषय भोग जग जालके, फंदामहँ खल फँसि गयो ॥

जग परिवर्तनशील एक सो रहे न कोई।
जनम मृत्यु सुख दुःख धूप छाया नित होई ॥
आवै उन्नति संग संग अवनतिकूँ लैके।
यौवनकूँ लै जाय जरा झाँसौ सो दैके ॥

चन्डवेग गन्धर्वपति, पुरी पुरञ्जनकी चढ्यो।
वीर तीन सौ साठ सँग, विजय करन आगे बढ्यो ॥

गंधर्बी सँग साठ तीनसौ कारी गोरी।
करी चढ़ाई चण्डवेग, सँग सेना थोरी॥
पाँच फननिको स्याँप सबनितें लड़िबे लाग्यो।
किन्तु कहाँ तक लड़ै बली सब साहस त्यागो॥
घबरायो अति पुरंजन, बशीभूत नारी भयो।
लूटी नगरी सबनि मिलि, अति उदास नृप ह्वै गयो॥

भय भाई प्रज्वार काल कन्या सँग आयौ।
लखी पुरी अति छीन आइ अधिकार जमायौ॥
भूपति पूछे—प्रभो! काल कन्या को नारी।
बोले नारद—नृपति, कुरूपा फिरे कुमारी॥
पति चाहै जगमहँ फिरै, कौन कुरूपाकूँ बरै।
निरखि मोइ संकेत कछु, भौं चलाइ सैननि करै॥

ब्याह करन संकेत समुझि बोल्यो सुनि चंडी।
ब्याह न हौं अब करूँ भागि ह्याँतें मुस्टंडी॥
भई कुपित अति शाप दयो थिर रहौ न तुम मुनि।
हौं बोल्यो—भय बरो गई ताको बैभव सुनि॥
भय भाई प्रज्वार सँग, फिरै लोकमहँ बहिन बनि।
पुरी पुरंजनकी गई, ताकी नृप अब कथा सुनि॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें पुरञ्जन पुरञ्जनी चरित नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त

[पाक्षिक परायण-चतुर्थ विश्राम]

अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः

[१६]

संग लियौ प्रज्वार पुरंजन पुरमें आई।
भोगे पुरके भोग अराजकता फैलाई॥
भयो पुरञ्जन कृपन नहीं मारग शुभ सूझै।
पाँच फननिको स्याँप कहाँ तक इकलो जूझै॥

प्रवल वीर प्रज्वार ने, आगि लगाई जर्यो पुर।
तोरि फोरि विध्वस करि, कर्यो नाश नृपको नगर॥

यवनराज भय आइ पुरञ्जन बाँध्यो तबई।
पकरि चले लै भृत्य भये संग परवश सबई॥
जात पुरञ्जन लख्यो सर्प करि स्यापु सिधार्यो।
सब सैनिक उद्दंड पुरञ्जन पुरकूँ जार्यो॥

यह वियोग दुस्सह प्रिये, नहीं जात मोपै सह्यो।
नारीकी चिन्ता करत, अन्त नारि भूपति भयो॥

नारीमहँ चितु फस्यो भयो नृप नरतें नारी।
नृप विदर्भके महल, भई कन्या सुकुमारी॥
भई सयानी पिता स्वयंवर साज सजाये।
रूप ख्याति सुनि देश-देशके भूपति आये॥

पाण्ड्य देशके छत्रपति, मलयध्वज कन्या वरी।
पति पायो प्रमुदित भई, पटरानी नृपने करी॥

सात पुत्र इक सुता जनी सब भये सयाने।
भये सबनिके ब्याह भोग भोगे मनमाने॥
मलयध्वज दै सुतनि राज गमने बनमाहीं।
वैदरभी सँग चली देह संग ज्यों परछाहीं॥
विषय भोग त्यागी नृपति, तप करि नित तनकूँ कसहिं।
कंद, मूल, फल, फूल, तृन, करि अहार बनमहँ बसहिं॥

पति सेवामहँ निरत रहै बैदरभी नितई।
एक दिना निरजीव देह पतिकी उत चितई॥
स्वामि शोकमहँ बिलखि काठ चुनि चिता बनाई।
मृतक देह धरि सती होनकूँ आग लगाई॥
पुरुष पुरातनको तबहि, दरशन रानीकूँ भयो।
रोवति निरखी नारि तिन, दिव्य ज्ञान ताकूँ दयो॥

अरे सखा! हौं मित्र तिहारो हंस पुरातन।
विषय भोग महँ फँस्यो भुलायो रूप सनातन॥
नहीं पुरञ्जन मित्र! नरानी राजा हो तुम।
मानसके हैं हंस एक ही दोऊ तुम हम॥
पुरवारी जा बुद्धिने, ठग्यो ज्ञान सब नसि गयो।
सुनत सखाकी सीख शुभ, आत्म ज्ञान ताकूँ भयो॥

राजा पूछें—प्रभो! ज्ञान अति गूढ सुनायो।
कौन पुरञ्जन हंस, कौन पुर, समझ न आयो॥
मुनि बोले—यह जीव पुरञ्जन धी है नारी।
सखा कर्ण हैं सबहिं वृत्ति सब सखी विचारी॥
देह पुरी हरि हंस हैं, प्रान पञ्च फन स्याप है।
नौ दरवाजे छिद्र नौ, जीव संग मन जात है॥

नाक कान अरु आँखि तथा मुख शिश्न गुदा ये ।
नौ दरवाजे बने, जीव हित पुरुष बनाये ॥
शब्द, रूप, रस, गंध, परस पाञ्चाल कहावत ।
भोगे विषयनि जीव नित्य निज रूप भुलावत ॥
रुदन करै जब जीव जिह, हंस रूप हरि आइकें ।
करुना करि निज ज्ञान दै, करैं शुद्ध समुझाइकें ॥

स्वप्न देह रथ बन्यो कही मृगतृष्णा मृगया ।
काल कह्यो गन्धर्व जरा है ताकी तनया ॥
मृत्यु यवन पति सरिस अतमहँ पुर संहारत ।
शीतज्वर अरु उष्ण यही प्रज्वार कहावत ॥
भ्रमत जीव प्रारब्ध बश, करहिं कृपा गुरुदेव जब ।
कृष्ण कथा गुन श्रवनमहँ, बढ़ै चित्त अनुराग तब ॥

साधु संगमहँ बैठि कृष्ण गुन सुनें सुनावें ।
सरस विमल हरि चरित सुनत जे नाहिं अघावें ॥
पान पात्र करि कान निरन्तर भरि भरि पीवें ।
श्रीमधुसूदन मधुर सुधारस पीकें जीवें ॥
कथा भवनमहँ भक्त मिलि, पीवें भागवती कथा ।
शोक मोह भय भूखकी, होहि न तिनि तनिकहु व्यथा ॥

करम परक हैं वेद मलिनमति पुरुष बतावें ।
भक्ति ज्ञान कछु नाहिं व्यर्थ सबकूँ बहकावें ॥
राजन् ! जब तक भक्ति योगमहँ चित न लगाओ ।
तब तक नहिं करि कर्म शान्ति सुख कबहूँ पाओ ॥
सबके आश्रय सर्वगत, जो शोभाके धाम हैं ।
आत्मरूप सबके सुहृद, अविनाशी घनश्याम हैं ॥

राजन् ! इन्द्रियजन्य विषयतें चित्त हटाओ।
मनकूँ करि एकाग्र कृष्ण चरननिमहँ लाओ॥
काल भेड़िया खाय मृत्यु पीछेतें मारै।
किंकर्तव्यबिमूढ़ बन्यो नर नाहिं बिचारै॥

नित चरचा जहँ विषयकी, बसी कामिनी चित्तमहँ।
तजि ताकूँ श्रीहरि भजो, मन न रहै गृह बित्तमहँ॥

मन ही कारन बन्ध मोक्षको समुझो भूपति।
असत् वस्तु सत् समुझि फँस्यो करि कर्म जीव अति॥
करमनिकूँ करि मुक्ति जगततें नहिं नृप पाओ।
तन मन हरि पद सौंपि, भजनमहँ चित्त लगाओ॥

सिरजें पालें जगतकूँ, काल पाइ पुनि लय करहिं!
शरणागतबत्सल सकल, भय-भयकूँ तें हरि हरहिं॥

श्रीनारदमुनि कथिक ज्ञानकूँ जोनर धारें।
ते न जनम पुनि लेहिं जाल जगके कूँ जारें॥
कह्यो पुरंजन गृही बुद्धिसंग फँस्यौ देहमहँ।
मैं मेरी महँ बँध्यो पुत्र, धन, धाम, गेह महँ॥

हरि हियमहँ जे धारिकें, पीवें प्रभुपय प्रेमतें।
पावें ते नर परमपद, कहैं सुने जे नेमतें॥

इति श्री भागवत चरितके द्वितीयाहमें पुरञ्जन मोक्ष नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ विंशतितमोऽध्यायः

(२०)

विदुर कहे—हे गुरो! पुरञ्जन कथा सुनाई।
किन्तु प्रचेता बातबीचमहँ बिभो! भुलाई॥
रुद्रगीत उपदेश पाइ तिनि का का कीन्हों।
कैसे तिनि ढिग आइ जगत्पति दरशन दीन्हों॥
मुनि बोले—सुनु बिदुर अब, कहूँ प्रचेतनिकी कथा।
रुद्रगीत जपि तप कर्यो, हरि दरशन पाये यथा॥

तपतें भये प्रसन्न प्रचेतनि ढिँग हरि आये।
दुरलभ दरशन दये दये बर चार सुहाये॥
सुमरें तुमकूँ रुद्रगीत जपि मोकूँ ध्यावें।
भ्रातृ प्रेम तिन बढ़ै मनोवाञ्छित फल पावें॥
होहिं जगतमहँ कीर्ति अति, पुत्र प्रजापति होहिं सम।
वार्क्षीकन्या संग सब, करो ब्याह मिलि बन्धु तुम॥

सो०—सुनि पुनि बोले विदुर, को वार्क्षी काकी सुता।
कथा एक अतिरुचिर, मुनि मैत्रेय कहे विहँसि॥

कण्डु भये इक परम तपस्वी मुनि विज्ञानी।
तपमहँ नितई निरत योगरत ज्ञानी ध्यानी॥
घोर तपस्या करत निरखि सुरपति घबरायो।
प्रम्लोचा सुरवधू भेजि तप विघ्न करायो॥
सोलह हू शृंगार करि, सजि बजि मुनि ढिँग आइकें।
यौवनतें इतराइकें, मुनि मन लियो चुराइकें॥

बरस सहस तक रही संग ऋषि समय न जान्यो।
चेत भयो तब दिवस एकई मुनिवर मान्यो॥
जब जान्यो वृत्तान्त क्रोध करि रॉड़ भगाई।
परम सुन्दरी छाँड़ि बालिका स्वरग सिधाई॥
वृक्षनि पाली मारिषा, वार्क्षी ताईतें भई।
करो ब्याह मिलि बन्धु सब, अब तो स्यानी ह्वै गई॥

भगवत आज्ञा पाइ चले सब वृक्ष जराये।
वृक्ष जरत लखि तुरत तहाँ चतुरानन आये॥
समुझाये बहु भाँति अरे क्यौं वृक्ष जराओ।
लेहु मारिषा बहू ब्याहि अपने घर जाओ॥
विधि आज्ञा मानी सबनि, वार्क्षी कन्या ब्याहिकें।
गृही धर्ममहँ रत भये, निज पितु पुरमहँ आइके॥

बेटा बहू निहारि नृपति नयननि जल छाये।
परे पैरपै पुत्र प्रेमतें पकरि उठाये॥
हृदय लाइ करि प्यार राज आसन बैठाये।
राज काज सब सौंपि तपोवन भूप सिधाये॥
करहिं करम प्रभु प्रीति हित, नित चित राखें श्याममहँ।
बन्ध बासनातें कही, मोक्ष करम निष्काममहँ॥

भोगे जगके भोग योग अब सब बिसरायो।
इत वार्क्षीने परम यशस्वी सुत इक जायो॥
शम्भु अवज्ञाकारी ब्रह्मसुत तब तनु त्यागौ।
भये मरिषा पुत्र शाप नन्दीश्वर लाग्यौ॥
चाक्षुष मन्वन्तर विषे, सृष्टि वृद्धि कारज कियो।
प्रजा, सृजनमहँ दक्ष अति, नाम दक्ष तातें भयो॥

सौंपि पुत्रकूँ राज प्रचेता तप हित बनकूँ ।
गये सिन्धुके तीर समाहित कीन्हों मनकूँ ॥
रोकि, प्रान, मन, बचन, दृष्टि थिर करी योगतें ।
तनु तप करि कृश कर्‌यो हटायो चित्त भोगतें ॥

सतसंगति वाञ्छा भई, नारद जी दरशन दियो ।
पुण्य प्रचेतनिके जगे, मुनि कृतार्थ सबकूँ कियो ॥

सबई पूछें—प्रभो ! सार उपदेश सुनाओ ।
मनकी काई सीख खटाई लाइ मिटाओ ॥
नारद बोले—सुनो, सफल वह जन्म करम मन ।
जातें सुमिरन होहि कृष्णको धन्य वही तन ॥

वेद पढ़्‌यो तप करि कहा ? काल बितायो योग करि ।
प्रेम विना सब व्यर्थ हैं, जो नहिं कीन्हीं भक्ति हरि ॥

है जग हरिको रूप उनहितें पैदा होवै ।
उनमे ई थिर रहै अंतमहँ उनमहँ सोवै ॥
सबमहँ सत है व्याप्त रूप चैतन्य कहावें ।
सुख स्वरूप भगवान् जीव आनँद तहँ पावें ॥

शरणागतवत्सल अमल, स्वतः तृप्त परिपूर्ण प्रभु ।
भक्तवछल अशरनशरन, अज अविनाशी अलख विभु ॥

विना शरन हरि गये शान्ति सुख जीव न पावै ।
चौरासीमहँ भ्रमै विविध योनिनिमहँ जावै ॥
तातें सब कछु त्यागि शरन श्रीहरिकी जाओ ।
करिकें उनको ध्यान परमपद तुम सब पाओ ॥

बोले मुनि मैत्रेय—सुनि, ज्ञान प्रचेतनिकूँ भयो ।
विदुर ! सुखद संवाद यह, सारभूत तुमतें कह्‌यो ॥

शुक मुनि बोले—भूप ! विशद संबाद सुनायौ ।
मुनि मैत्रेय महान् विदुरजीके प्रति गायौ ॥
जो नर जाकूँ पढ़हिं प्रेमतें सुनहिं सुनावें ।
ते निश्चय परमेश परम पावन पद पावें ॥

स्वायम्भुव—सुत ध्रुव पिता, भूप भये उत्तानपद ।
बरन्यो तिनके बंश अब, सुनो प्रियव्रत को विशद ॥

इति श्री भागवत-चरितके द्वितीयाहमें प्रचेता उपाख्यान नामक वीसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण—नवम दिवसविश्राम]



अथ—एकविंशतितमोऽध्यायः

[२१]

दो०—शुक बोले—मनु प्रथम सुत, प्रियव्रत जिनको नाम ।
परमभक्त ज्ञानी महा, गृही बने निष्काम ॥

छप्पय—कहे परीक्षित प्रभो ! परमज्ञानी नृप प्रियव्रत ।
करमबन्ध कस फँसे गृही बनि परम भागवत ॥
चरन शरन हरिलई जिननिते फँसे मोहकस ।
घरमहँ भक्ति न होहिं, भई शंका मो मन अस ॥
हँसि बोले शुक भूपवर ! सत्य बात तुमने कही ।
कहूँ कथा सुनु कृष्णकी, जस नृप हरिपद रति लही ॥

परमभागवत भये प्रियव्रत ज्ञानी ध्यानी ।
गुरु नारदकी सीख प्रेमते तिनने मानी ॥
लखि विरक्त सुत पिता राजको काज बतायो ।
किन्तु कुमरके नहीं गृहस्थाश्रम मन भायो ॥
इत मनु चिन्तामहँ परे, उत चतुरानन चित चढ़ी ।
यदि विरक्त प्रियव्रत बनै, तो होवै गड़बड़ बड़ी ॥

चढ़े हँसपै संग मरीच्यादिक मुनि धाये ।
सत्य लोकतैं उतरि तपादिक लोकनि आये ॥
विधिकूँ लखि सब अमर सुमन तिनपै बरसावें ।
स्वागतके हित सिद्ध, साध्य, ऋषि, मुनि मिलिआवें ॥
गावत गुन गन्धर्वगन, सुयश संग ऋषि मुनि सुनत ।
लखि विधि नारद कुमर मनु, उठे सबहिं संभ्रम सहित ॥

स्वागत श्रद्धा सहित सबनि करि पद सिरनाये।
विधिवत पूजा करी दिव्य आसन बैठाये॥
प्रेम सहित मुसकाय कहे ब्रह्मा—सुनु प्रियव्रत।
देहुँ सार उपदेश होहि जातैं जगको हित॥
जीव बँधे गुण कर्मतें, करैं कर्म ह्वैके अवश।
जनम मरन भय शोक दुख, सुख पावैं प्रारब्ध बश॥

बिषय भोग कछु नाहिं बन्धको कारन मन है।
इन्द्रिय मन आधीन यन्त्रके सम यह तन है॥
जाको मन आधीन ताहि बन काज कहा है।
इन्द्रिय बश जे भये तिनहिं बन हानि महा है॥
प्रभुपद पंकज कर्णिका, किलौ ताहि दृढ़मानिकें।
भोगो सुख अरि—काम हनि, प्रभु प्रसाद जिय जानि कें॥

आयसु बिधिकी मानि प्रियव्रत सिरतें धारी।
सोचें मनु अब सहज कामना पुरी हमारी॥
यों सबबिधि समुझाइ ब्रह्म निज लोक सिधारे।
इत प्रियव्रतने राज काज सब आइ सम्हारे॥
ब्याह कर्यो रानी मिली, पति प्राणा बर्हिष्मती।
परम सुशीला सुन्दरी, बिनयवती अति गुणवती॥

भये पुत्रदस बिश्वविदित धार्मिक ज्ञानी अति।
तिनमें त्यागी तीनि सात द्वीपनिके भूपति॥
उत्तम तामस पुत्र दूसरी रानी जाये।
तीसर रैवत भये सबनि पुनि मनुपद पाये॥
तनया इक ऊर्जस्वती, शुक्र संग ब्याही गई।
तासु गर्भतें गर्बिनी, सुता देव यानी भई॥

नृप सोचें शुचि सूर्य प्रदच्छिन मेरु करे नित।
होवै उतकूँ निशा दिवस होवै तबई इत॥
करूँ दिवसकूँ राति न होवै तम जग माहीं।
ज्योतिर्मय रथ चढ़े सूर्यके पाछे जाहीं॥

सात प्रदच्छिणतें भये, सात द्वीप अरु उदधि सब।
समुझाये विधि आइ जब, छोड़्यो नृप संकल्प तब॥

कौन करि सके करम प्रियव्रत सम नृप जगमहँ।
कीन्हे सात समुद्र चलत रथ नभके मगमहँ॥
सौंपि सुतनिकूँ राज मोह ममता सब त्यागी।
समुझे विष सम विषय बने नृपतें वैरागी॥

सप्त द्वीपकी वसुमती, तृन सम त्यागी पलकमहँ।
को तिनके सम ह्वै सकें, तजि ईश्वर या जगतमहँ॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाहमें प्रियव्रत चरितनामक इकीसवाँ अध्याय समाप्त



अथ द्वाविंशतिमोऽध्यायः

(२२)

राज पाठकूँ त्यागि चले राजा बनमाही ।
रानी वर्हिष्मती चली छायाकी नाई ॥
सुत आग्नीध्र महान् भये भूपति जम्बूपति ।
पाले पुत्र समान प्रजाकूँ नित प्रति नरपति ॥

सुत हित सुर सुन्दरि सदन, मन्दर गिरिकी गुहामहँ ।
तप करि पूजें प्रजापति, राज त्याग नृप रहहिं तहँ ॥

विधि नृप मनकी बात जानि बर बधू पठाई ।
पूर्व-चित्ति आदेश पाइ भूपति ढिँग आई ॥
व्रीड़ा क्रीड़ा सहित मधुर चितवन मुसकावत ।
यौवनके मद भरी रूप रस सो बरसावत ॥

भूप निहारी अपसरा, खोयो मन मोहित भये ।
रूपासवको पान करि, मद मातेसे ह्वै गये ॥

राजा बोले—सखे ! परसपर महँ अपनावें ।
दोऊ हियको भार हार पहिनें पहिनावें ॥
मिलि जुलि खेलें खेल प्राणको दाव लगावें ।
द्वै मन एक मिलाय अगते अंग सटावें ।

अब अपनाओ अधमकूँ, अनुचर अपनो मानिकें ।
प्रेम सुधारस प्यायकें, ज्याओ जड़मति जानिके ॥

कहि कहि मीठे बैंन बढ़ाई प्रेम सगाई।
विधिकी भेजी बधू भूप विधिवत अपनाई॥
नृपति भामिनी संग विषय सुख भोगे निशि-दिन।
रहि न सकैं पल एक अपसरा पूर्वचित्ति बिन॥

भये यशस्वी पुत्र नौ, भूप परम प्रमुदित भये।
ता प्रमदाके सगमहँ, सहस बरस दिन सम गये॥

नाभि और किंपुरुष, इलावृत, रम्यक, कुरु सुत।
केतुमाल, भद्राश्व, हिरण्मय, भये धर्मयुत॥
वर्षाधिप हरिवर्ष भये नौ परम यशस्वी।
नौ खंडनिके भूप मनस्वी अति तेजस्वी॥

पूर्वचित्ति तब छांडि सुत, तुरत गईं निज लोकमहँ।
राजा अति व्याकुल भये, ग्वा प्रमदाके शोकमहँ॥

काम्य करम करि नृपति पुण्य परलोक पधारे।
नौऊ वर्षाधीश भये अति प्रजहिं पियारे॥
मेरु-सुता नौ हतीं बिबाहीं तिनके सँगमहँ।
मेरुदेवि पति नाभि पाइ प्रमुदित अति मनमहँ॥

पुत्र हेतु मख नाभिने, रच्यो विष्णु दरशन दये।
सहसा प्रभु प्रकटित भये, सब सम्भ्रममहँ परि गये॥

विनता करिकैं विप्र यज्ञ उद्देश बतायो।
प्रभु समान सुत होय भूपको भाव जतायो॥
हरि हँसि बोले—अरे विप्र च्यौ जाल फँसाओ।
स्वामी सेवक करो पिताकूँ पुत्र बनाओ॥

अच्छा हौं सुत बनुङ्गो, निज सम कहँ खोजत फिरूँ।
मोकूँ बाँधे भक्त ये, मुक्त सबनिकूँ हौं करूँ॥

अन्तरहित हरि भये राजरानी हुलसानी।
गर्भवती पुनि भईं मेरुदेवी पटरानी॥
भये अवतरित ऋषभ त्यागको मग दरसावन।
सन्यासी मुनि बिमल दिगम्बर अतिशय पावन॥
नाभि निरखि नय बिनय युत, सुत जगपति जानत भये।
प्रजा सचिव सम्मति समुझि, राजतिलक दै बन गये॥

करिकें गुरुकुलवास राजको काज सम्हार्यो।
लई जयन्ती ब्याहि ससुरको मद सहार्यो॥
भये पुत्र सौ भरत ज्येष्ठ तिनमे नौ ज्ञानी।
भूप भये नौ रचीं जाइ निज निज रजधानी॥
इक्यासी हिंसा रहित, बिप्र वृत्तिमहँ रत रहे।
जप, तप, पूजा, पाठ, मख, करि समत्व सुख-दुख सहें॥

करें ऋषम शुभ करम हरषि लौकिक वैदिक सब।
पुत्र भये जब युवक दई सत शिक्षा नृप तब॥
इक दिन घूमत फिरत तृतिय सुत पुरमहँ आये।
ब्रह्मावर्त निहारि पितहिं सब बन्धु बुलाये॥
सम्बोधन करि सबनिकूँ, प्रेम सहित सबतें कहहिं।
सुख हरि सुमिरनमें सतत, बिषय भोगि नर दुख सहहिं॥

विषय भोगिकें कबहुँ कोउ नर सुख नहिं पावै।
ज्यौ नर जीवन रत्न काँच दै ब्यर्थ गमावै॥
सुख स्वरूप सरवेश सतत हिय माहिँ बिराजें।
कस्तूरीमृग यथा विषय वन खोजे भाजें।
बिषयी नर हैं बिषसरिस, मोक्ष मूल हैं सत जन।
चढ़ें रंग जस होहिं सँग, स्वेत वसन सम कह्यो मन॥

ऋषभ चरित अति गूढ़ मूढ़ नर मरम न जानें।
निरखि नग्न उन्मत्त खिड़ी पागल सब मानें॥
प्रकट्यो पारमहंस धर्म करि शिक्षा दीन्ही।
कर्यो दिगम्बर बेष वेद विधि पूरी कीन्हीं॥
बालक सम भोले बने, पृथिवीपै विचरत फिरहिँ।
मारैं पीटें दुष्ट जन, सुखदुखमहँ इक सम रहहिँ॥

कोई फेंके ढेल खेलते कोई मारें।
त्यागि देहिं मलमूत्र धूरि खल कोई डारें॥
कोई गारी देहिं दुष्ट ढोंगी जिह आयो।
ठग विद्याके हेतु धूर्तने बेष बनायो॥
स्वारथहित पागल बन्यो, सब समुझै स्यानो खरो।
सब मिलि जा अवधूतकी, लाठीतें पूजा करो॥

मारें पीटें मूर्ख होहि क्षत विक्षत तनु सब।
तातें त्याग्यो गमन रहें अजगर सम नृप अब॥
पानी पशुसम पियें लेटिके भिक्षा पावें।
त्यागि देहिं मलमूत्र अंग विष्ठा लिपटावें॥
करैं घृणित व्यापार जब, फटकै नहिं खल पास तब।
जनम कृतारथ करनकूँ, आईं तिनि ढिंग सिद्धि सब॥

खल जन निन्दें चाहिँ करें पंडित बहु वन्दन।
मलतें लिथिर्यो अंग चढ़ावें चाहे चन्दन॥
ज्ञानी माला सरप एकसम करिके जानें।
होवें जड़ चैतन्य नारि नर भेद न मानें॥
जो जग देखें ब्रह्ममय, उनको ज्ञानी नाम है।
तिनके पावन चरनमहँ, श्रद्धा सहित प्रनाम है॥

आईं सबई सिद्धि सिद्धने सब ठुकराईं।
करी विनय बहुभाँति नेकहू नहिं अपनाईं॥
मन अति दानव दुष्ट करै बिश्वास न कबहूँ।
इन्द्रियजित ह्वै जाय बचै बिषयनितैं तबहूँ॥

ब्रह्मा, विश्वामित्र, शिव, धोखो सबकूँ मन दयो।
कबहुँ न माने भूलमहँ, मेरो मन वशमें भयो।

मन मतंग उद्दंड दुष्टता करै सदाहीं।
सयम अंकुश सदा रखे अपने कर माहीं॥
हरे हरे प्रिय घास ऊख मीठी लखि लखिकें।
दौरावे निज सूँड़ि होहि प्रमुदित अति भखिकें॥

गज आरोही युक्तितैं, पेनों अंकुश धारिकें।
प्रबल प्रलोभनतें विरत, करै चित्त गज मारिकें॥

मलिन बसनके सरिस लखें ज्ञानी जा तनकूँ।
सुख-दुखमहँ सम रहे रखहिं संयत निज मनकूँ॥
ऋषभ त्यागि अभिमान लिङ्ग अरु थूल देहको।
त्याग्यो निजपन सबहिं पुत्र धन धाम गेहको॥

योग बासनातें बची, तनिक अह आभास मति।
ताहीतें घूमत फिरत, चलत स्वास प्रस्वास गति॥

कोङ्क वेङ्क अरु कुटक फिरत कर्नाटक ज्ञानी।
कुटकाचलके निकट गये मुनिवर निर्मानी॥
पवन वेणुसघर्ष लगी दावानल बनमहँ।
बैठे हैं निश्चिन्त नहीं शंका कछु मनमहँ॥

तनु अनित्यता प्रकटहित, उपल खड मुखमहँ धर्यो।
भये लीन निजरूपमहँ दावानलमहँ तनु जर्यो॥

प्रियव्रत नृपको विमल वंश अति ही मन भावन।
जामें प्रकटित भये ऋषभ हरि अग जग पावन॥
कीयो पारमहस्य धरम प्रचलित जगमाहीं।
जाकूँ योगी सिद्ध विचारत मनतें नाहीं॥
लोक, वेद, सुर, धेनु, द्विज, के स्वामी श्रीऋषभ हैं।
करहिँ आचरन घृनित अति, किन्तु मुनिनिमहँ वृषभ हैं॥

ऋषभ पवित्र चरित्र कह्यो मंगलमय सुखमय।
सुनत होत प्रभुचरन प्रेम छुटि जावै भव-भय॥
अवतारनिकी कथा गंगसम शीतल करनी।
पाप, ताप, संताप, क्लेश, दुख, चिन्ता हरनी॥
जिनि करुनामय ऋषभने धरम करे निष्काम हैं।
तिनिके पद पाथोजमहँ, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं॥

श्री भागवतचरितके द्वितीयाहमें ऋषभ चरित नामक वाईसवाँ अध्याय

इति द्वितीयाह



सुनि दहाड हरि मृगी भई भयतेँ अति चिन्तित।
मारी एक छलाँग नदीकूँ पार होन हित॥
भरे पेट श्रम भयो नदीमहँ गरभ गिरायो।
पार जाइ गिरि मरी भरत मृगशिशु अपनायो॥

करुनावश सँग लै गये, सुतसमान पालन कर्यो।
मोहमाँहि तन्मय भये, हाथ हवन करतहिं जर्यो॥

हरिमहँ जो मन लग्यो हरिनमहँ फंस्यो भाग्यवश।
करै हरिन जस काज करें भूपतिहू तसतस॥
चाटें चूमें प्यार करे तनकूँ खुजिलावें।
पुचकारें तृन लाइ स्वय निज करनि खवावें॥

चलत फिरत सोवत उठत, छाया सम राखें निकट।
तजि सरबसु मृगमोहमहँ फँसे मोह महिमा बिकट॥

औरस आत्मज तनुज धारमिक त्यागे निजसुत।
जो सबई सुकुमार सुघर सुन्दर सुशीलयुत॥
तृन सम त्याग्यो राज सुन्दरी महिषी त्यागीं।
रूपवती गुणवती मृतकसम ते सब लागीं॥

ठगे भाग्यने भरतजी, चढ़ि ऊँचे नीचे गिरे।
मूर्तिमान दुर्भाग्य मृग, के चक्करमहँ नृप परे॥

मृगशावक इकदिवस दूरि चरिबेकूँ धायो।
सब दिन बीत्यो नहीं लौटि आश्रममहँ आयो॥
विकल भये अति भरत रुदनकरि इतउत धावें।
लै लै वाको नाम करुन स्वर ताहि बुलावें॥

हाय ! अभागो हौं लुट्यो, आजु कहाँ मम सुत गयो।
को करि क्रीड़ा देहि सुख, जग वा बिनु सूनों भयो॥

कैसे तजिके गयो कर्‌यो काहूने टौना।
अतिसूधो अतिसरल सुन्दर वो मेरो छौना॥
करिकें क्रीड़ा मधुर मोइ मृगबाल रिझावत।
चकित चित्ततें आइ अग मेरे लिपटावत॥
हाय! कबहुँ पुनि आइकें, दूब यहाँ वो चरेगो।
का फिरि इत उत बालवत, मम सुत क्रीड़ा करेगो॥

इहि विधि व्याकुल भरत फिरे वन मारे मारे।
मिल्यो न मृग बहु खोजि विचारे भये दुखारे॥
इतनेमें हीं अंतकाल नृपको नियरायो।
भूप मृत्युके समय हरिन फिरि आश्रम आयो॥
दशा देखि नृप सहमिके, सुत समान रोवत सतत।
मृग पटकै सिर दुखित चित, भरत ध्यान वाको करत॥

दुस्सह काल कराल प्रवल बलशाली आयो।
देह त्यागिकें भरत फेरि पशुको तनु पायो॥
जाको चिन्तन करत जीव त्यागे या तनकूँ।
अपर जनममहँ योनि मिलै सोई जीवनकूँ॥
योगभ्रष्ट भूपति भये, मृगासक्त मन है गयो।
तातें मृगकी योनिमहँ, भरत जनम फिरितें भयो॥

व्यरथ भयो नहिं भजन तनिकहू भूले नाहीं।
पूर्वजन्मको वृत्त भरत मृग तनुके माहीं॥
यादि कर्‌यो पछिताइ मातु हरिनी हू त्यागी।
कालिंजर गिरि त्यागि भये फिरितें बैरागी॥
संग करहिं नहिं भूलि अब, नहिं सजीव तृनकूँ चरहिं।
सूखे पत्ता खाइकें, ऋषि मुनि सम व्रत तप करहिं॥

यों भोगे प्रारब्ध कर्म मृगदेह पाइकें।
तज्यो हरिन तनु तीर्थ गडकी नीर न्हाइके ॥
नारायण हरि कृष्ण यज्ञपति नाम उचारे।
अंत समय लै नाम पाप उपघातक जारे ॥

पछिताये मृगमोह करि, कबहुँ न फिरि ऐसो कर्‌यो।
यह भवजलनिधि अतमहँ, गोखुर सम सुखतें तर्‌यो ॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें भरतचरित नामक प्रथम अध्याय।



अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

दोहा—नारायनको नाम लै, भरत तजी मृगदेह।
द्विज तनु पायो अन्तमहँ, तज्यो गेह जगनेह ॥

छप्पय—मृगतेँ ब्राह्मण वंशमाहिं प्रकटे मुनि ज्ञानी।
चरम देह है जिही भरत निश्चय करि जानी ॥
पिता पढ़ावैं वेद मन्त्र देवे जपिवेकूँ।
अट संट कछु बके जतावैं जड़ अपनेकूँ ॥
हती बहिन इक जुड़ेली, दूसरि माँके नौ तनय।
कर्मकाडमें फँसे ते, भरत लखे जग ब्रह्ममय ॥

पिता करें नित सोच भयो मम सुत लघु जडमति।
मन्त्र होहिं नहिं यादि करूँ श्रम हौं अति नित प्रति ॥
कस होवे निरबाह कवन करि काज खाइगो।
को जाके सँग विप्र सुता अपनी विबाहिगो ॥
करत मनोरथ विप्र अस, काल पाशमहँ फँसि गये।
सती पिता सँग माँ भई, नहिं रोये जड़ हँसि गये ॥

भये भरत निश्चिन्त फिरें मनमाने इत उत।
विस्मय सोच न करें रहे नितई प्रसन्न चित।
भीतर ज्ञान गँभीर भेद जगकूँ न बतावें।
पागल जड़मति बुद्धिहीन सम सबहिं जतावे ॥
जो लै जावै पकरिकें, चले जाहिं मन्त्र कछु करहिं।
चासो कूसो जो मिलै, उदर ताहि भखिकें भरहिं ॥

बोझ ढुवावे पकरि ढोइ ताके घर डारें।
फरवावे जो काष्ठ ताहि हँसिके वे फारें॥
भाभी जड़मति जानि स्वादयुत अन्न न देवें।
जर्यो भुन्यो जो देहिं ताहि अम्मृत करि सेवें॥

हृष्ट पुष्ट तनु साँढ़ सम, धूप शीत सब कछु सहहिं।
रहे सदा निरद्वन्द्व बनि, ससारी सिरीं कहहिं॥

भाइनि देख्यो कामकाज सबई करवावें।
तो फिरि हम बैठाइ व्यरथ क्यौ जाहि खवावें॥
ऐसौ चाकर कहाँ मिलै जो काम करे नित।
किन्तु न माँगे दाम न जावै कबहूँ इत उत॥

ऐसौ मनमहँ सोचिके, दयो फावड़ो हाथमें।
क्यारी रचना करनहित, खेत चले लै साथमें॥

लयो फावड़ो हाथ खेतकूँ लागे खोदन।
गड्ढा भारी खन्यो लगे सब भाई रोकन॥
कहे परस्पर—बुद्धिहीन क्यारी न बनावै।
देहु मच बैठाइ बैठिकें खेत रखावै॥

जैसो भाई कहहिं वे, तैसोंई कारज करत।
नये बने अब खेतके, रखवारे श्रीजड़भरत॥

पुत्र हीन नृप-शूद्र मनौती मनमे मानी।
मानुषकी बलि देहुँ पुत्र यदि देहिं भवानी॥
भयो पुत्र इक पुरुष पकरि बलि हित सब लाये।
निशामाँहि भगि गयो दास अति ही घबराये॥

बलिपशुकूँ खोजत फिरैं, सोचे मूरख गयो कहँ।
आये खोजत खेतपै, बैठे द्विजवर भरत जहँ॥

तिनि बाँधे अवधूत भरत समदरशी ज्ञानी।
भये न विचलित तनिक मृत्यु सम्मुख हू जानी॥
न्हाइ पहिनि नव वस्त्र उड़ाई अधिक मिठाई।
खाइ भये निश्चिन्त फेरि बलिबारी आई॥

दस्यु पुरोहित पूजि असि, द्विजवरके सम्मुख धरी।
नहीं सोच बिस्मय कछू, ज्ञानी लखि काली डरी॥

निरखि घोर अन्याय भई देवी बिकराली।
मूर्ति फोरि पट प्रकट भई सहसा चट काली॥
तड़तड़ाइ करि क्रोध ओठ दाँतनितें काटे।
खड्ग लिये कर फिरै दस्यु सिर धड़तें काटे॥

उष्ण रक्त मद पान करि, अट्टहासते नभ भर्यो।
कन्दुक सम सिर फेंकिकें, जोगिनि सँग कौतुक कर्यो॥

दुखी होहिं कस सदा रहैं जे हरि पद सेवी।
काटि सबनिको शीश भई अन्तरहित देवी॥
उदासीन ह्वै चले महमुनि अतिशय ज्ञानी।
हरष विषाद न हृदय दैवकी इच्छा जानी॥

जगमे जो जस करेगो, सो तैसोई भरेगो।
डूबेगो हरि विमुख ह्वै, प्रभुपदतें भव तरेगो॥

इक दिन आये भरत फिरत तट इक्षुमतीके।
लखे चौधरी तहाँ सिन्धुसौवीरपतीके॥
कपिलदेव ढिँग जायँ रहूगण भूप विचारे।
शिविका धीवर नहीं खोजि सेवक सब हारे॥

मोटे ताजे जड़ भरत, कूँ लखि सब प्रमुदित भये।
पकरि पालकीमें दिये, सब कहार सँग लगि गये॥

पदतल दबै न जीव दौरि इततें उत आवैं।
डगमग शिविका होहि भूप बैठे हिलि जावैं ॥
व्याप्यो तनमहँ कोप कहे—मैं मारूँ तोकूँ।
मैं हूँ सबका ईश मूर्ख मानै नहिं मोकूँ ॥
स्वामीके अपमानको, तोकूँ मजा चखाउँगो।
डडनितें पिटवाउँगो, जीवत खाल खिंचाउँगो ॥
हँसिकें बोले भरत—कौन मोटो को पतरो।
को है स्वामी भूप कौन है सेवक तुम्हरो ॥
राजा है तू आज काल्हि भिक्षुक बनि जावै।
इतनेपै ऊ मोइ नृपति उनमत्त बतावै ॥
इच्छा, भय, तृष्णा, जरा, निद्रा तन्द्रा जागनो।
आत्मरूप मोमें नहीं, पतरो अरु मोटोपनो ॥
आत्म-ज्ञानमहँ मग्न मोइ नहिं भेद लखावै।
तू मोकूँ हे नृपति ! मत्त उन्मत्त बतावै ॥
ज्ञानी मिरीं उभय भाँति तव बश नहिं आऊँ।
देह मोइ नहिं नेक कर्म प्रारब्ध बिनाऊँ ॥
अस कहि शिबिका कन्ध धरि, चले भूप तम भगि गयो।
शिबिकातें कूद्यो तुरत, जड़ पैरनिमहँ परि गयो ॥
सोरठा—रह्यो न संशय कोह, पर्‌यो महीपति महीपै।
भग्यो मान, मद, मोह, मनमहँ जिज्ञासा जगी ॥
छप्पय—पूछै है आधीन—कौन तुम रहहु कहाँ प्रभु।
कस अस वेष बनाइ गुप्त वन बन बिचरो विभु ॥
योगेश्वर वा सिद्ध स्वयं नर बनि हरि आये।
करि करुना करुनेश, सुधा सम वचन सुनाये ॥
या असार संसारमें, सार बस्तु जानन निमित।
कपिलाश्रमकूँ जात हौ, ब्रह्मभूत गुरु मिले इत ॥

करुनासागर कपिल आप हो मेरे स्वामी।
हो अनादि अखिलेश अलख अज अन्तरयामी॥
जड़को वेष बनाइ फिरौ सब जग अवलोकत।
निज ऐश्वर्य छिपाय अवनिपै निरमय विचरत॥
आतमाराम सुबोधमय, योगेश्वर निष्काम हो।
निरगुन मायातें परे, षट संपतिके धाम हो॥

दो०—अब मेरी शका सुनहिँ, कही बात जो नाथ।
करो पार भव जलधितें, गह्यो कृपा करि हाथ॥

छप्पय—कह्यो 'मोइ श्रम नाहिं' बात नहिं बैठी मनमहँ।
भार ढोइ पथ चलो होहि श्रम सबके तनमहँ॥
स्वामी सेवक भाव आप व्योहार बतावें।
घड़ा मृत्तिका एक होहि पानी कस लावें॥
सुख, दुख, होवें पुरुषकूँ, देह करन मन बँधेतें।
जल चावल हैं पात्रमहँ, रँधै अग्निके लगेतें॥

दोहा—शका करि नृप लखहिँ मुनि, जैसे चंद चकोर।
भूप वचन सुनि मुनि हँसे, कीन्ही करुना कोर॥

छप्पय—कहै भरत सुनु भूप! भूत निर्मित जग जानो।
भेद भाव कछु नाहिं ज्ञानतें निश्चय मानो॥
शिवका कूँ है काष्ठ काटिकें ताहि बनावें।
रूपान्तर है जाय फेरि नहिं पेड़ बतावें॥
यह बिभिन्नता जगतमहँ, नाम रूपके भेदतें।
नहीं, सत्य तो बात यह, सभी एक हैं तत्त्वतें॥

स्वामी सेवक भाव कल्पना जिह सब मनकी ।
आत्मा तो अद्वैत उपाधी ये हैं तनकी ॥
राजा होवै रंक रक राजा बनि जावै ।
कल शिबिका जो चढ़्यो, आज सो ताहि उठावै ॥
जगको यह व्यौहार है, ज्ञानी जन मिथ्या कहैं ।
मूरख समुझें सत्य सब, तातें नित नित दुख सहे ॥

मूरख जड़मति पुरुष देहकूँ आत्मा मानें ।
क्षुधा तृषाते दुखित पुरुष होवै जिह जाने ॥
आत्मा तो निस्सग सर्व व्यापक अज अच्युत ।
सदा रहै निरलेप ब्रह्म है जाहि ब्रह्मवित ॥
जब तक गुणमय रहे मन, चौरासी चक्कर भ्रमै ।
विषयनितें मुख मोरि जब, निरगुन होवै तब थमै ॥

आँख, कान, त्वक, नाक जीभ ज्ञानेन्द्रिय जानो ।
हाथ, पैर, गुद्शिश्न वाक कर्मेन्द्रिय मानो ॥
अहंकारके सहित वृत्ति सब मनकी भाई ।
पञ्च कर्म तन्मात्र देह आधार कहाई ॥
अगणित मनकी वृत्ति हैं, तिनतें जग बन्धन भन्यो ।
मोहनाश जब है गयो, तब सब जग हरि ही बन्यो ॥

यह मन कपटी भूत जीवकूँ नाच नचावै ।
देवलोक लै जाय कबहुँ पृथिवीपै आवै ॥
भेद भाव कारवाइ बाँधिकें जगमें राखै ।
जो असत्य है वस्तु ताहि सत कहि नित भाखै ॥
गुरु हरि पद सेवा खडग, तातें रिपु मनकूँ हनों ।
तब सब दुखतें छूटिकें, निरवैरी जगमें बनों ॥

तप करि चाहै मोक्ष कालकूँ वो नर खोवै।
केवल करिके करम धरम सत् ज्ञान न होवै॥
षट सम्पत्ति विवेक ज्ञान सोपान कहावे।
विषयनितैं वैराग्य ज्ञानते मुक्ति बतावैं॥
होहि बसन वा रंगको, रँग्यो होहि जा रंगतें।
विषय संगते बन्ध है, मोक्ष होहि सत्संगतें॥

संतनिके ढिँग नित्य कथा होवै भगवतकी।
कृष्ण कथातें मिटै मलिनता नित नित चितकी॥
परनिन्दा अपवाद साधु जन करहिं न कबहूँ।
त्रिभुवन पावे विभव भजन छोड़ें नहिं तबहूँ॥
चाहे भवजलनिधि तरन, गहे सँत चरननि शरन।
जग बन्धनके हेतु हैं, अधर सुधा योषित नयन॥

वनिक रूप यह जीव चल्यो सुखधन अरजन हित।
प्रवृति मार्गमहँ फँस्यो लोभ अति बढ़्यो तासु चित॥
इत उत भटकत फिरै राजपथ कबहुँ न पावै।
सिंह व्याघ्रतें डरै गहन वन क्लेश उठावै॥
वर्षा खुजली बवडर, भूख प्यास मच्छर प्रबल।
देहिं क्लेश नहिं तहँ मिलै, सुन्दर भोजन मधुर जल॥

उठ्यो भभूरो तहाँ फँस्यो चक्करमहँ ताके।
भरीं धूरितें आँखि नचै सकेतहिं वाके॥
करे कर्ण कटु शब्द उलूकहु झींगुर वनमें।
यक्षनितें सतप्त डरै वनिया अति मनमें॥
छत्ता मधु मक्खीनिके, निरखि शहद भक्षन निमित।
कर डारत काटैं सबहिँ, पथिक होहि अति ही दुखित॥

दुरगम पथ यह जगत जीव बनिया सुख धनकूँ।
निज परिवार समूह संग लै निकस्यो बनकूँ॥
बनी बवंडर नारि राग-रज नेत्रनि डारे।
मृग तृष्णा है विषय भोग दुर्जन अरि मारें॥
परनारी हैं शहदकी-मक्खी मन जबई गयो।
तबई ताको सुख सुयश, नस्यो मृतक सम नर भयो॥

माया मोहित जीव जाहिँ जहँ तहँ दुख पावे।
लखि समीप धन धान विविध विधि ताहिँ सतावें॥
पुत्र मित्र परिवार, सगे सम्बन्धी आवें।
स्वारथ हित दर्शाय नेह सम्बन्ध लगावें॥
जबतक जगमहँ मोह है, तबतक तृष्णा बढ़ैगी।
भेड़ जहाँ जहँ जायगी, राजन् ! तहँ तहँ मुड़ैगी॥

तजि जग को जञ्जाल जगतपति महँ मन लाओ।
मैं हूँ सबते बड़ो नीच जन जाहि भुलाओ॥
यह मिथ्या ससार सत्य हैं जाके स्वामी।
वे हैं शाश्वत सत्य सर्वगत अन्तरयामी॥
मन विषयनितैं मोड़िकें, जग तैं नातो तोड़िकें।
हरि चरननि चित जोड़ि कें, राम भजो सब छोड़िकें॥

सुन्यो ज्ञान अतिगूढ कृतारथ भये रहूगन।
मन प्रसन्न ह्वैगयो- भयो पुलकित सबरो तन॥
बिधिवत पूजाकरी अरघ अश्रुनिते दीन्हों।
तब स्वेच्छातें गमन भरत मुनिवर ने कीन्हों॥
श्रद्धा, सयय सहित जे, भरत-चरितकूँ सुनिहैं।
ते फिरि या भवसिन्धु महँ, भूलि कबहुँ नहिँ परिहैं॥

इति श्रीभागवत चरितके द्वितीयाह में जड़ भरत चरित नामक द्वितीय अध्याय

(मासिक पारायण-दशम दिवस विश्राम)

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

भये भरत सुत सुमति देवताजित सुत तिनके।
तिनके देवद्युम्न भये परमेष्ठी जिनके॥
पुत्र प्रतीह महान भये ज्ञानी तेजस्वी।
अष्टम पीढ़ी माँहिं भूप गय भये यशस्वी॥
करमकान्डमें कुशल अति, सर्वमान्य सब शस्त्रवित।
गय समान को होहि नृप–धरम, ज्ञान, नय, विनय, युत॥

स्वय पधारे इन्द्र यज्ञमहँ देवनि साथा।
अबतक जगमहँ विदित राजऋषि गयकी गाथा॥
इतनो पीयो सोम भये उन्मत्त देवपति।
स्वय यज्ञनति प्रकट पाइँ हवि है प्रसन्न अति॥
जिन बश कीन्हे बिश्वपति, तिनकी समता को करें।
निरत रहे सत्संग महँ, संत चरणरज सिर धरें॥

रानी गयकी भई गयन्ती पतिकी प्यारी।
भये चित्ररथ आदि तीनि सुत आज्ञाकारी॥
तिनके सुत सम्राट पुत्र उनके मरीचजित।
बिन्दुमान तिन पुत्र मधू मधुके सुवीरव्रत॥
अन्तिम भूप भये बिरज, परम यशस्वी अति सदय।
देववंश में विष्णु जिमि, भये जगतमहँ कीर्तिमय॥

राजन् ! सात समुद्र सात हैं द्वीप अवनि पै।
प्रियव्रत सुत ई करें राज इन सब द्वीपनि पै॥
भौमस्वरग दिविस्वरग स्वरग पाताल कहावे।
तिनिमें करिकें पुण्य धरमप्रेमी जन जावें॥

पुण्यनिको फल स्वरग है, शास्त्र वेद ऋषि मुनि कहे।
पाप करे ते नरकमें, नर नाना विधि दुख सहे॥

इति श्रीभागवत चारितके तृतीयाहमें संक्षिप्त भूगोल नामक तीसरा अध्याय।

(पाक्षिक पारायण पञ्चमदिवस विश्राम)



अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

पाप करेतें हृदयमाहिँ अति तम भरिजावै।
अन्तः करन मलीन होहि नर बहु दुख पावै॥
सूक्ष्म देह जब जाइ यातना देह पाइकें।
नरकनिमें फिरि पचै भूमितें जीव जाइकें॥
सहै यातना नित नई, किन्तु दुःखमें मरे नहिं।
अनुभव वैसेई करै, जैसे नरतनु कष्ट सहिं॥

इन्द्रिय मन आधीन करें जो जिह करवावै।
मन लैजावै स्वरग नरकमें जिही पठावै॥
मनते भोगै भोग जिही देखे सपनेकूँ।
मायामोहित जीव कहै करता अपनेकूँ॥
यह मन चचल चपलअति, नहिं काहूको मीत है।
मनके हारे हार है, मनके जीतेजीत है॥

दोहा—बोले शौनक—सूतजी, सब नरकनिकेनाम।
कहौ कौनमहँ जाइ को, करिके कैसो काम॥

कहै सूत सुनि मुनिवचन, करि सबको सम्मान।
नरकनिको बरनन करूँ, सुनहि आप धरि ध्यान॥

रौरव, कुम्भीपाक, महारौरव सूकरमुख।
कृमिभोजन सन्दश, शाल्मली, नरक देहिं दुख॥
तप्तभूमि, पूयोद, प्रानरोधन, बटरोधन।
पार्यावर्तन, शूलप्रोत, बैतरणी, बिशसन॥

कोई कहे अनेक हैं, अष्टाविंशति कछु कहें।
इन नरकनिमहँ जाइकें; पापी जन बहु दुख सहे॥

मारें जीवनि सदा मासतें तनकूँ पोसें।
क्रोध मोह बश भये रक्त प्राणिनिको सोषें॥
चाहे जीवो जीव तिनहिँ हठ करि जो मारें।
ते पापी तनु त्यागि तुरत ई नरक सिधारें॥

औरनिकी दुरगति करी, कोटि गुनी तिनकी भई।
कुटें पिटें भूखनि मरें, सहे यातना नित नई॥

हिंसा परतिय गमन मांस मदिराको सेवन।
महापाप ये कहे फँस्यो इनमें जिनको मन॥
ते नर पापी महादुःख जग माँहि उठावें।
छटपटाइकें मरें फेरि नरकनिमहँ, जावें॥

नाना दुख सहि अंतमहँ, सूकर कूकर योनि धरि।
चौरासीके चक्रमहँ, भ्रमैं विविध बिधि करम करि॥

परधन, परसंतान, परस्त्री जे लै जावें।
ते नर रौरव नरक परें अति दुःख उठावें॥
चोरी जारी करे मूत्र बिष्ठा ते खावें।
होंहि वेदना अधिक नारकी फिरि पछितावें॥

विविध भाँतिकी, यातना, परवश ह्वै पापी सहे।
करे पाप क्यौं दुष्ट अस, पुनि पुनि यमकिंकर कहे॥

विप्र हनन, मदपान कनककी चोरी करिबो ।
कामातुर ह्वै पूज्य अंगना शय्या चढ़िबो ॥
इन पापिनिके रहैं संग सोवें अरु खावें ।
ये पाँचहु ही महापातकी मनुज कहावें ॥

ये सब मरिकें नरकमहँ, महा यन्त्रणा नित सहे ।
चिल्लावें रोवें गिरें, हा मैया बप्पा कहें ॥

पापिनिको संसर्ग पापमय तुरत बनावै ।
संतनिको सत्संग कृष्ण चरणनि पहुँचावै ॥
डरें पापतें सदा प्रेमतें प्रभु आरावें ।
जप, तप, तीरथ, वरत, करें यम नियमनि साधें ॥

सदा सत्य बोलें वचन, ब्रह्मचर्यतें रहैं नित ।
जाइँ नहीं ते नरक नर, परतियपै न चलाइँ चित ॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें नरकवर्णन नामक चतुर्थ अध्याय ।

[मासिक पारायण-ग्यारवें दिवस विश्राम]



अथ पञ्चमोऽध्यायः

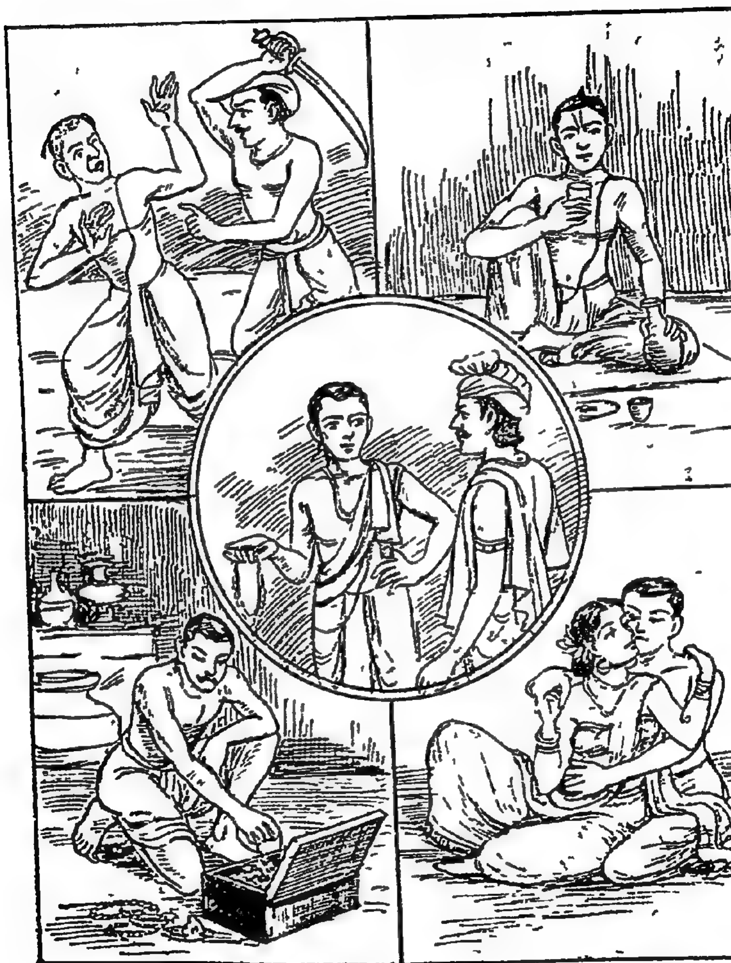
[५]

दोहा—कहे सूत—'नृप परीक्षित, सुनिके नरक प्रसङ्ग।
छुटी कँपकँपी श्वेद तनु, शिथिल भये सब अङ्ग॥

छप्पय—सुनी नरक की बात कँप्यो हिय दशा भुलानी।
करै प्रतिक्षण पाप कहे नृप—प्रभु! जिय प्रानी॥
ज्ञानी अतिही अल्प, अधिक अज्ञानी जगमहँ।
प्रति पल हिंसा होय, उठत वैठत घर मगमहँ॥
होयँ पाप तो का करें, कैसे पापनितें बचैं।
जीव भ्रमैं प्रारब्धवश, करम नचावें त्यौं नचैं॥

दोहा—नृप शंका सुनि शुक कहे, सुनो भूप दै चित्त।
मिलहिं पाप फल अवसि यदि, करै न प्रायश्चित्त॥

छप्पय—जैसे सज्जी, आदि वस्त्रके मलकूँ धोवें।
तैसे प्रायश्चित्त सविधिकृत पापनि खोवें॥
स्वच्छ वस्त्र फटि जाय तऊ चित मोद बढावै।
मलिन वस्त्र है जीर्ण मलिनता सँग लै जावै॥
प्रायश्चित्त किये विना, यमपुर जे नर जायँगे।
ते निश्चयई नरक परि, विविध भाँति दुख पायँगे॥



पंचमहापाप पृ० २०६



पंचमहापाप यातना पृ० २०७

तनतें मनतें करे पाप जितने वचननि तें।
करिके प्रायश्चित्त पृथक् होवें नर तिनतें॥
श्रद्धा संयम युक्त करैं तप, ब्रह्मचर्य, शम।
सत्य, दान, तप, शौच, योग युत करैं नियम यम॥

ते निश्चय ही पापतें, छिनमें नर तरि जात हैं।
ज्यों दावानलके लगत, वेणु गुल्म जरि जात हैं॥

निज आहार विहार रखें शुचि संयम धारे।
सदा पथ्यतें रहे, बढ़े दोषनिकूं जारे॥
होन न देवें रोग होहि तो औषधि खावें।
तिनि पुरुषनि ढिंग रोग भूलि कबहूँ नहिं आवें॥

प्रायश्चित्त यथार्थ जिह, सद्गुरुके ढिंग जायकें।
करै नाश अज्ञानकूं, नारायन गुन गाइकें॥

पथ परमार्थ महान् मार्ग बहुतेरे जावें।
भक्तिमार्गकूं सुगम किन्तु सब संत बतावें॥
उभय भक्त जब मिलें मधुर हरिनाम उचारें।
नवे परस्पर विनय सहित पदरज सिर धारें॥

ऐसे शील स्वभावयुत, संत गहैं जा गैलकूं।
क्यों न फेरि चलि पथिक सब, धोवें मनके मैलकूं॥

भक्ति मार्ग अति सुगम सरल सबके उपयोगी।
विप्र होहि वा शूद्र परम ज्ञानी वा भोगी॥
है निष्कंटक मार्ग कष्ट कछु जामें नाहीं।
पग पगपै फल फूल मिलें खल नहिं मग माहीं॥

तबरे साथी सरल सुठि, सरस मिलें जा पथ चलत।
प्रेम रुदन कबहूँ करत, हरिगुन सुनि कबहूँ हँसत॥

भक्ति भेद बहु भनै अधम ऊँचे अरु मध्यम।
सङ्कीर्तन हरिनाम कह्यो सबईतें उत्तम॥
नाम ग्रहणतें भक्ति मुक्ति निश्चय नर पावें।
कैसे ऊ हों पाप नामतें तुरत नसावें॥
मरन कालमहँ अजामिल, यमदूतनि लखि डरि गयो।
नारायन सुत हित कह्यो, नाम लेत भव नसि गयो॥

दो०—पूछें शौनक सूतजी; कौन अजामिल दीन।
नाम पुत्र मिस क्यौं लयौ, कैसे प्रभु गति दीन॥

अति पावन मुनि प्रश्न सुनि, कहे सूत हरषाइ।
कही कथा गुरुने यथा, कहूँ यथामति ताइ॥

छप्पय—कान्यकुब्ज शुभ देश अजामिल रहै विप्र इक।
मितभाषी अनसूय तपस्वी परम धारमिक॥
पितु अज्ञातें गयौ लैन समिधा इक बनमहँ।
तहँ लखि वेश्या सुघर काम सर लाग्यो मनमहँ॥
वा वेश्याको रूप लखि, बिना दाम ई वह बिक्यो।
रोक्यो चंचल चित्तकूँ, राजन्! परि खल नहिँ रुक्यो॥

पत्नी माता पिता तजे वेश्या अपनाई।
जाति पाँति निज लाज तजी कुल शील बड़ाई॥
कैसे हूँ धन मिलै घातमहँ घूमे उत इत।
अपने घरकूँ छाँड़ि रहै वेश्याके घर नित॥
वेश्या सँग व्यभिचारतें, बहु बालक वाके भये।
हिन्सा चोरी करत ई, बहुत दिवस छिन सम गये॥

कहाँ वेदको पाठ कहाँ चोरी जूआ नित।
कहाँ धरम अनुराग पापमहँ फँस्यो कहाँ चित ॥
कहाँ कुलवती सती कहाँ वेश्या पणनारी।
किन्तु अजामिल बुद्धि भाग्यनें तुरत बिगारी ॥

व्रत पालन आचार सद्, वेश्या सँगतैं नसि गयो।
व्याधिनि वेश्या बनि गई, द्विज फँदामहँ फँसि गयो ॥

पूर्वजन्मको पाप शाप मनमहँ रह जावै।
अपरजन्ममहँ आइ पाप फल निज दरसावै ॥
काऊको धन हर्‌यो सत्यो बनिकें सो लेगो।
ह्वैकें परवश पिता बन्यो वाकूँ वो देगो ॥

विधवा बनि परपुरुषकूँ, पाप दृष्टितें लखें जे।
ब्याह होत ही मरे पति, पुनि पुनि विधवा बनें ते ॥

कोई सब दिन संग रहे परिचय नहिं होवे।
निरखि काहुकूँ कोउ तुरत अपनोपन खोवे ॥
होहिं सहोदर बन्धु परस्पर प्रेम न तिनमें।
भिन्न जातिके होहिं, होइ मैत्री छिनभरमें ॥

पूर्वजन्म अपकार करि, इह तन होवै शत्रुता।
कर्‌यो जासु उपकार कछु, तातें होवै मित्रता ॥

पूर्व जन्म में रह्यो अजामिल परम तपस्वी।
सदाचार सम्पन्न सत्यप्रिय परम यशस्वी ॥
शिशिरमाँहि अति शीत लग्यो मूर्छासी आई।
तहाँ वैद्यने अपर विप्रकूँ युक्ति बताई ॥

यौवनकी यदि उष्णता, युवती तनमें तन लगै।
जब जावे जिह शीतपन, तुरत तपस्वी तब जगै ॥

सोरठ—तहाँ रहे मुनि एक, निज तनया के संग में।
दशा भयानक देख, तिनि निज कन्यातें कही ॥

छप्पय—मुनितनयाकूँ दया तपस्वीपै अति आई।
अगनि लयो लगाय उष्णता तन पहुँचाई ॥
चेतनता जब भई क्रोध तपसीकूँ आयौ।
बनि वेश्या तू नारि, धरमतें मोइ डिगायौ ॥
मुनिकन्या हूने दयो, शाप अधम तू बनेगौ।
धरम करम सब छाँड़िके, मो वेश्या सँग फिरेगौ ॥
शाप भये सब सत्य अजामिल दुष्ट भयो अति।
निरदय डाकू क्रूर करै पथिकनिकी दुरगति ॥
भ्रमत भाग्यवश संत एकदिन घरपै आये।
कीयो अति सत्कार आपने पाप सुनाये ॥
संत हृदय करुना उठी, बोले करियो काम तू।
धरियो अबके पुत्रको, नारायण शुभनाम तू ॥
मनमहँ निश्चय कर्‌यो अबसि जिह काम करूङ्गो।
अबकें होवै पुत्र नरायन नाम धरूङ्गो ॥
कछु दिनमहँ सुत भयो हरष चितमहँ अति छायो।
नारायण धरिनाम नेह अति अधिक बढ़ायो ॥
सबरो प्रेम बटोरिकें, नारायणमहँ धरि दयो।
भूल्यो सब जगके विषय, सुतमहँ तन्मय है गयो ॥
लै नारायन नाम प्रेमते मुखकूँ चूमें।
गोदीमें बैठाय नरायन कहि कहि घूमें ॥
अपनें पीछे खाय नारायन प्रथम खवावै।
पीवै जो कछु पेय नरायन संग पिवावै ॥
नारायणकूँ सगलै, यों खावत पीवत चलत।
नारायण भूलैं नहीं, जागत हू सोवत उठत ॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें अजामिलचरित नामक पञ्चम अध्याय।

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

दोहा—बोले शुक-नृप ! चित चपल, काहूमहँ लगिजाय ।
तौ सोवत बैठत उठत, सब थल वही लखाय ॥

चित्त अजामिलको फँस्यो, नारायन सुतमाहिँ ।
नाम नरायन प्रिय लगत, सुनत नयन भरिजाहिँ ॥

छप्पय—नारायनमहँ चित्त फँस्यो नारायण नितदिन ।
सेवै प्रान समान रहै छिनहू नहिं वा बिन ॥
वेश्यारति यों फँस्यो मोहमहँ मृत्यु बिसारी ।
परि निरबार कराल कालकी आई बारी ॥
मृत्यु समय यमकिंकरनि, पकर्‌यो पापी अजामिल ।
नारायन मुखतें कह्यो, खेलत सुतकूँ लखि बिकल ॥

सुनि नारायन नाम विष्णु पार्षदतहँ आये ।
यमदूतनिकूँ पकरि गदातें मारि गिराये ॥
डरिकें पूछें दूत कौन तुम हमें भगाओ ।
मोल भाव बिनु किये तड़ातड़ मार लगाओ ॥
धर्मराजके दूत हम, पापीकूँ लै जात हैं ।
कर्‌यो न हम अपराध कछु, काहे आप खिस्यात हैं ॥

विष्णु पारषद कहे—धरमको मरम बताओ।
दड जोग जिह नाहिं जाइ च्यौ व्यरथ सताओ॥
बोले यमके दूत-धरम जो वेद बखान्यो।
है अधरम बिपरीत वेद हरि रूपहिं मान्यो॥

हिंसक पापी सुरापी, कूँ यमपुर लै जॉयगे।
नरक अगिनिमें डारिके, जाकूँ बिमल बनायँगे॥

हरि पार्षद पुनि कहे—दूत! तुम कछु नहिँ जानों।
व्यरथ बजाओ गाल बिज्ञ अपनेकूँ मानों॥
नारायण यह कह्यो अन्तमहँ मुखते जाने।
तौ हम ताकूँ फेरि परम पावन नर माने॥

चोर, जार, हिंसक, कुटिल, पापी चाहे होय अति।
नाम उचारनतें तुरत, होइ शुद्ध पावै सुगति॥

प्रायश्चित मनु आदि पापके विविध बतावें।
तिनतें छूटें पाप किन्तु जड़तें नहिँ जावें॥
रहै वासना बनी फेरि हू पाप करिङ्गे।
पुनि पुनि करिके पाप नरकमहँ मनुज परिङ्गे॥

प्रायश्चित सब पापको, पुरुषोत्तमको नाम है।
तुम उच्चारन भर करो, फेरि नामको काम है॥

लेवे जाको नाम यादि गुन ताके आवें।
पुण्य कीर्ति भगवान नाम गुन ज्ञान करावें॥
हरि गुन मनमहँ धँसे फेरि च्यौं पाप रहिङ्गे।
बहुतक होवे हिरन धिंहकूँ देखि भगिङ्गे॥

इत उत भटकै जीव च्यौ, करे व्यर्थ के काम तू।
सब प्रपञ्चकूँ छाँड़िकें, च्यौं न लेइ हरि नाम तू॥

कैसे हू हरिनाम लेत, फल निश्चय देवै।
चाहे मनतें लेइ भले बेमनके लेवै॥
हरिको लैके नाम मार्गमें आवै जावै।
कृष्ण कृष्ण सकेत करैं सब वस्तु मँगावै॥

मोदक घी बूरो सन्यो, दिनमें खाओ रातिमें।
सब थल मीठो लगेगो, घर खाओ या पाँतिमें॥

भक्त न करें विनोद विषय सम्बन्ध जोरिकें।
रहैं उदासी सदा जगत सम्बन्ध तोरिकें॥
लै लै हरिके नाम प्रेमतें हँसें हँसावें।
रामभक्त करि हँसी कृष्णकूँ चोर बतावें॥

कृष्ण भक्त हँसि रामकूँ, बानरभालूपति कहत।
बनि बैरागी राम तो, बन बन में रोवत फिरत॥

राग अलापन हेतु रामको नाम उचारें।
चाहें कहि कहि रामभक्तकूँ ताने मारें॥
राम कहत लड़िजायँ राम कहि प्रेम जतावें।
ते नर कबहूँ भूलि नरककी गैल न जावें॥

बिनु इच्छा ऊ रुईपै, चिनगारी पावक परै।
जरे रुई तो अवसि ही, नाम नाश अघ त्यौं करै॥

गिरत परत मग चलत रपटि कीचड़ महँ जावै।
अङ्ग भङ्ग है जायँ जीव हिंसकहु सतावै॥
काटै कोई आइ देहमहँ पीड़ा होवै।
ज्वर को होवै वेग चेतनाकूँ नर खोवै॥

कैसेहू नर विवश है, हरि उच्चारन करिङ्गे।
नाम प्रतिष्ठाके निमित, अब तिनके हरि हरिङ्गे॥

निज शुककूँ करि प्यार नित्य गनिका पुचकारै।
मनविनोदके निमित रामको नाम उचारै॥
स्वय कहै हरि नाम और खगतें कहवावै।
शुकमुखतें अति मधुर नाम सुनि हिय हरषावै॥
मरन समय अघ सुमिरिकें, वेश्या अति व्याकुल भई।
सत चितायो अत हरि, नाम कह्यो हरिपुर गई॥

हरिकीर्तन वा श्रवन करें श्रद्धा बिनु प्रानी।
निश्चय ते ऊ तरें, वेद सतनिकी बानी॥
राम विमुख लखि संत जीवपै यदि ढुरि जावें।
बिनु इच्छा ऊ देहिं नाम तोऊ तरि जावें॥
कृष्ण नाम भव रोग की, है अचूक औषध सुगम।
चाहें ज्यों सेवन करो, निश्चय देगी पद परम॥

सत अनुग्रह करी बिमुखकूँ नाम सुनायौ।
मर्‌यो अधम जब दूत तुरत यमपुर पहुँचायौ॥
नाम श्रवनको पुण्य सुन्यो सब सुर घवराये।
ब्रह्मलोक शिव लोक फेरि सब हरिपुर आये॥
सुनि सब हरिने अकमहँ, प्रेम सहित वाकूँ लयो।
भवबन्धनतें मुक्त ह्वै, प्रभु पार्षद वह बनि गयो॥

सुनिकें यमके दूत नाममहिमा हुलसाये।
पाश मुक्त सो कर्‌यौ दौरि सयमनी आये॥
इत सुनि शुभ संवाद नामकी महिमा जानी।
निज पापनिकूँ सुमिरि अजामिल मन अति ग्लानी॥
करि पापनिकूँ यादि जो, पछितावें दुख अति करें।
तिनके अघ सन्ताप प्रभु, जानि हृदय मल-सब हरें॥

बारबार धिक्कार अजामिल देवै मनकूँ ।
हाय ! पापमहँ फँस्यो भुलायो निज द्विजपनकूँ ॥
तजे पिता अरु मातु दुःख जिन सहि सुख दीन्हों ।
तजी सती निज नारि मोह बेश्याते कीन्हों ॥
करे पाप अति भयानक, करूँ न ऐसे काम अब ।
बिगरी मेरी बात तो, किन्तु बनाई नाम सब ॥

यों करि पश्चाताप मोह ममता सब त्यागी ।
बेश्या अरु सुत त्यागि राग तजिभये बिरागी ॥
हरिद्वारमहँ जाइ योगको आश्रय लीन्हों ।
बिषयनिते मुँह मोरि युक्तिते मनवश कीन्हों ॥
दृश्यबर्गते पृथककरि, आत्मा ज्ञान स्वरूपमहँ ।
फेरि अजामिल भक्तियुत, भये पारषद रूपमहँ ॥

आयौ दिव्य बिमान निहारे पार्षद तेई ।
पहिचाने ततकाल नाम दाता गुरु येई ॥
पंचभूतकी देह त्यागि पार्षद वपु धार्‌यो ।
तब फिर चल्यो विमान दिव्य वैकुण्ठ सिधार्‌यो ॥
अधम अजामिल हू तर्‌यो, नारायन कहि पुत्रहित ।
ते फिर क्यौं नहिं नर तरें, लेहिँ नाम जे शुद्धचित ॥

संयमनी पति निकट गये यमदूत खिस्याने ।
बिना भावके मार पड़ी सब अंग पिराने ॥
हाथ जोरि सब कहे—प्रभो ! तुमई जगस्वामी ।
या तुमतें हू अपर ईश बड़ अन्तरयामी ॥
लावत हे हम नरकमहँ, जा पापीकूँ पकरिके ।
चारि पुरुष आये तहाँ, छुड़वायो अति भिरकिके ॥

शङ्ख चक्र बनमाल गदाभृत सेवक किनिके।
काके हैं वे दूत कौन स्वामी हैं तिनिके॥
सबके शासक आप जीव प्राननिके हरता।
शासन सबको करें शुभाशुभ निरनय करता॥

इतने पै ऊ आपकी, आज्ञा उल्लंघन भई।
बिना बातके बीचमें, हमरी दुरगति है गई॥

नारायन है मन्त्र जत्र वा जादू टौना।
काहू नरने मृत्यु समय जिह नाम कह्यो ना॥
सुनि नारायन नाम भयो तनु पुलकित यमको।
प्रेम मगन है कर्यो ध्यान भगवत चरननिको॥

जलद सरिस अति बिमलबर, जो हरि नित्य नबीन हैं।
शिव विरञ्चि इन्द्रादि हम, तिनके नित्य अधीन हैं॥

गुह्य भागवत धरम देवता सिद्ध न जानें।
फिर नर, दानव, दैत्य ताहि कैसे पहिचाने॥
अज, शिव, नारद, जनक, कपिल, मनु, बलि, शुक, ज्ञानी।
भीष्महु, सनत्कुमार, धरम, प्रहलाद अमानी॥

जानि भागवत धरमकूँ, परम भागवत ये भये।
अन्य भक्त हू भक्तितें, नाम लिये हरिपुर गये॥

दूत कहैं—अब, नाथ! नियम हमकूँ बतलावें।
जाइ न किनके पास पकरि किनकूँ हम लावें॥
धरमराज तब कहैं नाम हरि जे न उचारें।
चितमें कबहूँ चरन कमल हरिके नहिं धारें॥

नहीं नवे सिर कृष्णकूं, हरिचर्यातें जे विमुख।
लाओ तिनकूँ पकरिके, आइ उठावे नरक दुख॥

नाम गान सम जगत माहिँ साधन नहिं दूजो ।
करो यज्ञ व्रत दान भले प्रेतनिकूं पूजो ॥
नाम उचारत तुरत मलिनता मनकी जावै ।
माया मोह नसाय प्रेम प्रभुको हिय आवै ॥
नामकीरतन जे करहिं, जाउ न तिनके ढिंग कबहुँ ।
पहिले पापी रहे वे, आवें मम गृह नहिं तबहुँ ॥

कृष्ण कीरतन गुन गौरव जे गान करहि नर ।
वे कबहूँ नहिँ भूलि निहारें नीरस मम घर ॥
सब पापनिको एक प्राइचित मुनिनि बखानों ।
होयँ नामके रसिक उनहिँ मेरो गुरु मानों ॥
यम आज्ञा दूतनि सुनी, शिरोधार्य सबने करी ।
हरिकीर्तन करिकें चले, सबमिलि बोली जयहरी ॥

सोरठा—ता दिनतें यमदूत, नाम सुनत भगि जात झट ।
होत नामतें पूत, ग्वा दिनतें निश्चय भयो ॥

छप्पय—पुण्य अजामिल चरित महा पापी हू गावें ।
गाइ हियेमहँ धरें पाप पुनि चित्त न लावें ॥
तिनके पाप पहाड़ भस्म सबरे ह्वै जावें ।
जीवत सब सुख लहे अन्तमहँ प्रभुपद पावें ॥
अरथवाद जाकू कहे, ते नर कोरे रहिङ्गे ।
जीवत जग निन्दा लहे, मरि नरकनिमहँ परिङ्गे ॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें नामसंकीर्तन महिमा-नामक छठा अध्याय समाप्त ।

अथ सप्तमोऽध्याय :

(७)

कहे परीक्षित—प्रभो ! सुनाई सरस कहानी।
कथा अजामिल सुनी नाम महिमा हू जानी॥
ताप शाप संताप नाम ध्वनि सुनि भगि जावें।
सब मिलि ऐसे भगे लौटिकें फिरि नहिं आवें॥

सुनी नाममहिमा प्रभो ! प्रकृत कथा चालू करो।
सृष्टि प्रसंग सुनाइकें, मेरे सब संशय हरौ॥

बोले शुक—सुनु नृपति ! दक्ष प्राचेतस प्रकटे।
करी सृष्टि तिनि विविध देव नर करमनि लिपटे॥
तऊ सृष्टि नहिँ बढ़ी दक्ष अतिशय घबराये॥
विन्ध्याचलके निकट तपस्या हित तब आये।
अघमर्षण इक विमल बर, तीर्थ ताहि तट जाइकें।
कीन्हों तप अति उग्र तहँ, कंद मूल फल खाइकें॥

करें प्रजापति कठिन तपस्या तीर्थवास करि।
प्रजा सृष्टिके हेतु नाम लैं राम कृष्ण हरि॥
हंस गुह्यको पाठ करें, तप नियमनि साधें।
गुण अभिव्यंजक नाम लेइँ श्री हरि आराधें॥

धरम अरथ अरु मोक्ष वा, होइ बासना कामकी।
सब इच्छा पूरन करे, शरन गहे जे रामकी॥

दो०—शुक बोले—सुनु भूपवर ! हंस गुह्य इस्तोत्र।
गिरा गाइ पावन बने, होहिँ सफल सुनि श्रोत्र॥

छन्द—

जय स्वयं प्रकाशक श्याम हरी। जिनि सब प्रपञ्चकी सृष्टि करी॥
जिनि जीव न जाने संग रहै, जिनि वेद निरंतर नेति कहै।
सब भूत, विषय, तन, प्रान करन, जाने न स्वयं निज रूप वरन।
सबकूँ जानें जिह जीव विभू, परि जीव न जाने तुमहिं प्रभू।
जय हो अनन्त अखिलेश प्रभो! जय जय करुनाके धाम विभो॥
जिनको समाधिमहँ होहि ज्ञान, जो शुद्ध चित्तमें होत भान।
जो शुद्ध सच्चिदानंद राम, तिनके पद पद्मनिमहँ प्रनाम।
जो मोक्ष रूप अनुभव स्वरूप, जो सर्वनाम अनुपम अनूप।
होवें प्रसन्न मोपै अनाम, तव चरननिमहँ पुनि पुनि प्रनाम।
जो मन वानी को विषय नाहिँ, जिनिकूँ पुरान, श्रुति, शास्त्र गाहिँ।
जो भेदभावतें रहित श्याम, जिनितें होवें सब जगत काम।
है जिनकी माया अति अपार, फँसि जीव जनम ले वार बार।
जिन नाम लेत भव होत पार, तिनि चरन कमलन्हँ नमस्कार।
जो अस्ति नास्तितें बोध होत, जो भवसागरके प्रबल पोत।
जो नाम रूपतें रहित राम, तिनि चरननिमहँ पुनि पुनि प्रनाम।
जो भक्त हेतु धरि रूप नाम, अवतार लेहिँ हरि पूर्ण काम।
जो भावबस्य सुरतरु समान, अभिमत फल दाता सुखनिधान।
सतचित स्वरूप,जो मुक्तिधाम, तिनि प्रभु पद पद्मनिमहँ प्रनाम।

दो०—देवें दरशन दयानिधि, गहे चरन तव नाथ।
यों करि इस्तुति दक्ष नित, पुनि पुनि नावें माथ॥

छप्पय—दक्ष भावकूँ समुझि भावग्राही बनवारी।
प्रकट तुरत तहँ भये विष्णु पीताम्बरधारी॥
मुकुट कटक कर अंगुलीय कंकण नूपुर पग।
त्रिभुवन मोहन रूप निरखि मोहित होवै जग॥
परे लकुट सम भूमिमहँ, दक्ष निरखि घनश्यामकूँ।
वार वार निरखें मुदित, श्रीहरि शोभा धामकूँ॥

बोले हरि-तुम प्रजा हेतु च्यौं कष्ट उठाओ।
मनतें बढ़ै न सृष्टि मैथुनी सृष्टि बनाओ॥
पञ्चजन्यकी सुता असिकनी बहू ब्याहिकें।
संतति करि रति धरम बढ़ाओ उभय जाइकें॥

बिनु आकरषन सृष्टि नहिं, कबहुँ बढ़ै हियमहँ धरौ।
तातें चटपट जाइकें, बर बिबाह बेटा करौ॥

ब्याह दक्षने कर्‌यो विष्णु आज्ञा सिरधारी।
अति प्रसन्न मन भयो, बहू लखि अति सुकुमारी॥
सुधी प्रजापति दक्ष तपस्वी दृढ़व्रत धारी।
दश सहस्र सुत जने, सरलचित आज्ञाकारी।

सब समान गुण रूप रँग, शील एक सी बय नई।
तातें सबकी एकई, हर्यश्व हि संज्ञा भई॥

पिता कह्यो हर्यश्व ! करौ तप बश बढ़ाओ।
पुत्र पौत्र करि अधिक जगतमहँ कीर्ति कमाओ॥
पितु आयसु सिर धारि चले तपकूँ सब भैया।
नारायन सर बसे मिले मुनि बीन बजैया॥

श्रद्धा संयमके सहित, जाय तीर्थ जे न्हात हैं।
होत हृदय तिनिको बिमल, फिरि सद्गुरु मिलि जात हैं॥

आये नारद तहाँ दक्षपुत्रनितैं बोले।
सृष्टि करो च्यौं बिना भूमि सबरीपै डोले॥
एक पुरुषको राष्ट्र मार्ग बिनु बिल तुम देख्यो ?
उभयबाहिनी नदी नारि कुलटापति पेख्यो ?

घर पचीस पदार्थको, बहुरंगी इक हंसकूँ।
बिनु जाने छुरचक्र तुम, वृद्धि करो कस बंशकूँ॥

जो हैं सच्चे पिता सबनिके अतिशय ज्ञानी।
का उनकी हर्यश्व वास्तविक आज्ञा जानी॥
पुत्रो ! कैसे करो सृष्टि इन बातनि जानें।
बिना करें उपदेश हमारो नहिं मन मानें॥
इतनो कहिके देव ऋषि, प्रेम सहित पेखत भये।
कूट वचन सुनि दक्ष-सुत, ध्यानमग्न सब ह्वै गये॥

नारदके सुनि कूट प्रश्न मिलि ध्यान लगायौ।
लिंग देह ई भूमि अंत कब जाको पायौ॥
नित्य मुक्त हरि लखे बिना फल करमनिको नाहिं।
ब्रह्मरूप बिल प्रविशि लौटि फिरि आयो को कहिं॥
बुद्धि स्वैरिणी नारि है, पति अज्ञानी जीव है।
उभय वाहिनी नदी जिह, माया जिह पति शीव है॥

आश्रय पुरुष पचीस तत्वके क्षेत्र गेह भल।
हरि प्रतिपादक शास्त्र हंस है अतिई निरमल॥
कालचक्र अति तीक्ष्ण शास्त्र ई पिता सरिस है।
निवृत्ति मार्ग ई मुख्य कही ताकी आयसु है॥
यों मनते सब सोचिके, नारदके चेला भये।
मोक्ष धरमकी राह गहि, बाबाजी सब बनि गये॥

नारायण सरमाँहि भई नारदतें भेटा।
सुनी दक्ष जिह बात बने बाबाजी बेटा॥
भयो हृदय अति दुखित बहुत मनमहँ पछिताये।
जैसे तैसे धर्‌यो धीर जब विधि समुझाये॥
पाञ्चजनीने फिरि सहस, जने पुत्र शबलाश्व वर।
पितु आयसुतें गये वे, तपहित नारायण सुसर॥

करत तहाँ इस्नान भये हिय पावन तिनके।
जब सब तप मिलि करें बिचारें नारद अबके॥
ये बालक हू सौम्य मोक्षपदके अधिकारी।
देखूं चलिकें तहाँ ध्यानतें इनकी नारी॥

पर उपकारक व्रतनिरत, चले देव ऋषि तुरत तहँ।
करें कठिन नियमादि व्रत पहुँचे मुनि शवलाश्व जहँ॥

प्रश्न पुराने करे दक्षसुत सहस फँसाये।
फिरि दश वे ही कूटवचन कहि कहि समुझाये॥
ज्येष्ठ बन्धु जिहि गैल गये तुम सबहू जाओ।
श्रेष्ठ मार्गमहँ जाय नित्य सुख तुम सब पाओ॥

सृष्टि वृद्धि बिपरीत यों, पट्टी तुरत पढ़ाइकें।
नारद मुनि चम्पत भये, वीना मधुर बजाइकें॥

मुनिकें सब शवलाश्व भये भिक्षुक गृहत्यागी।
दक्ष सुने सब वृत्त हृदय क्रोधानल जागी॥
आग बबूला भयो क्रोध व्याप्यो नस नसमहँ।
तुरत दयो तिनि शाप रह्यो नहिं मन निज वशमहँ॥

कहे दक्ष—तू जगत महँ, कबहुँ न कुटी बनाइकें।
थिर न रहै घूम्यो करै, तुमड़ी तान बजाइकें॥

नारदमुनिकूं शाप दक्षने दीयो नरपति।
सिर धरि करि स्वीकार भये मुनि मुदित हृदयअति॥
बन्धनको है हेतु कुटी आश्रम बनवानों।
खंदकमेंते निकसि कूपमहँ पुनि गिरिजानों॥

हरि, भक्तनिकूं शापवर, दोऊ एक समान हैं।
तिनको निश्चय अटलजिह, सबईमहँ भगवान हैं॥



दत्तशाप पृ० २२४



शाप कर्यो स्वीकार देवऋषि सुरपुर धाये।
देखि दक्षकूं दुखी हंस चढ़ि इत विधि आये॥
सृष्टि करन पुनि कही, दक्ष बोल्यो घबरायो।
नारद पीछें पर्यो प्रभो! कछु युक्ति बताओ॥
विधिबोले—अबके सुता, करौ वंश बढ़ि जाइगो।
छोरिनि के ढिंग भूलिकें, नारद मुनि नहिं आइगो॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमें दक्षनारदशाप नामक सप्तम अध्याय समाप्त।



अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

दोहा—दैकें आज्ञा पितामह, गमने अपने लोक।
कीयौ गरभाधान पुनि, दत्त त्यागि सुत शोक॥

छप्पय—बिधि आज्ञातें साठि दत्त कन्या उपजाईं।
तेरह कश्यप लईं चन्द्र सत्ताइस ब्याईं॥
अंगिर भूत कृशाश्व दईं द्वै द्वै सुकुमारी।
शेष तार्क्ष्य सँग चारि बिबाहीं पुत्री प्यारी॥
पुत्र पौत्र सबके बहुत, भये जगत सब भरि गयो।
बहुसंतति लखि दत्तको, हृदय सरोरुह खिलि गयो॥

भानु, मुहुर्ता; ककुप, जामि, बसु लम्बा साध्या।
मरुत्वती, संकल्प, धर्मकी ये सब भार्या॥
स्वधा सती ये नारि अंगिरा मुनिकी प्यारी।
बिनता कद्रू और पतंगी यामिनि नारी॥
तार्क्ष्य बहू ये चारि हैं, धिषणा, अर्ची गुणवती।
पत्नी कहीं कृशाश्वकी, सबई सुन्दर सबसती॥

अब कश्यपकी नारि त्रयोदशकी संतति सुनि।
अदिती, दिति, दनु, इला, अरिष्टा सुरसा अरु मुनि॥
काष्ठा, सरमा, सुरभि, कही तिमि, क्रोधवसा पुनि।
ताम्रा पत्नी पाइ भये अति आनंदित मुनि॥
लोक मातु ये जगतकी, सब इनकी सन्तान हैं।
देव, असुर, पशु, पत्ति नर, लघुबड़ क्षुद्र महान हैं॥

देव ऋषभ सुत भानु जन्यो लम्बा विद्योतहिँ ।
ककुभ, वंशमहँ भये देव जो दुर्गनिमहँ रहिँ ॥
देव, मुहूर्ता, जने मुहूर्तनि के अभिमानी ।
मरुत्वतीके पौत्र जयन्त उपेन्द्र सुज्ञानी ॥

संकल्पा, संकल्पसुत, जाके सुत ये काम हैं ।
अष्टवसू वसुने जने, द्रोणआदि जिन नाम हैं ॥

साध्याके सुत साध्य, विश्वके विश्वेदेवा ।
भूत सरूपा नारि रुद्रगण जने कुदेवा ॥
दूसरि पत्नी पुत्र भूत प्रेतादि विनायक ।
स्वधा अंगिरा नारि पितृगण जने प्रभावक ॥

सती, सुमाता वेद्रकी, धिषणा, अर्चि, कृशाश्वकी ।
नारि पतंगी यामिनी, विनता कद्रू तार्क्ष्यकी ॥

विनता कद्रू बहिन सौतिया डाह भयो मन ।
उच्चैःश्रवा निमित्त दासताको कीन्हों प्रन ॥
कद्रू रूँगटि करी पूँछ सुत अहि लिपटाये ।
दासी विनता बनी गरुड़ जनि दुःख भुलाये ॥

अरुण भये आधे गरुड़, अमृत लाइ अहि पुनि हने ।
बरतें हरिध्वज महँ रहे, हरि बर दै वाहन बने ॥

सत्ताइस नक्षत्र चन्द्र पत्नी सुकुमारी ।
औरनितें नहिं नेह रोहनी अतिशय प्यारी ॥
पितु समीप सब गईं दुःखकी कथा सुनाई ।
दयो दक्ष सुनि शाप होय क्षय सोम सदाई ॥

बात शापकी सोमने, सुनी बहुत चिन्तित भये ।
अपराधी बनि ससुरके विनय सहित पुनि ढिँग गये ॥

चन्द्र विनय बहु करी प्रजापति किरपा कीन्हीं।
कृष्णपक्ष ई कला होयँ क्षय आज्ञा दीन्ही॥
शुक्लपक्षमहँ पूर्ण होयँ ऐसो बर दीन्हों।
अति अनुनय करि दक्ष तुष्ट शशिने करि लीन्हों॥

दक्षसुता दस सत्तरह, संतति बिनु सब रह गईं।
पक्षपात पतिने कर्यो, दुखित सबहिं जाते भईं॥

काष्ठाके सुत अश्व, सुरभिके गौ पशुगन हैं।
तिमिके जलचर जीव, दनूके सब दानव हैं॥
सरमाके व्याघ्रादि बाज ताम्राकी संतति।
सुरललना मुनि जनीं, दैत्य दितिके हिंसक अति॥

क्रोधवशाके सर्पगन, करें क्रोध जो नित्य हैं।
सुरसाके राक्षस भये, अदितीके आदित्य हैं॥

इला जने सब वृक्ष जगतके जे सुखदायक।
जने पुत्र गन्धर्व अरिष्टा सुन्दर गायक॥
जो बारह आदित्य बड़े तिनि बिवस्वान् रवि।
हते अर्यमा द्वितीय भये तिनते मानुष कवि॥

दक्ष यज्ञमें पिष्टभुक्, दन्तहीन पूषा भये।
विश्वरूप त्वष्टा तनय, सुरगुरु कछु दिन बनि गये॥

इति श्री भागवतचरितके तृतीयाहमें दक्षसुता वंशवर्णन नामक अष्टम अध्याय समाप्त।

अथ नवमोऽध्यायः

[६]

छप्पय—नृप पूछें-गुरु विश्वरूप' ज्यौं सुरनि बनाये।
सुरगुरु देवनि छोड़ि स्वरगतैं कहाँ सिधाये॥
बोले शुक—नरदेव! शक्र हिय मद अति आयो।
करि गुरुको अपमान तुरत फल ताको पायो॥
कहैं परीक्षित् चकित है, ज्यौं मद सुरपतिकूँ भयो।
कथा सुनावें सकल प्रभु, दण्ड देवगुरु का दयो॥

दोहा—सुन्यो परीक्षित् प्रश्न शुक, कर्‌यो कछुक छिन ध्यान।
कहन लगे इतिहास सब, इन्द्र भयो ज्यों मान॥

छप्पय—हम सबते हैं ऊँच भयो अभिमान देवपति।
क्यौं देवें सम्मान बृहस्पतिकूँ हम नित प्रति॥
ऐसो निश्चय कर्‌यो सभामहँ जब गुरु आये।
नहिं आसनतें उठे बचन नहिं मधुर सुनाये॥
समुझि गये गुरु इन्द्रकूँ, अहंकार अतिशय भयो॥
तुरत लौटि आये भवन, भलो बुरो नहिं कछु कह्यो॥
तुरत इन्द्रकूँ चेत भयो मनकूँ धिक्कारें।
कैसो कीयो काम दुखित अति होहिं विचारें॥
हाय! बुद्धि मम नसी अनादर गुरुको कीन्हों।
सम्मुख आये देव नहीं उठि आसन दीन्हों॥
श्रीचरननिमहँ शीश धरि, रोउङ्गो पछिताउँगो।
'बारबार बहु विनय करि, गुरुकूँ जाइ मनाउँगो॥

गुरुगृह गमने इन्द्र बृहस्पति तहाँ न पाये।
अन्तरहित गुरु भये देव अतिशय घबराये॥
सुरगुरु त्यागे असुर प्रीति हियमहँ अति छाई।
स्वरग विजयके हेतु सुरनिपै करी चढ़ाई॥

शुक्राचार्य सहायतें, गुरुप्रिय सुररिपु बढ़ि गये।
गुरुद्रोही सुरसंघपै, अस्त्र शस्त्र लै चढ़िगये॥

निरुत्साह है देव समरमहँ सम्मुख आये।
किन्तु न कछु बल चल्यो तनिक लरिकें घबराये॥
मदतें है उन्मत्त असुर देवनिकूँ डाटैं।
हाथ, पैर, सिर अङ्ग कठिन बाननितें काटैं॥

जब असुरनि की मारतें, अति व्याकुल सुरगन भये।
भागे रनकूँ छोड़ि सुर, कमलासनके ढिँग गये॥

सुनिके सबरी बात कहें विधि—भलो न कीन्हों।
मूरखता अति करी नहीं गुरु आदर दीन्हों॥
जाईतें तुम बली अबल असुरनितें हारे।
है घर बार बिहीन फिरौ सब मारे मारे॥

सुखी कृपा गुरुतें दुखी, जिहि पर गुरु प्रतिकूल हैं।
होहिं अमंगल तासु कस, जाके गुरु अनुकूल हैं॥

निज अपराधी जानि करैं हरि क्षमा जीवकूँ।
कहु पौरुषतें जीव तुष्ट कस करे शीवकूँ॥
कृपासिन्धु भगवान कौनपै कब ढुरि जावैं।
कब कापै करि कृपा अनुग्रह रस बरसावैं॥

दुष्ट दैत्य भगवानकूँ, परुष बचन नितई कहे।
गनैं न तिनके दोषकूँ, अज्ञ जानि सब कछु सहे॥

सबको ही निस्तार करें हरि क्षमा सबनिकूँ ।
किन्तु न पशुपति करें क्षमा खल गुरुद्रोहिनिकूँ ॥
हरि रूठें तो चरन शरन गुरुकी नर आवे ।
गुरु रूठें तो कहहु जीव किहिके ढिंग जावे ॥
जे तन मन धन आदितें, गुरु सेवा नितई करें ।
प्रभुपद पावें प्रेमतें, भवसागर छिनमहँ तरें ॥

गुरु प्रसादतें कौन बस्तु है दुरलभ जगमहँ ।
गुरु-प्रसाद पाथेय चलो लै निरभय मगमहँ ॥
गुरु चाहें तो रुष्ट देवकूँ तुरत मनावे ।
गुरु चाहें तो तुरत क्रूरकूँ साधु बनावे ॥
गुरु चरननिकी शरनमहँ, होहि न भवभयकी व्यथा ।
है प्रसिद्ध संसारमें, काकभुशुण्डीकी कथा ॥

दो०—यों देवनिकूँ डाँटिकें, भये पितामह मौन ।
कछुक देर सोचत रहे, बनें पुरोहित कौन ॥

बोले ब्रह्मा—विश्वरूप ढिंग सुर सब जाओ ।
करिकें अनुनय विनय उन्हें गुरुदेव बनाओ ॥
विधिसम्मति सिर धारि चले सब आयसु पाई ।
त्वष्टासुत ढिंग जाइ विपतिकी बात बताई ॥
सब सुनि बोले त्वाष्ट्र मुनि, कैसे अब नाहीं करूँ ।
उपरोहित निंदित करम, तिहि करि कस अघ सिर धरूँ ॥

देखो, पौरोहित्य करम अतिई निन्दित है ।
लोक वेद सर्वत्र देवगण ! बात विदित है ॥
उपरोहितको अन्न पाप ई विज्ञ बतावें ।
अति प्रसन्न ह्वै कुमति ताहि हरषित ह्वै खावें ।
निष्किञ्चनकी वृत्ति तो, कन कनकूँ संग्रह करै ।
पूजि पितर, सुर, अतिथि, ऋषि, उदर शेषतें मुनि भरै ॥

कहे देव-प्रिय विश्वरूप ! तुम पुत्र हमारे।
आये ह्वैके दुखित बत्स ! हम पास तुम्हारे ॥
अनुचित उचित बिसारि पुरोहित पद स्वीकारो।
विपति उदधिमहँ मग्न पकरिकें हमें उबारो ॥

करो न मन संकोच कछु, छोटे कस गुरुपद गहे।
ज्ञानवृद्धकूँ बेदबिद्, बन्दनीय सबको कहें ॥

विनय सहित पुनि बिश्वरूप बोले मृदुबानी।
आप देवगन परम पूज्य ज्ञानी विज्ञानी ॥
लोकेश्वर हैं आप पुत्रकूँ देहिं बड़ाई।
गुरु आज्ञामहँ होहि शिष्यकी सदा भलाई ॥

होवें अब निश्चिन्त हौं, पुरोहिताई करुङ्गो।
तुम सबकी आज्ञा बिहँसि, प्रेम सहित सिर धरुङ्गो ॥

सुनिके सब ई देव हृदयमहँ अतिशय हरषे।
बजे दुंदुभी आदि कुसुम नभतें -बहु, बरषे ॥
बिश्वरूपको बरन कर्यो गुरु पद बैठाये।
धरम करम व्रत नियम सुरनि सब विप्र सिखाये ॥

विश्वरूप गुरु पाइकें, देवनि की चिन्ता गई।
अवसि मिलें पुनि स्वरग सुख, यह प्रतीति सबकूँ भई ॥

विश्वरूप गुरु बने नाकपति निरभय कीन्हों।
रक्षाके हित दिव्य कवच नारायन दीन्हों ॥
नारायनको कवच धारि जे रनमहँ जावैं।
होहिं पराजय नहीं विजय शत्रुनिपै पावैं ॥

पाई विद्या वैष्णवी, अति प्रसन्न सुरपति भये।
करी चढ़ाई सुरनिने, असुर पराजित करि दये।

पूछें नृप—है कौन कवच नारायन गुरुवर।
बोले शुक—है दिव्य अस्त्र अष्टाक्षर नृपवर ॥
करिकें विधिवत न्यास ध्यान करि विनय करे अति।
आठ भुजातें युक्त सिद्धि देवें जग अधिपति ॥
जलमहँ बनिकें मीन प्रभु! थलमहँ वामन तनु धरें।
विश्वरूप बनि गगनमहँ, चहुँदिशि हरि रक्षा करें ॥

वन, रन, दुरगनिमाहिँ करें रक्षा श्रीनरहरि।
डगरमाहिँ वाराह परशुधर शिखरनिपै गिरि ॥
परदेशनिमहँ रामलखन सँग मोइ बचावें
नर नारायन गरव प्रमादहिँ तुरत भगावें ॥
रक्षा दत्त कुयोगतें, कपिल करम वन्धन नसें।
कामदेवतें सनत् शिशु, हयग्रीव मग अघ नसें ॥

पूजाके अपचार नसें नारद मुनि ज्ञानी।
कच्छप रक्षा करें नरक कछु करें न हानी ॥
धन्वन्तरि दें पथ्य द्वन्द्वतें ऋषभ बचावें।
यज्ञ लोकअपवाद नसें बल दुःख नसावें ॥
शेष सरप रक्षा करें, व्यास नसें अज्ञानकूँ।
बुद्ध नसें पाखण्ड सब, कल्कि दोष कलिकालकूँ ॥

करें प्रात लै गदा हमारी रक्षा केशव।
मुरलीधर गोविन्द करें रवि उदय होहिँ जब ॥
करें कलेऊसमय सदा रक्षा नारायन।
चक्रपानि श्रीविष्णु मध्यदिन रक्षें पावन ॥
रक्षा तीसर पहरमहँ, मधुसूदन श्रीधनुरधर।
त्रय मूरति माधव करें, रक्षा सायंकाल वर ॥

हृषीकेश परदोष कालमहँ रच्छें नित विभु ।
आधी राति निशीथ समयमहँ पद्मनाभ प्रभु ॥
जिन लाञ्छन श्रीवत्स पहर पिछलेमहँ रच्छन ।
उषाकालमहँ करें खड्ग धरि कृपा जनार्दन ॥

सूर्योदयके प्रथम ही, दामोदर रच्छा करें ।
विश्वेश्वर श्रीकाल प्रभु, सब सन्ध्यनिको दुख हरें ॥

करो सुदरशन ! भस्म शीघ्र तृन सम सब शत्रुनि ।
कुचलि कुचलि करि चूर्ण गदे ! तू भूत राक्षसनि ॥
करि रव भीषन शङ्ख ! रिपुनिके हिये कँपाओ ।
तीक्ष्ण धारतें खड्ग ! विपच्छिनि शीश उड़ाओ ॥

हे चमकीली ढाल ! तू, चकाचौंध करि रिपुनिकूँ ।
तुम सब प्रभुके अस्त्र हो, करौ पराजित सबनिकूँ ॥

रवि, ग्रह, दानव, दैत्य, भूत प्रेतादि भयङ्कर ।
प्रतिबन्धक जे अपर सिंह सरपादिक विषधर ॥
नसें करत हरि नाम, रूप, आयुधको कीर्तन ।
पार्षद विश्वक्सेन गरुड़ दुख मेटें ततछिन ॥

नाम, रूप आयुध सकल, हरि पार्षदगन दुख हरें ।
बुद्धि, करन, मन, प्रानकी, सब क्रमतें रच्छा करें ॥

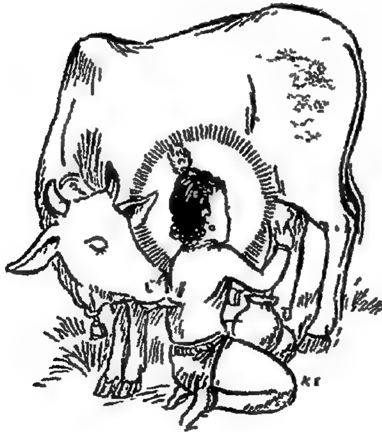
जग प्रपञ्च सत् असत् सकल हरि रूप कहावें ।
है यदि यह ध्रुव सत्य अबहिँ मम दुःख नसावें ॥
है निरगुन निज जनानि हेतु नाना वपु धारें ।
है सत तो सरवत्र सकल विपतिनि हरि टारें ॥

अट्टहास करि भयङ्कर, जो भक्तनिके भय हरें ।
ते नरहरि अति तेजयुत, दशहु दिशनि रच्छा करें ॥

विश्वरूपने जिही कवच सुरपतिकूँ दीयो।
दै नारायन मन्त्र अभय सबईकूँ कीयो॥
शुभ नारायन कवच मिल्यो सुरश्री पुनि आई।
असुरनिपै सजि सेन, सुरनिनें करी चढ़ाई॥

श्रीहरि कवच प्रभावतैं, असुर स्वरग तजि भगि गये।
राजभ्रष्ट सुरराज तब, अमराबति पति पुनि भये॥

इति श्री भागवतचरितके तृतीयाहमें विश्वरूप सुरपुरोहित वर्णन नामक नवम अध्याय समाप्त।



अथ दशमोऽध्यायः

(१०)

त्वष्टासुत गुरु पाइ भये स्वर्गेश इन्द्र पुनि ।
करवावें नित यज्ञ पुरोहित बिश्वरूप मुनि ॥
उच्चस्वरतें बोलि सुरनिकूँ आहुति देवे ।
चुपकेतें कछु यज्ञभाग दै असुरनि सेवे ॥

मातृपक्ष अनुराग लखि, देवनि संशय है गयो ।
उपरोहित अबिनय निरखि, क्षोभ इन्द्र मन अति भयो ॥

निरखि स्वार्थमहँ बिघ्न इन्द्रने खड्ग निकार्यो ।
त्वष्टा-सुत सिर तीन काटि उपरोहित मार्यो ॥
सोमपीथ सिर भयो कपिञ्जर सुरापीथ सिर ।
भयो पक्षि कलविङ्क तीसरो नरसिर तित्तिर ॥

द्विजहत्या सुरपति निकट, आई अञ्जलिमहँ लई ।
हत्यारे देवेन्द्र हैं, यह प्रसिद्धि जगमहँ भई ॥

बनि हत्यारे फिरें बरष भरि सुरपति जहँ तहँ ।
बाँटी हत्या इन्द्र धरा, नग, नारि, बारिमहँ ॥
गड्ढा पुनि भरि जायँ लह्यो बर धरा प्रेमतें ।
कटिकें पनपे वृक्ष इन्द्र बर दयो नेमतें ॥

व्यय करिकें हू नित बढ़े, बदलेमहँ बर जललह्यो ।
रतिसुख शक्ति सदाबनी-रहे कामिनिनि बर दयो ॥

ऊसर पृथिवी होय ब्रह्महत्याके लच्छन।
यज्ञादिक शुभ करम नष्ट होवें तहँ तत्छन॥
गोंद तरुनिमहँ होय करें जे वाकूँ भच्छन।
राग सहित तिहिं खायँ पापमय होवे तन मन॥

दीखैं मैले फैंन जे, जल प्रवाहमहँ जाइकें।
द्विजहत्या लखि पियो जल, बुद बुद फैंन बचाइकें॥

चौथो दीन्हों भाग इन्द्रने नारिनिकूँ जब।
मास मासमहँ प्रकट होहि अस्पर्श होहिं तब॥
रजोधर्ममहँ निरत नारिकूँ नर जो जोहैं।
धरम करमतें हीन पापमय खल जन सो हैं॥

भूलि समागम अस नर, रजस्वलातें करिहै।
हत्यारे सम पातकी, अवसि नरकमहँ परिहै॥

नारि, वृच्छ, जल, भूमि पाइ वरदान सिहाये।
इन्द्र भये निष्पाप मुदित है स्वरग सिधाये॥
द्विजहत्या तो गई शत्रुता त्रिरपै आई।
विश्वरूप पितु कुपित भये सुनि इन्द्र ढिठाई॥

त्वष्टा मन निश्चय कर्यो, इन्द्र नीचता हरुङ्गो।
जो मारे जा इन्द्रकूँ, अस नर पैदा करुङ्गो॥

ऐसो मनमहँ सोचि हवन मुनिवरने कीन्हों।
इन्द्र शत्रु वढ़ि जाव, मंत्र पढ़िकें हवि दीन्हों॥
मत्र शक्ति अति अमित, तुरत इक उपज्यो प्रानी।
महा भयकर वृत्र बली अतिशय अभिमानी॥

लाल मूँछ दाढ़ी अरुन, वरन नयन प्रलयाग्नि सम।
अञ्जनगरवतके सरिस, सुररिपु तेजस्वी परम॥

छिन छिन महँ बहु बढ़ै लोक तीनहु ढकि लीन्हें।
देव मारतें बिकल असुर सब निरभय कीन्हे ॥
पूछे पितुतें वृत्र—तात ! हौं करूँ कहा अब।
मोकूँ कछु न अशक्य, काज हो पिता करौं सब ॥

त्वष्टा मुनि सुनि इन्द्रको, कह्यो वृत्त सब वृत्रतें।
इन्द्र मारि देवनि करो, रहित चमर अरु छत्रतें ॥

वृत्रासुर सुनि पिता वचन सब असुर बुलाये।
शुक्र पुरोहित आइ विजयके कृत्य कराये ॥
मदमाते सब असुर चले रन शस्त्र घुमावें।
गर्जन तर्जन करत वृत्र बल समुझि सिहावें ॥

आवत देख्यो असुर दल, सब शस्त्रनि लै भिरि गये।
वृत्र पराक्रम निरखि कें, बिस्मित सब सुरगन भये ॥

बोल्यो उनतें वृत्र—देव ! तुम सब अज्ञानी।
अरे, तुमनि मम देह, वज्रकी बनी न जानी ॥
अति कोमल मम जीभ ताहिपै शस्त्र चलाओ।
एक साथ मिलि मोहिँ युद्धकी कला दिखाओ ॥

सुनि सुर सब मिलि जीभपै, अस्त्र शस्त्र मारन लगे।
लीले सबके अस्त्र जब, है निशस्त्र डरि सुर भगे ॥

भागत देखे देव असुर जय पाइ सिहाये।
नहीं शरन लखि अन्य विष्णु ढिँग सुर सब धाये ॥
हाथ जोरि सब विनय करें हरि हमें बचाओ।
बहुत अवज्ञा सही जगतपति अब अपनाओ ॥

गुरु अपमान स्वरूपमहँ, वृत्र बिपति सिरपै परी।
गो द्विज देवनिकी तुमनि, युग युगमहँ रक्षा करी ॥

त्रिपति उदधिमहँ मगन भये हरि आइ उवारो ।
अन्य शरन नहिं नाथ ! गहो अब हाथ हमारो ॥
सुनि देवनि की विनय तुरततहँ प्रगटे श्रीहरि ।
अति प्रसन्न सब भये देव दुरलभ दरशन करि ।
देखि दुखी देवनि दया, करी विष्णु बोले बचन ।
शुभ सम्मति सबकूँ दऊँ, ताहि सुनो एकाग्र मन ॥

मुनि दधीचिके निकट देव सब मिलिके जाओ ।
निज विपत्तिके वृत्त जाइ मुनिवरहिं सुनाओ ।
विद्या व्रततें पूत तपस्याके प्रभावतें ।
उनकी हड्डी विमल सरल सच्चे स्वभावतें ॥
बनें वज्र मुनि अस्थितें, वृत्रासुर मरि जाइगो ।
सबरो दुख कटि जायगो, गयो राज फिरि आइगो ॥

हरिकी सुनिके बात देव ह्वैके विस्मययुत ।
चिन्ता भयतें विकल भये निरखें सब इत उत ॥
कहें—प्रभो! हम दुखित असंभव कहो न बानी ।
देहि न जीवित अस्थि होहि चाहे नर ज्ञानी ॥
को जगमहँ अस करि सके, प्रानदान दुष्कर करम ।
हमरी देनों दयानिधि ! दुखदायी होवै परम ॥

हरि हँसि बोले—देव ! सबनि अपुसम मति जानों ।
परउपकारी पुरुष देहिं सरवस सचु मानों ॥
शिवि, बलि, अरु हरिचंद करम दुष्कर जग कीन्हों ।
परकारजके हेतु मोह तनको तजि दीन्हों ॥
सिर कटाइ उपदेश शुभ, ज्ञान अश्वशिरतें कर्‌यो ।
का अदेय जिनकूँ सदा, हृदय ज्ञान धनतें भर्‌यो ॥

विष्णु कहै—सुरराज काज ऋषिबर ई साधें।
तनय अथर्वा नित्य नियमतें हरि आराधें॥
नाहीं सुरपति करी विविध बिधि घमकी दीन्हीं।
यमजनितें जो कही प्रतिज्ञा पूरी कीन्हीं॥
कही ब्रह्म विद्या सकल, हयसिरतें मुनिऋषभ जो।
अश्वसिराके नामतें, है प्रसिद्ध अब तलक जो॥

मिलि सब जाओ करो वन्दना ऋषि चरननि की।
माँगो ह्वै के दीन अस्थि अति पावन मुनिकी॥
अबसि देइँगे कबहुँ मनै मुनिवर न करिङ्गे।
तुम सबके हित बिहँसि नेहतें देह तजिङ्गे॥
उनकी तपमय अस्थितें, सुधर बज्र बनि जायगो।
वाईतें जा बृत्रको, सिर धड़तें कटि जायगो॥

बिश्वरूपने तुमहिँ कवच नारायण दीन्हों।
पितु त्वष्टातें बिश्वरूप द्विजवरने लीन्हों॥
मुनि दधीचिने दयो तपस्वी त्वष्टाकूँ पुनि।
अस्थिनिमहँ बिँधि गयो भये अतिई पावन मुनि॥
परउपकारीकूँ कहो, कौन कठिन जगकाज है।
परकारजके हेतु तो, तुच्छ देह, धन, राज है॥

सोरठा—सुनिकें हरिकी सीख, देवनिकूँ निश्चय भयो।
माँगन मुनितें भीख, चले अमर स्वारथ निरत॥

शौनक पूछें सूत, मुनि अस्थिनिमहँ तेज क्यौं?
किहि कारन ते पूत, सुनिकें बोले सूतजी।

छप्पय—मुनि दधीचि ढिँग गये देव असुरनिकूँ जय करि।
मुनितेँ बोले अमर—महामुनि ! देवनि भयहरि ॥
इन अस्त्रनितेँ हमनि असुर सब ई संहारे।
अब ये सबई दिव्य अस्त्र हैं व्यरथ हमारे ॥
नष्ट असुर करि देइँगे, प्रभु ! इनकी रक्षा करहु।
रहें सुरक्षित यहाँपै, इनकूँ निज आश्रम धरहु ॥

स्वीकारी सुर विनय अस्त्र मुनिनें धरि लीन्हें।
गभस्तिनीतें डरे देव मुनि निरभय कीन्हें ॥
सुर लैवे नहिं गये न्यास रक्षाके भयतें।
पीये मुनि सब घोय पचाये अपने तपतें ॥
ते अस्थिनिमहँ विंधि गये, बज्र सरिस सबरी भईं।
शुद्ध हतीं तपतें प्रथम, परम शुद्ध अब ह्वै गईं ॥

ताहीतें हरि कही अस्थि मुनिकी लै आओ।
फिरितें अपने अस्त्र शस्त्र अरु बज्र बनाओ ॥
हरि आयसु स्वीकारि चले सुर मुनि ढिँग तबई।
पढ़ी पढ़ाई बात सुनाई देवनि सबई ॥
सुनि दधीचि बोले विहँसि, कठिन फन्द तनुनेहको।
माँगें चाहैं विष्णु ई, देवै दुरलभ देह को ॥

स्वेच्छातें नहिं जीव देह अपनीकूँ त्यागै।
पापी, रोगी, मूढ़, देह सबकूँ प्रिय लागै ॥
सहैं दुसह दुख किन्तु मृत्यु तोऊ भयकारी।
क्यौं तुम माँगो देव ! देह की अस्थि हमारी ॥
बोले सुर स्वारथ सहित, साधु सदा पर हित निरत।
दुखित देव सब आप प्रभु, दुखियनि दुख मेंटत सतत ॥

जिनको व्रत है सतत दया जीवनिपै करिबो।
उनकूँ एक समान जगत्महँ जीबो मरिबो॥
परकारज हित हरषि साधु प्राननिकूँ देवें।
दाता देहि अनित्य नित्य बदलेमहँ लेवें॥

कहे संतजन जगत् महँ, एक त्यागई श्रेय है।
परउपकारी के लिये, नहिं कछु वस्तु अदेय है॥

इन्द्र बने वर बाज कबूतर अनल बनाये।
दोऊ झगड़त परम यशस्वी शिबि ढिंग आये॥
अति ई दुखी कपोत कहे-प्रभु रक्षा कीजे।
बाज भूखतें दुखित कहे-भोजन मम दीजे॥

शरणागतकी कष्ट सहि, पीड़ा भूपतिने हरी।
मास दयो निज देहको, रक्षा शिबि वाकी करी॥

सब स्वारथके मीत न देखें परहित कोई।
होवै मेरो लाभ हानि भल औरनि होई॥
परउपकारी सदा दुःख औरनिकौ लेवें।
दुखियनिके हित विहँसि प्रान तन मन धन देवें॥

यह कारज मैंने कियो, नहीं करें अभिमान वे।
उनको सहज स्वभाव यह, दोष न देवें ध्यान वे॥

हाड़ मासके बने देहमें ममता सबकूँ।
चाहे सबहो दुखी सदा सुख होवै हमकूँ॥
परउपकारी त्यागि देहिं, सरबसुकी ममता।
देहि देहको दान रखहिँ सबईमहँ समता॥

मोरध्वजने सही सब, साधु सिंह हित सुत व्यथा।
हैं अब तक जगमहँ विदित, शिबि, दधीचि, बलिकी कथा॥

दोहा—देवनिको उपदेश सुनि, मुनि सोचें मनमाहिँ ।
परमारथतें श्रेष्ठ जग-महँ कारज कछु नाहिँ ॥

छप्पय—हँसि दधीचि मुनि कहे—धरमको मरम जतायो ।
ताहीतें अस व्यंग देवगन वचन सुनायो ॥
विषयनितें नहि मोह नहीं है ममता तनकी ।
लगी रहे नित वृत्ति ब्रह्ममहँ मेरे मनकी ॥
इक दिन छूटे अवशि ई, नाशवान यह है अनित ।
क्यौं न तजूँ फिरि स्वतःई, तनु तुम्हरे हितके निमित ॥

अहो कष्ट अति घोर करै नर तनमहँ ममता ।
नहिं साधे परलोक करै धनमाहिँ कृपनता ॥
परमधरम है जिही दुखी परदुखमहँ होनों ।
दयाधरमतें हीन व्यरथ जीवनकूँ खोनों ॥
छिन भंगुर नितनाशयुत, व्यरथ मोह धन गेहमहँ ।
क्यौ न वितावै समयकूँ, परमारथके नेहमहँ ।

सुनि मुनिको उपदेश देवता अति ई हरषे ।
बजे दुंदुभी गगन सुमन सुर-तरु के बरषे ॥
मुनि पुनि इच्छा करी तीर्थ मैंने नहि कीन्हे ॥
तुरत तीर्थ तहँ सुरनि बुलाये सब मुनि चीन्हे ॥
न्हाय धोय निश्चिन्त ह्वै, सब तीरथ करि भक्तितें ।
बैठे तनु त्यागन निमित, तप संयमकी शक्तितें ॥

परब्रह्ममहँ चित्त लीन कीन्हो मुनि अपनों ।
यह सब दृश्य प्रपंच लख्यो सबरो जस सपनों ॥
मनकूँ करि एकाग्र तत्त्वमय दृष्टि करी तब ।
संयत कीन्हे प्रान करी बसमहँ इन्द्रिय सब ॥

सुरनि बुलाईं सुरभि सब, चाटि माँस बिनु तनु कियो।
यों परकारजके निमित, मुनिने निज तनु तजि दियो॥

सूखी हड्डी रहीं तेजयुत अतिशय मनहर।
रच्यो बज्र शुभ दिव्य बिश्वकरमा अति सुन्दर॥
हरिको प्रविश्यो तेज सुरनि सँग मुदित भये अति।
ऐरावतपै चढ़े सुशोभित होयँ स्वरगपति॥

परउपकारीकूँ नहीं, तनिकहु तनमहँ राग है।
धनि दधीचि मुनि धन्य तप, धनि धनि उनको त्याग है॥

इति श्रीभागवत चरितके तृतीयाहमें विश्वरूपबध वृत्रोत्पत्ति दधीचि अस्थिदान नामक दशम अध्याय समाप्त।



अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

दोहा—मुनि दधीचिकी अस्थितें, बने वज्र अरु शस्त्र।
लखि सुर अति हरपित भये, चले समर लै अस्त्र॥

छप्पय—सब सुर शस्त्र सम्हारि समरमहँ सजि बजि धाये।
उततें असुरहु अस्त्र शस्त्र लैकें चढ़ि आये॥
गदा, परिघ, शर, शूल लगे बहु शस्त्र चलन तहँ।
रनके बाजे बजें बीर बर लड़ें समरमहँ॥
देवासुर संग्राम अति, भयो भूमिपै भयङ्कर।
सुरसैना बिजयी भई, भगे असुर तजिकें समर॥

असुरनि भागत देखि वृत्र बोल्यो बर बानी।
अरे, असुरगन! समर त्यागि का मनमहँ ठानी॥
जाओगे भगि कहाँ मृत्यु तौ सँग ई आवै।
विना कालके मृत्यु कहूँ ढिँग हू नहिं जावै॥
जे जग महँ पैदा भये, ते निश्चय ई मरिङ्गे।
तो फिरि मरिकें वीरवर, क्यों न अमर यश करिङ्गे॥

असुरनिकूँ यो वृत्र धरमयुत बचन सुनाये।
किन्तु समरतें भगे एकहू नहिं मन भाये॥
असुर प्रान लै भगे देवता तिनहिँ खदेरें।
लड़ें भिड़ें नहि तऊ जाइ सुर पुनि पुनि घेरें॥
वृत्रासुर अन्याय लखि, कहे इन्द्रतें कटु बचन।
अरे, अधरमी धरम तजि, करै काहि यह कपट रन॥

है पुरुषारथ, तेज, ओज, बल तोमे सुरपति ।
तो करि मोतें युद्ध करू तेरी अब दुरगति ॥
मेरे सम्मुख आव समरको स्वाद चखाऊँ ।
अबई तोकूँ मारि मृत्युके सदन पठाऊँ ॥

यौं कहिके गर्जन करी, सुनि रव सबरे सुर डरे ।
बज्राहतके सरिस ह्वै, देव अवनिपै गिरिपरे ॥

असुर पराक्रम निरखि इन्द्रने गदा चलाई ।
तुरत बृत्रने छीनि इन्द्र गजमाहिं घुमाई ॥
ऐरावत सिर लगी फट्यो मुँह अति घबरायो ।
तिलमिलायकें हट्यो बहुत सो रुधिर बहायो ॥

व्याकुल सुरपतिकूँ लख्यो, पुनि प्रहार कीयो नहीं ।
सम्हरि समर सम्मुख भयो, बृत्र बात कड़वी कहीं ॥

बृत्र कहे—रे इन्द्र ! ब्रह्महत्यारे ! पापी ।
अबई मारूँ तोइ असुरकुलके सन्तापी ॥
अथवा मैं ई दिव्य अस्त्रतें यदि मर जाऊँ ।
तो हरि सुमिरन करत मोक्ष पदवीकूँ पाऊँ ॥

भक्त शिरोमणि असुरवर, ध्यान मग्न यों कहि भये ।
श्रीहरिने तब बृत्रकूँ समरमाँहि दरशन दये ॥

करि हरि दरशन बृत्र विनययुत बोल्यो बानी ।
दीन्हे दरसन देव जानि सेवक अज्ञानी ॥
तब दासनिको दास दयानिधि पुनि पुनि होऊँ ।
चिंतन चित नित करें, गुणनिको तव हित रोऊँ ॥

करें काज कैंकर्य कर, गुन गावै बानी सतत ।
जो कछु होवें देहतें, सो तुम्हरी सेवा निमित ॥

नहीं चाह है स्वरग ब्रह्मपद हू नहिं चाहूँ।
भूमि रसातल राज न चाहूँ ऋषि बनि जाऊँ॥
नही सिद्धि सब पाइ सिद्ध बनि जगत लुभाऊँ।
बाञ्छा चितम्हँ नहीं मुक्तिकी पदवी पाऊँ॥
है मेरे मन लालसा, चरन कमल चितमहँ धरूँ।
सेवक बनिकेँ सदाई, नित सेवा तुम्हरी करूँ॥

हरितेँ हेतु हटाय बिषय जगमाँहि फँसावे।
हरि बिनु जगके भोग मोइ तनिकहु नहिं भावेँ॥
मूरति मनमहँ मधुर मचलि माधवकी जावै।
रसना निसिदिन सुखदगीत गोबिंद के गावै॥
दयासिन्धु द्वारे खड़ो, दरस दासकूँ दीजियो।
कलपूँ कबतें कृपानिधि, कृष्ण! कृपा अब कीजियो॥

कैसे चाहूँ तुम्हे जगत उपमा कहँ पाऊँ।
तोऊ हियकी बिरह चाह सरवेश! सुनाऊँ॥
खग शावक बिनु पंख मातुकूँ जैसे चाहे।
भूखे बछरा मातु दूधहेत ज्यों डकराहैं॥
भये प्रवासी प्राणपति, नित्य निहारैं नारि ज्यों।
जीवनधन! उतसुक बन्यो, झाँकी चाहूँ नाथ त्यों॥

प्रिय आवनके दिवस प्रिया ज्यों व्याकुल होवे।
आशातेँ है मुदित निराशातेँ पुनि रोवे॥
पुनि पुनि देखे द्वार अटा चढ़ि पीव निहारे।
कबहुँ निहारे शकुन कबहुँ कछु वस्तु सम्हारे॥
छिन-छिन पल-पल निमिषमहँ, ज्यों प्रियतम सुमिरन करे।
त्यों हरि तुम्हरे नेहमहँ, नीरस हिय मेरो भरे॥

धन, जन, वैभव, स्वरग ब्रह्मपद मुक्ति न चाहूँ ।
भ्रमत जगतमहँ जनम ग्रहण करि यदि पुनि आऊँ ॥
तौ मेरी है साध नाथ ! तुम पूरी कीजौ ।
बिषयिनिको नहिं संग होय हरि यह बर दीजौ ॥

सुत कलत्र धन धाममहँ, जिनको मन आसक्त अति ।
कबहूँ मोकूँ भूलि प्रभु, तिनको दैयो संग मति ॥

सदा साधुको संग होहि मन अनत न जावे ।
कान कृष्ण की कथा सुनें रसना हरि गावे ॥
साधुनिमें ई' रहूँ सीथ परसादी पाऊँ ।
पादोदक शिर धारि प्रेमतें चरन दवाऊँ ॥

प्रभु पूजामहँ निरत जे, कथा कीरतन करहिं नित ।
तिन हरिभक्तनिके चरन, महँ मेरो अति रमे चित ॥

इस्तुति करिके वृत्र उठ्यो सुरपतिपै धायो ।
गर्जन तर्जन करी फेंकि तिरसूल चलायो ॥
इन्द्र न विचलित भये बाहु निज रिपु की काटी ।
मार्यो अरिने परिघ इन्द्रकी ठोढ़ी फाटी ॥

वज्र हाथतें गिरि पर्यो, सुरपति लज्जित ह्वै रहे ।
नहीं उठायो शस्त्र जब, वृत्र वचन तब प्रिय कहे ॥

इन्द्र ! करो मत सोच वज्रकूँ फेरि उठाओ ।
सदा कौनकी भई बिजय यह मोइ बताओ ॥
यश अपयश, जय अजय, दुःख सुख रहे संगमहँ ।
रोग शोक भय हर्ष होहिं नहिं कवन अङ्गमहँ ॥

युद्ध द्यूतक्रीड़ा सरिस, दोउनिमहँ को कब थके ।
जय होवे या पराजय, निश्चय कोउन कहि सके ॥

सुनी भक्तिमय मधुर वृत्रकी सुरपति बानी।
बोले आदर सहित—अहो दानव ! तुम ज्ञानी॥
सब जीवनिकूँ विश्वमोहिनी मोहै माया।
असुर होहि अस कृष्ण करी कस तुमपर दाया॥

तुम विजयी हौं पराजित, तोऊ सम्मुख लरुङ्गो।
छुद्र स्वरग सुखके निमित, समर असुर बर करुङ्गो॥

तुम कृतार्थ ह्वै गये भक्ति भगवतकी पाई।
परउपकारक असुर ज्ञान दै करी भलाई॥
हम तो भैया ! विषय भोगमहँ सदा निरत हैं।
इन्द्रासनके हेतु करें हम यतन सतत हैं॥

प्रभु पदपद्मनिमहँ परे, विजय पराजय सम तुम्हें।
धरम युद्ध कर्त्तव्यहित, करनो चहिये अब हमें॥

यों कहि दोऊ भिरे परिघ अरु वज्र घुमावें।
क्रोधित ह्वैकें फिरें परस्पर शस्त्र चलावें॥
वृत्र चलाई शक्ति बीच महँ सुरपति डाटी।
मार्‌यो तकिकें वज्र बाहु दूसरिहू काटी॥

असुर भुजा दोऊ कटीं, परवत सम घूमत फिरत।
भीषन मुखकूँ फारिकें, इन्द्र ओर दौर्‌यो तुरत॥

ऐरावतके सहित लीलि लीन्हे सुरपति जब।
असुर उदरमहँ इन्द्र गये सुर दुखित भये सब॥
नारायन शुभ कवच अमरपति कीयो धारन।
बाल न बाँको भयो, नाम श्रीहरिके कारन॥

वृत्रासुरके पेटकूँ, फारि इन्द्र बाहर भये।
नारायन महिमा लखी, सुर मुनि विस्मित ह्वै गये॥

आये बाहर इन्द्र असुरके सिरकूँ काटै।
बज्र वेगतें घिसैं असुरकी अस्थि न फाटै॥
सबरी शक्ति लगाय कर्‌यो धर सिरतें न्यारो।
एक बरष यों लग्यो मर्‌यो पुनि वृत्र विचारो॥

मुनि दधीचिकी अस्थितें, बज्र बन्यो सुररिपु मर्‌यो।
अब चरित्र अगिला सुनो, जो दधीचि पत्नी कर्‌यो॥

लै दधीचिकी अस्थि गये सुर अति हरषाईं।
उत मुनि पत्नी न्हाइ धोइ आश्रममहँ आईं॥
सब सुनि काट्‌यो पेट पुत्र तजि सती भईं पुनि।
पीपल पाले पुत्र भये ते पिप्पलाद मुनि॥

पिप्पलाद सुनि सुरनिपै कोप शंभुबरतें कियो।
सुरनि शरन शिवकी लई, रुद्र शान्त मुनि करि दियो॥

इति श्री भागवतचरितके तृतीयाहमें वृत्र चरित नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण बारहवें दिवसका विश्राम]



अथ द्वादशोऽध्याय :

[१२]

त्वष्टा दूसर तनय वृत्र यों मार्यो सुरपति ।
वृत्रासुरके मरत भये मुनि देव सुखी अति ॥
मार्यो ब्राह्मण पुत्र ब्रह्महत्या पुनि आई ।
चाण्डालिनि अति मलिन इन्द्रके ऊपर धाई ॥
डरे इन्द्र तहँते भगे, अति व्याकुल मनमहँ भये ।
मिली शरन जब कहूँ नहिं, मानस सरमहँ घुसि गये ॥

कमलनालमहँ रहैं ब्रह्म हत्यारे शचिपति ।
मिलै न तहँ आहार भई सुरपतिकी दुरगति ॥
स्वरग इन्द्र बिनु भयो नहुष सुरइन्द्र बनाये ।
पाइ स्वर्ग सम्पत्ति मनुज भूपति बौराये ॥
इन्द्रानीतें कहे नृप, पौलोमी अब हठ तजो ।
मैं शासक हूँ स्वरगपति, इन्द्र मानि मोकूँ भजो ॥

नये इन्द्र की बात शची सुनि अति घबराई ।
चिन्तित व्याकुल दुखी डरी सुरगुरु ढिँग आई ॥
गुरु प्रसन्न ह्वै युक्ति अनौखी ताहि बताई ।
कामी विषयासक्त नृपतिपै बात पठाई ॥
ऋषि कधनि शिबिका धरें, चढ़ि मम ढिँग आवें अवसि ।
तो निज पतिके ई सरिस, बरन करूँ तिनकूँ हरषि ॥

दोहा—सुनि संदेशो शचीको, ऋषि मुनि लिये बुलाय।
कहन लग्यो अति मुदित ह्वै, शिविका चलो उठाय॥

छप्पय—चढ़्यो पालकी नहुष सहस मुनि ताहि उठावें।
सर्प सर्प नृप कहे अनसुनी ऋषि करि जावें॥
अति जब करिबे लग्यो कोप कुम्भज मुनि कीन्हों।
दुष्ट होइ तू सर्प शाप मुनिवरनें दीन्हों॥
चट्ट पट्ट अजगर भयो, औंधे मुखतें गिरि पर्यो।
तुरत पापको फल चख्यो, इन्द्राणी प्रति जस कर्यो॥

भयो पापको अंत गये सब मिलिकें ऋषि मुनि।
देवराजको लाइ करायो अश्वमेध पुनि॥
ज्यों कुहरा नसि जाय उदित दिनके ह्वैवेतें।
पाप पुञ्ज त्यों नसें नाम हरिको लैवेतें॥
इन्द्र नाकपति पुनि भये, त्रिभुवन अति हरषित भयो।
यों दधीचिको त्याग अरु, वृत्रासुरको वध कह्यो॥

यह पवित्र अति चरित सुखद शिक्षाप्रद भारी।
पढ़ें सुनें नर नारि होहिं ते अवसि सुखारी॥
मुनि दधीचि को त्याग वृत्रकी भक्ति अनूठी।
ये ही द्वै हैं सार और जग चरचा झूठी॥
शौनक बोले—सूत! कस, वृत्र असुर देही लही।
सूत कहे—शुकने कथा, नृपति प्रश्न पै सब कही॥

कहे परीक्षित-प्रभो! वृत्र को पूर्व जनममहँ।
क्यौं दृढ़ हरि पद भक्ति रह्यो क्यौं अटल धरममहँ॥
शुक बोले—सुनु भूप! नृपति इक चित्रकेतु बर।
शूरसेनको ईश साधुसेवी सुठि सुन्दर॥
विद्या रूप उदारता, संपति सब अगनित भरीं।
नृपकी रानी दश अयुत, हतीं कुलवतीं सुंदरीं॥

किन्तु न तिनके पुत्र हतीं सब बन्ध्या रानी।
यातैं नृपके चित्त माहिँ नित रहै गलानी॥
सब सुख विषवत लगैं भार सम शासन लागत।
निसिदिन चिन्ता रहै भूपकूँ सोवत जागत॥
दान, धरम, व्रत, नियम जप, करे पुत्रहित बहु नृपति।
किन्तु न सतति सुख लह्यो, तातैं चिन्तित भये अति॥

एक दिना नृप भवन अङ्गिरा मुनिवर आये।
करि सेवा सतकार कनक आसन बैठाये॥
पूछी मुनि कुशलात नृपतिकी नीति बताई।
पुनि पूछें—नृप! रह्यो कमल मुख क्यौं मुरझाई॥
चित्रकेतु बोले—विभो! कहूँ कहा प्रभु विज्ञ हैं।
तप समाधि अरु योगतैं, आप नाथ! सरवज्ञ हैं।

निष्कल्मष हैं सन्त आवरन तम नहिं तिनकूँ।
भूत भविष्यत वर्तमान दीखें सब उनकूँ॥
बड़भागी ते गृही सन्त जिनके घर आवें।
करि पूजा स्वीकार विष्णु-परसादी पावें॥
होहिं दुरित दुख दूरि सब, करे कृपा यदि ते कहीं।
घटघटकी जानत सकल, अविदित तिनकूँ कछु नहीं॥

तोऊ आज्ञा मानि दुःखको हेतु बताऊँ।
प्रजानाथ सम्राट जानेश्वर हौ कहलाऊँ॥
सब सुख मेरे यहाँ किन्तु सुत एक न स्वामी।
ताईं ते अति दुखी रहूँ मुनि अन्तरयामी॥
प्रभु सर्वज्ञ समर्थ हो, कृपा कृपानिधि करो तुम।
देउ एक सुत मनोहर, बनें लोक परलोक मम॥

करि न सकें का संत बिष्णु हित जे ब्रत धारें।
भाग्य अन्यथा करें रेखपै मेखहु मारें॥
हरि जिनके आधीन भाग्य तिनको है चेरो।
संत दरस जब भये भयो तब सब हित मेरो॥
सात जनम संतति नहीं, नारदतें बच हरि कहे।
संत कृपाते सात सुत, भक्त सेठ सो ऊ लहे॥

चित्रकेतु सुनि बिनय दया मुनिबरकूँ आई।
त्वष्टाके हित खीर ब्रह्मसुत सबिधि बनाई॥
यजन कर्यो जो बची बड़ी महिषीकूँ दीन्हीं।
जाते होवे पुत्र अङ्गिरा आयसु कीन्हीं॥
रानी कृतद्युति मुदित अति, राजा हू हरषित भयो।
खाइ खीर मुनिकृपाते, गर्भ नृपति पत्नी रह्यो॥

शुक्ल पक्षको चन्द्र बढै ज्यों बढ़ै गर्भ त्यों।
त्यों-त्यों आनँद बढ़ै गर्भ दिन बीतें ज्यों-ज्यों॥
समय पाइके पुत्र भयो सब लोग सिहाये।
राजमाँहि सरबत्र नगर पुर बजत बधाये॥
सुनत पुत्रके जन्मकूँ, अति आनन्दित नृप भये।
गौ, धन, बर भूषन, बसन, पुर पत्तन विप्रनि दये॥

दिन दिन बढ़्यो नेह गेह सुत तनिक न त्यागें।
नहिं औरनि घर जाइँ कृतद्युति महल बिराजें॥
सौतिनि मन अति डाह पुत्र नहिं शत्रु भयो है।
जबतें जनम्यो दुष्ट छीनि पति प्रेम लयो है॥
जा कंटककूँ काटिकें, निष्कंटक हम होहिं कस।
विष दै मारौ शत्रुकूँ, सब मिलि निश्चय कियो अस॥

भई सवनिकी बुद्धि भ्रष्ट ईर्ष्या मन आई।
सोवत शिशुकूँ एक दिवस विष दियो खवाई॥
मर्यो सौतिको पुत्र सवनि मन सुख अति होवे।
इत कृतद्युति निश्चिन्त कुमर मम सुखतें सोवे॥

कच्ची नींद जगे लला, नहिं अनवन मन होहि कहिं।
ममता बश अस सोचिकें, सुतहिं जगावत मातु नहिं॥

देर बहुत जब भई मातु मन भय अति लाग्यो।
नित तो सोवत नेक आज अब तक नहिं जाग्यो॥
धाइ पठाई तुरत ललाकूँ लै आ प्यारी।
धाइ जाइ तहँ मृतक चीख सुतकूँ लखि मारी॥

हाय! अभागिनि लुटि गई, हाय! दई जिह का भई।
हा! मम छौंना लाल! सुत! यों कहि दासी गिरि गई॥

दासीकूँ लखि विकल गई तहँ भगिकें रानी।
मृतक वत्स लखि मातु धेनु सम गिरि डकरानी॥
करुना क्रन्दन सुन्यो सेविका सब घबराईं।
कपट वेदना प्रकट करत रानी सब आईं॥

समाचार भूपति सुन्यो, हृदय विदारक अति विकट।
पहुँचे अन्तःपुर तुरत, गिरत परत सुत शव निकट॥

फटै कृतद्युति हृदय रुदन भूपतिको सुनि सुनि।
अस्त व्यस्त तनु भयो भूमिपै लोटें पुनि पुनि॥
कज्जल कालिख मिले अश्रु मोचन करि रोवे।
चन्दन चर्चित पीन पयोधर सतत भिगोवे॥

अहो बिधाता निरदयी, तोइ दया नहि नेकहूँ।
कहूँ मिलावै प्रेम तें, बिछुरावे दुखतें कहूँ॥

हाय कहा जिह भयो कुमरने नातो तोर्यो।
छल करि यमपुर गयो भाग्य मेरो पुनि फोर्यो॥
बेटा! मोकूँ छोरि अकेलो मति तू जावै।
दूर देशमहँ दूध तोइ को तहाँ पिआवै॥
बेटा! सोवत आज तो, देरी तोकूं ह्वै गई।
यों अतिशय सुत शोकमहँ, रानी बहु व्याकुल भई॥

रानी राजा शोक सिन्धुमहँ डूबे पुनि पुनि।
आये दैवे धीर अङ्गिरा अरु नारद मुनि॥
देखे बेसुधि भूप उठैं नहिं बिप्र उठावें।
कहि कहि सुन्दर युक्ति उभय मुनि यों समुझावें॥
जीव काल क्रमतें मिलै, समय पाय बिछुरे तुरत।
रचि माया मायेश पुनि, बालक वत क्रीड़ा करत॥

हैं निरीह अखिलेश अजनमा भूमा श्रीहरि।
शिशु सम खेलें सदा योग माया आश्रय करि॥
रचें जीवतें जीव जीवतें पुनि मरवावें।
कबहूँ जग करि जगें कबहुँ लय करि सो जावें॥
नहि त्रिकाल बाधित अजर, अमर नित्य प्रभु जगत् पति।
तजि तिन पद भ्रम वश करहिं, अज्ञ जगतमहँ मोह रति॥

सुनि सचेत नृप भये मुनिनि सन बोले बानी।
को हैं दोऊ आप परम तेजस्वी ज्ञानी॥
कहे अङ्गिरा—भूप! अङ्गिरा मोकूँ जानों।
ब्रह्माजीके पुत्र इन्हे नारद मुनि मानों॥
ज्ञान देन आये उभय, आप शोक संतप्त हैं।
शोभे नहिं अस मोह भ्रम, जे नर भगवत् भक्त हैं॥

को कलत्र को मित्र पुत्र को का को माई।
जग के सब सम्बन्ध अन्तमहँ अति दुख दाई॥
सम्पति सब ऐश्वर्य, विषय सुख, राज, कोष, धन।
पृथिवी, सेना, भृत्य, सुहृद, आमात्य बन्धुगन॥
स्वप्न समान अनित्य ये, शोक, मोह भय देहिं दुख।
तजो द्वैत भ्रम जालकूं, तब पाओ नृप नित्य सुख॥

कह्यो अंङ्गिरा ज्ञान फेरि बोले नारद मुनि।
देहुँ मंत्र उपनिषद ताहि नृप सावधान सुनि॥
जगके सब सम्बन्ध संग तनके ई जावें।
माता पत्नी बने पिता पुनि पुत्र कहावे॥
यों कहि मृतक कुमारकूं, मुनि जीवित सो करि दयो।
दुखित भूपतें जीवने, आत्मज्ञान अति प्रिय कह्यो॥

इति श्री भागवत चरितके तृतीयाहमें चित्रकेतुचरित नामक बारहवाँ अध्याय।

[पाक्षिक पारायण षष्ठ दिवस विश्राम]



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

नारद बोले-जीव ! पिता माता ये तेरे।
शोकाकुल अति भये पकरि पग रोवें मेरे॥
जीवित ह्वै कें राज्य बिषय सब भोगो सुखतें।
अति ई दोऊ बिकल छुड़ाओ इनकूँ दुखतें॥
सुनि हँसि बोल्यो जीव वह, काके को पितु मात हैं।
सब मुँह देखेके स्वजन, सुहृद बन्धु सुत तात हैं॥

जीव नित्य अति सूक्ष्म प्रकाशक स्वयं निरंजन।
मायाके गुण रोपि करे योगिनि मनरंजन॥
मायिक गुण सम्बन्ध भयो दीखे मदमातो।
जब तक रहे शरीरमाँहि तब तक ई नातो॥
अगनित योनिनिमहँ भ्रमे, काकूँ निज पर कहि गने।
कबहूँ नर, पशु, देव बनि, पिता, पुत्र, भ्राता बने॥

निज परतें है रहित आतमा नित्य निरंतर।
अक्रिय त्रिगुन विहीन सर्बगत अजर शुद्धतर॥
साक्षी सर्वस्वतन्त्र दोष गुनहूतें न्यारो।
कर्ता भोक्ता नहीं दीपवत करहि उजारो॥
मृतकुमारको आतमा, यों कहि अन्तरहित भयो।
सुनी ज्ञानमय बात जब, तब नृपको भ्रम भगि गयो॥

जिन रानिनि विष दयो तिननि हू अति दुख कीन्हों।
पूर्वजन्मको बैर बिमाता बनिके लीन्हों॥
मुनिके पकरे पाइ पाप निज सत्य सुनायो।
सब सुनि प्रायश्चित्त सबनितें सविधि करायो॥

हतप्रभ लज्जित नारि सब, यमुनाजीमें न्हाइकें।
पछिताईं कल्मष रहित, भईं कृष्ण गुन गाइकें॥

राजन्! सुख दुख देइ न कोई कबहुँ अकारन।
पूर्व बैर करि यादि करे उच्चाटन मारन॥
चींटी पूरव जनम माहिं ये सबई रानी।
क्रीडामहँ अति उष्ण कुमरने छोड्यो पानी॥

उष्ण तोयके परत ई, ये सबकी सब मरि गईं।
चित्रकेतुके भवनमहँ, ते ई सब रानी भईं॥

विष दै सुतकूँ भयी ग्लानि मन अति पछितायो।
मुनि चरननिमहँ जाइ सबनि निज पाप बतायो॥
बालक वध अघ महा भईं हतप्रभ सब रानी।
दुखित अङ्गिरा निकट कहीं सब सत्य कहानी॥

समुझी मनि भवितव्यता, व्रत बताइ दीयो द्विजनि।
भेजीं ते यमुना निकट, प्रायश्चित कीन्हों सबनि॥

रानिनि कीन्हो जाय बालहत्या नाशक व्रत।
नारद तें लै मंत्र नृपति घरतें निकसे इत॥
केवल जल पी रहे सात दिन मन्त्र जपत नित।
शोक मोह सब गयो लग्यो संकरषनमहँ चित॥

असन शयन तजि भूप वर, शेष चरन दरशन निमित।
जगकी सुरति बिसारिकैं, करत रहे इस्तुति सतत॥

संकर्षण-स्तुति

जय जय सकर्षन, सब जग कारन, करहुँ प्रनाम अनंता ।
जय चतुरव्यूह वर, भवभय दुखहर, ज्ञान रूप भगवन्ता ॥
नहिं द्वैत दृष्टि तब, ब्रह्मरूप सब, प्रणतपाल निरद्वन्दा ।
मन इन्द्रिय स्वामी, अन्तरयामी, जयति सच्चिदानंदा ॥
मन बानी जावें, अन्त न पावें, लौटें बिनु ही पायें ।
नहिँ नाम न रूपा, सत्य स्वरूपा, तिनिचरननि सिर नायें ॥
जिनितें जग उपजै, नित नित विकसै, जो संहारैं अन्ता ।
जग ओत प्रोत हैं, शक्ति-स्रोत हैं, तिनि प्रनमे भगवन्ता ॥
जो गगन सरिस प्रभु, व्यापि रहे विभु, मन बुधि करन न पावें ।
नहिं प्रानहु परसें, चक्षु न दरसें, शेष चरन सिर नावें ॥
जय नमो नमस्ते, नमो भगवते, महापुरुष जय देवा ।
जिन चरन कमल वर, सेवित सुखकर, करहिँ असुर सुर सेवा ॥
जय जय धरनीधर, जय विश्वम्भर, पाँइ न सुर मुनि अन्ता ।
तव चरन मृदुलतर, सुखकर अघहर, नित नित सेवहिँ सन्ता ॥
जय जय सकरषन, सब जग कारन, करहुँ प्रनाम अनंता ।
जय चतुर व्यूहवर, भवभय दुखहर, ज्ञान रूप भगवन्ता ॥

छप्पय—चित्र केतुको चित्त चरन संकर्षन लाग्यो ।
अव्याहत गति भई आवरन तम को त्याग्यो ॥
सात दिवसमहँ सिद्ध भये संशय सब भागे ।
कर्यो निरन्तर जाप भाग भूपतिके जागे ॥
विद्याधरपति ह्वै गये, मनुज देह ही तें नृपति ।
पहुँचे सकर्षन निकट, बढ़ी योगतें विपुलगति ॥

कनक मुकुट मणि जटित फणनि पै चहुँदिशि चमकें।
गौर बरनपै परम रम्य नीलाम्बर दमकें॥
कंकणादि कटिसूत्र श्रवनितें शोभा अद्भुत।
सुधा पानतें अरुन नयन अति ईं आभायुत॥

श्रीअनंत दरशन करत, बढ़ी हृदयमहँ भक्ति अति।
गद् गद् बानीतें विनय, प्रेम सहित कीन्हीं नृपति॥

समदरशी जय अजित! दयासागर! सुरपूजित।
उत्पति थिति अरु प्रलय करौ लीलातें नितनित॥
आदि मध्य अरु अन्तमाहिं तुम ही सकरषन।
सब कछु पायौ तिननि भये जिनकूँ तव दरशन॥

स्वयं तेज ज्ञानाग्नि तुम, करहु वासना भस्म सब।
कैसे अङ्कुर बीजमहँ, उठै फेरि जरि जाय जब॥

तुमने दीयो देव भागवत ज्ञान मुनिनिकूँ।
करि लीये सुर असुर ब्रह्मसुत शिष्य सबनिकूँ॥
दिव्य भागवत धरम मोह ममता सब नाशै।
करै अविद्या नाश भक्त हिय ज्ञान प्रकाशै॥

कर्‌यो भागवत धरम को, नाथ! निरूपन अति सुखद।
होवै समदरशीपनों, सब जीवनिकूं लाभप्रद॥

मङ्गलमय अति मधुर नाम जे जन उच्चारैं।
होहिं श्वपच अति पतित तुरत तव धाम सिधारैं॥
जगत प्रकाशक, सत्य परमगुरु नित्य निरञ्जन।
प्रेरक, प्रभु, परमेश, करें पद पद्मनि वन्दन॥

भूमण्डलकूं शीश पै, सरसों सम धारन करैं।
सहसवदन तिन शेषके, पुनि पुनि हम चरननि परैं॥

चित्रकेतु को बिनय पाठ सुनि शेष सिहाये।
तत्वज्ञान मय गूढ़ बचन हितकर समुझाये॥
दुरलभ है नरदेह भाग्यतें कोई पावे।
पाइ करें नहिं भक्ति अन्तमहँ ते पछितावें॥
ज्ञान दयो श्रीशेषने, भक्त प्रवर भूपति भये।
पुनि करि सेवक श्रम सफल, अन्तरहित हरि है गये॥

हरि अन्तरहित भये रहे बिद्याधर बिस्मित।
भौचक्के से होइ निहारें पुनि पुनि उत इत॥
करि धरनीधर दरश मनोरथ सफल भये सब।
मिट्यो सकल संताप कृतारथ भये भूप अब॥
संकरषन जिहि दिशामहँ, दैसिख अन्तरहित भये।
करि प्रनाम तिहि दिशाकूँ, चढ़ि बिमानमें उड़ि गये॥

अष्ट सिद्धि नव निद्धि नृपतिके निकट बिराजें।
बिद्याधरपति भये तेजमहँ रबि सम भ्राजें॥
एक दिना कैलास गये शिव शिवा संग महँ।
बैठे लैके अङ्क मिलाये अङ्ग अङ्ग महँ॥
हँस्यो देखि शिव सन कहे, बचन कठिन अति ब्यङ्गतें।
तजि लज्जा लिपटे रहे, शम्भु शिवाके अङ्गतें॥

खिलखिलाय हर हँसे नृपति के ब्यङ्ग बचन सुनि।
निरखि शम्भुरुख मौन रहे सुर असुर देव मुनि॥
किन्तु सहन नहिं भये कुपित अति भई भवानी।
जान्यो यह है धृष्ट नीच अतिशय अभिमानी॥
रोष सहित बोलीं शिवा, हमरे गुरु आए नये।
ब्रह्मा, हरि, नारद, कपिल, ये सबतो बूढ़े भये॥

ब्रह्मादिक नित लखें नहीं बरजें श्रीशिवकूँ ।
आये ये आचार्य धर्म समुझावन हमकूँ ॥
ऋषि मुनि साधक सिद्ध आइ हर पद सिरनावें ।
विद्याधर ये तिन्हे नियम आचार सिखावें ॥
अपराधी वाचाल अति, मानी परम अशिष्ट है ।
जाते जिह क्षत्रिय अधम, दण्डनीय अति दुष्ट है ॥

यों कहि दीयो शाप शिवाने शिक्षाके हित ।
अधम आसुरी योनि पाइ फल भोगें परिमित ॥
करै न शिव अपराध अधिक अपमान कहीं तू ।
विष्णु चरणकी शुद्ध दासता योग नहीं तू ॥
शोक मोह नहिं कछु भयो, शम्भु प्रियाको शाप सुनि ।
वचन सती सन यह कह्यो, चित्रकेतु पद वन्दि पुनि ॥

मातु तुम्हारो शाप हरषयुत ग्रहण करूँ मैं ।
परम अनुग्रह मानि शीश निज जननि ! धरूँ मैं ॥
शाप अनुग्रह देव नहीं स्वेच्छाते देवें ।
करे पूर्व जस कर्म उनहिंकूँ सब जन लेवें ॥
चक्र सरिस संसारमहँ, सुख दुख आवत भाग्य वश ।
शाप अनुग्रहके निमित, करम करे नर है अवश ॥

शाप अनुग्रह कन्हु विनय यहि हेतु करौं नहि ।
होहि भोग को नाश भाग्य वश दुःख आदि सहि ॥
अविनय मेरी समुझि मातु तुम कुपित भईं अति ।
तातें विनती करौं और कछु तुम समुझो मति ॥
सती शंभु पद वंदिकें, चित्रकेतु पुनि चलि दये ।
सती सभासद सभाके, समता लखि विस्मित भये ॥

हरि हँसि बोले—शिवा ! लखी महिमा भक्तिनिकी ।
सदा एक मति रहे स्वरग नरकनिमहँ इनकी ॥
जो हैं भगवतभक्त कहो तिनकूँ का को भय ।
तीनि कालमहँ सदा निहारें जगकूँ प्रभुमय ॥
देइ न सुख दुख दूसरो, भ्रम वश नरपशु कहत हैं ।
मायेके बश जीवने, करे करम सो सहत हैं ॥

भक्तनिके जो दास दोष देखे नहिं जनके ।
अनुचित यदि कछु करें करम निन्दें नहिं उनके ॥
ऋषि मुनि सुर नर चरनकमल पूजे नित जिनके ।
मेरे हू जो इष्ट नृपति अनुगत हैं तिनके ॥
गत विस्मय ह्वै नृप गये, घोर शाप दीयो इन्हें ।
जे अच्युतप्रिय भक्त हैं, नहीं अशक्य है कछू तिन्हे ॥

यों महिमा गिरिजेश विष्णु भक्तनिकी गाई ।
सुनि अति सहमी शिवा चित्तमहँ समता आई ॥
बोले शुक—अभिमन्युतनय ! तब ई त्वष्टा मुनि ।
कर्यो इन्द्रपै कोप मरण सुत विश्वरूप सुनि ॥
चित्रकेतु वे ई नृपति, असुर योनिकूँ पाइकैं ।
भये प्रकट दक्षिण अनल, तें मुनि मखमहँ आइकैं ॥

जे पवित्र यह चरित वृत्रको सुनें सुनावें ।
बडभागी ते मनुज परमपद निश्चय पावें ।
कहे उत्तरातनय अदितिके शेष वंशकूँ ॥
प्रभो ! सुनावें अवसि कथाके बचे अंशकूँ ॥
शुक बोले—सविता वरुण, मित्र विधाता उरुक्रम ।
धाता भगके वशकूँ, कहूँ सुनेतें भजें भ्रम ॥

इति श्री भागवतचरितके तृतीयाहमें वृत्रासुर पूर्वजन्मवृत्त नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।



चित्रकेतुका शिवजी पर आरोप पृ० २६२



हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद पृ० २७६

अथ चतुर्दशोऽध्याय :

[१४]

सविता, पत्नी पृश्नि जने तिनि सब यज्ञादिक।
भगकी पत्नी सिद्धि जने सुत तीनि सुता इक॥
धाता पत्नी कुहू सिनीवाली राका अरु।
अनुमति चौथी पत्नि भये सुत सबके सुन्दरु॥
साय प्रातः दर्श अरु, पूर्णमास सुत अति विमल।
क्रिया विधाताकी बहू, जने पुरीष्यादिक अवल॥

वरुण चर्षणीमाँहिं भये भृगु मुनि पुनि तिनतें।
सुत वसिष्ठ बाल्मीक अगस्तहु जनमे इनतें॥
मित्र रेवती नारिमाहिं सुत तीनि भये वर।
इन्द्र शचीतें ऋषभ जने मीढुस जयन्त सुर॥
बामन पत्नी कीर्तिने, बृहच्छ्लोक शुभ सुत जने।
श्रीउपेन्द्र बलि यज्ञमे, छोटे से बौना बने॥

हिरनकशिपु हिरनाच्छ भये दिति सुत खल भारी।
हिरनकशिपुकी बहू कयाधू अति पतिप्यारी॥
अनुह्लाद, सह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद जने सुत।
सुता सिंहिका भई जासु सुत भयो विप्रचित॥
जन्यो पंचजन असुरकूँ, कृतिते सुत संह्लादने।
इल्वल वातापी जने, धमनि पत्नितें ह्लादने॥

अनुह्लाद की नारि भई सूर्म्या सुकुमारी।
तातें द्वै सुत भये बली सुररिपु अतिभारी॥
प्रथम वाष्कल भयो द्वितिय महिषासुर मानी।
चढ़्यो स्वर्गपै बली भगे सुर तजि रजधानी॥
स्वर्ग छोड़ि सुर भगि गये, महिषासुर सुरपति भयो।
दुखित पराजित सुरनि मिलि, वृत्त जाय विधि सन कह्यो॥

महिषासुरकी सुनी बात विधि हू घबराये।
लैकें देवनि संग तुरत श्रीहरि ढिंग आये॥
सम्मति करिकें तेज निकार्यो सबने निज निज।
दुर्गा देवी भईं शक्ति दश दश धारे भुज॥
गर्जीं तर्जीं चंडिका, आयुध लै रिपु ढिंग गईं।
महिषासुरकूँ मारि कें, जगत माँहि पूजित भईं॥

दुर्गा देवी दया करहु दुख दुरित नसाओ।
शक्तिहीन संतान परीं माँ आय जगाओ॥
भये भवानी भीत आय भय भूत भगाओ।
खड्ग हाथमहँ देहु युद्धका पाठ पढ़ाओ॥
कलि कराल कलुषित करहि,करि कल्यान कपर्दिनी।
मेटो ममता मोहकूँ, महिषासुर मदमर्दिनी॥

हिरनकशिपु लघु पुत्र भये दैत्यनि कुलभूषन।
भक्त मुकुट प्रह्लाद भये तिनि पुत्र विरोचन॥
तिनि सुत दानी परम भये वलि जग विख्याता।
जिनने कीये विष्णु द्वाररक्षक पुरत्राता॥
वलि असनामहँ जने सुत, शत सबके सब श्रेष्ठ हैं।
तिनि सबमहँ शिवभक्त अति, बाणासुर ही ज्येष्ठ हैं॥

उनंचास जे मरुत पुत्र तेऊ दितिके हैं।
किन्तु भये नहि दैत्य मरुद् गण सुर सब ते हैं॥
राजा पूछें—दैत्य देवता भये बिभो ! क्यों।
असुर भावकूँ त्यागि राग सुरपति कीयो क्यों॥
श्रीशुक बोले—भूपवर ! दितिके द्वै जब मरे सुत।
शत्रु इन्द्र बधके निमित, पति सेवामहँ भई रति॥

मन्द। मन्द मुसकाइ मधुर बर बोलै बैंना।
कजरारे अनुराग नयनके छोड़ें सैंना॥
प्रतिपल पति मुख जोहि भावकूँ समुभि सयानी।
करै काज अनुकूल सदा ई रहै सिहानी॥
त्रिया चरित समुझ्यो नहीं, मुनि मोहित से ह्वै गये।
सुठि स्वभाव सेवा निरखि, अति प्रसन्न दितिपै भये॥

बोले दितितें—प्रिये ! माँगु बर इच्छित मोतें।
तव सेवा लखि तुष्ट भयो भामिनि हौ तोतें॥
हैं प्राननितें अधिक पियारे निजपति जिनिकूँ।
तब जगमहँ फिरि कौन बस्तु है दुरलभ तिनिकूँ॥
माँगे बर हिय बज्र करि, दिति लखि पति अति प्रीतियुत।
जो मारे देवेन्द्रकूँ, अमर एक अस देहिं सुत॥

दितिके बरकूँ सुनत भये व्याकुल कश्यप मुनि।
हाय कहा हौं कर्‌यो भयो परबश सोचें पुनि॥
नारिचरित अतिप्रबल बयन सर बड़े कँटीले।
कमल कुसुमके सरिस मधुर मुख बैंन रसीले॥
छुर धाराके सरिस हिय, जो चाहे जे करि सकैं।
क्रुद्ध भये पति पुत्रके, प्राननिकूँ हू हरि सकैं॥

सोचि कहे-व्रत एक बताऊँ तोइ पुसवन।
करै ताहि निरविघ्न होहि इच्छित सुत शोभन॥
होहि तनिक हू छिद्र फेरि सुत सुरप्रिय होवै।
यदि ह्वैके अपवित्र जूठ मुखतें तू सोवै॥

सदाचार पालन करै, कदाचारकूँ त्यागिकें।
व्रत वैष्णव यदि वर्ष भर, करै समयपै जागिकें॥

यों कहि बिधिके सहित बतायो मुनिवरने व्रत।
धार्‌यो दितिने तुरत लगायो निज हितमहँ चित॥
मौसीको संकल्प जानि सुरपति घबराये।
परे सोचमें अधिक तुरत तिहि आश्रम आये॥

छिद्रान्वेषनके निमित, वेष बदलि बालक बने।
करे टहल नित कपटते, सदा रहे चित अनमने॥

लावें नित प्रति फूल, मूल, जल, फल, अरु अङ्कुर।
छिद्रान्वेषी बने रहें सेवामहँ तत्पर॥
बिनु पग धोये साँझ समय सोई इकदिन दिति।
व्रतको छिद्र निहारि उदरमहँ प्रबिशे सुरपति॥

करे बज्रतें गर्भके, सात खंड पुनि रुदन सुनि।
मा—रुद् कहि मारुत् भये, एक एकके सात पुनि॥

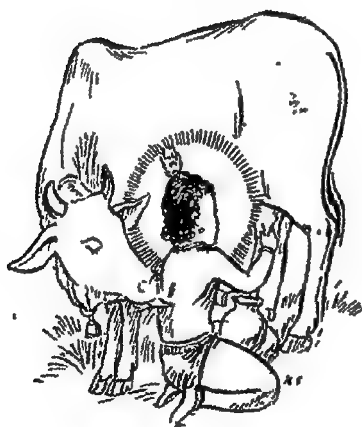
उनंचास सुत भये इन्द्र प्रकटे सुरपालक।
दिति पूछें—व्रत कर्‌यो एक हित क्यौं बहु बालक॥
इन्द्र आदितें अन्त सत्य सब वृत्त बतायो।
छद्‌म वेष क्यौं धर्‌यो बिना छल कहि समुझायो॥

सुनि दिति अतिसन्तुष्ट ह्वै, बोलीं काट्‌यो गर्भकूँ।
होहिं बन्धु तव मरुद्‌गण, सब जाओ मिलि स्वर्गकूँ॥

दिति आयसु सिर धारि मरुद्गण स्वरग सिधाये।
इन्द्र भये अतिमुदित प्रान फिरितें जनु पाये॥
यों दितिके ये पुत्र इन्द्र पार्षद कहलाये।
मातृ दोषकूँ त्यागि असुर कुलतें बिलगाये॥

परम पुण्यप्रद मरुद्गन, को चरित्र तुमतें कह्यो।
अन्य प्रश्न पूछो नृपति ! यह प्रसंग पूरन भयो॥

इति श्रीभागवत चरित के तृतीयाहमें मरुत् चरित नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त



अथ पञ्चदशोऽध्याय :

[१५]

अब पूछें पुनि नृपति—प्रभो ! शंका इक भारी।
समदरसी भगवान सुहृद सबके सुखकारी॥
तब क्यौं देवनि हेतु फेरि दैत्यनिकूँ मारें।
क्यौं अमरनिको पक्ष लेहिं असुरनि सहारे॥

नारायन के गुननि प्रति, शंका मो मनमहँ भई।
ताहि नाश भगवन् ! करें, बात हिये की कहि दई॥

हँसिबोले शुकदेव—करी शङ्का नृप सुन्दर।
यह सब माया रचैं प्रकृतिपालक बिश्वम्भर॥
आत्मा निरगुन नित्य प्रकृतिके ये तीनिहु गुन।
कबहुँ सत्त्व बढ़ि जाय कबहुँ तम कबहुँ रजोगुन॥

जब जैसे गुन बढ़त हैं, हरि तब तैसोई करहिं।
सत्व बृद्धिके समयमहँ, असुर मारि सुर दुख हरहिं॥

राजसूयके समय युधिष्ठिर नारदमुनि सन।
पूछ्यो बिस्मय सहित प्रश्न नृप जिही बिलक्षन॥
सदा करै शिशुपाल कृष्णकी निन्दा पापी।
मुक्त भयो क्यौं दुष्ट अधम भक्तनि संतापी॥

धर्मराजकी बात सुनि, नृप सन मुनि बोले बचन।
निरभिमान हरिमहँ नहीं, राग द्वेष निन्दा स्तवन॥

जाकूँ है अभिमान देहको अतिशय भारी।
मैं अतिसुन्दर सुघर सुन्दरी मेरी नारी॥
पाप पुण्य जे करें कर्मबश सुख दुख पावे।
जिनमहँ नहिँ अभिमान द्वन्द्व तिनि ढिँग नहिं जावे॥

क्रीड़ावश हरि अवतरहिं, तिनि महिमा को कहि सकै।
धर्महेतु सुररिपु दलन, हिंसा तिनि कस लगिसकै॥

कैसेहू सम्बन्ध कृष्णतें जो जुरि जावैं।
काम, द्वेष, भय, भक्ति प्रेमवश चित फँसि जावै॥
तो होवे कल्यान भयो जगमहँ बहुतनि को।
कामभाव ब्रजवधू थापि पद पायौ हरिको॥

भयतें मामा कंसने, यादवगन सम्बन्ध करि।
शिशु पालादिक द्वेषतें, मुक्त भये हरि हृदय धरि॥

धर्मराज तुम धन्य धन्य तुमरे पितु माता।
बने सुहृद घनश्याम तुम्हारे ये भयत्राता॥
हरि शोभाके धाम मंगलनिके मंगल हैं।
उनमहँ जिनको चित्त फँस्यो तिनके मंगल हैं॥

दन्तवक्र शिशुपाल हरि, करतें मरि हरिपुर गये।
प्रभु पार्षद जय विजय जे, विप्र शाप बस खल भये॥

कहें युधिष्ठिर—नाथ! शापकी बात बताओ।
प्रभु पार्षद जय विजय असुर कस भये सुनाओ॥
बोले नारद–प्रभो! गये हरिपुर सनकादिक।
गदा वेत्र लै खड़े द्वारके दोऊ पालक॥

नंग धड़ंगे बाल लखि, रोके हरि दरसननितें।
शाप दयो सुररिपु बनों, ये डरि बोले मुनिनि तें॥

विप्र २है कब तलक असुर तनु समय बताओ ।
मुनि बोले—फिरि यहाँ तीनि जनमनिमहँ आओ ॥
हिरनकशिपु हिरनाक्ष भये ते प्रथम जनममहँ ।
नरहरि अरु बाराह हने दोऊ तिनि रनमहँ ॥
कुम्भकरन रावन बने, राम हाथ मारे गये ।
दन्तबक्र शिशुपाल पुनि, हरि हाथनि मरि सुर भये ॥

नारद बोले—नृपति ! चरित नरसिंह सुनाऊँ ।
हिरनकशिपु ज्यौं हन्यो भक्त महिमा अब गाऊँ ॥
सूकर बनि लघु बन्धु हन्यो बड़ भयो दुखारी ।
विष्णु हमारो शत्रु असुर कुलको संहारी ॥
मारूँ पहिले विष्णुकूँ, तब देवनिकूँ बश करूँ ।
करिकैं विष्णु बिहीन जग, असुर बंशको दुख हरूँ ॥

हे शम्बर ! हे नमुचि ! शकुनि ! सब मिलिकै जाओ ।
बेद, विप्र, गौ, यज्ञ अवनितैं जाइ मिटाओ ॥
यज्ञ रूप हैं विष्णु देवता यज्ञ सहारे ।
विष्णु यज्ञ मिटि जाँइ देव का करें बिचारे ॥
दुरबल देवनि पक्ष लै, विष्णु कपट सूअर बन्यो ।
समदरशीने छल सहित, सुहृद सहोदर मम हन्यो ॥

अनुशासन सुनि असुर अवनिपै मिलि सब आये ।
सब बर्णाश्रम धर्म यज्ञ यागादि मिटाये ॥
भये देव अति दुखित यज्ञ आहुति बिनु पाये ।
हिरनकशिपु इत मातु बन्धुसुत पास बिठाये ॥
दई सान्त्वना सबनिकूँ, शोकमग्न जे अति भये ।
यह झूठो संसार सब, उदाहरन बहुतक दये ॥

देखो माता ! कौन बन्धु का को सम्बन्धी।
करें मृतक हित शोक प्रथा जगकी यह अन्धी॥
नदीधार तृन बहे परस्परमहँ मिलि जावे।
मग संग कछु चलें फेरि इत उत बिलगावे॥
आत्मा अविनाशी अमर, सदा एकरस सर्वगत।
मायिक गुण सम्बन्धतें, भ्रमवश दीखे भ्रान्तवत॥

नृप सुयज्ञ इक मर्‌यो युद्धमहँ शत्रु हाथतें।
दुःखित परिजन भये भूपकी मृत्यु बाततें॥
मृतक देहकूँ घेरि बन्धु रोवें डकरावें।
छाती सबई धुनें दीन ह्वैकें बिललावें॥
रानिनि रोवति देखिके, यमबालक बनिकें गये।
विविधि भाँतिके ज्ञानते, सबकूँ समुझावत भये॥

बोले अपने आप—अहो ! अद्‌भुत हरि माया।
पति है काको कौन कौन काकी है जाया॥
नितई देखें मरत न सोचें तोऊ प्रानी।
काल न देखें दीन दुखी राजा अरु रानी॥
आयो जहँतें जीवजिह, करै तहाँ ई गमन है।
स्वय तहाँ सब जायँगे,-व्यर्थ शोक दुख रुदन है॥

शिशुपनतें ई हमें पिता माताने त्याग्यो।
कोई ढिँग नहिं रखे कहें सब बड़ो अभागो॥
है अनाथ वनमाँहि फिरें तरुतर सो जावें।
भोजन हू मिलि जाय भेड़िया सिंह न खावें॥
मृत्यु समय यदि निकट नहिं, रहै चाहिं वनमहँ पर्‌यो।
करें सदा पालन जिननि, गर्भमाँहि पालन कर्‌यो॥

मारन चाह्यो धृष्टबुद्धिनें चन्द्रहासकूँ ।
बधिकनि सौंप्यो विविध करे उद्योग नासकूँ ॥
किन्तु मृत्यु नहिं भई राज द्वै देशनि पायो ।
द्वै द्वै रानी मिलीं श्वसुर हू मृतक जिवायो ॥
विष बदले विषया मिली, भिक्षुकतें राजा भयो ।
भयो भाग्य अनुकूल जब, तब सब बानिक बनि गयो ॥

पुरुष बली नहिं होहि दैव ई बली कहावै ।
जैसो होनो होइ दैव तस बुद्धि बनावै ॥
नष्ट होंनको समय जासुको अबई नाईं ।
अति करिकें पुरुषार्थ सकें नहिं लोग नसाईं ॥
गिरी गैलमें बस्तु हू, ज्यों की त्यों रहि जायगी ।
नष्ट होनको यदि समय, तौ घरमहँ नसि जायगी ॥

व्याघ्र पकरि लै गयो हतो इक मुनि सुत वाकूँ ।
आयु शेष कछु हती पुत्रवत पाल्यो ताकूँ ॥
व्याघ्रनिमहँ ई रहै संग उनके वन जावै ।
हाथ पैरतें चले मांस तिनिके सँग खावै ॥
परशुराम नरशिशु निरखि, आश्रमकूँ सँग लै गये ।
पाल्यो पुनि सुतके सरिस, अकृतव्रण मुनि ते भये ॥

आत्मा है निरलेप रहै नित पृथक देहतें ।
जैसे गेही रहै भिन्न ई सदा गेहतें ॥
जलमहँ बुद बुद होहिं नही ते जल कहलावें ।
कनक एक रस रहै हार कंकण मिटि जावें ॥
अनल काठते अलग है, वायु देहतें पृथक ज्यों ।
है असंग नभ सर्वगत, आत्मा हू निरलेप त्यों ॥

माया वश ई कर्मबन्धमहँ फँस्यो जीव है।
माया बन्धन कटै जीव नहिं फेरि शीव है॥
मनतें मोदक खायँ मुदित होवें हरषावे।
सपनेमहँ धनहीन चक्रवर्त्ती बनि जावे॥
स्वप्न मनोरथ ये सबहिं, जैसे सत्यातीत हैं।
तैसेही जगके विषय, भ्रमवस होत प्रतीत हैं॥

फँसी कुलिंगी एक जालमहँ तजि निज सुत पति।
लखि कुलङ्ग निज बधू फँसी मन भयो दुखित अति॥
नैननि नीर बहाय कहै कैसे जीऊँ अब।
प्रिया।बिरह।अति दुसह भये असहाय पुत्र सब॥
देइ दैवको दोष पुनि,कहै विधाता का कर्यो।
व्याधा मार्यो बान तकि, लगत बान मरि गिरि पर्यो॥

कितनो ही दुख करो भूपकूँ अब नहि पाओ।
तातें तजिके शोक मोह अपने घर जाओ॥
सुनि बालककी बात शोक सबने तजि दीन्हो।
मिलि सम्बन्धी सविधि दाह नृप शवको कीन्हो॥
हिरनकशिपु सबतें कहैं, बन्धु शत्रुकूँ मारि हम।
बदलौ बधको लेइँगे, तजो शोक सताप तुम॥

दोहा—यों बहु विधि समुझाइकें, हिरनकशिपु अति बीर।
भयो चुप्प दिति, भ्रातुसुत, सबने धार्यो धीर॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमे हिरनकशिपु उपदेश नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

यों सबकूँ समुझाइ चल्यो तपकूँ असुराधिप।
अजर अमर रनजयी बनन हित करै घोर तप॥
मन्दरगिरिकी गुहा माहिँ एकाकी रहिके।
करै तितिक्षा असुर शीत उष्णादिक सहिकें॥

माँस दीमकनि भखि लयो, अस्थि मात्र ई बचि गई।
असुर उग्र तपतें जगत, महँ अशान्ति अति मचि गई॥

दौरे दौरे देव गये धाताके ढिँग सब।
बोले ब्रह्मन्! बढ्यो बवन्डर विश्वमाहिँ अब॥
असुर करै तप देव! ब्रह्मपद चाहे लैवो।
ब्रह्मा बनिके चहे आपकूँ धक्का दैवो॥

सुनि विधि बोले—देव गन, असुर निकट हौं जाउँगो।
दैकें इच्छित वर तुरत, तपतें ताहि हटाउँगो॥

यों कहि ब्रह्मा गये ढेर दीमकको देख्यो।
तृन बाँसनितें ढक्यो अस्थिमय सुररिपु पेख्यो॥
दिव्य कमण्डलु नीर छिरकि तनु सुघर बनायौ।
बोले—बेटा! माँगु तोहिँ वर दैवे आयौ॥

करि पूजा बोल्यो असुर, माँगूँ वर ये देहिं विभु।
रचे तुम्हारे जीवतें, मृत्यु न मेरी होहि प्रभु॥

भीतर बाहर नहीं मरूँ निशि तथा दिवसमहँ ।
अस्त्र शस्त्रतें नहीं कटूँ सब हौं मम वशमहँ ॥
होहि न मेरी मृत्यु मनुज, मृग, नाग असुरतें ।
नहिं नभ थल महँ मरूँ होहि भय नहिं सुर नरतें ॥
प्रभु जस जग महँ मान्य हैं, तस मेरी हू वृद्धि हो ।
बलमहँ तपमहँ तेज महँ, योगिनि सम सब सिद्धि हो ॥

ब्रह्मा बोले—वत्स ! बहुत वर दुरलभ माँगे ।
तोऊ दूँगो अवसि कर्यो प्रन तेरे आगे ॥
वर दै अन्तरधान भये सुररिपु घर आयौ ।
विधिवर मदमहँ मत्त, उपद्रव आइ मचायौ ॥
सुरपुर यमपुर वरुनपुर, धनपतिपुर निज करे बश ।
सबको स्वामी बनि गयो, फीको सब को कर्यो यश ॥

शतक्रतु टयो निकारि इन्द्र बनि सुख सब भोगै ।
इन्द्र भवनमहँ बसै स्वर्गको वैभव भोगै ॥
मरकत मनिकी भूमि बनी सीढ़ी विद्रुमकी ।
नन्दन कानन कल्पवृक्ष वर गंध कुसुमकी ॥
दुग्ध फेन सम स्वच्छ मृदु, शैयावर वाराङ्गना ।
तऊ तृप्ति नहिँ असुरकी, नित नव बाढ़ै कामना ॥

सुरनर वाके उग्र दण्डतें दुखित भये जब ।
अन्य शरन नहिँ लखी गये हरिकी शरनहिँ सब ॥
क्षीरसिन्धु ढिंग जाय करें मिलिके सुर तप अति ।
जहाँ लगावें लेट, शेष शैयापै श्रीपति ॥
अन्न खायँ नहिँ पियें जल, तजि निद्रा निशि दिन जगे ।
वायु पान करि विष्णु को, आराधन करिवे लगे ॥

कछुक कालमहँ तहाँ भई सहसा नभ बानी।
देव दुखित मति होहु बात मैंने सब जानी॥
वेद, देव, गो, विप्र, साधु सन द्वेष करै जब।
मोतें बाँधै बैर असुर संहार करूँ तब॥
शान्त दान्त निरवैर सुत; भक्त वीर प्रह्लाद मम।
मारूँ तब हौ तुरत ही, देइ यातना जब अधम॥

नभवानी सुनि देव लौटि निज निज घर आये।
हिरनकशिपुने देव भक्त इत अधिक सताये॥
चौथो ताको पुत्र अवस्थामहँ छोटो अति।
किन्तु भक्तिमहँ श्रेष्ठ आसुरी नहि जाकी मति॥
विद्या, कुल, धन, रूपको, जाकैं नहिँ अभिमान चित।
सुहृद सदाचारी सरल, सब सद्‌गुण जामे निहित॥

सुख दुखमहँ सम सदा सत्व स्वाभाविक जामें।
मिथ्या मायिक भोग होहि अनुरक्त न तामें॥
तन मन इन्द्रिय प्रान रखे नित अपने वशमहँ।
स्वाभाविक ई प्रीति श्यामसुन्दरके यशमहँ॥
सतत हियेमहँ जरि रही, ज्योति प्रेमके जोगकी।
भक्ति भाव भावित हृदय, नहीं कामना भोगकी॥

शत्रु मित्रको भाव कबहुँ मनमहँ नहिं आनें।
जिनकी शुद्धा भक्ति निरखि सुर लोहो मानें॥
सोवत जागत चलत उठत खावत अरु पीवत।
रहें अनमने बने सबनि सिर्री से दीखत॥
गावें नाचें प्रेमतें, हृदयँ सदा श्रीहरि बसें।
कृष्ण भूत सिरपै चढ़्यो, कबहूँ रोवें पुनि हँसें॥

जिनकी लखिके भक्ति सबहिं जन होहिं सुखारे।
हिरनकशिपु हरि नाम सुनत फटकारे मारे॥
गुरुगृह भेजे पढ़न पढ़ें का पढ़े पढ़ाये।
राजनीतिके दाव पेच तिनि मन नहिं भाये॥

पूछै इक दिन पुत्रतें, अंक लाइ पुनि चूमि मुख।
सुत ! प्रिय तोकूँ का लगै, कौन काजतें होहि सुख।

सुनि बोले प्रहलाद —पिता जी ! बुरो न मानें॥
हम तो जगमहँ भली बात जाईकूँ जानें॥
रहै सदा उद्विग्न चित्त घर दारा धनमहँ।
तातें तजिकें मोह सबनिको जावै वनमहँ॥

यह अपनो यह परायो, अभिनिवेश मिथ्या तजै।
जगकी आशा छोड़िके, प्रेम सहित प्रभुकूँ भजै॥

सुनि हँसि बोल्यौ असुर—होहिं भोरे बालक अति।
जो दें जैसी सीख होहि तैसी तिनकी मति॥
वेष बदलिकें विष्णु भक्त जाके ढिंग आवें।
कहि कहि हरिको सुयश सरल शिशुकूँ बहकावें॥

सेवक शासन सुनो सब, सावधान सबई रहौ।
बाबाजिनितें बचावें, गुरु पुत्रनिते तुम कहौ॥

आज्ञा सुनि प्रहलाद तुरत गुरुगृह पहुँचाये।
असुर कहे जे बचन सेवकनि जाय सुनाये॥
पूछें सण्डामर्क कुमरतें नेह सहित अस।
किनके वश तू भयो भई विपरीत बुद्धि कस॥

हँसि बोले प्रहलाद—गुरु ! कौन काहि कोवश करें।
हरि ई सबकी बुद्धिकूँ, जब चाहे तब तस करे॥

अति कोप्यो, गुरु पुत्र कहैं अति खल जिह बालक।
कुलाङ्गार दुरबुद्धि असुर कुलको संहारक ॥
लाओ मेरो बेंत न मानें बात पिताकी।
हड्डी पसली तोरि उधेड़ूँ चमड़ी जाकी।
चदनबन यह असुर कुल, विष्णु कुल्हाड़ी सम भयो।
मूलोच्छेदन करन हित, बेट सरिस जिह ह्वै रह्यो ॥

यों डराइ धमकाइ पढ़ाई राजनीति पुनि।
लख्यो लालकूँ चतुर गये लै ढिंग भूपति पुनि ॥
पर्यो पैरमहँ पुत्र असुरपति तुरत उठायौ।
सिर सूँध्यो करि प्यार प्रेमते गोद बिठायौ ॥
कहा श्रेष्ठ समझ्यो तुमनि, पुनि पुनि पूछै पुत्र अब।
निज स्वाभावते बिबश ह्वै, बोले श्रीप्रहलाद तब ॥

श्रवन, कीरतन करै विष्णु सुमिरन, पदसेवन।
अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य अरु आत्मनिवेदन ॥
है जिह नवधा भक्ति करै जगमें जो इनि कूँ।
यही बात अति श्रेष्ठ गनूँ हौं उत्तम तिनिकूँ ॥
सुनि खिसियानो असुर अति, गुरु पुत्रनिपै क्रोध करि।
डाँटि कहै ओ अधम द्विज, गयो पुत्र कैसें बिगरि ॥

बोले गुरुके पुत्र—असुरपति कोप न कीजे।
देवे लखि अघ दंड बात सबरी सुनि लीजे ॥
नहिं हम कबहू जाय कृष्ण को नाम सिखायौ।
नहीं बदलिके बेष गुप्तचर कोई आयौ ॥
यह मति जाकी सहज है, बिना पढाये कहै सब।
हिरनकशिपु अति क्रोध करि, बोल्यो सुतकू झिरकि तब ॥

क्यों रे छोरा ! बात सिखाई कौनें तोकूं ।
सुनि बोले प्रह्लाद पिता सिखवैको मोकूँ ॥
विष्णु भक्ति तो नहीं सिखाये ई तें आवै ।
सोई होवे भक्त कृष्ण जाकूँ अपनावै ॥

तजे न जब तक छल कपट, सत्सगति नहिं नित करै ।
पावै कस प्रभु भक्ति रज, सतचरण शिर नहिं धरै ॥

कुपित भयो अति असुर पुत्र पृथिवी पै पटक्यो ।
गर्जन करिके उठ्यो चर्र सिंहासन चटक्यो ॥
दैत्यनिते यों कहे दुष्टकूँ मारो मारो ।
जीवत खाल खिचाय चील गीधनिकूँ डारो ॥

सुनत असुर झपटे तुरत, वज्र हृदय विकराल मुख ।
छेदे अगनि शूलनिं, विविधि भाँतितें देइ दुख ॥

सबरी शक्ति लगाय असुर मिलि जुलिके मारें ।
चट्ट पट्ट सुनि सिंह व्याघ्र भयतें चिङ्घारें ॥
फूल सरिस सब शस्त्र भये दितिसुत घबरायौ ।
सोच्यो और उपाय मत्त गजराज मँगायौ ॥

रुंदवाये पैरनि तरे, गज बकरी सम बनि गयौ ।
सूँघि सूँड़िते सिर धरे, अति सूधो हाथी भयौ ॥

पुनि विषधर बुलवाइ कटावे सुतकूँ खलमति ।
सरल स्याँप सब भये करें क्रीडा सुन्दर अति ॥
करवायौ अभिचार मूँठ जादू टौना सब ।
भये विफल सब जतन भयो सकित सुररिपु तब ।'

गिरवाये गिरि शिखरतें, बहुतक माया हू करी ।
काल कोठरीमहँ दये, पैरनि हू बेड़ी भरी ॥

हालाहल विष दयो नहीं कछु भोजन दीयो।
शीत वाततें त्रास दयो जल भीतर कीयो॥
होरी लैकें अग्निमाँहि बैठी मारन हित।
भये नहीं प्रहलाद तनिक हू मनतें विचलित॥
सागरमें बैठाइकें, पर्वत ऊपर चुनि दये।
मरे नहीं निकसे तुरत, सबरे पर्वत गिरि गये॥

कीन्हे विविध उपाय सफलता नहिं कछु पाई।
मनमहँ चिन्ता करै करूं का अब हौं भाई॥
कहे कठिन कटु वचन बहुत विधितें मरवायो।
बार न बाँको भयो तनिकहू नहिं घबरायो॥
अवसि शत्रुता मानिकें विष्णु पक्ष लै लरैगौ।
मैं चाहे मरि जाँउ परि, जिह बालक नहिं मरैगौ॥

चिन्ता बहुविधि करै बुद्धिमहँ कछु नहिं आवै।
पुनि पुनि सम्मति हेतु पुरोहित मित्र बुलावै॥
ठकुरसुहाती कहे असुरकूं देंइ बढ़ावो।
क्यों अबोध शिशु हेतु नाथ! ऐसे घबरावो॥
तव सम्मुख जिहि नेंक सो, छोरा कैसे लरैगो।
गुरु पितुको अपमान करि, बिना मौतके मरैगो॥

बोले गुरुके पुत्र—नाथ! मति जाकूँ मारो।
भयवश भागि न जाय बाँधि पासनितें डारो॥
आवें श्रीगुरुदेव लौटिके जब तक पुरमहँ।
तब तक जाकूँ रखें प्रभो! हम अपने घरमहँ॥
सेवा गुरुजन की करै, कछु वय हू बढ़ि जाय जब।
बालकपनकी बुद्धि जिह, बिना यतन हटि जाय तब॥

विवश भयो सुरशत्रु बात तिनकी स्वीकारी।
कह्यो जाइ लै जाउ देउ शिक्षा हितकारी॥
संग लियो प्रहलाद गये गुरुपुत्र भवनमहँ।
सुधरै कैसे बाल जिद्दी सोचें ते मनमहँ॥

अर्थ काम अरु नीतिकी, शिक्षा देवें जाइकें।
सहपाठिनि प्रहलाद जी, सिखवें अवसर पाइकें॥

इति श्री भागवतचरितके तृतीयाहमें प्रह्लादचरित नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त

[मासिक परायण तेरहवें दिनका विश्राम]



अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

दो०— शुकतनय सिखवें सतत, धरम कामको सार।
कबहुँ भक्त प्रह्लादकी, लगैं भक्ति चटसार॥

छप्पय— एक दिना गुरु गये करन घरके काजनिकूँ।
ढिँग बिठाइ प्रह्लाद देहि शिक्षा छात्रनिकूँ॥
है दुरलभ नरदेह नाश होवेगो जाको।
होवै प्रभुपद प्रेम सारथक जीवन ताको॥
सुखतो होवै दैव बश, ज्यौं जाकूं पचि पचि मरो।
प्रभुपद पद्मनि प्रेम हित, होवै जिह चिन्ता करो॥

करै कवल कब काल कहो को जाने जगमहँ।
सदा घातमहँ रहै पकरि लै जावे पलमहँ॥
क्रीड़ामहँ कौमार व्याधिमहँ बिती बुढाई।
मादकता अँग अग युवावस्थामहँ छाई॥
तातें शिशुपनतें सतत, भूल जगतके करमकू।
करो आचरन प्रेमते, शुद्ध भागवत धरमकूं॥

नहीं कठिन बैराग्य होहि नहिं यदि द्वै जगमहँ।
कनक कामिनी पाश न लिपटैं यदि नर पगमहँ॥
प्राननि पै ऊ खेलि करै पैदा जा धनकू।
तामें अति आसक्त हटावै कैसे मनकू॥
अति प्यारी प्रियतमाकी, बानी सरस सुधासनी।
कैसे छोडे शिशुनिकी, तोतरि बानी सोहनी॥

कन्या रोवति जाइ दुखित पतिगृह सुकुमारी।
भोली भाली बहिन भला कस छाड़ैं प्यारी॥
आज्ञाकारी बन्धु पुत्र सुकुमार दुलारे।
छोडे कैसे जाँइ मातु पितु वृद्ध दुलारे॥

दुग्धफैन सम शुभ्र शुभ, शैया सुखद सुहावनीं।
स्वेच्छातैं कैसे तजै, वस्तु सरस मन भावनीं॥

कुलगत अपनी वृत्ति छोड़ि जावे कस बनमहँ।
हाथी, घोड़ा, गाय बसे सुठि सेवक मनमहँ॥
सबतें ममता जोरि मोहको जाल बनायौ।
पूर्यो चारिहुँ ओर जानि निज अंग फँसायौ॥

होहि विरक्त न विपति सहि, सुमिरै नहिं सर्वेश हरि।
पोसै नित परिवारकूँ, आयु गँवावै पाप करि॥

भोगै ज्यों ज्यों भोग बढ़ै त्यों त्यों तृष्णा नित।
परधन अरु परनारिमाँहिं नित फँस्यो रहे चित॥
करै पाप नित नये झूठतें द्रव्य बटोरै।
धन हित तनकूँ वेचि हाथ नीचनिके जोरै॥

पोथी पत्रा पढ़ि भये, पंडित हू विख्यात हैं।
मोह ग्रस्त है मोक्षते, वञ्चित ते रहि जात हैं॥

विषयिनिकूँ तजि संग शरन श्रीहरिकी जाओ।
जगचक्करतें छूटि मोक्ष पदवीकूँ पाओ॥
हरि व्यापक सर्वत्र अनत ढूँढ़न मति जानों।
सब भूतनिमहँ बसै तिनहिं हिय ई महँ मानों॥

मायाको परदा पर्यो, ज्ञान रूप दीखे नहीं।
दरशन होवे तुरत यदि, तम आवरन हटै कहीं॥

धरम अरथ अरु काम मोक्ष हरि भक्त न चाये।
प्रभु पादोदक पान करहिं नित हरिगुन गाये॥
ते ई करम यथार्थ कृष्णकी भक्ति दृढावें।
अन्य जगतके कर्म अधिक भव बन्ध बढ़ावें॥

शुद्ध भागवत धर्म जिह, श्री नारद मुखतें सुन्यो।
दैत्यपुत्र सुनि हँसि परे, हँसत उदर सबको फुल्यो॥

हँसि सब बोले—मित्र! व्यर्थ क्यौ बादर फारै।
नारद कब कहँ मिले, गप्प हमतें मति मारै॥
सुनि बोले प्रह्लाद—गये पितु तप हित जबई।
जानि सुअवसर देव चढ़े दैत्यनिपै तबई॥

हारे असुर रह्यो तबहिँ, मैं माताके उदरमहँ।
मम जननीकूँ अमरपति, पकरि लै चल्यो स्वरगमहँ॥

नारदजी मग मिले इन्द्रकूँ बहु धिक्कारे।
जानि उदरमहँ मोइ मातु तजि स्वरग सिधारे॥
मम माताकूँ लाय रख्यो निज आश्रम मुनिवर।
मोकूँ करि उपदेश सुनावें कथा मनोहर॥

माँ मुनिकी सेवा करै, पायो इच्छा प्रसववर।
सुन्यो भागवत धर्म तहँ, उदरमाँहि मैंने सुघर॥

असुर तनय सब कहे—हमेंहू ताहि सुनाओ।
बोले श्रीप्रहलाद—सुनाऊँ इत मन लाओ॥
जन्म वृद्धि परिणाम जीर्णता नाश तथा क्षय।
ये सब तनमहँ होहिं, आतमा नित्य अनामय॥

कनक माँहि मल मिलि गयो, साधनतें नर पृथक् करि।
त्योंही आत्मा देहतें, करें पृथक तब मिलें हरि॥

यह संसार असार स्वप्नवत सत्य लखावै।
आत्मज्ञान गुरु कृपा बिना नर कबहुँ न पावै ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति वृत्ति को साक्षी जो है।
सत् चित् आनँद रूप ब्रह्म पद आत्मा सो है ॥
जन्म मरन चक्कर छुटे, कर्मबीज जाते नसै।
करै योग साधन सतत, दिव्य ज्ञान हियमें बसै ॥

आत्मा अनुभव हेतु उपाय असख्य जगतमहँ।
गुरु सुश्रूषा भक्ति निरंतर सतचरनमहँ ॥
हरि उपासना कथा कीरतनमहँ रति नित नित।
प्रभु प्रतिमामहँ प्रेम कृष्ण चरननि चिंतन चित ॥
काम, क्रोध, मद, मोह अरु, मत्सर लोभ विहाय सब।
निरखै सबमहँ श्यामकूँ, पावै प्रभुपद-प्रेम तब ॥

गोविंदको गुरु रूप जानि श्रद्धा चित लावै।
गुरु मेरे सरवस्व कबहुँ नहिं तिनहि भुलावै ॥
गुरुतें पहिले उठे अंतमहँ गुरुके सोवै।
गुरु आज्ञा का देहिं सतत तिनको मुख जोवै ॥
गुरु मूरतिको ध्यान करि, गुरु चरनामृत लेइ नित।
गुरुहित्र सोंपै देहकूँ, गुरु चरननिमहँ रखहि चित ॥

गुरु सेवा जिन करी कर्‌यो तिन सब जगमाहीं।
गुरु सेवन नहि कर्‌यो-कर्‌यो तिनने कछु नाहीं ॥
गुरुकी मूरति मधुर ज्ञानकी ज्योति जगावै।
गुरु अनुकम्पा करे हियेको तम नसि जावे ॥
प्रभु प्रसाद समुझै सबहिं, कहे नाथ ! नहि कछू मम।
करि अरपन विनती करै, हे हरि ! हियको हरौ तम ॥

सदा साधु सत्सग करै बिषयिनितें बचिकें ।
समुझै सरबस साधु करै सेवा रचिपचिकें ॥
तनतें मनतें और द्रव्यतें जथा शक्ति नित ।
हरि उपासना करै हृदय तब होवै प्रमुदित ॥
जे उपासना ईसकी, करैं नहीं जगमहँ फँसें ।
ते पामर पशु पतित नर, मरिकें नरकनिमहँ बसें ॥

कृष्ण कथा दै चित्त प्रेमतें सुनें सुनावें ।
नित नव नव अनुराग बढ़े कबहूँ न अघावे ॥
ज्यों मधुमहँ अनुरक्त रहे मधुलोलुप मधुकर ।
त्यों ई हरि गुण गान कृष्ण कीर्तनमहँ तत्पर ॥
कथा कीरतन गुन श्रवन, करि करि हरि हिय महँ धरे ।
इत उत कबहुँ न जाय चित, चरन कमल चिन्तन करैं ॥

अर्चामहं अति प्रेम नेमतें पूजें नित हरि ।
सबरी सेवा करैं इष्टकूँ सदा हिये धरि ॥
दिव्य देशमहँ जायँ भक्तितें भगवत सेवें ।
सिर धरि हिय निरमाल्य विष्णु पादोदक लेवैं ॥
अरचन पूजन निरखि जे, अतिशय हिये सराहिंगे ।
ते सब पापनि ते छुटैं, कृष्णचरन रति पाइँगे ॥

इष्ट बिषयकी प्रीति कहे रति ताकूँ बुधजन ।
जामें नित ई फँस्यो रहे व्याकुल ह्वैकें मन ॥
कान भनक परि जाय नाम होवै तनु पुलकित ।
सुमिरि सुमिरि गुन करम होहिं अति उत्कंठित चित ॥
ह्वै अधीर रोवे कबहुँ, गद्गद् गिरा गँभीर स्वर ।
हँसें कबहुँ पुनि पुनि कहे, गिरधर नटवर ब्रजेश्वर ॥'



प्रह्लाद द्वारा रामनामोपदेश पृ० २८६



प्रह्लादजननीको नारदजी द्वारा उपदेश पृ० २८७

कबहूँ करें विलाप ध्यानमहँ मग्न होहिं पुनि।
गावें कबहूँ गान होहिं हरषित हरि गुन सुनि॥
सम्मुख देखें जाइ पैर परि परिके रोवें।
कबहूँ नाचें ठुमकि कबहुँ पृथिवीपै सोवें॥
लोकलाज संकोच तजि, यों तन्मय ह्वैकें रहें।
नारायण, हरि, जगतपति, राम, कृष्ण, बामन, कहे॥

लड़खड़ात मग चलैं परैं पग इत उत अनिमित।
चलत चलत पुनि गिरैं फिरैं उतकंठित जित तित॥
रहै प्रेमकी ज्योति प्रज्वलित हिये निरंतर।
जरैं वासना बीज दिखैं जब श्रीराधावर॥
फँस्यो चित्त चितचोरकी, रूप माधुरीमें सतत।
जगबंधन कटि जात सब, होहिं फेरि जगतैं बिरत॥

मलिन हृदय जे मनुज फँसे जग चक्करमाँहीं।
काटन बन्ध उपाय कृष्ण चरननि तजि नाहीं॥
तातें तजि व्यौहार जगतके हरि चित धारौ।
ज्ञान खड्गकूँ धारि काम क्रोधादिक मारौ॥
जिही मुक्ति निर्वान है, जाहि परमपदहू कहैं।
हृदयेश्वर हरि सर्वदा, हृदयमाँहिं दीखत रहैं॥

धन, दारा, पशु, पुत्र, अश्व सम्पति रथ हाथी।
नाशवान सब छनिक जीवके जे नहिं साथी॥
जो सबके हैं सुहृद आतमा अन्तरयामी।
अविनाशी अखिलेश चराचर जगके स्वामी॥
ते अति घाटेमें रहें, हरि तजि विषयनिकूँ भजैं।
चाकचिक्य लखि काँच को, करगत हीराकूँ तजैं॥

भैया ! सोचो नेंक जगतमे कितने सुख हैं।
गर्भबासतें मरन काल तक दुखई दुख हैं ॥
करिकैं नाना करम जीव फँसि जाय जगतमहँ।
करै कामना सहित कर्म चित देइ न हितमहँ ॥
देह कर्म अविवेकतें, होहि तिन्हें तातें तजौ।
आश्रय जिनके विश्व है, तिन सर्वेश्वरकूँ भजौ ॥

नहीं नियम है जिही तिनहिं आराधें द्विज ई।
होहिं असुर, बिट, शूद्र, नारि चाहें अन्त्यज ई ॥
करिकें भक्ति अनेक तरे नर पशु गीधादिक।
नहीं रिझावें तिन्हें दान, तप, व्रत, शौचादिक ॥
आवश्यक नहिं विप्रपन, ऋपिपनहू अरु अमरपन।
प्रभु प्रसन्नताके निमित, आवश्यक हरि अपनपन ॥

सुखदसारको सार शास्त्र सिद्धान्त सुनाऊँ।
मुख्य जीवको धरम कह्यो जो ताहि बताऊँ ॥
हरिमय सबकूँ जानि करौ सम्मान सबनिको।
विषय चिन्तना त्यागि रहे नित चिन्तन उनिको ॥
खग, मृग, नर, सुर, असुर अब, नाम लेत तरि जाइँ सब।
तातें तजि मद मोह तुम, गहौ कृष्णकी शरन अब ॥

दोहा—सुन्दर सुखमय सरस सिख, शिशु सब सुनहिं सिहायँ।
असुर सुतनि प्रह्लाद जी, भक्ति रसामृत प्यायँ ॥

इति श्रीभागवतचरितके तृतीयाहमे प्रह्लाद असुरबालक सम्वाद नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टदशोऽध्यायः

[१८]

दँइ सीख प्रहलाद असुर सुत अति हरषावै ।
मानैं श्रद्धा सहित प्रेमतें हरि गुन गावैं ॥
आये इत गुरुपुत्र निरखिकैं अति घबराये ।
ह्वैकें अति भयभीत दैत्यपतिके ढिँग आये ॥
कहँ दीन ह्वै प्रभो ! अब, कुमर बिगारै सबनिकूँ ।
कृष्ण नाम कीर्तन करो, यों सिखवै सब शिशुनिकूँ ॥

सुनत दुखद संवाद दैत्यपति बहुत रिस्यान्यो ।
भगवद् भक्त सुशील तनयकूँ रिपुसम मान्यो ॥
कहै ढीठ अति भयो म्यानतें खड्ग निकारूँ ।
नैंक कृपा नहिं करूँ दुष्टकूँ अबई मारूँ ॥
पठये पकरन पुत्रकूँ, सेवक तुरतहि गये सब ।
करत कीरतन सबनि सँग, आये श्रीप्रहलाद तब ॥

मुखतैं मधुमय मधुर नाम माधवके गावत ।
शीलवान अति सरल लख्यो सुत सम्मुख आवत ॥
किटकिटायकें दाँत दैत्य गर्जन करि बोल्यो ।
मानौं विषतें भर्‌यो स्याँपने निज मुख खोल्यो ॥
दुर्विनीत कुलरिपु अधम, बोल्यो विष उगिलत बचन ।
बोलि विष्णु तेरो कहाँ, पठऊँ तोकूँ यमसदन ॥

विष्णु कहाँ रे ! दुष्ट ताहि यमसदन पठाऊँ ?
यत्र तत्र सरबत्र कहाँ हौ तिन्हें बताऊँ ॥
मो में ? हाँ, का सभामाहिं ? है अवसि वहाँ हूँ ।
खम्भमाहिँ ? कहि दई पिताजी ! रहे वहाँ हूँ ॥
सुनि सिंहासन तै उठ्यो, खम्भ माहिं घूँसा दयो ।
तुरत तहाते भयङ्कर, सिंहनाद भीषण भयो ॥

प्रकटे हुँ हुँ करत फिरत गर्जत अरु तर्जत ।
बदन महा बिकराल क्रोधतै अँग अँग फरकत ॥
सिर तो सिंह समान शेष धड़ नरसम सुन्दर ।
लपलपात अति जीभ भयङ्कर मुख जनु कन्दर ॥
जन्तु बिचित्र निहारि खल, नहीं डर्‌यो ठाढौ रह्यो ।
हरि मायाबी है जिही, दैत्यराज हँसिके कह्यो ॥

मायाबी तू बिष्णु मारिवे मोकूँ आयौ ।
बहुरूपी सुरअधम आजु अस बेष बनायौ ॥
तकिकें मारूँ गदा धरनिपै तोइ गिराऊँ ।
मिल्यो बहुत दिनमाहिँ बन्धुऋण आजु चुकाऊँ ॥
यौ कहि दौर्‌यो गदा लै, अट्टहास नरहरि कर्‌यो ।
प्रभुके बलयुत तेजमहँ, खल पतङ्ग सम गिरि पर्‌यो ॥

ज्यों ई दौर्‌यो दैत्य पकरि नरहरिने लीन्हों ।
छटपटाइके यत्न निकसिबे को बहु कीन्हों ॥
श्रीहरि लीला करी ढीलि दीयो छुटि भाग्यो ।
जानि असुरकूँ बली सुरनि अति बिस्मय लाग्यो ॥
हरि हाथनितैं निकसिकें, बेग सहित इत उत फिरै ।
नीचे ऊपर उछरिकैं, रन कौतुक बहुबिधि करै ॥



नृसिंह और हिरण्यकशिपु पृ० २६२



हिरण्यकशिपु वध पृ० २६३

कछुक भुलाइ खिलाइ ठठाको मारि हँसे हरि।
गरुड़ सरपकूँ गहैं असुर त्यौं पकरि लयो फिरि॥
छटपटाइ अकुलाइ निकसिबेकूँ व्याकुल अति।
किन्तु छूटि कस सकै जाइ कसि पकरैं श्रीपति॥

पर्यो असुर पुनि फन्दमे, भूल्यो सब फरफद अब।
सिंहनाद हरिने कर्यो, नेत्र है गये बन्द तब॥

अति विकराल कराल नयन नरहरिके चमकैं।
गर्जन तर्जन करैं केश कधाके दमकै॥
लपलपाइ हरि जीभ ओठकूँ चाटैं पुनि पुनि।
काँपैं सबरे असुर भयङ्कर सिंहनाद सुनि॥

सभा द्वार सन्ध्या समय, जाँघनिपै धरि नखनितैं।
फार्यो नरहरिने उदर, बच्यो नहीं विधि बरनितैं॥

फरैं फारिकैं पेट सरतें आँत निकारी।
अट्टहास करि गरेमाँहिं माला समधारी॥
रक्त-बिन्दुतें रँगे केश अति सुन्दर लागै।
देखि भयकर रूप असुरगन भयतैं भागै॥

अस्त्र शस्त्र लै धृष्ट कछु, असुर चले रनहित तुरत।
नख आयुधते मरत कछु, गिरत बचे रन तजि भगत॥

तितिर बितिर घन होयँ केश नरहरि फटकारैं।
ग्रहगन फीके परैं क्रोध करि जबहिँ निहारैं॥
प्रलयानल सम स्वाँस नाद सुनि सब डरि जावैं।
जब पटकैं प्रभु पैर असुर भयतैं मरि जावैं॥

सिंहासन खाली लख्यो, जाइ बिराजे धम्मतै।
यों सेवक हित सर्वगत, प्रगटे नरहरि खम्भतैं॥

दो०—सिंहासन पै सिंहनर, बैठे मुख विकराल।
नख आयुध भृकुटी कुटिल, आँतनिकी गलमाल॥

इति श्री भागवतचरितके तृतीयाहमें नृसिंहप्रादुर्भाव हिरण्य-कशिपुवध नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ—एकोनविंशतितमोऽध्यायः

[१६]

मृतक असुरकूँ निरखि उतरि सुर नभतैं आये।
नरहरि क्रोधित लखे बिनय युत वचन सुनाये॥
बिधि बोले—हे बिभो! विश्व के तुमही करता।
पालनहू तुम करो अंत होओ संहरता॥
शिव बोले अब क्रोध को, काम कहा केशव रह्यो।
करहु कृपा प्रह्लाद पै, अधम असुर तो मरि गयो॥

इन्द्र कहैं—हरि हमें असुर मख भाग न दीये।
करवाये लघु काज सदा अपमानित कीये॥
करुणासिन्धु कृपालु कृपा करि सुररिपु मार्‌यो।
सुरगन अति ई दुखित दुष्ट हनि दुख सब टार्‌यो॥
ऋषि बोले—तब तप हि तनु, करैं सदा परि।भय भयो।
मैटे सब तप असुरने, तिहि हनि तप अवसर दयो॥

अब तो क्रमतैं करहिं विनय नरहरिकी सबई।
ब्रह्मा, शिव, देवेन्द्र, हटे आये सुर तबई॥
पुनि मुनि, ऋषि, मनु, पितर, सिद्ध, चारन, विद्याधर।
नाग, प्रजापति, यक्ष, भूत, बैतालहु किन्नर॥
आईं मृदुतनु अपसरा, देव और उपदेवगन।
हरि पार्षद नन्दादि हू, विनय करहिं भयभीत मन॥

दूरहिँ तैं डडौत करैं सुर पास न जावैं।
तू जा तू जा करैं दूरितै सैंन चलावैं॥
लक्ष्मी बोली—अबहिँ करूँ बश च्यौं घबरावत।
करि सोलह शृंगार चलीं नूपुर खनकावत॥
हरि चिघारे श्री डरीं, भगी लौटि आईं तहीं।
थर थर काँपैं पुनि कहैं, जे मेरे दुलहा नहीं॥

कमलयोनि प्रहलाद बुलाये बोले बानी।
बेटा! विभु अति कुपित डरीं कमला पटरानी॥
तुम प्रभुके हो भक्त चरन ढिग उनिके जाओ।
करि बिनती परि पैर कुपित नरहरिहिं मनाओ॥
तब बोले प्रहलाद—विधि! नरहरि ढिँग हौ जाउँगो।
विनय करौं अतिदीन है, सब विधि प्रभुहिँ मनाउँगो॥

हैं जो जगके ईश प्रनतके प्रनप्रतिपालक।
हौलैं हौलें गये जोरि कर प्रभु ढिग बालक॥
परे दण्डवत भूमि माहि चरननि लिपटाये।
देखि दया बश दौरि देवने तुरत उठाये॥
शिशुकपोल करतै गह्यो, पुनि पुनि मुख चुम्बन कर्यो।
सिर सूँघ्यो पुनि लाइ उर, अभयकरन कर सिर धर्यो॥

दोहा—नरहरि कर परसत तुरत, झरत नयनतें नीर।
करन लगे प्रहलादजी, इस्तुति गिरा गँभीर॥

प्रह्लाद-स्तुति

जब परी जननिपै भीर तबहिँ दुख टारे।
हे कृपानाथ करुणेश जगत रखवारे॥

नित सत्व प्रकृति सुर तुमहिँ रिझावैँ ध्यावैं ।
अज शिव सनकादिक पार न पावैं गावैं ॥
हम नीच असुर अति क्रूर अधम कहलावैं ।
क्यौं करी कृपा शुभ दरशन दीये प्यारे ॥१॥ हे कृपा०

नहिँ कोई तुमकूँ तप प्रभावतैं पावै ।
यदि भक्त होहि तो पशुपै हू ढुरि जावैं ॥
हौं भक्तहीन द्विज नहिँ तिनि मखमहँ आवैं ।
अगनित खल श्वपचहु भक्त भक्तितै तारे ॥२॥ हे कृपा०

जो जैसे तुमकूँ नरहरि भगवन् ! ध्यावै ।
वह तैसो दरशन नाथ ! तुम्हारो पावै ॥
ज्यों दरपनमें प्रतिबिम्ब स्वरूप लखावै ।
है प्रकट खभते मेटे दुःख हमारे ॥३॥ हे कृपा०

भक्तनि हित नित नव कच्छ मच्छ वपु धारौ ।
जो शत्रु भावतैं भजैं तिनहिँ सहारौ ॥
असुरनिकूँ दैके मुक्ति सुरनि दुख टारौ ।
जग जीवनि हित अति मधुर चरित विस्तारे ॥४॥ हे कृपा०

नित तुमरे चरितनि भक्त जननिमें गाऊँ ।
नित रूप मनोहर तुमरो नरहरि ध्याऊँ ॥
भव तरनि चरन गहि नाथ ! पार है जाऊँ ।
हैं जग जीवन अति सुखमय चरन तिहारे ॥५॥ हे कृपा०

यह जीव जगतमें तुमकूँ तजिके भटक्यो ।
मायाके फन्दे फँस्यो गुननिमहँ अटक्यो ॥
चौरासी चक्कर माहिँ अविद्या पटक्यो ।
हो तुमही नरहरि केवल एक सहारे ॥६॥ हे कृपा०

नहिँ उत्तम मध्यम अधम बुद्धि है तुमरी।
है तुमकूँ सृष्टि समान चराचर सबरी॥
हम काल व्यालने डसे लेउ सुधि हमरी।
ये काम क्रोध मद लोभ मोह अहि कारे॥७॥ हे कृपा०

यह मन मेरो है नरहरि! चचल भारी।
नहिँ सुनै तुम्हारी कथा सकल अघहारी॥
हौं दीन हीन अति छीन गँवार भिखारी।
हे नाथ! लगाओ डूबत नाव किनारे॥८॥ हे कृपा०

है माया अपरम्पार तुम्हारी स्वामी।
कैसे पावैं हम तुम्हे असुर खल कामी॥
हो घट घट व्यापी प्रभुवर अन्तरयामी।
निगमागम सबरे नेति नेति कहि हारे॥९॥ हे कृपा०

हे कृपानाथ करुणेश जगत रखवारे।
जबपरी जननिपै भीर तबहिँ दुख टारे॥

छप्पय—बोले श्रीप्रहलाद—कृतारथ भयो नाथ अब।
परसे पावन पाद पदम दुख दूरि भये सब॥
किहि बिधि बिनती करूँ आप हरि अन्तरयामी।
भटकैं जगमहँ जीव उबारौ तिनकूँ स्वामी॥
बिनती सुनि प्रहलादकी, भये मुदित श्रीरमापति।
मधुर बचन बोले बिहँसि, बारबार करि प्यार अति॥

अति प्रसन्न हौं वत्स माँगु तू वर मन चाह्यौ।
सकल मनोरथ सफल करन हितही हौ आयौ॥
सुनि बोले प्रहलाद—न हरि! बरतैं ललचावैं॥
बिषयनितैं करि दूर अखिलपति अब अपनावैं॥
नहिं माँगहुँ वर बिषय सुख, सदा नाथ! हियमहँ बसहिँ।
करुनामय करुना करहु, कबहुँ कामना उठहिं नहिँ॥

हँसि बोले भगवान—विषय चाहे नहिं हरिजन ।
करहिं निरन्तर भक्ति सदा राखे मो में मन ॥
मन्वन्तर तक तऊ भोग सब भोगो जगमहँ ।
कथा निरन्तर सुनौ चित्त बाँधौ मम पगमहँ ॥
सुखतै पुण्यनि नाश करि, दुखहू मख करिकैं नसौ ।
पुण्य पापतैं मुक्त है, मम समीपमहँ फिरि बसौ ॥

बारबार बर हेतु कही तब बर जिह माँग्यो ।
मेरो शुभ आचरन पिताकूँ को खोटो लाग्यो ॥
हरि निन्दा नित करी दासको दुख बहु दीन्हों ।
पग पग पै अपमान नाथको ममपितु कीन्हों ॥
अति दुरन्त दुस्तर दुसह, दोष दैत्यपतिने करे ।
छमे नाथ ! यद्यपि सबहिँ, दृष्टि मात्र तैं अघ हरे ॥

नरहरि बोले—वत्स ! तेरे कुल पितु महतारी ।
पीढी पावन भई पुत्र ! इक्कीस तुम्हारी ॥
तुम सम जाके तनय नरक कैसे वह जावै ।
पुत्र पुण्य परभाव परमपद पितुतव पावै ॥
मृतक करम पितुके करो, अब बेटा ! तुम जाइकैं ।
नित मम परिचर्य्या करो, मो में चित्त लगाइकैं ॥

हरि आयसु सिरधारि, असुरके करे कर्म सब ।
राज्यासन अभिषिक्त मुनिनि प्रहलाद करे तब ॥
कीन्हीं विधि बहु विनय विश्वपति भल अति कीन्हों ।
असुर मारि प्रहलाद तथा देवनि सुख दीन्हों ॥
हँसि विधि तैं नरहरि कहें, बीज तुम्हारे ई बये ।
तुमने बाबा विधाता, दुर्लभ वर जाकूँ दये ॥

अब कबहूँ नहिं देइ दुष्ट दैत्यनिकूँ अस बर।
करैं सुधाको पान सदा विष उगलै विषधर ॥
यों सबकूँ समुझाइ भये अन्तरहित नरहरि।
बिदा करे प्रहलाद देव ऋषि अति आदर करि ॥

हिरनकशिपु उद्धार अरु, चरित असुरसुतको कह्यो।
यौं द्वेषी शिशुपाल हरि, हाथनि मरि तन्मय भयो ॥

इति श्री भागवत चरितके तृतीयाहमें प्रह्लादप्रसाद नृहरि तिरो-भावनामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ विंशतितमोऽध्यायः

[२०]

छप्पय—पूर्व जन्ममहँ हते, विप्र प्रह्लाद यशस्वी।
मातु पिताके भक्त धर्मरत परम तपस्वी॥
लैन परीक्षा पिता देहमहँ कुष्ट बनायो।
घृना तनिक नहिं करी, अमृतको घड़ा भरायो॥
पुत्र भक्तितैं पिताहू, अति प्रसन्न तिनिपै भये।
आशिष दै दीक्षा दई, पत्नी सँग वनकूँ गये॥

मातु पिता वन जाइ मुनिनिके सब व्रत धारे।
अंत समय तनु त्यागि धाम वैकुण्ठ सिधारे॥
करे योग व्रत नियम सोमशर्माहू सब विधि।
सुख दुखमहँ सम रहैं त्यागतैं भये तपोनिधि॥
अन्त समय आयो जबहिं, असुर शब्द सुनि डरि गये।
दैत्य भाव हिय महँ धर्यो, हिरनकशिपुके सुत भये॥

नाम धर्यो प्रह्लाद मातुके अति ई प्यारे।
देवासुर संग्राम माँहि श्रीहरिने मारे॥
रुदन करै नित जननि तहाँ नारद मुनि आये।
कमला देखी दुखित दया करि वचन सुनाये॥
प्रकटैं तेरे उदरतैं, तजो सोच सुत जिही तब।
नाम होहि प्रह्लाद ही, वही रूप गुण शक्ति सब॥

होहि भागवत परम आसुरी भाव न उनमें।
होवै प्रेम अनन्य सदा श्रीहरि चरननिमें॥
यों कहि नारद गये जनम प्रहलाद लयो पुनि।
उदर माँहिं शुभ ज्ञान दयो तिनि श्रीनारद मुनि॥

श्रीनरहरिको चरित अति, पावन यह मैंने कह्यो।
ऐसे श्रीप्रहलादने, जनम असुर कुलमहँ लयो॥

जामें भगवत भक्त चरित अति मधुर मनोहर।
ज्ञान भक्ति वैराग्य ललित लीला अति सुन्दर॥
नारद बोले—धर्मराज! तुम अति बड़भागी।
सेवैं जिनकूँ सदा भक्त ज्ञानी वैरागी॥

रहैं सदा सेवक सरिस, ते हरि तुम्हरे पास नित।
सम्बन्धी प्रिय सुहृद बनि, रहैं नित्य हितमहँ निरत॥

अज, शिव, ऋषि, मुनि, इन्द्र भेद जिनकोनहि पावैं।
नेति नेति कहि जिन्हे बेद चारिहु डरि गावैं॥
जप, तप, जोग, विराग, करैं जिनहित मुनि सब तजि।
होवें खल अति विमल नाम जसतस जिनको भजि॥

निज कैंकर्य कराइके, कृपा करैं करुनायतन।
दूर करैं दुख दरस दै, सफल करैं निजजन नयन॥

राजन्! जिनकरि त्रिपुरनाश शिव यश विस्तार्यो।
त्रिपुरारी शिव भये असुर मायासुर हार्यो॥
कनक रजत पुर लोह मयासुर तीनि बनाये।
नभमहँ घूमैं गुप्त दैत्य लखि अति हरषाये॥

डरे देव शिव ढिँग गये, पशुपति तान्यो निज धनुष।
हर सरतैं मरि मरि असुर, गिरत तुरत पुरतैं निकस॥

मरें असुर जे तिन्हें वेगि मायासुर लावै।
अमृतकुंडमहँ डारि सबनिकूँ तुरत जिवावै॥
त्रिपुरारी मय सिद्धि निरखि अतिशय घबराये।
मायापतिकी शरन शम्भु मनहीं मन आये॥
कामधेनु श्रीहरि बने, विधि बनाइ बछरा लये।
अमृतकुन्डके जाइ ढिंग, पान अमृत सब करि गये॥

फिरि हरि हरढिंग आय धरम रथ दिव्य बनायो।
ज्ञान सारथी कर्यो धनुष तप तीव्र सुहायो॥
ध्वजा विरक्ति बनाय अश्व ऐश्वर्य लगाये।
धार्यो विद्या कवच क्रियाके बान चढाये॥
अस रथपै चढि सदाशिव, प्रभु सुमिरत आगे बढ़े।
बान धनुषपै धारिकें, त्रिपुर निवासिनितैं भिड़े॥

कीन्हौ त्रिपुर विनाश भये त्रिपुरारी शङ्कर।
ऋषि, मुनि, सुर, गन्धर्व कहैं जय शङ्कर शिवहर॥
सबको यश विस्तार करैं ये ही श्रीनरहरि।
करे पूज्य प्रहलाद हिरनकशिपू को वध करि॥
नारदजीके वचन सुनि, धर्मराज प्रमुदित भये।
पुनि वर्णाश्रम धर्मकूँ, मुनिवर तैं पूछत भये॥

चारि बरनके धरम देव—ऋषि पृथक बताये।
कौन कौन का कर्म करैं कहि सब समुझाये॥
पुनि नारिनिके धर्म कहे सुनि सहमी शारद।
ब्रह्मचर्य व्रत गृही धर्म भाखै सब नारद॥
बानप्रस्थ सन्यासके, पृथक् पृथक् लक्षण कहे।
धर्मराज नारद निकट, यदुनन्दन बैठे रहे॥

यह प्रसंग अति धन्य पुण्यप्रद परम सुहावन।
धर्म वृद्धि नित करै मोक्षप्रद अतिशय पावन॥
भक्ति सहित नर नारि जाइ जे सुनैं सुनावैं।
जगबन्धनतें छूटि मोक्षकी पदवी पावैं॥

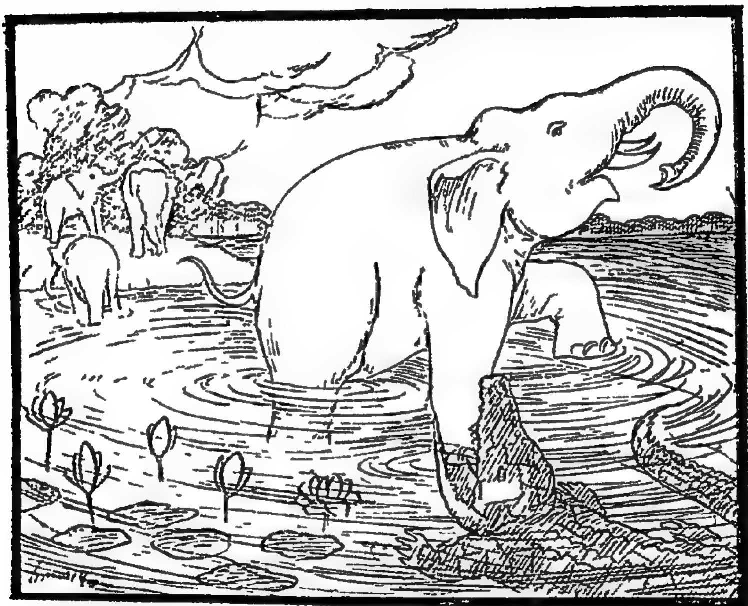
धर्मराज प्रति देवऋषि, कह्यो सुखद सबाद अति।
श्रवन मननतैं अवसि ही, हरिचरननिमहँ होहि रति॥

इति श्री भागवत चरितके तृतीयाहमें धर्मराजनारदसम्बाद नामक वीसवाँ अध्याय समाप्त।

इति तृतीयाह

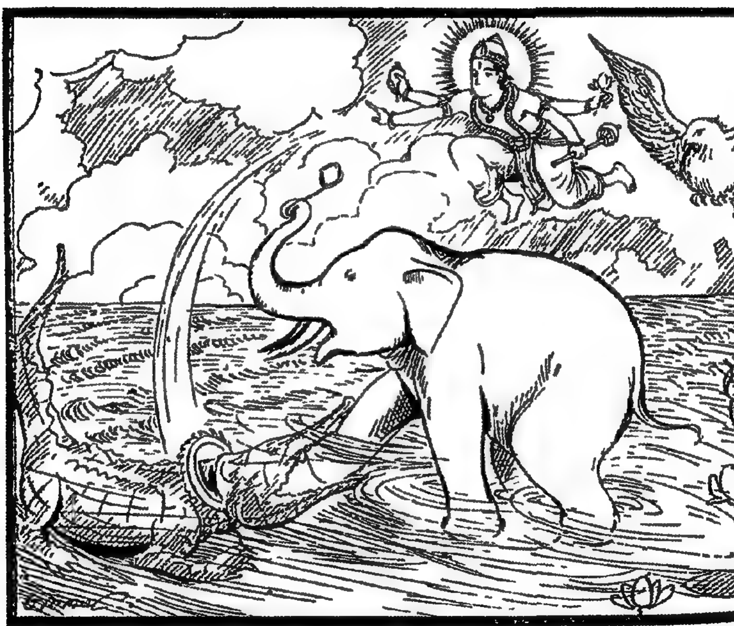
[मासिक पारायण चौदवें दिवसका विश्राम]





गजग्राह युद्ध पृ० ३०७

श्रीभागवत चरित—



गजग्राहोद्धार पृ० २०८

अथ चतुर्थाह

प्रथमोऽध्यायः

[१]

दो०—पद्मनाभ पद पदुमकी, पावन पुण्यपराग।
सिर धरि चाहूँ नित बढ़ै, प्रभुपद-रज अनुराग ॥

छप्पय—कह्यो चरित तृतीयाह माहिं जड़ भरत सुहावन।
अमल अजामिल चरित नाममहिमा अति पावन ॥
पुण्य प्रचेता वृत्त दक्षकन्यनिकी सन्तति।
सुर असुरनि को वंश हिरनकशिपू को तप अति ॥
करी कृपा प्रह्लादपै, भक्तवत्सल नरहरि यथा।
सुनहु विमल अति पुण्यप्रद, चौथे दिनकी शुभ कथा ॥

कहैं परीक्षित—प्रभो! प्रथम मनु वंश सुनायौ।
मनुपुत्रिनि पति भये प्रजापति सर्ग बढ़ायौ ॥
अन्य मनुनिको वंश कृपा करि और सुनावें।
भये कौन अवतार कर्म गुन नाम गिनावें ॥
शुक बोले—जा कल्पमहँ, छै मनु बीते आठ अरु।
होंगे, प्रगटैं हरि सबनिमहँ भूपति सब श्रवन करु ॥

यज्ञ पुरुष प्रभु भये प्रथम मन्वन्तर माहीं।
तप स्वायम्भुव करत असुर सोचें तिनि खाईं ॥
जान्यो तिनको भाव मारि उद्धार कर्‌यो प्रभु।
मन्वन्तर जब द्वितिय भयो प्रकटे वे ई बिभु ॥

ब्रह्मचर्य व्रत आयुभर, पालनकी शिक्षा दई।
सहस अठासी मुनिनिने, उनहींते दीक्षा लई ॥

उत्तम प्रियव्रत पुत्र तीसरे मनु विख्याता।
इन्द्र सत्यजित हते भये प्रभु तिनिके त्राता ॥
धर्मपत्नि सूनृता उदरतैं प्रकटे श्रीपति।
सत्यसेन विख्यात सुरनिकी एकमात्र गति ॥

ता मन्वन्तर मध्यमहँ, सखा सत्यजितके बने।
सुरद्रोही दुःशील खल, दुष्ट यक्ष राक्षस हने ॥

चौथे मनु जगमाँहि भये तामस प्रियव्रत सुत।
मन्वन्तर अवतार भये हरि अति शोभायुत ॥
पितु हरिमेधा भये मातु हरिनी कहलाईं।
कीन्हो गज उद्धार ग्राहतैं तुरत गुसाईं ॥

क्यों गज पकर्‌यो ग्राहने, शका राजाने करी।
भयो युद्धकहँ, कै दिवस, कैसे दुख मेट्यो हरी ॥

बोले शुक-सुनि नृपति! क्षीर सागर ढिंग गिरिवर।
हतो त्रिकूट प्रसिद्ध सहसदश योजन सुन्दर ॥
लता गुल्म द्रुम सघन शृंग सुखकर सब सोहे।
झर झर झरना झरैं सिद्ध सुर मुनि मन मोहे ॥

क्रीड़ा कानन जहँ वरुण, को सुन्दर ऋतुमान अति।
सुरललना घूमत फिरत, सुरति निरत निज सहितपति ॥

तहँ मनहर सर स्वच्छ सलिलयुत सुखकर सुन्दर।
खिले अरुन वर कमल नील कह्लार मनोहर॥
लता तीरके निकट लिपटि द्रुम नेह दिखावे।
पुष्पित शाखा हिलहि मनहुँ कर पथिक बुलावें॥

रहैं जन्तु जलके बहुत, मत्स, सरप, कच्छप, मगर।
तहीं ग्राह बलवान इक, विपुलकाय निवसै निडर॥

तिहि वनमहँ गजराज वसै जनु जीवित गिरवर।
सिंह व्याघ्र भगि जायँ गंधतैं मृग, अहि, सूकर॥
छोटे बडे अनेक पुत्र पौत्रादिक तिहि सँग।
क्रीड़ा करैं अनेक सूँडतें सूँघे पितु अँग॥

इक दिन सबकूँ संगलै, जल पीवन सरढिंग गयो।
घुस्यो सरोवर सलिलमहँ, हथिनिनि सँग खेलत भयो॥

कबहूँ जल भरि सूँडि बहुनिके अंग उड़ेलै।
कबहूँ मारै डुड्ड पकरिकैं दूरि ढकेलै॥
यों ह्वैके मदमत्त ज्ञान विज्ञान बिसार्‌यो।
कुंजर करत कलोल कालनहिं निकट निहार्‌यो॥

चट आयो तहँ ग्राह इक, पट्ट पैर पकर्‌यो जकड़ि।
कछु न गिन्यो बल दर्पतैं, खींचै तिहि पुनि पुनि अकडि॥

पूरो कर्‌यो प्रयत्न यथामति शक्ति लगाई।
करीं अनेकनि युक्ति एकहू काम न आई॥
ग्राह सलिलको जन्तु बढै नित नित वह बलमहँ।
भगे संगके छोडि होहि गज निरबल जलमहँ॥

अन्य शरन जब नहिँ लखी, शरन गही घनश्यामकी।
करे शिथिल साधन सबहिं, टेर करी हरि नामकी॥

गजेन्द्र–स्तुति

जो निराकार साकार सार, उन परमपुरुषको नमस्कार ।
जो जगत रूप सब करें काज, वे राखें मेरी आइ लाज ॥
जिनकी दृष्टी है नित अलुप्त, जो जगें सतत होवे न सुप्त ।
जग प्रलय काल जब तम गँभीर, तब रहैं पार तमके सुधीर ॥
मुनि देव सिद्ध जानें न जिन्हें, कैसे पहिचानें अन्य तिन्हें ।
नटराज करें क्रीड़ा अपार, उन परम पुरुष को नमस्कार ॥१॥
ऋषि मुनि जिनके दर्शन निमित्त, तजि विषय भोग गृह नारि वित्त ।
करि कंद मूल फलको अहार, वनमें बसि तनकूँ करें छार ॥
जो जीवनिके हैं आत्मरूप, सच्चे सुहृद् पितु मातु रूप ।
जिनि जनम करम नहिँ नाम रूप, जो जड़ चेतनके एक भूप ॥
तिनिकूँ ध्याऊँ हौ बारबार, तिनि परम पुरुषको नमस्कार ॥२॥
जो स्वीकारें जग हेतु देह, लीलातें मानें कुटुन गेह ।
जिहि जोनि माहिँ प्रकटे अनन्त, रच्छें सुर सज्जन धेनु सन्त ॥
जो मोक्षधाम सबगुण निधान, नित करें भक्त गुन नाम गान ।
जो नित निरीह नव निरविशेष, जो रहे अन्तमें एक शेष ॥
जो मूल प्रकृतिके आदि सार, उन परम पुरुषको नमस्कार ॥३॥
जो कारन कारज करन प्रान, जो सत्य सनातन नित्य ज्ञान ।
पशु पाश निकुन्दन दया सिन्धु, मम पशुपै डारें कृपाबिन्दु ॥
जो चतुरवर्ग दाता दयालु, जो अभिमत फलप्रद अतिकृपालु ।
जीवनको मोकूँ नहीं मोह, मिटि जाय मान मद काम कोह ॥
हे विश्वनाथ हरि अति उदार, तव पद पदुमनि महँ नमस्कार ॥४॥
जो शक्तियुक्त सबके स्वरूप, जो अज अनादि अच्युत अनूप ।
जो जीव ईश माया अतीत, जो सबके स्वामी सुहृद मीत ॥
हौं ग्रस्यो ग्राहने सहज आय, थाक्यो करि करिके सब उपाय ।
अवलम्ब लयौ तव कमल चरन, लैकमल एक अशरनशरन ॥
पद पदुमनिमहँ है बारबार, प्रभु नमस्कार प्रभु नमस्कार ॥५॥

छप्पय—हे हरि ! अशरन शरन दीन दुख मेटन हारे।
हे करुनाके अयन ! प्रनतग्रन पालनवारे॥
आइ ग्रस्यो तम ग्राह सच्चिदानन्द उबारो।
कैसे हू करि कृपा कष्ट हरि हरो हमारो॥
निरविशेष विनती सुनत, नहिं आये सुर अन्य जब।
गरुड़ध्वज चढ़ि गरुड़पै, आये गज ढिंग तुरत तब॥

बिनती गद् गद् कंठ करै नयननिकूँ मूँदे।
गजकूँ निरख्यो विकल गरुडतै श्रीहरि कूदे॥
एक हाथतैं पकरि ग्राह सँग गजहिं उबार्यौ।
जलतैं बाहर कर्यो चक्रतैं मुहड़ौ फार्यौ॥
नयनानद निहारि हरि, शान्ति हृदय गजके भई।
भवभयहारी विष्णुने, मुक्ति ग्राह हू कूँ दई॥

ग्राह योनि तजि भयो तुरत गन्धर्व मनोहर।
पूर्व जन्ममहँ करत रह्यो क्रीड़ा जल अन्दर॥
देवलमुनिको चरन हँसीमहँ हूहू पकर्यो।
चौंके मुनि है भीत तबहिं हँसि बाहर निकर्यो॥
समुझि अवज्ञा शाप तब, ग्राह बननको दै दयो।
सुर गायक गन्धर्व सो, नक्र शाप वश है गयो॥

पूर्व जन्म गज चरित सुनौ श्रद्धातैं अब तुम।
इन्द्रद्युम्न द्रविडेश हतो राजा सुरपति सम॥
ध्यान मग्न इक दिवस रह्यो मलयाचल माहीं।
शिष्यनि सहित अगस्त्य गये नृप निरखे नाहीं॥
करे तपस्या मौन है, वाल बढ़े व्रतमहँ निरत।
अतिथि धर्मतैं च्युत निरखि, मुनि अगस्त्य कोपे तुरत॥

बोले मुनिवर—अधम ! करै तू अतिथि निरादर।
ह्वैके क्षत्रिय नहीं करै बिप्रनिको आदर॥
गज सम बैठ्यो रह्यो होइ तू जडमति गजई।
दैके दारुन शाप गये तत्क्षण मुनि तबई॥
हर्ष न विस्मय नृपतिकूँ, समुझि दैवगति रहि गये।
तेई दूसर जन्ममहँ, वारणेन्द्र भूपति भये॥

करि गजको उद्धार भये आनंदित श्रीहरि।
बोले करुणा सिन्धु सबनिकूँ सम्बोधित करि॥
ये मेरे हैं रूप कदरा, बन, गज, सरवर।
विधि हरिहरके धाम, बाँस, परबत, गिरि गह्वर॥
शेष, शारदा सप्तऋषि, सूर्य्य, चन्द्र, ध्रुव, धर्म हैं।
गगा, यमुना, सरसुती, यज्ञ आदि शुभ कर्म हैं॥

कौस्तुभ मणि, श्रीवत्स और मेरी बनमाला।
पाञ्चजन्य शुभ शंख गदा मम दिव्य विशाला॥
असुर बिनाशक चक्र सुदर्शन मेरो भारी।
सुर मुनि अरु अवतार पुरुष सब शुभव्रत धारी॥
इन सबकूँ जो प्रात उठि, श्रद्धातैं सुमिरन करै।
भवसागरकूँ मनुज ते, बिनु प्रयास निश्चय तरै॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें हरि अवतार गजग्राह मोक्षण नामक प्रथम अध्याय समाप्त।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

दोहा—कहँ सूत—मुनिवर ! कहे, मन्वन्तर ये चारि।
अब पचम मनुको चरित, सुनों हृदय हरि धारि॥

छप्पय—भये पाँचवे रैवत मनु मन्वन्तर अधिपति।
लियो विष्णु अवतार नाम 'वैकुण्ठ' रमापति॥
कमला हित वैकुठ रच्यो सबलोक नमस्कृत।
मन्वन्तर पति भये छटे चाक्षुष मनु श्रीयुत॥
सम्भूतीके गर्भतै, भये विष्णु वैराजसुत।
अजित नाम अच्युत रख्यो, मथ्यो सिन्धु श्री अमृत हित॥

धरि कछुआको रूप मदराचलकूँ धार्यो।
सुरनि सग इक अजितरूप धरि अमृत निकार्यो॥
अमृत कलश लै प्रकट भये हरि धन्वन्तरि बनि।
दैत्य छले है नारि अमृत देदीयो देवनि॥

कहे परीक्षित—कथा सब, सिन्धु मथनकी कहहु प्रभु।
औ अन्तरहित भई क्यौं, चार रूप क्यौं धरे विभु॥

शुक बोले—इक दिवस गये वन दुर्वासा मुनि।
श्यामा विद्याधरी खड़ी चौंकी पग-धुनि सुनि॥
सर समीप स्रग् लिये सुगन्धित सुन्दरता जनु।
मुनि मन चंचल भयो निरखि माला बाला तनु॥
बोले विद्याधरी यह, माला मोकूँ दै अबहिं।
लखि दुर्वासा डरी वह, माला दे भागी तबहिं॥

माला धारी जटनिमाँहि मुनि मगन चलैं मग।
चितवत इत उत मत्त अटपटे परैं पंथ पग॥
मगमहँ निरखे इन्द्र जटनितें माल निकारी।
फैंकी सुरपति उपरि गर्वतें इन्द्र न धारी॥
ऐरावत मस्तक धरी, कुचली पैरनि तासु जब।
दुर्वासा क्रोधित भये, शाप इन्द्रकूँ दयो तब॥

जा, तेरी श्री नष्ट होहि तीनिहु लोकनिकी।
शाप होत ही कान्ति परी फीकी देवनि की॥
असुरनि घेर्यो स्वर्ग देवता मारि भगाये।
राज्यहीन श्रीभ्रष्ट दुखी सुर विधि ढिँग आये॥
ब्रह्मा बाबा सबनि सँग, क्षीर सिन्धुके ढिँग गये।
लक्ष्मीपति सर्वेशकी, करि विनती गद् गद् भये॥

सोरठा—करि मन करन निरोध, श्रुति सम्मत, शिव सर्वगत।
जो अवगत अविरोध—अज इस्तुति करि वे लगे॥

अजित-स्तुति

जय निर्विकार हरि, सब जगकूँ करि, रहौ नित्य निस्संगा।
जय सत्य सनातन, पुरुष पुरातन, प्रकटी जिन पद गंगा॥
जय अलख अगोचर, अच्युत अक्षर, आदि अन्ततें रहिता।
जय अपरम्पारा, चक्र अधारा, रहौ सदा श्री सहिता॥
जय मायातीता, परमपुनीता, जय अनादि असुरारी।
जय जग के करता, हरता भरता, जय मदहरन मुरारी॥
जिनि स्वेदज उद्भिज, अंडज पिंडज, रचे विविध विधिपालै।
जो जनकजननिबनि, सुर शत्रुनि हनि, सखा सुहृदबनि लालैं॥

जिनिको जगही तन, उड़गनपति मन, जो जल अन्न पचावैं।
जो सर्वसार हैं, मुक्ति द्वार हैं, तिनि पद शीश नवावें॥

जय प्राननि प्राना, प्रभु भगवाना, जय जय सर्व स्वरूपा।
जय ब्रह्म छत्रवर, वैश्य शूद्र नर, सरब बरन जिहि रूपा॥

शुभ अशुभ बनावें, खेल रचावें, सबमें व्यापें सब छिन।
जय अजितअकारन, मुनिमन हारन, करहिंसकल सुमुमिरन॥

यह जगत कलपना, सब जग सपना, जिनबिनु जीव न जानें।
जो अनिल सरिस शुभ, सत्यरूप ध्रुव, वेद उपनिषद मानें॥

ज्यों जड़ जल पावै, तरु हरिआवै, त्यौं ही तुमरी सेवा।
जो तुमकूँ ध्यावैं, सब सुख पावैं, तुष्ट हंहिं मुनि देवा॥

जय जय जग जीवन, जयआनँद घन, जयजय कमला कन्ता।
जय जय प्रभु पावन, जनमन भावन, जय जय अजर अनन्ता॥

छप्पय—हे अच्युत अखिलेश दया देवनि पै कीजै।
दुखी द्वारपै परे दयानिधि दरशन दीजै॥
विभो! भये ऐश्वर्य हीन तब चरननि आये।
रिपुनि स्वर्गतैं भ्रष्ट करे हम मारि भगाये॥
विधि विनती बिश्वेश सुनि, तुरत तहाँ परकट भये।
सुर गन हरि दरशन लहे, अति प्रसन्न सब है गये॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें सुरविनय नामक द्वितीयोऽध्याय समाप्त।

[पाक्षिकपाठ-सप्तमदिवस विश्राम]

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

छप्पय—सुर प्रसन्न अति भये विष्णुकी करिकैं झाँकी।
कीन्हीं गद् गद् गिरा सबनि मिलि बिनती बाँकी॥
है प्रसन्न खिलवाड़ करनकूँ बोले नटवर।
मम सुर सम्मति सुनो करो मिलिकें सब सत्वर॥
कच्छ छिपावे अंग ज्यौं, त्यौं निज भाव छिपाइकें।
असुरनितैं कछु कालकूँ, करो मित्रता जाइकें॥

दोहा—सम्मति सुनि सरवेशकी, सुरगन शीश नवाय
कहैं—जायँ शत्रुनि निकट, कैसे भाव दुराय?

छप्पय—स्वाभाविक जो प्रेम द्वेष छूटे नहि कबहूँ।
करैं मित्रता दैत्य करैं फिरि भगवन्! हमहूँ॥
देवनिकी सुनि बात हँसे प्रभु अन्तरयामी।
क्रीड़ाके हित रचैं बिबिध कौतुक सुरस्वामी॥
हरि बोले तब सुरनितैं, स्वार्थ जगत्महँ श्रेष्ठ है।
सधे स्वार्थ जब जाहि सों, सोई जगमहँ ज्येष्ठ है॥

घुस्यो पिटारीमाँहि सर्प इक निज भोजनकूँ।
मोटो मूसो तहाँ घुस्यो काटे कपड़निकूँ॥
करी पिटारी बन्द लगायो स्वामी तारो।
मूसक अतिशय डरै भयो चिंतित अहि कारो॥
सर्प बिचारै भूखबश, जो जाकूँ भखि जाउँगो।
तो फिरि घुटिकें पिटारी, में ही हौं मरि जाउँगो॥

सोचि समुझिकें करी मित्रता मूसकतें अहि ।
कटवाई सन्दूक प्रेमकी बातें कहि कहि ॥
जब जान्यो पथ बन्यो तुरत मूसक भखि लीन्हो ।
यों बैरी तैं मेल कर्‌यो कारज निज कीन्हो ॥

देवनितैं श्रीहरि कहैं, ऐसे ही तुम जाइकें ।
दैत्यनितैं मैत्री करौ, साधो स्वार्थ फँसाइकें ॥

हरि सम्मति सिर धारि गये असुरनि ढिंग सुरगन ।
शत्रुनि आवत निरखि दैत्य सोचें मनहीं मन ॥
किहि कारन सुर शस्त्र त्यागि हमरे ढिंग आये ।
करि स्वागत सत्कार असुरपति बलि बैठाये ॥

बोले सुरपति सबनितैं, भाई हैं हम सुर असुर ।
पिता एक माता पृथक, क्यों फिरि झगरैं परस्पर ॥

करिकैं सब पुरुषार्थ उदधितैं अमृत निकारैं ।
मरन धरमकूँ त्यागि अमर बनि मृत्युहिं मारैं ॥
लड़ैं परस्पर बीर मरैं नहिं कोई रनमहँ ।
मनमहँ हो विद्वेष घाव होवै नहिं तनमहँ ॥

असुरनि सुर सम्मति सुनी, साधु साधु सबने कही ।
अमृतनिकारैं मिलि उभय, बात जिही पक्की रही ॥

सबतैं पहिले चले उभय लैबे गिरि मन्दर ।
लीयो तुरत उखारि चले लैकें देवासुर ॥
भार सह्यो नहिं जाय सबनिकूँ चक्कर आवै ।
सब अकुलाये कहैं—माड़महँ अम्मृत जावै ॥

अड़ड़ड़ धम करि गिरि गिर्‌यो, पिचे देव दानव सबहिं ।
हतोत्साह जब सब भये, प्रकटे गरुड़ध्वज तबहिं ॥

दोहा—देव असुर सब ई भये, गरल निरखि भयभीत ।
विष निकस्यौ अम्मृत नहीं, कहैं बचन विपरीत ॥
छोड़ि मथन लड़िवे लगे, कौन करै विष पान ।
प्रथम ग्रास मक्खी मिली, हँसे अजित भगवान ॥

इति श्रीभागवत चरितके चतुर्थाहमें समुद्रमन्थन नामक तृतीय अध्याय समाप्त ।



अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

दोहा—कौतुक हित हरि कौतुकी, दोउनिको लखि भाव।
बीच आइ ठाढ़े भये, करिबे बीचबिचाव॥

छप्पय—हरि बोले—हर निकट प्रजापति सँग सब जाओ।
करिके अनुनय विनय हलाहल उनहिं पिआओ॥
शिव सँग विहरैं शिवा प्रेमतैं पुलकित अँग अँग।
पहुँचे विपतैं दुखी प्रजापति सब सत्वनि सँग॥
दड सरिस सब भुइँ परे, कहहिँ दयानिधि दुख हरहु।
सब जग भयवश अति दुखित, निरभय करुणाकर करहु॥

शरन तिहारी लई जगतके तुम हो स्वामी।
अज अच्युत अखिलेश अनामय अन्तरयामी॥
पालन अरु संहार करौ तुमहीं जग रचिकैं।
तीनिहु कारज करो विष्णु हर विधि बपु धरिकैं॥
रुण्डमाल गल गंग सिर, मस्तक शशि शिव नाम है।
उमा सहित सर्वेश पद, पद्मनि माहि प्रनाम है॥

हे शम्भो! सुख शान्ति शक्ति सरबसुके दाता।
आशुतोष अखिलेश भवानीपति भयत्राता॥
काल कूटतैं दुखी विपतितैं नाथ बचाओ।
पान हलाहल करो दुखिनिके दुःख मिटाओ॥
उमा विचारैं स्वारथी हैं, सबरे ये प्रजापति।
कालकूट विष पान हौं, करन न दुंगी तीक्ष्ण अति॥

अन्तरयामी शम्भु उमाके मनकी जानी।
सती करन संतोष मधुर बर बोले बानी॥
प्रिये! प्रजा अति दुखित परी संकटमहँ भारी।
शरणागत प्रतिपाल करनकी बानि हमारी॥

जीवनिपै किरपा करै, हरि प्रसन्न तिनपै रहे।
पान हलाहल विष करूँ, दुखित होहिं ये सब कहैं॥

दया धरमको मूल मरम मूरख नहिं जानैं।
छिनभंगुर यह देह अज्ञ अजरामर मानैं॥
शिवको सद् उपदेश सती सुनि दीन्हीं सम्मति।
पान करन विष चले शम्भु मनमहँ अति हरषित॥

व्यापि रह्यो विष जगत्महँ, जीव दुखी सबई रहैं।
पान कर्यो विष शम्भुने, सज्जन परहित सब सहैं॥

लीयो तुरत समेटि बनायो विषको गोला।
पान करन हर लगे उमापति शंकर भोला॥
राम नाम सँग लीलि गरेतैं नाहिं उतार्यो।
निगल्यो उगल्यो नहीं कंठमें ही विष धार्यो॥

जलमल हालाहल हरषि, पान सतीपति करि गये।
कंठ नील विषतैं भयो, नीलकंठ तबतैं भये॥

हृदय माहिँ हरि बसैं बिश्वपति विष नहिं निगल्यौ।
अघ अंगीकृत त्याग सोच बाहर नहिं उगिल्यौ॥
दोषनि तेहिं पचाय दोष अपनेमहँ आवैं।
प्रकट दोष यदि करैं तुरत निज अँग लपटावैं॥

तातैं कंठहिमहँ धर्यौ, हर शोभा अतिशय बढ़ी।
सुनिके शोभा सुरनितैं, सुरसरि शिव सिरपै चढी॥

है आराधन श्रेष्ठ त्यागि सब हरि आराधैं।
जप, तप, पूजा पाठ, योग नियमादिक साधैं॥
इन सबतैं उत्कृष्ट परम आराधन भारी।
परदुखमहँ हों दुखी यही पूजा प्रभु प्यारी॥
समुझैं सबमहँ श्यामकूँ, ते ही भक्त अनन्य हैं।
पर कारज हित सहहिँ दुख, जगमहँ ते नर धन्य हैं॥

फैली जगमहँ बात शम्भु हालाहल पीयो।
दुखी प्रजाको कष्ट वृषध्वज सब हरि लीयो॥
साधु साधु सब कहैं विष्णु,विधि,शिव, यश गावैं।
दुंदिभि नभतैं बजैं, सुमन सुरगन बरसावैं॥
हर भोलाकी भूलतैं, गोलातें कछु विष गिर्यो।
सो अहि, बिच्छू, औषधिनि, थावर जंगम विष कर्यो॥

दोहा—महादेव हर ह्वै गये, करिकें विषको पान।
जे परकारजमहँ निरत, ते पावें बहुमान॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें शंकर विषपान नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

शिव पीयो बिष सिन्धु सुरासुर मथिबे लागे।
कामधेनु पुनि प्रकट भई रत्ननितैं आगे॥
अग्निहोत्रके हेतु सुरभि मुनिगन स्वीकारी।
उच्चैः श्रवा महान अश्व फिरि प्रकट्यो भारी॥

घोड़ा राजा बलि लयो, पुनि ऐरावत गज भयो।
सो वाहन देवेन्द्रको, हरि अनुमतितें ह्वै गयो॥

पुनि कौस्तुभमनि भई चित्त चितचोर चलायो।
रत्न अमोलक निरखि हरषि श्रीहरि हथियायो॥
कल्पवृक्ष सुरवधू भईं सुर असुर सिहाये।
सार्वजनिक करि दईं, सुनत सबईं हरषाये॥

सुरललना गति ललित अति, चुभी चित्त चितवन चपल।
पठईं हरि सुरपुर तुरत, लखि सुर असुरनिकूँ बिकल॥

पुनि प्रकटीं प्रभुप्रिया रमा निजशोभा विकसित।
विधुवत् शुभ्र प्रकाश करत जगकूँ अनुरञ्जित॥
यौवन रूप सुवर्ण भाव गुणगरिमा अनुपम।
सुर, नर, किन्नर, असुर भये लखि सबई जड़ सम॥

करैं भेंट बहुमूल्य मिलि, रमा-प्रेम महँ सब पगे।
लैवेकी इच्छा भई, सब सेवा करिबे लगे॥

स्वीकारे उपहार वाद्य बहु बजहिँ मनोहर।
हरषि विप्रगन पढ़हिं वेद मंत्रनिकूँ सस्वर॥
पितु पीताम्बर दयो पहिनकेँ हरषी बाला।
पहिनी वरुणप्रदत्त वृहद वैजन्ती माला॥

वस्त्राभूषन पहिनकेँ, श्रीशोभा अनुपम भई।
निज वर खोजनके निमित, जयमाला करमहँ लई॥

माला करमहँ हिलत भ्रमत मधुलोभी मधुकर।
कुन्डल लोल कपोल हास मधुमय मुख ऊपर॥
पीनोन्नत वरवक्ष मृदुल कटि भार नमित सी।
छीन उदर वर नयन मृगी सम चितै चकित सी॥

नूपुर कंकन करधनी, कलरव पग पगपै करत।
हंसिनिकी गतितै चलत, चितवत सबको मन हरत॥

सबसद्गुनसम्पन्न करै अन्वेषन निज वर।
तेज ओज तप युक्त होहि सुरवर अजरामर॥
लखि सबके गुण दोष फिरत प्रतिहित गजगामिनि।
नहिँ निरखे निरदोष चकित ह्वै चितवत भामिनि॥

आभा अतसी कुसुम सम, निरखे नयनानन्द हरि।
गुणसागर निरवद्य लखि, ठिठकी नीचे नयनकरि॥

निरगुन सबगुन युक्त सरस सुन्दर सुखसागर।
सरल सलौने श्याम सनातन शोभा आकर॥
मम अभीष्ट वर जिही विष्णु निश्चय करि जाने।
रमा मुदित अति भईं पुरातन पति पहिचाने॥

नव कमलनिकी मालपै, गुँजें बहु मधुकर निकर।
करकमलनि तै कंठमें, डारि वरे श्री अजित वर॥

हरिको बक्ष बिशाल निरखि श्री अति हरषाईं।
रमाभाव पहिचानि बिष्णु उर-माल बनाईं॥
हरि हिय आसन मिल्यो जगन्माता पद पायो।
लखे जीव श्रीहीन कृपा करि तेज बढ़ायो॥
बिधि, हर, सुर, मुनि ऋषि सबहिं, मंत्र पढ़हिं बिनती करहिं।
नाचैं मिलि सुरसुन्दरी, बिबिध बाद्य बिधिवत बजहिं॥

तब पुनि मथ्यो समुद्र बारुनी कन्या निकसी।
हरि असुरनिकूँ दई पाइ तिनिकूँ सो हरसी॥
घमर घमर सब मथैं भये पुनि पुरुष पुरातन।
अमृत कलशकूँ लिये बिष्णुके अंश सनातन॥
सुन्दर सौम्य शरीर शुभ, देवनिकूँ देखे बिहँसि।
मुखपै लटकैं लट मनहुँ, अहि शिशु पीवें सुधा शशि॥

धन्वन्तरि भगवान भये भक्तनि सुखदाई।
कुण्डल मंडित करन हृदय वनमाल सुहाई॥
हरषे दानव दैत्य दौरिकें देखें पुनि पुनि।
गुन गावें गन्धर्व पढ़ैं मंत्रनिकूँ ऋषि मुनि॥
अजितेन्द्रिय अति ई असुर, अमृत निरखि व्याकुल भये।
आव गिन्यो नहिं ताव कछु, छीनि अमृतकूँ भगि गये॥

देवनिके मुख फक्क परे अतिशय घबराये।
कहि कहि सुन्दर बचन अजित सब बिधि समुझाये॥
ठगिकें छीनूँ अमृत अंतमहँ सींग दिखाऊँ।
चिन्ता कछु मति करो पेट भर तुमहिँ पिआऊँ॥
सुरनि सन्त्वना दई पुनि, अन्तरहित श्रीहरि भये।
मैं पीऊँ तू पिये कस, असुर अमृत हित लड़ि गये॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें रत्नोत्पत्ति नामक पञ्चम अध्याय समाप्त।

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

असुरनि मोहन हेतु मोहिनी बने मुरारी।
पँचरँग चूनरि ओढ़ि नासिकामहँ नथधारी॥
लहँगा धारीदार हरी सी पहिनी चोली।
करि सोलह शृंगार नारि सम बोलैं बोली॥

नील कमल सम श्यामरँग, अँग अँगमहँ यौवन उठनि।
हंसगमनि अनुपम हँसनि, लीलायुत चितवनि चलनि॥

कारे कुंचित केश भालपै बेंदी मनहर।
नयन, नासिका, गंड अंग सब अतिशय सुन्दर॥
वस्त्राभूषण धारि चली यौवन मदमाती।
कदुक क्रीड़ा करति फिरति इत उत अलसाती॥

सुन्दरता साकार है, शोभा भई सजीव मनु।
असुर मृगनिकूँ फाँसिवे, व्याधिनि विहँसति चली जनु॥

आये सब मिलि असुर कहे—को तुम का नामा।
को पति काकी नारि फिरहु अस कस बन श्यामा॥
अमृत हेतु हम लरहिं हमारी रार मिटाओ।
बटवारो करि देउ यथामति अमृत पिआओ॥

सुनि हँसि बोली मोहिनी, कश्यपसुत सिरीं भये।
मम वेश्याके रूपै, क्यौं मदमाते ह्वै गये॥

बालाकी सुनि बात बढ्यो बिश्वास सबनिकूँ।
अमृत कलशकूँ लाइ तुरत दै दीयो तिनिकूँ॥
तिरछी चितवन निरखि बिहँसि बोली बर बानी।
कहियो फिरि मति कछू, करौगी हौ मन मानी॥

सब बोले परमेश्वरी, हमकूँ सब स्वीकार है।
तुम जो चाहौ सो करौ, मार तुम्हारी प्यार है॥

हाव भाव बर कुटिल कटाच्छनितैं मन मोहै।
बैंथी झोटा खाइ कलश करमहँ शुभ सोहै॥
भूलि न जावें भूप! फिरैं जो भामिनि सुन्दर।
नाहिं कामिनी अन्य स्वय मायावी नटवर॥

असुर मोहिनीने ठगे, अमृत पिआयो सुरनिकूँ।
समुझि सकै को जगत महँ, तिरियनि के चक्करनिकूँ॥

राहु समुझि हरि कपट देव बनि रवि शशि ढिँग ई।
बैठ्यो पीयो अमृत जानि मार्यो प्रभु तब ई॥
राहु केतु द्वै अमर भये ग्रह संग विराजैं।
नवग्रह तबतैं भये असुर सुरवत् बनि भ्राजैं॥

अमृत सुरनिकूँ प्याइकैं, असुरनि सींग दिखाइकैं।
त्यागि मोहिनी रूपकूँ, बने पुरुष पुनि आइ कैं॥

ठगिया है यह बिष्णु समुझि पुनि दैत्य रिस्याने।
खिसियाये करि कोप अस्त्र देवनिपै ताने॥
अमृत हेतु इक काल कर्म सबने सम कीयो।
कोरे दानव रहे अमृत देवनिने पीयो॥

हरि हिय धरि श्रद्धा सहित, कर्म करैं जे भक्तितै।
उत्तम फल पावैं अवसि, मनमोहनकी शक्तितैं॥

अबला रूपी परम प्रबल माया है भारी।
मोहे सुर अरु असुर इन्द्र ब्रह्मा त्रिपुरारी॥
मित्र शत्रु बनि जाय नृपति सर्वस्व गँवावैं।
सहज प्रेम तजि बन्धु नारिहित लरि मरि जावे॥
पुरुषनि नारायन लखैं, नारिनिकूँ लक्ष्मी गनहिँ।
ते साधारन नर नहीं, कवि तिनकूँ हरिही भनहिं॥
जग रक्षाके हेतु विष्णु अवतारनि धारैं।
भक्तनिको करि त्राण दुष्ट दैत्यनिकूँ मारैं॥
ऊँच नीच लघु ज्येष्ठ भेद उनमहँ कछु नाहीं।
कच्छ मच्छ नर नारि कबहुँ सूकर बनि जाहीं॥
शिव स्वरूप मङ्गल भवन, जीव मात्रके सुहृद हरि।
करैं विश्व कल्यान नित, विविध भाँतिके वेष धरि॥
सुन्द और उपसुन्द बन्धु दोऊ अति प्यारे।
एक प्रान द्वै देह होहिं कबहूँ नहिं न्यारे॥
उग्र तपस्या करी कठिन वर विधितैं पाये।
जीते तीनहु लोक स्वर्गतैं अमर भगाये॥
विश्वविजय करि विषय सुख, महँ दोऊ ई फँसि गये।
मृत्यु गर्तमहँ गर्बतैं, असुर मोहवश धँसि गये॥
कामी दैत्यनि हेतु सुघर विधि बधू बनाई।
खलनि फँसावन रूप जाल लै भामिनि आई॥
मेरी मेरी करत परस्पर भिड़े प्रेम तजि।
मरे नारिके हेतु लड़े दोऊ ही सजि बजि॥
करैं कर्म हरि भावतैं, जीवमात्रकूँ होहि सुख।
स्वार्थ हेतु श्रम जे करैं, ताको ध्रुव परिणाम दुख॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें मोहिनी चरित नामक छठवाँ अध्याय समाप्त।

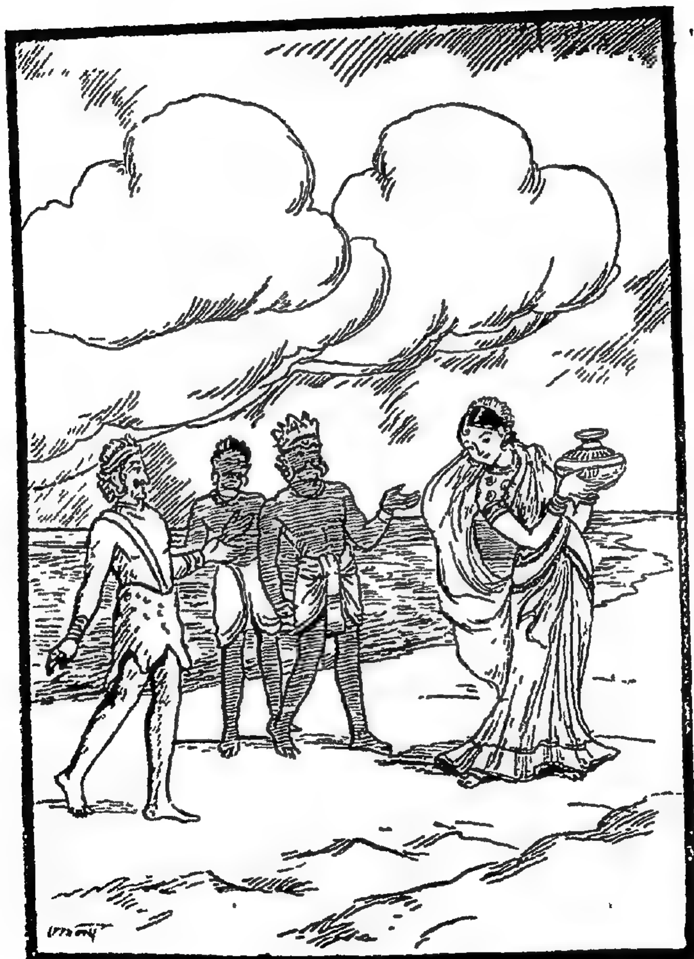
अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

अमृत पान सुर कर्यो असुर मिलि लरिबे आये ।
अमर सबल सुर भये न पीछे पैर हटाये ॥
दोऊ ही रन सूर परस्पर शस्त्र चलावैं ।
नाना बाहन चढ़े युद्ध कौशल दिखलावैं ॥
गुत्थम गुत्था ह्वै गई, मारो काटो मचि गई ।
कटि कटि सिर बसुधा भरी, सरिता शोणितकी भई ॥

चढ़िके दिव्य बिमान बिरोचन सुत बलि आये ।
इत ऐरावत चढ़े शचीपति परम सुहाये ॥
निज निज शङ्ख बजाइ सुरासुरपति हरषावत ।
दिव्य अस्त्र लै भिड़े बज्र अरु गदा घुमावत ॥
युद्ध इन्द्र बलिको लख्यो, सब जोड़ी खोजन लगे ।
बीर हृदय उमगन लगे, कायर रन तजिके भगे ॥

तारक सग कुमार मयासुर सँग शिल्पी सुर ।
बरुण हेतितैं लड़ैं त्रिपुररिपु सँग जम्भासुर ॥
त्वष्टा शम्बर सग सूर्य्यतैं लड़ैं बिरोचन ।
अपराजित सँग नमुचि बृहस्पतितैं इकलोचन ॥
वृषपर्वा सुर बैद्य सँग राहु चन्द्रमातै लड़ैं ।
महिषासुर सुरबदन सँग, सौ बलिसुत रवितै भिड़ैं ॥



ठगिनी मोहिनी पृ० ३२६



शिवजी और मोहिनी पृ० ३३३

नरकासुर शनि सग कामके सँग दुरमरषन।
क्रोधवशनितैं करैं युद्ध निर्भय ह्वै शिवगन॥
अष्टवसुनितें कालकेय मुनि सँग वातापी।
देवी काली संग लड़ै खल शुम्भ प्रतापी॥
एक दूसरेतैं लड़ैं, छोड़ि प्राणके मोहकूँ।
छोड़ि सकैं नहि देवहू, सहज रिपुनिके द्रोहकूँ॥

बलि सुरपतितैं लड़ै करैं बाननिकी वृष्टी।
छूटत अस्त्र अमोघ प्रलय होगी जनु सृष्टी॥
शतक्रतु मा न हेतु विविध विधि अस्त्र चलाये।
बार न बाँको भयो विपतितैं विष्णु बचाये॥
दैत्यराज ढिँग युक्ति जब, कोई नहिँ बाकी बची।
तब मायावी असुरने, अति अद्भुत माया रची॥

माया निर्मित अंधकार सब जगमहँ छायो।
विद्युत चमकै तीक्ष्ण विना ऋतु घन घिरि आयो॥
नभतैं बरषैं सर्प व्याघ्र सिंहादिक तरजैं।
राक्षस प्रेत पिशाच भूतगन घूमैं गरजैं॥
चंडी मुंडी कालिका, लै त्रिसूल घूमत फिरत।
मारो काटो सुरनिकूँ, डाँइन करकस रव करत॥

माया निरमित जन्तु जगतमहँ चहुँदिशि छाये।
निरखी माया प्रबल आसुरी सुर घबराये॥
अन्य शरन नहिं लखी, शरन श्री हरिकी लीन्ही।
ह्वै कें परम अधीर विनय देवनि मिलि कीन्हीं॥
प्रभु प्रकटे माया नशी, करी कृपा करुनायतन।
मनमोहनकी माधुरी, निरखि भये सुरगन मगन॥

कालनेमि लखि बिष्णु सिंह चढ़ि लरिबे आयो।
मार्‌यो तकि तिरशूल असुर यमसदन पठायो॥
पुनि माली अति बली सुमाली माल्यवान जब।
अस्त्र शस्त्र लै आइ करैं घनघोर युद्ध सब॥
हरि संहारे देवरिपु, सद्‌गति शत्रुनिकूँ दई।
अति प्रसन्नता सुरनिकूँ, असुरनिके त्रयतैं भई॥

बज्रपाणि देवेन्द्र लड़न पुनि बलि सँग आये।
अरिकूँ सम्मुख लख्यो बहुत कटु बचन सुनाये॥
मार्‌यो तकिकें बज्र गिर्‌यो बलि मूर्छित ह्वैकें।
लखि बलि मूर्छित जम्भ लड़न सर आयो लैकें॥
जम्भ मारि सुरपति दयो, नमुचि सुनत आयो तुरत।
अस्त्र शस्त्र लै युद्धमें, रण दुर्मद इत उत फिरत॥

नमुचि, पाक, बल असुर बान मिलिकैं बरसाये।
इन्द्र, सारथी, अश्व ढके सुरगन घबराये॥
इन्द्र निकसि बल पाक बज्रतैं दोऊ मारे।
मरै नमुचि जब नहीं गिरानभ बचन उचारे॥
आर्द्र शुष्क तजि हनौ रिपु, बज्र फैनमय कर्‌यो हरि।
नमुचि शीश छेदन कर्‌यो, हृदय विष्णुको ध्यान धरि॥

ज़ीते देवनि शत्रु दैत्य दानव घबराये।
ब्रह्मा बाबा डरे तुरत नारद बुलवाये॥
कह्यो जाइके सुरनि करौ उपरत तुम रनतैं।
बिधि आज्ञा सिर धारि आइ बोले देवनितैं॥
अमृत पियौ जय श्री लही, करी कृपा श्री अजित अति।
आयसु बिधि मानो करो, दैत्यनि को संहार मति॥

मुनि बचननिकूँ मानि युद्धतैं विरत भये सुर।
जयको शंख बजाय इन्द्र हरषित पहुँचे पुर॥
बलि सँग मृत सब असुर लाइ इत शुक्र जिवाये।
यदपि पराजित भये तदपि नहिँ बलि सकुचाये॥
देवासुर संग्राम अरु, क्षीरसिन्धु मन्थन कथा।
सुनहिं पढहिँ जे प्रेमतैं, तिनकूँ नहिँ व्यापे व्यथा॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें देवासुरसंग्राम नामक सप्तम अध्याय समाप्त।



अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

श्रीपशुपति जब सुनी बने हरि नरतैं नारी।
रूप मोहिनी लखन भई उत्कंठा भारी॥
चढ़े बैलपै लई संग गिरिराजकुमारी।
पहुँचे हरिपुर हरषि कामरिपु हर त्रिपुरारी॥
करि बिनती हँसि हर कहैं, नाथ! बात अद्भुत सुनी।
मोहन रूप दुराइ कैं, आप बने प्रभु मोहिनी॥

हरि हँसि बोले—देव! भये क्यौ ऐसे उत्सुक।
असुर अमृत लै भगे कर्यो तब मैंने कौतुक॥
रूप मोहिनी धर्यो आँधरे दैत्य बनाये।
सुर सतोषित करे प्याइकैं अमृत छकाये॥
इच्छा उत्कट उमापति, तौ पुनि तुमहिँ दिखाउँगो।
सरस मोहिनी रूपकी, झाँकी अबहिँ कराउँगो॥

अन्तरहित हरि भये तुरत हर निरखैं इत उत।
उत्सुकता अति प्रबल प्रेमतें चहुँ दिशि चितवत॥
इतनेमे ईं लखी नारि उपबनतैं आवत॥
कंदुक क्रीड़ा करत कपरदी चित्त चुरावत॥
दमकै सौदामिनि सरिस, कटि तटपै अति छीन पट।
पीन पयोधर भारतैं, नमित फिरत सरबर निकट॥

पग युग अटपट परत उदर कृश नमत निरंतर।
कटु क श्रमतैं श्वेद बिन्दुयुत मुख अति सुन्दर॥
अलकनि पलकनि और कपोलनि की झलकनिपै।
छटकि सरसता रही भामिनीके अंगनिपै॥
तिरछी चितवनिते लखे, भूलि अपनपौ शिव गये।
छाँड़ि शील सकोच सब, मृगनयनी सँग चलि दये॥

आवत देखे शम्भु चली द्रुत गति मुसुकावति।
सकुचि सहमि हँसि चलत मनहुँ मग रस बरसावति॥
गाय वृषभ उन्मत्त फिरै करिणी सँग जनु करि।
खिसके बस्त्र सम्हारि भगै पुनि देखै फिरि फिरि॥
बैणी झोटा खाइ जनु, लगा चढ़ी नागिनि हिलै।
हार हृदयको करन हित, हर सोचे कैसे मिलै॥

बढ़े बेगतैं केश पास पकरे त्रिपुरारी।
लीन्हे हृदय लगाय सहमि सकुची सुकुमारी॥
हरहिय नभ हरि बदन इन्दु सम शोभा पावै।
इत ये पुनि पुनि कसैं मोहिनी बिवश छुड़ावै॥
बिखरी अलकावलि सुघर, भूपत लागैं अति भली।
बाहुपाशतै पृथक है, तुरत तहाँतै भगि चली॥

चली मोहिनी भागि उमापति दौरे पकरन।
नदी सरोवर शैल फिरैं दोऊ बन उपबन॥
ऋषि मुनि आश्रम जाइ दरश दै करैं कृतारथ।
हरि हर दरशन होंहि यही जग साँचो स्वारथ॥
तेज पतित पृथिवी भयो, स्वर्ण रूप्य आलय भये।
समुझी माया मोहिनी, निवृत तुरत हर है गये॥

तब बोले भगवान—मोहिनी देखी शङ्कर।
कहैं शम्भु—दुष्पार तुम्हारी माया प्रभुवर॥
है दुस्त्यज दुष्पार कहे हरि माया मेरी।
अब न पराभव करै होहि माया तव चेरी॥

चन्द्रमौलि ! चितपै चढ़ै, चपलाकी चितवन चपल।
तो फिर को थिर रहि सकै, होहि चाहिँ जितनो सबल॥

पुनि हरितैं ह्वै विदा उमा सँग चले उमापति।
मगमहँ बोले—प्रिये ! लखी हरि मायाकी गति॥
मैं हू मोहित भयो जीव का करैं विचारे।
वे बचि जावें अवसि होहिँ जिन श्याम सहारे॥

आये शिव कैलाश पुनि, वृत्त मुनिनि सम सब कह्यो।
परम मनोहर मोहिनी—को चरित्र पूरन भयो॥

इति श्रीभागतचरितके चतुर्थाहमें शिवमोहिनी चरित नामक अाटम अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण पन्द्रहवें दिनका विश्राम]



अथ नवमोऽध्यायः

[६]

छप्पय—विवस्वान सुत भये सातवें मनु सुखदाई।
वामन बनि भगवान ठगे बलि देह बढ़ाई॥
सज्ञा छाया संग व्याह दिनकरने कीन्हों।
श्राद्धदेव यम, यमी भये सज्ञाके तीनों॥
छायाकी तपती सुता, सुत सावर्णी शनैश्चर।
कर्‌यौ सौतिया डाह जब, समुझे तब सब दिवाकर॥

संज्ञा छाया छोड़ि गई बन वडवा बनिकें।
दुखित दिवाकर भये ससुरतैं सब कछु सुनिकैं॥
वडवा बनिके वैद्य अश्विनी कुमर जनाये।
सज्ञाकूँ लै सग ससुर ढिँग सूरज आये॥
ससुर कर्‌यो कछु तेज कम, रवि द्वादश ह्वै गये तब।
विवस्वान को बंश यह, राजन्! तुमतैं कह्यो सब॥

अष्टम मनु सावर्णि होहिगे सार्वभौम हरि।
नवें दक्षसावर्णि प्रकट हरि ऋषभ नाम धरि॥
दशम ब्रह्मसावर्णि विश्वसेनहु होंगे विभु।
एकादश सावर्णि धर्म मनु धर्मसेतु प्रभु॥
रुद्रसवर्णी बारवें, अंश सुधामा श्यामकें।
देवसवर्णी तेरवें, योगेश्वर हरि नामके॥

चौदहवें सावर्णिइन्द्र मनु होहिं तपस्वी।
सत्रायणसुत बृहद्भानु हरि होहिं यशस्वी॥
यों भविष्य अरु भूत कहे ये मन्वन्तर सब।
इन सबको का काज, करूँ ताको बरनन अब॥

मन्वन्तरकी पुण्यमय, सुनैं कथा जे प्रेमतैं।
हरिपद पावैं करैं जे, कथा कीरतन नेमतैं॥

मन्वन्तर पर्यन्त करैं पालन मनु जगकूँ।
सब सप्तर्षि समूह बतावें श्रुतिके मगकूँ॥
पृथिवी पालन करैं होहिं जे मनुके बशज।
लैके हरि अवतार करै पालन सुरपति अज॥

पावैं सब ही देवगन, भाग यज्ञ अरु हवनमहँ।
सुरपति बनि देवेन्द्रहू, पूजित होवें सुरनिमहँ॥

सिद्ध रूप धरि करैं ज्ञान उपदेश निरन्तर।
कर्मकाड बिस्तार करैं जगमहँ है ऋषि वर॥
योगेश्वरको रूप बनावैं ज्ञान सिखावैं।
यों सबकूँ दै ज्ञान जगततैं अभय बनावैं॥

हरि माया अति प्रबल है, बरनन को नर करि सकै।
हरि बिनु या अज्ञानकूँ, दूसर नर नहिं हरि सकै॥

कहे परीक्षित—देव! बने क्यौं वामन श्री हरि।
लघु बनि भिक्षाकरी बढ़े क्यौं पुनि प्रभु छल करि॥
बोले शुक—सुनु भूप! पराजित दैत्य भये जब।
अस्ताचल लै जाय जिवाये शुक्र असुर सब॥

गुरु सेवा ई अभ्युदय—को कारन बलि जानिकै।
शुक्रहिं सौंप्यो राज्य तनु, इष्ट देव-सम मानिकै॥

सेवातैं सन्तुष्ट शुक्र इक यज्ञ रचायौ।
नाम विश्वजित विदित वेदविद विप्र करायौ॥
पूजित ह्वै कैं अग्नि दिव्य सुन्दर रथ दीन्हों।
द्वै अक्षय तूणीर कवच धनु अर्पण कीन्हों॥
दीन्हीं माला पितामह, दिव्य शंख गुरुने दयो।
यों रन को सामान सब, एकत्रित बलिपै भयो॥

सजि सेना सुर विजय हेतु नृपवर चलि दीन्हें।
सुरपुर घेर्‌यो हृदय रिपुनिके कंपित कीन्हें॥
सुर समृद्धि अति रम्य हृदय इन्द्रिनि सुखदाई।
वन उपवन वर वृक्ष चहूँ दिशि शोभा छाई॥
झुकि झूमैं चूमैं अवनि, सुरतरु फल दल सुमनयुत।
मधुकर खग कलरव करहिं, सुर ललना झूमत फिरत॥

श्यामा सुभगा सदा सुहागिनि विहरैं बाला।
केशपाश महँ ग्रथित दिव्य सुमननि की माला॥
तिनतैं लै आमोद अनिल मग सुरभि बखेरै।
बनि परिखा नभ गंग अमरनगरीकूँ घेरै॥
नहिँ प्रवेश पापी करहिं, पुण्यप्राप्त जहँ भोग सब।
गुरु आशिषतै सुरपुरी, घेरी असुरनि आइ तब॥

सुरपति गुरु ढिंग जाय कहैं—गुरु! असुर बढ़े कस।
ओज तेज उत्साह बढ्यौ क्यों असुरनि बल अस॥
बोले सुरगुरु—करी कृपा गुरुने असुरनिपै।
हारै हरि बिनु नहीं अवहिं ये स्वर्ग अवनि पै॥
तातैं तजि के स्वर्गकूँ, करो प्रतीक्षा कालकी।
मेटि सकै नहिं कबहुँ नर, लिखी रेख जो भाल की॥

गुरु आयसु सिर धारि अमरगन छाँड़ि स्वरग सुख ।
कामरूप धरि फिरैं अवनिपै सहैं विविध दुख ॥
सुरपुर सूनों समुझि असुर अधिकार जमायो ।
बलिकूँ शुक्राचार्य इन्द्र पदपै बैठायो ॥

अश्वमेध शत बलि करै, इन्द्रासन ध्रुव होइ तब ।
भृगुवशी द्विज सोचि जिह, करवावैं मिलि यज्ञ सब ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें बलि विजय नामक नवम अध्याय समाप्त ।



अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

छप्पय—अमर अवनिपै फिरै कपट तनु धरिकैं इत उत ।
अदिति सुतनि दुरदशा समुझि अति दुःख भयो चित ॥
आये कश्यप जबहि लखी घर अधिक उदासी ।
पत्नी तनु अति छीन मलिन जनु भूखी प्यासी ॥
मुनि पूछी कुशलात जब, अदिति दुखित बोली बचन ।
इन दैत्यनि तव अमरसुत, करे पदच्युत तपोधन ॥

मम सुत यश ऐश्वर्य हीन असुरनिने कीये ।
दुष्ट दैत्य मिलि दुसह दुःख देवनिकूँ दीये ॥
सुरपूरकूँ सुर त्यागि फिरें सब मारे मारे ।
साधारन जन सरिस भूमिपै रहे विचारे ॥
सब समर्थ सर्वज्ञ प्रभु, आप प्रजापति महामुनि ।
नाथ ! कृपा ऐसी करैं, पावैं सुत ऐश्वर्य पुनि ॥

प्रिया वचन सुनि भये चकित कश्यप मुनि ज्ञानी ।
पुत्र शोकते दुखित अदितिकी पीड़ा जानी ॥
सोचें माया प्रबल विष्णुकी विश्व नचावति ।
मिथ्या मति चित धारि नारि पति पुत्र बतावति ॥
सोचि समुझि बोले बचन, कृष्ण कृपा सब करिङ्गे ।
सेवाते सन्तुष्ट है, हरि हियगत दुख हरिङ्गे ॥

अदिति कहे—हे देव ! कृपा करि कष्ट मिटाओ ।
व्रत मन इच्छा पूर्ण करन हित तुरत बताओ ॥
कश्यप बोले—करो पयोव्रत प्रभु आराधौ ।
हरिकूँ हियमहँ धारि नियम व्रतके सब साधौ ॥
अति उत्कंठित अदिति है, बोली नाथ ! बताइ दें ।
कहा करूँ त्यागूँ कहा, बिधि बिधान समुझाइ दें ॥

बोले कश्यप—है जीवन जा जगमहँ छिनको ।
हरि आराधन करो पयोव्रत बारह दिनको ॥
केवल पीकें दूध करो पूजन आराधन ।
इच्छा पूरन हेतु यही सर्वोत्तम साधन ॥
वित्त शाठ्यकूँ त्यागि कें, व्रत श्रद्धातें जे करहिं ।
सिद्ध करैं हरि काज सब, अवसि दुःख दारिद हरहिं ॥

हरि पूजन अरु हवन विप्र भोजन बारह दिन ।
कथा कीरतन करै नृत्य वादन अरु गायन ॥
जा विधितैं जे भक्ति सहित श्रीहरिकूँ सेवैं ।
प्रभु प्रसन्न ह्वै इष्ट वस्तु निश्चय करि देवैं ॥
अदिति सुने व्रतके नियम, अति प्रसन्न मनमहँ भई ।
सर्व यज्ञमय पयोव्रत, बिधितैं करिबे लगि गई ॥

निरखि अदिति व्रत नियम भये अति तुष्ट गदाधर ।
भये प्रकट अखिलेश चतुरभुज विष्णु मनोहर ॥
सम्मुख श्रीपति लखे प्रेममहँ बिह्वल माता ।
परी दण्डवत भूमि निरखि हरि भवभयत्राता ॥
अति उत्कंठित भरित हिय, लज्जातें पुनि झुकि गई ।
विनय करन इच्छा भई, गद् गद् बानी रुकि गई ॥

पुनि सुरमातु सम्हारि अपनपौ बोली बानी।
हे अनादि ! अखिलेश ! अखिलपति ! इच्छादानी ॥
हे सुररक्षक देव ! विष्णु ! अज भंजन खल दल।
हे यज्ञेश्वर ! यज्ञरूप ! शरणागतवत्सल ॥
निरखैं कृपा कटाक्ष तैं, नासैं तिनकी सब व्यथा।
सिद्ध मनोरथ करैं पुनि, शत्रु विजयकी का कथा ॥

हँसि हरि बोले—मातु बात सब हिय की जानी।
कीन्हें सुर श्रीहीन बढ़े दिति सुत अभिमानी ॥
स्वर्गहीन सुत भये विजय चाहो तुम तिनकी।
मिलै स्वर्ग ऐश्वर्य वृद्धि होवे देवनिकी ॥
यद्यपि असुर अजेय हैं, गुरुसेवामहँ निरत सब।
होहिं न निष्फल मम भजन, तदपि करहुँ कछु यत्न अब ॥

निज महत्वकूँ त्यागि बनूँ लहुरो देवनितैं।
तव सुत बनिके करूँ कपट छल इन दैत्यनितैं ॥
कश्यप तपमय वीर्य माँहि हौ होहुँ, अवस्थित।
पति परमेश्वर समुझि करो सेवा सब समुचित ॥
काहूतैं कहियो न जिह, यौ मोतैं प्रभु कहि गये।
यो दैकैं वरदान सिख, श्रीहरि अन्तरहति भये ॥

अदिति गर्भमें कछुक दिवसमहँ हरि अज आये।
दम्पति उर आनन्द भयो सुर सिद्ध सिहाये ॥
जानि गर्भगत विष्णु आइ विधि विनती कीन्ही।
शुभ मूहूर्त शुभ लग्न स्वतः सब शिव करि दीन्ही ॥
भादों शुक्ला द्वादशी, अभिजितयुत अति दिन परम।
अज अविनाशी अदिति घर, लीयो वामन बनि जनम ॥

इति श्रीभागवत चरित के चतुर्थाह में श्रीवामनप्रादुर्भाव नामक दशम अध्याय समाप्त।

अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

छप्पय—रूप चतुर्भुज गदा शङ्ख चक्रादिक धारे।
सुन्दर श्याम शरीर कमलमुख कच घुँघुरारे॥
कर कंकन गल माल करधनी कटिमहँ सोहै।
मणि मुक्ता मय मुकुट मुनिनिके मनकूँ मोहै॥
दरशन करि कश्यप अदिति, सहसा भौंचक्के भये।
लीलामहँ बाधा लखी, पुनि बामन बटु बनि गये॥

जाति कर्म संस्कार भये पुनि बामन बाढ़े।
घुटुअनके बल चलैं, लगे पुनि ह्वैवै ठाढ़े॥
पाँचबरसके भये पिता उपनयन करायो।
रवि सावित्री दई जनेऊ गुरु पहिनायो॥
कश्यप दीन्हीं मेखला, अजिन अवनि उत्तम दयो।
मातातैं कोपीन पट, दण्ड चन्द्रमातैं लयो॥

धन कुबेरने दयो पात्र भिक्षाको भारी।
माँ जगदम्बा उमा विहँसिकें भिक्षा डारी॥
लोभी बामन बने लाभतैं लोभ बढ़ायो।
जग ठगिबेके हेतु कपटको बेष बनायो॥
अश्वमेध नृप बलि करैं, चले ब्रह्मचारी सुनत।
बिश्वभार लादैं अखिल, पृथिवी पग पगपै नमत॥

दण्ड कमण्डलु लिये ओढ़ि तनपै मृगछाला।
पहिन मेखला मूँज चले बलिकी मखशाला॥
तेजपुंज सम लखे विप्र बामन व्रतधारी।
सहसा सबई भये खड़े लखि बटु लटधारी॥

भये प्रभावित विप्रगन, अधिक मोद मन बलि भयो।
पद पखारि पुनि अर्घ्य दै, बैठनकूँ आसन दयो॥

बिधिवत पूजाकरी हृदय फूले न समाये।
पादोदक सिर धारि पान करि अति हरषाये॥
रानी पुनि पुनि लखैं रूपपै बलि बलि जाईं।
चरनामृत करि पान कहैं गङ्गा घर आईं॥

तनु पुलकित मन मोदयुत, पात्र निरखि अतिशय मगन।
बहु स्वागत सत्कार करि, दानी बलि बोले बचन॥

कहो विप्रसुत कृपा दासपै कीन्हीं कैसें।
है अति दुर्लभ दरश बिना कारन बटु ऐसें॥
मेरे मन अनुमान आप कछु माँगन आये।
किन्तु निरखि द्विज भीर बाल मनमहँ सकुचाये॥

मम ढिँग कछु न अदेय है, शङ्का तजि द्विजवर! कहहु।
अन्न, पान, धन, धान, पट, जो इच्छा सोई गहहु॥

चाहो मनहर महल गुदगुदी सुखकर शैया।
अथवा गज रथ अश्व दूधकी सूधी गैया॥
या जस बौने आप बौनटी दुलहिनि चाहो।
अबई करूँ बिबाह न मनमहँ बटु सकुचाओ॥

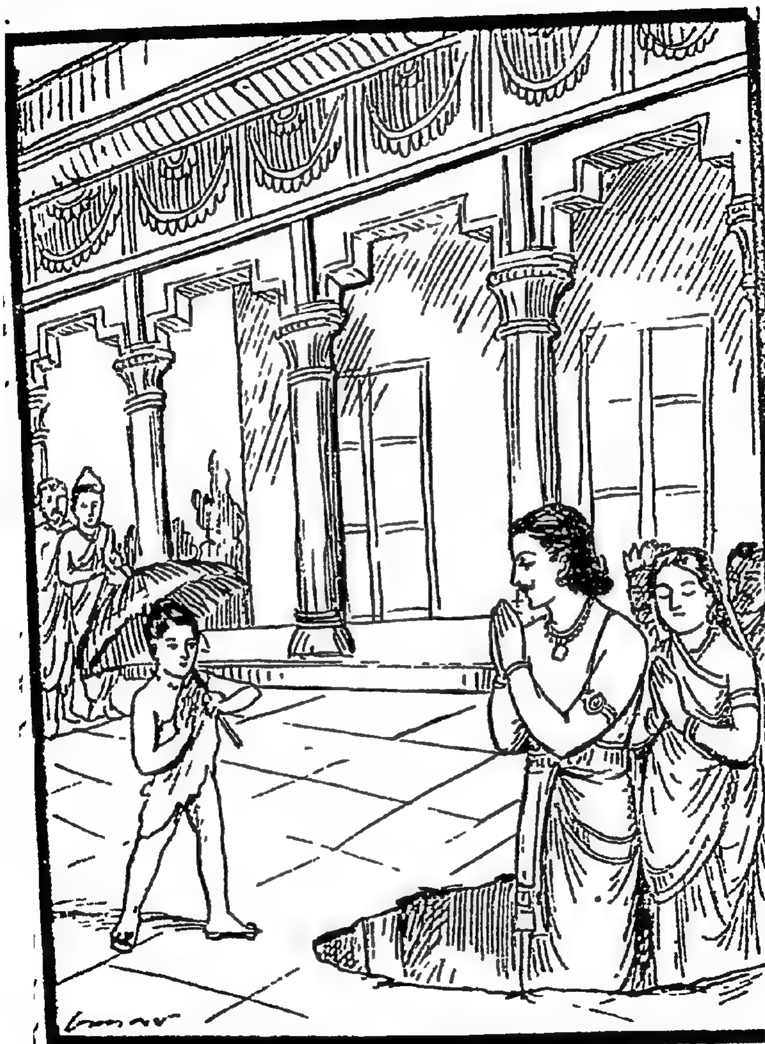
बहु संम्पतियुत ग्राम अरु, जो चाहो सोई कहहु।
अथवा मेरे महलमहँ, भूपति बनि द्विजवर रहहु॥

सुनि नृप बलिकी बात बिप्र कपटी सुख पायो।
असुर फँसावन हेतु कपटको जाल बिछायो॥
बूढ़े बाबा सरिस कहे—बलि! तुम बड़ भागी।
क्यों न होहि अस शील जहाँ भार्गव गुरु त्यागी॥
पिता बिरोचन विप्र हित, प्रान दये प्रन तज्यो नहि।
भये भक्त प्रह्लाद नर—हरि प्रकटाये कष्ट सहि॥

सत्यहीन अरु कृपन भये तुमरे कुल नाही।
असुर बंशको सुयश व्याप्त सबरे जगमाँही॥
कल्पवृक्षके सरिस भये पूर्वज तुमरे सब।
इच्छा पूरन करो सबनि की तुमहू नृप अब॥
हिरनकशिपु हिरनाक्षहू, प्रपितामहँ तुमरे भये।
लड़े बिष्णुतैं समरमहँ, नाम अमर जग करि गये॥

हिरण्याक्ष नहि समरमाँहि काहूतैं हार्‌यो।
बनिके बिष्णु वराह कपटतैं ताकूँ मार्‌यो॥
हरि हनि भये हताश पराजित आपुहि मान्यो।
बन्धु मृत्यु सुनि हिरनकशिपुने सर सन्धान्यो॥
चले बिष्णुतैं लड़न हित, सोवततैं श्रीपति जगे।
देखि वीरके तेजकूँ, तजि शैया पुरतै भगे॥

नहीं दुबकिवे जोग ठौर देख्यो श्रीपति जब।
धारि सूक्ष्मतनु असुर हृदयमहँ प्रविशे हरि तब॥
खोजे स्वर्ग पताल भूमिपै पतो न पायो।
समुझि भगौड़ो छोड़ि लौटि अपने घर आयो॥
तुम उपजे तिहि बंशमहँ, विश्वविदित रणधीर हो।
याचक इच्छा कल्पतरु, सब दानिनिमहँ वीर हो॥



वामन और बलि पृ० २४३



–मत्स्यावतार पृ० ३५६–

राजन् ! तुमतैं तनिक भूमि हौं आयो याचन।
केवल जपके हेतु लगै जामैं सुख आसन॥
दान ग्रहन अति अधम तऊ निर्वाह करन हित।
लैवेमें नहिं दोष अधिक तृष्णा है निन्दित॥
केवल अपने पाँइतैं, तीनि पैर पृथिवी चहूँ।
अधिक लेउँ नहिं एक डग, सत्य सत्य भूपति कहूँ॥

हँसि बलि बोले—बटो ! बात वृद्धनिवत भाखो।
किन्तु स्वार्थमहँ बुद्धि तनिक वामन नहिं राखो॥
मोकूँ करि सन्तुष्ट तीनि पग पृथिवी भिक्षा।
माँगी मानो मिली नहीं स्वारथकी शिक्षा॥
कपटी बटु बोले—विभो, हौं लोभी वामन नहीं।
तुरत देहु सदेह मन, फिर नाहीं करदैं कहीं॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाह में वामन याचना ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त



अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

दोहा—कपटी वामनको कपट, नहिं समुझे बलिराज।
दैन तीनि डग भूमिमें, तिनि अति लागी लाज ॥

छप्पय—लै सुवर्ण जलपात्र कहें बलि—अच्छा लीजे।
शुक्र बीचमहँ रोकि कहैं—नृप भूमि न दीजे ॥
यह बटु वामन नहीं बदलिकें वेष बनायो।
कमलापति यह विष्णु कपटतैं ठगिवे आयो ॥
जब फैलावै पैर जिह, बटु विराट बनि जायगो।
राज्यभ्रष्ट असुरनि करै, अमरनि अधिप बनायगो ॥

धर्मभीरु बलि कहैं—गुरो! क्यों पाप कमावैं।
दान धर्ममहँ व्यरथ आप रोड़ा अटकावैं ॥
वैसे ही बटु सकुचि बहुत धन दान न चाये।
उल्टी पट्टी तऊ आप पुनि मोइ पढ़ायें ॥
भई कहावत सत्य यह, जो प्रसिद्ध जग बात है।
बामन बामनकूँ लखै, कूकर वत गुर्रात है ॥

बोले शुक्राचार्य-व्यर्थ तू बात बनावै।
धर्म मर्म विनु लखे मोइ उपदेश सिखावै ॥
अर्थवृद्धि, यश, भोग, धर्म अरु स्वजन हेतु नर।
करै द्रव्य व्यय सदा गृहीको यह मग सुखकर ॥
अन्न वस्त्र बिनु नारि अरु, बालक भूखे घर मरैं।
करैं दान यश हेतु जे, बुध तिनकी निन्दा करैं ॥

घरमहँ बालक नारि मातु पितु तजिकें भाई ।
बिनु पूछे जो दान करै सो पाप कमाई ॥
बोले बलि--गुरुदेव ! दान दैदीन्हो मनतैं ।
अब कस झूठो बनूँ ब्रह्मचारी वामनतैं ॥
कहिकै देऊँ दान नहिं, तो पीछे पछिताउँगो ।
दोषी ह्वै हूँ जाउँगो, अन्त नरकमहँ जाउँगो ॥

सुनिकैं शुक्राचार्य कहैं—तू धर्म न जानें ।
धर्म तत्त्व अति गूढ़ विज्ञ नर ही पहिचानें ॥
हाँ देंगे, ये वचन, अर्थ व्यापकके द्योतक ।
सदा कहैं नहिं देहि धर्म यशके ये शोषक ॥
बिनु बिचार दै देहि जे, ते पीछे माँगत फिरहिं ।
ऐसे दाताकूँ सदा, भिक्षुक नित पीड़ित करहिं ॥

नहीं सर्वथा करै न निज सर्वस्व गँमावै ।
भिक्षुक आवें देइ कछू कछु टाल बनावै ॥
अपनी वृत्ति बचाय बित्त सम करै दान नित ।
लोक और परलोकमाहिँ राखै अपनो चित ॥
रक्षा तन धनकी करै, सदा सत्य बोले वचन ।
कहुँ असत्य बोले विवश, ह्वै प्रसंगवस विज्ञजन ॥

हँसीखेलमहँ और कामिनी क्रीड़ा माहीं ।
होहि जीविका नाश प्रान काहूके जाहीं ॥
निज प्राननिके हेतु विप्र गौ रक्षा होवै ।
तो विशेष नहिँ दोष सत्यकूँ यदि नर खोवै ॥
मातु पिता अति वृद्ध हैं, बालक अति अज्ञान हैं ।
जस तस प्राननिकूँ रखे, मुख्य देहमहँ प्रान है ॥

होहि स्वार्थ नहिं नाश काम सुखहू बचि जावै।
बाधा काहू भाँति जीविकामहँ नहिं आवै ॥
होहि न अपयश जगतमाँहि कुत्सित कामनितैं।
गृहीधर्म है जिही शास्त्र सम्मत बचननितैं ॥
हाथ पाँवकूँ बचानौं, मूँजीकूँ टरकावनों।
कछु असत्य कछु सत्यतैं, अपनो काम चलावनों ॥

सुनि बलि बोले बीर बचन गुरुतैं सकुचाई।
भगवन् ! सुन्दर स्वार्थ सिद्ध हित नीति बताई ॥
किन्तु लोभ बश देव ! सत्यकूँ कैसे त्यागूँ।
कैसे रिपु ललकारि, युद्धतैं डरिकें भागूँ ॥
हाँ कहि ना करिबो नहीं, दितिकुलके अनुरूप जिह।
पिता प्रान द्विज हित दये, प्रन नहिं छाड्यो पितामह ॥

शिबि दधीचिने तजे प्रान दुस्त्यज हू परहित।
भूमि आदि अति तुच्छ भोग जगके जे परमित ॥
नाशवान धन, धरा, बिश्वके सबहिं पदारथ।
अविनाशी यश एक यही जग जीवन स्वारथ ॥
सहज शत्रु सँग शूरता—सहित समरमहँ मरन है।
किन्तु पात्रकूँ प्रेमयुत, द्रव्य दैन अति कठिन है ॥

यदि ये हैं भगवान विष्णु सब जगके पालक।
वेष बदलि विश्वेश बने बटु बौने बालक ॥
तो चिन्ताकी कौन बात ये मखके स्वामी।
जो जे चाहैं करैं अखिलपति अन्तरयामी ॥
'सब साधनको यही फल, होहि कृष्ण पद सुदृढ़मति।
यह मेरो सौभाग्य अति, याचन आये बिश्वपति ॥

विप्र वेषतें दंड देहिं वा मोकूँ मारैं।
अथवा धन गृह राज्य छीनिके देश निकारैं॥
दीयो जो कछु दान करौं नहिं फिरि हौ नाहीं।
धन तो आवत जात रहै कीरति जगमाहीं॥

चाहैं बामन विप्र हों, शत्रु होहि अथवा सुहृद।
देहुँ तीन डग भूमि अब, पग लघु हों अथवा बृहद॥

लखि बलिकी हठ शुक्र क्रोध करि बोले बानी।
अरे मंदमति ! मूर्ख ! अज्ञ ! शठ ! पंडितमानी॥
साधारण द्विज भिक्षु मोइ निज आश्रित जानैं।
करै उपेक्षा अधम बात मेरी नहिं मानैं॥

जा तेरो ऐश्वर्य धन, छिनमहँ सब नसि जाइगो।
गुरु आज्ञा अवहेलना—को फल अब तू पाइगो॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें बलि शुक्राचार्य सम्वाद नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

भये देव प्रतिकूल भाग्यने पलटो खायो।
कहाँ इन्द्रपद अटल करनहित यज्ञ रचायो॥
गुरुने दीयो शाप पाप पूरबके प्रकटे।
तऊ न विचलित भये दान दैकें नहिं पलटे॥

अपने जानैं जीव सब, कारज सुखकर ही करहिं।
किन्तु दैवबश होहिं फल, हाथ हवन करतहु जरहिं॥

जल कुश लै संकल्प पढ़्यो भू बामन दीन्हीं।
नन्हें नन्हें हाथ बढ़ाये बटु लै लीन्ही॥
अब पुनि बामन बढ़े लोभबश पग फैलाये।
उनके तनमहँ भूमि दिशा नभ सबहिं समाये॥

भुवन चतुरदश भूत सब, काल करम मनु इन्द्रसुर।
बटु बामनके देहमहँ, चकित होहिं निरखहिं असुर॥

शुक्र बचन प्रत्यक्ष भये बटु बामन बाढ़े।
अद्भुत अनुपम रूप असुर सब निरखैं ठाढ़े॥
दंड कमंडलु त्यागि अस्त्र आयुध निज धारे।
लखि विराटकूँ कँपैं असुर सब भयके मारे॥
चक्र सुदरशन, धनुष, सर, गदा, खड्ग धारन किये।
ढाल, शङ्ख, क्रीडाकमल, आठहुँ हाथनिमहँ लिये॥

फूली जनु कनेर अष्ट कर शस्त्र विराजैं।
अंगद कुंडल मुकुट मेखला अगनि भ्राजैं॥
भ्रमर निकर गुञ्जायमान बनमाला सुन्दर।
मधु लोलुप मधु पियें गान कर मादक मधुकर॥

लम्ब तड़ङ्गे विश्वमय, बने विष्णु वामन छली।
जब नापैं पगतैं मही, सो शोभा अति ई भली॥

सागर कानन शैल, नदी, नद, सर निरझरिनी।
सात भूमि पाताल सहित सबरी यह धरनी॥
बलिकी जहँ लगि भूमि नापि वामनने लीन्हीं।
फैलाये पग विशद पाद अन्तरगत कीन्हीं॥

कायातै आकाशकूँ, अष्ट करनितैं अष्ट दिशि।
गयो द्वितिय पद स्वर्गमहँ, जन तप सत्यहुमें प्रविशि॥

फोर्‌यो अंडकटाह चरन नख पार गयो जब।
बही सलिलकी धार कमण्डलु विधि धारी तब॥
विष्णुपदी पुनि भई पखारे पद श्रीहरिके।
श्रीगंगाजी चलीं भूमिपै वहीं उतरिके॥

शतयोजनपै बैठिके, जे गंगा गंगा कहहिं।
ते नर पावैं परम पद, भूखे नगे नहिं रहहिं॥

जग जननी माँ गङ्ग अँग अँग सुख सरसावैं।
मन पुलकित पयपान लहर लखि हिय हरसावैं॥
पाप पहाड़ ढहाय पुण्यको पोत उठावैं।
तापै चढ़ि माँ! भक्त सहज भव निधि तरि जावैं॥

प्रभु पद-रज तुलसी सहित, ब्रह्म कमंडलुतैं निकसि।
सब स्वर्गनि पावन करति, गिरि भू पुनि जलनिधि प्रविसि॥

द्वै डगतैं जग नापि बने पुनि हरि बटुबालक।
लखि छल सबई दैत्य भये क्रोधित पुरपालक॥
मारौ, यह द्विज नाहिं विष्णु छलिया असुरारी।
स्वामीकूँ छलि ठगी सबहिं सम्पत्ति हमारी॥

जीवित जान न पाइ जिह, अब यमपुरको मग गहै।
क्रोधित असुरनितैं बिहँसि, महा मनस्वी बलि कहै॥

अरे असुरगन! बात सुनो, मति शस्त्र चलाओ।
असमय लखि तुम तुरत लौटि रनतैं सब जाओ॥
समय सबल ही करै-करै दुरबल वह भाई।
काल जनित यह विपति, असुरकुलपै अब आई॥

मन्त्र बुद्धि अरु दुर्गबल, अब न काम कछु करिङ्गे।
बनि बिराट बटु विप्रवर, सरबसु हमरो हरिङ्गे॥

सुनिकें बलिकी बात लौटि सुररिपु सब आये।
बाद बिबाद न बढ़ै असुर पाताल पठाये॥
अच्युत आशय समुझि गरुड़ बलि बाँधे बरबस।
जगमहँ हाहाकार मच्यो हरि छीन्यों सरबस॥

चलित चित्त बलि नहिं भये, हर्यो विष्णुने भुवन धन।
लखि लज्जित बलितै बिहँसि, बटु बामन बोले बचन॥

हे दानिनिमहं श्रेष्ठ! तीनि पग पृथिवी दीन्हीं।
प्रथम पाद तैं स्वर्ग द्वितिय तैं भू सब लीन्हीं॥
तीसर पगके हेतु अवनि कहुँ अनत बताओ।
करो प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं नरकनि महँ जाओ॥

दान प्रतिज्ञा प्रथम करि, पुनि पूरी जे नहि करहि।
ते पापी पामर पुरुष, सब नरकनिके दुख सहहि॥

कनक सरिस बलि बहुत दुसह दुख अनल तपाये।
परि न व्यथित बलि भये मनस्वी नहिँ घबराये॥
बोले--हे विश्वेश ! सत्यतैं नहि मुख मोरूँ।
तीनि पैरकी करी प्रतिज्ञा ताहि न तोरूँ॥

तीसर पग मम सिर धरो, बिना बात बटु क्यौ लड़ौ।
दान वस्तुकी अपेक्षा, दाता तौ सब विधि बड़ौ॥

हो हरि माता पिता सुहृद सर्वस्व हमारे।
पकरि पितामह तरे पोत पद पदुम तिहारे॥
बन्धनतैं नहिं डरौं नरक तैं भय नहिं प्रभुवर।
स्वामी देवै दण्ड होहि सेवककूँ सुखकर॥

बैर भावतैं भक्ति करि, तरे असख्यनि असुरगन।
जग सुख भोग्यो अंतमहँ, लह्यो परमपद त्यागि तन॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाह में बलिबन्धन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

बलि वामन अवतराईं भये प्रहलाद उदित रवि।
अरुननयन पट पीत कृष्ण तनु अति मनहर छबि॥
निरखि पितामह नेह नीर बलि नयननि छायो।
पूजा कैसे करहिं बँधे ही शीश नवायो॥

बलि सिकुर्‌यो संकोच वश, बामन हरि सन्मुख खरे।
पुलकित तनु प्रहलाद जी, ह्वै प्रसन्न प्रभु पग परे॥

पुनि बोले प्रहलाद--प्रभो! यह अति भल कीन्हों।
दयो इन्द्र पद आपु आपु ही पुनि हरि लीन्हों॥
धन वैभवमें कहा होहि तव चरननिमहँ रति।
धन मदमहँ मदमत्त करैं नर अघ अति नितप्रति॥

बिनती करि प्रहलाद जी, पुनि कीयो चरननि नमन।
तब विन्ध्यावलि बलिप्रिया, बिनय सहित बोली बचन॥

करता भरता और जगतके हरता तुम तुम हरि।
अब सहैं दुख व्यर्थ राज धनमहँ ममता करि॥
का हम दीयो देव आप अपनो स्वीकार्‌यो।
यों कहि बैठी सती फेरि विधि बचन उचार्‌यो॥

विधि बोले---विश्वेश विभु, बलि सरबसु अरपन कियो।
फिर उदार यश असुर कूँ, बंधन करि क्यों दुख दियो॥

विधिके सुनिकें वचन कहैं हरि हँसिके बानी।
ब्रह्मन्! तुम सर्वज्ञ वेदवित् पंडित ज्ञानी॥
जनम करम ऐश्वर्य अवस्था अरु सुन्दर तन।
विद्याधन ये सबहिं प्रशंसित जगमें हैं गुन॥
इन सबमहँ मद रहतु है, धनमद अतिही प्रबलतम।
धनमदमहँ उनमत्त नर, नेत्र सहित हू अंध सम॥

अपने आगे धनी गनहिं नहि काहू जनकूँ।
बढे लाभतैं लोभ पाप करि जोरे धनकूँ॥
तातैं जापै कृपा करहुँ हौं सब मदहारी।
नासूँ धन ऐश्वर्य बनाऊँ ताहि भिखारी॥
धन, पशु, पुत्र, कलत्र जे, करैं विघन हरि भजनमहँ।
देखि सकहुँ नहिं तिनहिं हौं, नासि—लेउँ निज शरनमहँ॥

जे जन सब कछु त्यागि शरन मेरीमहँ आवैं।
ते तजि सब अभिमान निरन्तर मम गुन गावैं॥
जाति बरन अभिमान करै नहिं धनमहँ ममता।
परहितमहँ नित निरत तजै सब मद उद्धतता॥
त्यागि मान मद सबनिमहँ, निरखैं श्री भगवान हैं।
सब अनर्थके मूल ये, मिथ्या ही अभिमान हैं॥

माया मोहित जीव जगतमहँ सुख दुख देखें।
किन्तु भक्त सबमाहिँ निरन्तर मोकूँ पेखैं॥
हरि जस राखैं रहैं खवावैं जो सो खावैं।
राखैं जहँ रहि जायँ विष्णु बाधैं बँधि जावैं॥
ऐसी जिनकी मति सदा, कृपा प्रतीक्षा नित करहिं।
परम अनुग्रहपात्र मम, ते भवसागरतें तरहिं॥

ब्रह्मन् ! बलिने जीति लई दुर्जय मम माया ।
अजर अमर है गई कीर्ति अरु इनकी काया ॥
धन सम्पतितैं हीन बँधे बन्धनमहँ भूपति ।
करे तिरस्कृत सुरनि यातना हू दीन्हीं अति ॥
दयो भयङ्कर शाप गुरु, जाति बन्धु सब तजि गये ।
छल करिकैं सरबसु हर्यो, तोऊ बिचलित नहिं भये ॥
यों विधिकूँ समुझाइ कहैं बलितैं बामन हरि ।
इन्द्रसेन नृपवर्य ! करो मम आयसु सिर धरि ॥
सुतल लोकमहँ बसौ दिव्य होवे तब सब अँग ।
द्वारपाल बनि रहूँ द्वारपै हौं तुम्हरे सँग ॥
भक्तानुग्रह निरखि बलि, बोले है गद्गद् बचन ।
अनुकम्पा अनुपम करी, हे अच्युत ! अशरनशरन ॥
पुनि हरि आयसु पाइ शुक्र मख पूर्ण करायो ।
बलि बामनको सुयश बिहँसि बाले गुरुने गायो ॥
यों करि सरबसु दान दैत्यपति अति हरषाये ।
जगबन्धनकूँ तोरि विष्णु आधीन बनाये ॥
आगे करि प्रहलादकूँ, जाति बन्धु सब सँग लये ।
रक्षक प्रभु बामन बने, सुतल लोककूँ चलि दये ॥

दोहा—रहे सुतलमें बलि सतत, आगे होवें इन्द्र ।
जिनके द्वारे छरीलै, निवसहिँ नित्य उपेन्द्र ॥

छप्पय—बलिके द्वारे द्वारपाल बनि बसैं जगत्पति ।
बलि बिरुद्ध जे होहि करैं तिनकी ते दुरगति ॥
इक दिन रावन जाइ कहे बलितै बल गरबित ।
विष्णु बिजय हौ करूँ काज कीयो जिनि निन्दित ॥
बलि बोले—पितु पितामह, हिरनकशिपु हरि सँग लरे ।
श्री नरहरि बनि विष्णुने, हने कान कुंडल गिरे ॥

मृतक असुरके प्रथम जाइ कुन्डलहिं उठाओ।
तब उन हरितें लड़न हेतु तिनके ढिंग जाओ॥
टसतें मस नहीं भयो लगायो रावन बल सब।
हँसि बोले बलि—वीर! विष्णु बल कछु समुझे अब॥
जा कुन्डलकूँ कानमहँ, जे पहिनत ते हने हरि।
विजय प्राप्त कैसे करो, तिनि प्रभुतैं तुम युद्ध करि॥

बलि वामनको विजय चरित यह नृपवर! गायो।
अब तक बलि को सुयश चतुरदश भुवननि छायो॥
सुतल लोक बलि गये विष्णु नित वहाँ विराजैं।
बलि वैभवकूँ निरखि अमर सुरपतिहू लाजैं॥
यौं बलि छलिके विष्णुने, स्वर्ग राज्यदेवनि दयो।
अदिति कामना पूर्ण करि, पुनि उपेन्द्र पदहू लह्यो॥

ति श्री भागवत चरितके चतुर्थांहमें उपेन्द्रावतार नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

विविध बेष वपु धारि बिष्णु बिश्वेश्वर बिहरें ।
रहे सदा रवि किन्तु कहे नर सूरज निकरें ॥
कच्छ मत्स्य बाराह कबहुँ नरहरि तनु धारें ।
साधुनि रच्छा करें दैत्य दानव खल मारें ॥

लोक बिनिन्दित मत्स्य तनु, लीलातैं श्री हरि धर्‌यौ ।
प्रलय सरिस घूमत फिरे, गो द्विज सुर कारज कर्‌यो ॥

बोले शुक तें नृपति—मत्स्य प्रभु चरित सुनावें ।
क्यौं हरि ऐसे विश्व बिनिन्दित वेष बनावें ॥
शुक हँसि बोले—भूप ! बिष्णु घट घटके बासी ।
बन्दित निन्दित कछु न विश्वपति अज अबिनासी ॥

धेनु, बिप्र, सुर, संत अरु, बेदनिकी रच्छा निमित ।
धर्म अर्थ रच्छित रहैं, धारैं तनु जग हित अजित ॥

धरम मूल भगवान धरम धरनीकूँ धारैं ।
जगमहँ होहि न धर्म मातु संततिकूँ मारैं ॥
दृढ़तर रच्छित धर्म करै रच्छककी रच्छा ।
लैकें हरि अवतार धर्मकी देवै शिच्छा ॥

सत्य सनातन धर्म की, प्रभु युग युग रच्छा करत ।
जलचर थलचर गगनचर, धर्म हेतु हरितनु धरत ॥

प्रथम एकरस रह्यो धरम सतयुग ही होवे।
किन्तु कपट व्यवहार नित्यता नरकी खोवे॥
पिप्पलादि मुनि पत्नि परीक्षा लई धरम जब।
कहे अटपटे बचन सती अति क्रुद्ध भई तब॥

पतिव्रताके शाप वश, धर्म वृद्धि क्षय युत भये।
त्रेता, द्वापर, सत्य, कलि, तबई तें युग बनि गये॥

होहि धर्म की हानि तबहि हरि प्रकटित होवें।
तानि दुपट्टा अन्य समय पयनिधि महँ सोवें॥
जब जस अवसर लखैं तबहि तस वेष बनावें।
नाना लीला करैं वेद हू पार न पावैं॥

नौमित्तिक लय जब भयो, ब्रह्मा श्री निद्रित भये।
सत्यव्रत राजर्षि हित, श्रीहरि मछली बनि गये॥

कृत मालामहँ करहिं द्रविण पति जल तैं तरपन।
अञ्जलिमहँ लघु मत्स्य निरखि कीयो जल अरपन॥
मछली ह्वैकें दीन कहे—नृप! रक्षा कीजै।
आई तुमरी शरन सत्यव्रत! आश्रय दीजै॥

दीन बचन सुनि लाइ नृप, कलश रखी सो बढ़ि गई।
नाद, सरोवर, तालमहँ, धरी तहाँ लम्बी भई॥

एक दिवसमहँ मत्स्य बढ्यो नृप चकित भये अति।
बाढ़ै छिन छिन माँहि वृद्धिकी अति अद्‌भुत गति॥
शतयोजन सर घेरि लियो नहिं वृद्धि रुकी जब।
ह्वैकें अतिही दीन मीन नृपतैं बोली तब॥

नृप! निर्वाह न होहि मम, सर छोटो हो बड़ो वहु।
कैसे जीवित रह सकूँ, सोचि समुझि भूपति कहहु॥

बिस्मित नृपवर भये बिहँसिके बोले बानी।
नहीं मत्स्य हैं आपु बिष्णु अव्यय हौं जानी॥
काहे कारन धर्यो रूप मछलीको प्रभुवर।
नित नवलीला करौ भक्त भयहारी सुखकर॥
हरि हँसि बोले—सात दिन, महँ होवे त्रैलोक्य लय।
एक होहिं सातहुँ उदधि, जगत होहिं सब सलिलमय॥

मम इच्छातैं तरनि निकट इक तुमरे आवै।
सप्तर्षिनिके सग चढ़ाबै तुमहिं बचावै॥
बासुकि बरत बनाइ सींग मेरेमहँ बाँधौ।
जल बिहार मम सँग करौ परमारथ साधौ॥
कहि हरि अन्तरहित भये, करैं प्रतीक्षा भूप अब।
अति उत्कंठा हिय बढ़ी, आवै नौका दिव्य कब॥

सात दिवस जब भये भई पृथिवी जलमय सब।
आई नौका एक ऋषिनि सँग चढ़े भूप तब॥
बाँधी शफरी सींग प्रलय जलमहँ बिचरैं हरि।
पूछे पावन प्रश्न नृपतिने अति बिनती करि॥
जो जगमय जगतें पृथक, देहिं ज्ञान गुरु रूप धरि।
गुरुके गुरु हरि हो तुमहिं, नाम सुमिरि बहु गये तरि॥

देहिं मोइ उपदेश जगत्गुरु सबके स्वामी।
देहिं ज्ञान का अज्ञ अंध नर लोभी कामी॥
परमदेव, गुरु, पिता, सुहृद सम्बन्धी सब तुम।
छाँड़ि जगतकी आश शरन आये तुमरी हम॥
सुनत नृपतिके बचन हरि, मुस्काये प्रमुदित भये।
फिर भूपति सब ऋषिनिके, प्रश्ननिके उत्तर दये॥

उगमर्ट मत्स्य पुराण कहँ पंडित जन जाकूँ ।
ते नर प्रभुपद पाहिं पढ़े श्रद्धातें वाकूँ ॥
यों विश्वंभर विष्णु रूप मछलीको धार्‌यो ।
हयग्रीव खल दैत्य पकरि पाताल पछार्‌यो ॥

भक्त भूप रच्छा करी, ज्ञान ऋषिनि कें सँगदयो ।
सुनत मोहतम नसिगयो, ततछिन भव भय भगि गयो ॥

परम पुण्यप्रद मत्स्य चरित जे सुनैं सुनावैं ।
प्रभु पद प्रकटै प्रेम परम पद ते नर पावैं ॥
सुनि शफरी हरि चरित परिच्छित अति हरषाये ।
कथा प्रसंग चलाय, सामयिक बचन सुनाये ॥

तेरह मन्वन्तर कथा, नाथ कृपा करिकें कही ।
वैवस्वत मनु वंशकी, कहहु कथा जो बचि रही ॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाह्नमें मत्स्यावतार नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

[मासिक पारायण सोलहवें दिनका विश्राम]



अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

बोले श्री शुक—श्राद्धदेव मनुवंश सुनहु अब।
महाकल्प पश्चात् शयन सर्वेश करैं जब॥
होहि निशाको अंत नाभितैं प्रकटै पंकज।
तातैं ब्रह्मा होहिं चतुर्मुख कमलाशन अज॥
मन तैं पुत्र मरीचि मुनि, तिनिके कश्यप प्रजापति।
विवस्वान तिनके तनय, जिनको जगमहँ तेज अति॥

विवस्वानके पुत्र भये श्री वैवस्वत मनु।
तिनतैं श्रद्धा माहिं भये दश सुत इन्द्रिय जनु॥
इक्ष्वाकु, शर्याति इष्टि और धृष्ट नभग कवि।
नृग करूष नरिसन्त पृषध्रहु वंश विदित रवि॥
इन सबके पहले भये, सुत सुद्युम्न बिचित्र अति।
नरतें नारी बनि गये, है विचित्र श्रीशम्भु गति॥

श्राद्धदेव सुतहीन यज्ञ पुत्रेष्टि करायौ।
मुनि वसिष्ठ आचार्य यज्ञको साज सजायौ॥
रानी इच्छा करी पुत्र नहिं पुत्री होवै।
होता आहुति दई लोभ संकल्पहिं खोवै॥
इला नाम कन्या भई, मनु मनमहँ चिन्तित भये।
गुरुसन बोले दुखित ह्वै, मंत्र व्यर्थ क्यों ह्वै गये॥

मुनि वसिष्ठ धरि ध्यान कहैं—सब ज्ञान भयो अब ।
रानी सम्मति मान कर्‌यो होता कौतुक सब ॥
किन्तु न नृप घबराउ मन्त्रबल देखो मेरो ।
करि पुत्रीतैं पुत्र करौं हौं कारज तेरो ॥
ये कहि प्रभु विनती करी, ह्वै प्रसन्न हरि वर दयो ।
सुता इला मुनि कृपातैं, पुनि सुद्युम्न कुमर भयो ॥

एक दिवस सुद्युम्न सेन सजि मृगया खेलन ।
होहि अश्व असवार गयो सँग सचिवनिके वन ॥
मृग लखि पीछो कर्‌यो अश्व अपनो दौरायो ।
गिरि सुमेरु ढिँग खण्ड इलावृतमहँ नृप आयो ॥
परी दृष्टि जब देह पै, नरतैं नारी बनि गये ।
परम चकित इतउत लखत, सब घोड़ा घोड़ी भये ॥

पूछे नृप—गुरु ! नृपति भये क्यों नारी नरतैं ।
अद्‌भुत देश प्रभाव भयो जिह किनके बरतैं ॥
हँसिकैं श्री शुक कहे—भूप अचरज मति मानों ।
जगकूँ—क्रीड़ाभूमि भवानीपतिकी जानों ॥
मेरु निकट अति सुघर वन, जहँ झर झर झरना झरहिं ।
उमा संग तहँ कपरदी, कमनीया क्रीडा करहिं ॥

शिव दरशनके हेतु तहाँ इक दिन बहु ऋषि मुनि ।
आये सोचत होहिं कृतारथ शिव शिक्षा सुनि ॥
किन्तु प्रिया सँग करें रमण कामारि उमापति ।
अङ्क विराजैं उमा विवस्त्रा चित प्रसन्न अति ॥
दाढ़ीवाले ऋषिनि लखि, पारवती लज्जित भईं ।
उठीं अकतैं तुरत ई, लता ओटमहँ छिपि गईं ॥

निरखि रमणको समय भये लज्जित लौटे मुनि।
गये समुझि ऋषि, उमा अङ्क पतिकी बैठीं पुनि ॥
पारबती प्रिय करन हेतु शिव बोले बानी।
आवत होवे नारि पुरुष इहँ कोई प्रानी ॥

श्राद्धदेव-सुत भाग्यबश, भये पुरुषतैं नारि तहँ।
सखिनि संग घूमत फिरत, पहुँचे बुध तप करहिं जहँ ॥

इला कामना करी बिकृतिन्वित बुधके आई।
नेत्र नेत्र मिलि गये सरसता हियमहँ छाई ॥
बिधिवत भयो बिबाह इला अति मन हरषाई।
भूले बुध जप योग भाग्यतैं पत्नी पाई ॥

छिन सम बीते बरष बहु, गृहीधर्ममहँ है निरत।
बुध प्रमुदित बनमहँ बसत, इला संग क्रीड़ा करत ॥

पुरूरवा सुत इला प्रिया बुधकीने जाये।
नारदतैं सुनि बृत्त पुरोहित सँग मनु आये ॥
कीये शिव सतुष्ट दयो बर अद्भुत शङ्कर।
एक मास नर रहे नारि दूसरमहँ मनहर ॥

लैकें सुत सुद्युम्न सँग, प्रतिष्ठानपुर चले मनु।
पुरूरवा अतिशय सुघर, मनहर दूसर चन्द्र जनु ॥

पुरूरवा ही चन्द्रवंशके पहिले थापक।
प्रतिष्ठानपुर बसे भये सुत जिन त्रय पावक ॥
शौनक पूछें—सूत! चन्द्रवशी इल कैसे?
इला और बुध भये सोम सम्बन्धित जैसे ॥

सोमवंश क्रमकी कथा, हमकूँ सार सुनाइकें।
मेटों संशय सूतजी—कहन लगे हरषाइकें ॥

भये ब्रह्मसुत अत्रि चन्द्रमा जनमे तिनिके।
विधि कीये पति सर्व औषधिनि अरु विप्रनिके॥
राजसूय मख कर्यो गर्वतें सुरगुरु—दारा।
बल पूर्वक हरि लई बृहस्पति पत्नी तारा॥

देवासुर संग्राम अति, भीषण तारा हित भयो।
कमलासन परि बीचमहँ, निर्णय ताको करि दयो॥

गर्भवती गुरु नारि गर्भ निज त्याग्यो तबहीं।
मेरो मेरो करैं चन्द्र गुरु सुत हित जबहीं॥
बालक डाँटी मातु सत्य तू क्यों न जतावै।
तारा विधितैं कही सोम ही सुतकूँ पावै॥

निशानाथकूँ सुत दयो, बुध ब्रह्माने नाम धरि।
चन्द्रवंश थापित कर्यो, इला संग सम्बन्ध करि॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थांशमें चन्द्रवंशी सुद्युम्न चरित नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

इक्ष्वाकू नृग आदि भये सुत मनुके पुनि दश ।
प्रथम पृषध्र चरित्र कहूँ फिरि औरनिको यश ।।
कीये गुरु गोपाल कुमर रक्षक गाइनिकूँ ।
हिंसक आवैं सिंह व्याघ्र मारैं नित तिनिकूँ ।।
एक दिना निशि धेनुकूँ, पकरि सिंह भाग्यो तहाँ ।
डकराई गैया जबहिं, लै असि सो पहुच्यो वहाँ ।।

व्याघ्र न दीख्यो अंधकारमहँ खड्ग चलायो ।
भ्रमवश व्याघ्र न मर्यो धेनु सिर काटि गिरायो ।।
जानि दोष गुरु निकट जाइ सब वृत्त सुनायो ।
सुनि मुनि दीयो शाप क्षत्रतैं शूद्र बनायो ।।
कीयो नहीं बिबाह पुनि, जीवन भर हरि ही भज्यो ।
बन दावानलमहँ प्रबिशि, अंत समयमहँ तनु तज्यो ।।

मनु सुत लघु सब माहिं नाम कबि अतिशय त्यागी ।
राज पाट परिवार त्यागि बनि गये बिरागी ।।
जो करूष मनु पुत्र भये उत्तरके भूपति ।
धृष्ट पुत्रतै धार्ष्ट भये द्विज ताकी संतति ।।
मनु सुत नृगके सुमति सुत. भूतज्योति तिनतैं भये ।
नरिष्यन्तके वंशधर, आगे द्विज सब बनि गये ।।

दिष्ट पुत्र नाभाग कर्मतैं वैश्य भये ते।
पुत्र भलन्दन भये क्षात्र कुलमाँहि रहे ते॥
शौनक बोले—सूत ! कथा यह अति अचरज युत।
कौन कर्मतैं भये वैश्य नाभाग दिष्ट-सुत॥

वैश्य भलन्दन पुत्रहू, पुनि क्षत्रिय कैसे भये।
पिता वैश्य नृपतैं भये, गुप्त-पुत्र नृप बनि गये॥

सुनि शौनक के वचन सूत हँसि बोले बानी।
वैश्य सुता इक हती रूप यौवनकी खानी॥
दृष्टि परी नाभाग वैश्यतैं कन्या माँगी।
नृपति वैश्य अरु द्विजनि बात अति अनुचित लागी॥

बलपूर्वक कन्या हरी, पिता पुत्रको रन भयो।
वैश्य बनायो मुनिनि सुत, भूप भलन्दन बनि गयो॥

मातु भलन्दन पुत्र पठायो गोपालन हित।
गयो नीप मुनि निकट वैश्य बनिवेतैं दुःखित॥
नीप सिखाये अस्त्र युद्ध भाइनितैं कीन्हों।
करे पराजित बन्धु राज्य पुनि अपनो लीन्हों॥

भये भलन्दन भूमिपति, सुमति चरित पत्नी कहे।
अति आग्रह पितुतैं कर्यो, बने न नृप वैश्यहि रहे॥

वत्सप्रीति सुत भये भलन्दनके उत्साही।
दानव हन्यो कुजृम्भ विदूरथ कन्या ब्याही॥
मुदावतीतैं भये पुत्र बारह तेजस्वी।
ज्येष्ठ श्रेष्ठ नृप प्रांशु जगत्महँ भये यशस्वी॥

भये प्रांसुके प्रमति सुत, उनके पुत्र खनित्र हैं।
अति पवित्र जगमहँ विदित, तिनके चारु चरित्र हैं॥

नृप नागनिके हेतु अस्त्र संवर्तक छोड्यो।
पिता कर्यो अति कोप न सुत रनतैं मुख मोर्यो ॥
परिकैं ऋषिगन बीच अहिनि मुनि फेरि जिवाये।
ऐसैं सुत अरु पिता समरतैं मुनिनि बचाये ॥

द्रव्य दानमहँ व्यय कर्यो, बल निर्बल दुखहरनमहँ।
नृप मरुत्त यश अब तलक, छायो तीनिहु भुवनमहँ ॥

सुत मरुत्तके पुत्र भये दम भूपति भारी।
नृप दशार्णकी सुता सुन्दरी सुमना प्यारी ॥
बरे स्वयवरमाँहिं अन्य कामी ललचाये।
सब मिलि कन्या हरी कुमर दम नहिं घबराये ॥

कर्यो युद्ध सब रिपु हने, निजबलतै बाला वरी।
वैदिक बिधितैं ब्याह करि, सुमना प्रिय पत्नी करी ॥

नृप दमके सुत भये राज्यवर्धन तेजस्वी।
प्रजा पुत्रवत पालि भये अति भूप यशस्वी ॥
श्वेत बाल लखि चले मानिनी सँग वन नरपति।
प्रजा दुखित अति भई, अराधे सब मिलि दिनपति ॥

बरष सहस दश रवि दई, आयु भूप रबि पुनि भजे।
सबकी निज सम आयु करि, सबने ही सँग तनु तजे ॥

नृप मरुत्ततैं नवम भये पीढीमहँ भूपति।
पृथिवीपति तृणबिन्दु रूप गुणमहँ सुन्दर अति ॥
अलम्बुषा अपसरा काम बश ह्वैकैं आई।
बिधिवत कर्यो बिवाह इडबिडा कन्या जाई ॥

सुत पुलस्त्य मुनि विश्रवा, ता दुहिताके पति बने।
धनाध्यक्ष उत्तर अधिप, श्री कुबेर ताने जने ॥

सुत बिशाल तृणबिन्दु नृपति बैशालि बधाई।
हेमचन्द्र सुत तासु भये जग कीरति छाई॥
सुत तिनके धूम्राक्ष तासु सुत संयम श्री युत।
तिनके पुत्र कृशाश्व सोमदत्तहु तिनके सुत॥

सोमदत्तके सुमति सुत, जनमेजय तिनके भये।
यशबर्धक तृणबिन्दुके, कुलमहँ ये नृप है गये॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें पृषध्रादि मनुपुत्रचरित्र नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः

[१६]

मनु सुत नृप सर्याति वेद शास्त्रनिके ज्ञाता।
तिनकी कन्या भई सुकन्या जग बिख्याता॥
इक दिन कन्या सहित गये नृप घूमन बनमहँ।
कन्या सखियनि संग फिरै बन प्रमुदित मनमहँ॥

च्यवनाश्रमके निकट इक, दीमकको टीलो निरखि।
चकित भई जुगनू सरिस, द्वै चमकीली बस्तु लखि॥

यौवनको उन्माद कुतूहल कन्या उरमहँ।
उत्सुकता शमनार्थ लये द्वै कंटक करमहँ॥
आँखिनि दये चुभोइ बही धारा शोणितकी।
डरी भगी लखि रक्त बड़ी ब्याकुलता चितकी॥

इत मुनिवरके कोपतैं, सैनिक सब ब्याकुल भये।
वेग रुक्यो मलमूत्रको, मृतक सरिस ते है गये॥

लखि दैवी उत्पात च्यवनको कोप समुझि मन।
सोचें है यह शांत च्यवन मुनिको पावन बन॥
पूछें नृप उत्पात कर्‌यो जिनि मोहिं बतावें।
जानि सुकन्या कृत्य नृपति मनमहँ घबरावें॥

दुहिता लीन्ही संगमहँ, चले तुरत मुनिके निकट।
बिकट कर्‌यो प्रस्ताव मुनि, हैके बामीतें प्रकट॥

कन्या फोरीं आँखि भयो हौं अन्धो भूपति ।
नेत्रहीन नर जगतमाँहि पावै दुख नित प्रति ।।
धरम करम कस करूँ पुण्यपथ कैसे पेखूँ ।
कन्या करो प्रदान नेत्र जाकेतैं देखूँ ।।

सुनि नृप अति विचलित भये, परि कन्या सहमत भई ।
समुझि बलाबल भूपने, मुनिकूँ पुत्री दै दई ।।

करिके कन्यादान गये भूपति रजधानी ।
पतिसेवा ही तरनि सुकन्या उत्तम मानी ।।
अमर वैद्य इक दिवस च्यवन मुनि आश्रम आये ।
करि सेवा सत्कार महामुनि बचन सुनाये ।।

अति प्रसिद्ध सुरभिषक द्वय, तौ ऊ हौं अति दुख सहूँ ।
करौ वृद्धतैं युवक यदि, जो माँगौ सोई दऊँ ।।

कहे अश्विनीकुमर हमें हू सोम पिआओ ।
सोम मखनिमहँ सदा देव पंगति बैठाओ ।।
स्वीकारी यह बात कुंडमहँ च्यवन न्हवाये ।
आयुर्वेद प्रभाव वृद्धतैं युवक बनाये ।।

भये एक से तीन नर, विनय सुकन्याने करी ।
अति प्रसन्न है सुरभिषक्, च्यवन दये माया हरी ।।

करिकें मुनिकूं तरुन गये रुजहा पुर जबहीं ।
आये नृप सर्याति च्यवनमुनि आश्रम तबहीं ।।
तरुण निकट निज सुता निरखि नृप अति दुख पायौ ।
है प्रसन्न वृत्तान्त सुकन्या सब समुझायौ ।।

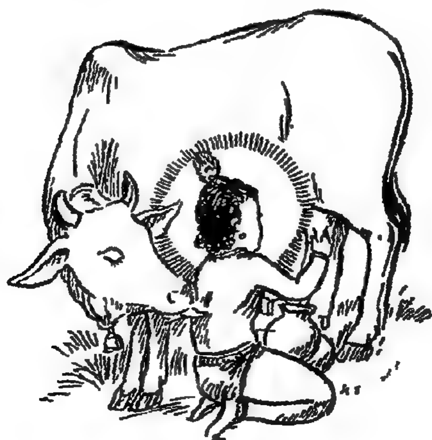
सुता वचन सर्याति सुनि, मुनि तनु लखि प्रमुदित भये ।
मख हित कन्या सहित मुनि-वर कूं लै निज पुर गये ।।

सोमयाग करवाय भूपको मान बढ़ायो।
सुर बैद्यनि बुलवाइ सोमरस तिनहिं पिआयो॥
तान्यो सुरपति बज्र कर्यो जब स्तंभित करकूँ।
सोमपान अधिकार सुरनि दीयो बैद्यनिकूँ॥

लखि प्रभाव मुनि च्यवन को, सबकूँ अति बिस्मय भयो।
तनया नृप शर्यातिकी, को चरित्र पावन कह्यो॥

दो० सुखद सुकन्या चरित जे, नारि सुनहिँ सुख पाइँ।
पुण्य पुरुष सुनि अति लहैं, बृद्ध तरुन ह्वै जाइँ।

इति श्री भागवत चरितके चतुर्थाहमें च्यवन सुकन्या चरित नामक उन्नीसवाँ अध्याय।



अथ विंशतितमोऽध्यायः

[२०]

छप्पय—अब मनुसुत सर्याति वंश शुभ सुनहु भक्तियुत।
भूरिषेण उत्तानबर्हि आनर्त भये सुत॥
छोटे सुत आनर्त द्वारका जिननि बसाई।
रेवत सुत तिन भये तासु शत सुत सुखदाई॥
ज्येष्ठ ककुद्मी सबनि तैं, जनक रेवती के भये।
सुता रेवती संग लै, बर खोजन विधि ढिँगगये॥

तपप्रभावतैं ब्रह्मलोकमहँ पहुँचे भूपति।
निरख्यो सरस समाज होहि संगीत मधुर अति॥
गावैं गुन गोविन्द चतुर गंधर्व तहाँ सब।
नृत्य अपसरा करैं अनवसर समुझ्यो नृप तब॥
कछुक देर ठाढ़े रहे, जब समाप्त गायन भयो।
तब प्रणाम करि ककुद्मी, निज कारज विधि सन कह्यो॥

प्रभो ! रेवती सुता भई लम्बी अति भारी।
किन्तु योग्य बर मिल्यो नहीं अब ही यह क्वारी॥
जिहि सँग आयसु करैं ताहि सँग जाहि विवाहूँ।
हँसि कमलासन कहें, नृपति अब कहा बताऊँ॥
चारिहुँ युग छब्बीस इक, बार बीति भूपति गये।
पुत्र पौत्र पीढ़ी सहस, नष्ट भूप सुत सब भये॥

प्रकट भये भगवान भक्त भय हरिवे वारे।
ज्येष्ठ बन्धु बलराम भये तिनिके अति प्यारे॥
तिन सँग करो विवाह ककुद्मी सुनि हरषाये।
लई रेवती संग द्वारका छिनमहँ आये॥

हरषि नृपतिने रेवती, बलदाऊकूँ दै दई।
खैंची हलतैं बल बहू, लम्बी ठिगनी करि लई॥

मनुके इक सुत नभग भये कै ई तिनिके सुत।
तिनिमहँ इक नाभाग बेदबिद् पडित गुनयुत॥
पढ़न गये घर बन्धु कर्यो पाछे बटवारो।
लौटि कह्यो नाभाग कहाँ है भाग हमारो॥

बन्धु कहे—नाभाग! तब, पिता भाग तुम्हरे रहे।
करि प्रनाम नाभागने, बन्धु बचन पितुतैं कहे॥

सुनि सुत बचन उपाय नभगने नयो बतायो।
करें यज्ञ आङ्गिरस षष्ठ दिन कृत्य भुलायो॥
तिन्हैं बताओ जाय सुनत नृप सुततहँ आये।
कृत्य बतायो द्विजनि दयो धन स्वरग सिधाये॥

रुद्र द्रव्य अपनो कह्यो, नभग समर्थन हू कर्यो।
तब अर्पित सर्वस कर्यो, शिव प्रसन्न है वर दयो॥

हर वरतैं नाभाग भयो जगमहँ अति ज्ञानी।
अम्बरीष सुत तासु यशस्वी दृढ़व्रत दानी॥
सप्तद्वीपको अधिप अतुल वैभव सब पायौ।
किन्तु स्वप्न सम समुझि कृष्ण चरननि चित लायौ॥

भयो चित्त चितचोरकी, सरस माधुरी पान करि।
भई जीभ यश नामको, नित्य निरन्तर गान करि॥

श्रीभागवत चरित



महाराज ककुत्स्थ पृ० ३८९



बलरामजी और रेवतीजी पृ० २७६

करैं कृष्णकैंकर्य कमल कर नृपके नित प्रति ।
कृष्णकथा सुनि कान उभय होवें प्रमुदित अति ॥
माधव मन्दिरमाँहि निरखि मनमोहन मूरति ।
छल छल छलकैं नयन कमल सम होवैं बिकसित ॥
मिलैं भक्त भगवानके, गाढ़ालिङ्गन नृप करहिँ ।
पुलकित होवैं अंग अँग, पाप ताप जगके जरहिँ ॥

चरन चढ़ी चितचोर मंजरी तुलसीजीकी ।
घ्राणेन्द्रिय लै गंध जगावै सुधि निज पीकी ॥
नन्दनँदन नैवेद्य पाइ रसना हुलसावै ।
बिनु अर्पित यदि अमृत मिलै तोऊ नहिँ खावै ॥
निरखि नमित ह्वै जात सिर, निज प्रभुपद पंकजनिकूँ ।
चरन चलैं अति हुलसिकैं, हरि क्षेत्रनि दरशननिकूँ ॥

राजकुमरि इक सुनी भक्ति नृप पति वरि लीन्हे ।
भगवद् भक्ति प्रभाव भूप निज वशमहँ कीन्हे ॥
अन्यहु रानिनि सुनी विष्णुपूजा स्वीकारी ।
प्रजा भूप रुख निरखि भये सब भक्त पुजारी ॥
भरी भक्ति सब देशमहँ, नृपहिँ सराहे साधु गन ।
सबहि कहैं जस होहि नृप, तस ही होवैं प्रजाजन ॥

करहिँ भूप जो काज कृष्ण अरपन करि देवैं ।
सेवा श्रद्धा सहित करहिँ नित प्रति हरि सेवैं ॥
धन जन सुत परिवार कबहुँ अपने नहिँ जानें ।
विषय भोग सब रतन जगतके मिथ्या मानें ॥
तन्मय नित हरि भक्तिमहँ, रहैं सोच हरिकूँ भयो ।
रिपु भय हेतु नियुक्त प्रभु, चक्र सुदरशन करि दयो ॥

काम क्रोधकूँ जीति दुष्ट मनकूँ नृप मारें।
हरि बासर उपवास करहिं बैष्णव व्रत धारें॥
पूछैं शौनक—सूत! कह्यो हरिबासर काकूँ।
करैं मनुज उपबास अन्न खावैं नहिं जाकूँ॥
एकादशी महान व्रत, सूत कहैं, सब पापहर।
करहिं नियमतैं व्रत सदा, ते जावैं बैकुंठ नर॥

दो०—शौनक पूछैं सूत कहु, एकादशि उतपत्ति।
देहि मुक्ति बिनु अन्नके, जाकी ऐसी शक्ति॥

सूत कहें एकादशी हरिबासर जिहिंनाम।
मुनि गन! ताको महाफल, कहूँ धारि हिय श्याम॥

छप्पय—सुरनि कह्यो मुर करै पाप हरि चले हननकूँ।
सोच्यो एक उपाय असुर खलके मारनकूँ॥
बदरीबनकी गुफामाहिं सोये खल आयो।
तनुतैं कन्या निकरि असुरकूँ मारि गिरायो॥
सोई एकादशी तिथि, पावन अति जगमहँ भई।
पापनाशिनी मुक्तिप्रद, श्रीहरिने सो करि दई॥

हरिबासर उपवास करैं ते नरक न जावैं।
ऋद्धि सिद्धि सम्पत्ति सहज फल चारिहु पावैं॥
रुक्माङ्गद भूपाल राज्यमहँ व्रत करवावैं।
सब राखैं उपवास दार, सुत सहित न खावैं॥
सप्तद्वीपके अधिप नृप, सबई आज्ञा सिर धरैं।
कछु भयबश कछु भक्तितैं, हरिबासर सब व्रत करैं॥

व्रती भक्त ज्यौं परै भयङ्कर यमके पल्ले।
नरक न कोई जाय भये यमराज निठल्ले॥
चित्रगुप्तकी बही फटी टाँके सब टूटे।
भयो नरक सब शून्य यातनागृह सब फूटे॥
चित्रगुप्त यम सँग लये, कमलासनके ढिँग गये।
त्यागपत्र सम्मुख धर्‌यो, हाथ जोरि ठाढ़े भये॥

ब्रह्मा पूछें—त्यागपत्रको हेतु सुनाओ।
क्यौं तुम बौरे भये विपतिको वृत्त बताओ॥
सकुचि कहे यमराज—व्यरथमें वेतन पाऊँ।
काम काज कछु रह्यौ न क्यौं जग अयश कमाऊँ॥
रुक्माङ्गद व्रत सबनितैं, हरिवासर करवाइ नित।
सबकूँ पठवै विष्णुपुर, नरक न कोई आइ इत॥

रुक्माङ्गद व्रत वृत्त सुन्यो विधि मन मुसकाये।
व्रत प्रभाव बहु कह्यो बहुत विधि यम समुझाये॥
जब बहु हठ यम करी मोहिनी नारि बनाई।
गई भूप ढिँग मोहि बनी रानी पुर आई॥
हरिवासर व्रत छोड़िबे, को आग्रह रानी कर्‌यो।
व्रत न तज्यो सुत सिर तज्यो, तब श्रीहरि दरशन दयो॥

ताही व्रतको अम्बरीष उद्यापन कीन्हों।
धेनु रतन धन धान दान विप्रनिकूँ दीन्हों॥
विधिवत विप्र जिमाइ पाइ पारणकी अनुमति।
जेवन बैठे जबहिं तबहिं आनंद भयो अति॥
दुर्वासा मुनिवर तहाँ, आये नृप ठाढ़े भये।
दयो निमन्त्रन भोजहित, हाँ कहि संन्ध्या हित गये॥

आधी रही मुहूर्त द्वादशी नृप घबराये।
पारन कैसे करहिं वेदबिद बिप्र बुलाये॥
जल पी पारन करो द्विजनि मिलि दीन्हीं अनुमति।
द्विज आयसु सिर धारि कर्यो व्रत पारन भूपति॥
दुर्वासा आये तबहिं, क्रोध अवज्ञा लखि कर्यो।
कृत्या केश उखारिकें, करी प्रकट नहिं नृप डर्यो॥

कृत्या तत्क्षण मारि सुदर्शन चक्र गिराई।
निरपराध भूपाल भक्तकी भीति भगाई॥
कृत्याकूँ करि भस्म चक्र मुनिवरके आगे।
झपट्यो डरिकें तुरत तहाँतें मुनिवर भागे॥
पृथिवी, जल, आकाशमहँ, सबहिं लोक दौरे गये।
दई शरन काहू नहीं, दुर्वासा व्याकुल भये॥

रक्षा कहुँ नहिं भई डरे विधि ढिँग मुनि आये।
समाचार सब सत्य सकुचि दुख सहित सुनाये॥
सब सुनि कहें बिरंचि—करूँ का अब मैं भाई।
हमहूँ हैं परतन्त्र पार हमरी न बसाई॥
ह्वै निराश शिव ढिंग गये, हर बोले—गहु शरन हरि।
कृपा करहिं करुनायतन, विनय करहु तुम पैर परि॥

हर आयसु सिर धारि गये हरिपुर दुर्वासा।
शरनागतप्रतिपाल करहिं मुनि मन बड़ आसा॥
त्राहि त्राहि कहि पैर परे प्रभु हौं अघ कीन्हौं।
महिमा जाने बिना शाप वैष्णवकूँ दीन्हौं॥
भक्ताधीन सदा रहौं, विश्वम्भर बोले गरजि।
और बात हौं सब सहौं, निज जनको अपमान तजि॥

जे सरबसुकूँ त्यागि शरन मेरीमहँ आये।
मम हित मख-तप तीर्थ करे जिन दुख बहु पाये॥
धन, सुत, दारा, बन्धु लोष्ठ सम सबकूँ जाने।
मोकूँ तजि सब तुच्छ स्वर्ग अपवर्गहिं माने॥
वस्तु जगतकी अन्य कछु; मोकूँ तजि जानैं नहीं।
ऐसे भक्तनिकूँ कबहुँ त्यागि सकें स्वामी नहीं॥

फिरहू एक उपाय बताऊँ तुमकूँ मुनिवर।
अम्बरीष नृप निकट जाहु चूको नहिं अवसर॥
शान्त होइगो चक्र मिटैंगे दुःसह दुख सब।
प्रभु आज्ञा स्वीकारि चले मुनि नृपके ढिँग तब॥
दुःखित दुर्वासा तुरत, नृप पैरनिमहँ परि गये।
अस प्रयत्न मुनिको निरखि, अति लज्जित भूपति भये॥

चक्र विनय नृप करी लखे भययुत दुर्वासा।
शान्त सुदर्शन भयो भई मुनिवरकूँ आसा॥
बोले—नृप! तुम धन्य धन्य तुमरी है जननी।
धन्य नभग शुभ वंश प्रजा दारा धन धरनी॥
महिमा भक्तनिकी लखी, गर्व खर्व मेरो भयो।
दुतकार्यो मोकूँ सबनि, शरन हेतु जहँ जहँ गयो॥

दुर्वासाकी विनय निरखि नृप अति सकुचाये।
करि सादर सत्कार स्वादयुत अन्न जिमाये॥
दीयो आशिर्वाद भक्तकी महिमा जानी।
भक्ति श्रेष्ठ जग माहिं महामुनि मनमहँ मानी॥
अम्बरीष नृप भक्ति करि, अति प्रसिद्ध जगमहँ भये।
राज्यभार सुत सिर धर्‌यो, भजन करन बनमहँ गये॥

अम्बरीषके तनय तीन त्रिभुवन विख्याता।
भूपति बड़े विरूप प्रजाके भय दुख त्राता॥
केतुमान अरु शम्भु बन्धु अनुकूल रहैं नित।
सुत विरूप पृषदश्व रथीतर तिनके शुभ सुत॥

नृपति रथीतर सुत रहित, भये आङ्गिरस क्षेत्रसुत।
वीर्य अङ्गिरातैं भये, क्षात्र कर्म द्विज तेजयुत॥

इति श्रीभागवत चरित के चतुर्थाह में शर्याति नभग वंश वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ—एकविंशतितमोऽध्यायः

[२१]

छप्पय—ज्येष्ठ श्रेष्ठ मनुपुत्र भये इक्ष्वाकु यशस्वी।
प्राणिमात्रके सुहृद पितामह सम तेजस्वी॥
पालैं सुत सम प्रजा दया जीवनिपै राखैं।
करैं संत सम्मान अनृत कबहूँ नहिं भाखैं॥
नारि सुदेवाके सहित, मृगया हित बनमहँ गये।
सिंह व्याघ्र बाराह बहु, हिन्स्र जन्तु मारत भये॥

सूकर मार्‌यो एक सूकरी कथा सुनाई।
द्विज कन्या ही रही बुद्धि विपरीत बनाई॥
कीयो पति अपमान नरकमहँ दुःख उठायो।
भोगि यातना विविध सूकरीको तनु पायो॥
पातिव्रत इक वर्षको, पुण्य सुदेवाने दयो।
छुटी सूकरी योनितैं, दिव्य देह ताको भयो॥

पृथिवीपति इक्ष्वाकु तनय शत सूर भये अति।
सबतैं बड़े शशाद विकुक्षी भये भूमिपति॥
पिता-श्राद्धहित मेध्य जन्तु पठये लैवेकूँ।
लाये बहु मृग मारि पिंड पितरनि दैवे कूँ॥
मगमहँ खायो शशक इक, सुनि नृप क्रोधित ह्वै गये।
देशनिकास्यो दयो पितु, ते शशाद नरपति भये॥

दोहा—सबहिं सराहैं कुमरको, तेज, ओज, बल, रूप।
गये स्वरग इक्ष्वाकु जब, भये विकुक्षी भूप॥

छप्पय—पालन सुत सम कर्यो प्रजाको रञ्जन कीन्हों।
यज्ञ याग बहु करे दान बहु बिप्रनि दीन्हों॥
भये पुरञ्जय पुत्र बने जिनि बाहन सुरपति।
भये ककुत्स्थ प्रसिद्ध इन्द्रबाहहु ते नरपति॥

दैत्यनिके सँग सुरनिको, रण अति ही भीषण भयो।
बीर पुरञ्जयके निकट, आइ देव निज दुख कह्यो॥

सब सुनि बोलें भूप—अवसि आयसु स्वीकारूँ।
किन्तु इन्द्र यदि बनैं बृषभ तो असुरनि मारूँ॥
लज्जित सुरपति भये जगतपति हरि समुझाये।
हरिआज्ञा सिर धारि, बृषभ शतक्रतु बनि आये॥

बृषभ ककुद्पै चढ़ै नृप, असुर नगरपै चढ़ि गये।
लखी बीरता भूपकी, भौचक्के सुररिपु भये॥

भीषण रण अति भयो, दैत्य जे सम्मुख आये।
शूरबीर भूपाल तुरत ते मारि गिराये॥
भगे छोड़ि रण असुर सुरनि आनंद मनायौ।
धन सम्पतियुत स्वरग देवतनि सहजहिं पायौ॥

इन्द्र बने वाहन समर, इन्द्रवाह सब कहहिं नर।
रिपुपुर जीत्यो पुरञ्जय, स्वरग माँहिं भाषैं अमर॥

पुत्र पुरञ्जय भये अनेना तिनके पृथुसुत।
विश्वरन्धि तिन तनय चन्द्र तिनके सुत श्रीयुत॥
चन्द्र तनय युवनाश्व कीर्ति जिन बिपुल कमायी।
तिनके सुत शावस्त जिननि शावस्ति बसायी॥

भये पुत्र बृहदश्व तिन, कुवलयाश्व तिनके तनय ।
मुनि उतङ्क बध धुन्धु हित, जिनहिंलै गये करि विनय ॥

असुर धुन्धु अति बली बालुके भीतर सोवै ।
छोड़े जब फुफकार प्रजा सब दुखतैं रोवै ॥
मुनि उतङ्क बृहदश्व बली भूपति ढिँग आये ।
कह्यो वृत्त सुनि भूप तुरत निज पुत्र पठाये ॥

कुवलयाश्व पुत्रनि सहित, मुनि प्रसन्न अतिई भये ।
मुनि उतङ्कर्कू संग लै, धुन्धु मारिवे चलि दये ॥

धुन्धु बदनतैं अनल भई जारे सुत सबई ।
रहे तीनि ही शेष हन्यो दानव नृप तबई ॥
नृपने मार्‌यो धुन्धु देव नर सब हरषाये ।
तबई ते जग धुन्धुमार भूपति कहलाये ॥

सुत दृढाश्व कपिलाश्व अरु, रहे शेष भद्राश्व वर ।
नृप दृढाश्व हर्यश्व सुत, शूर वीर अति श्रेष्ठ नर ॥

सुत हर्यश्व निकुम्भ भये तिनि बर्हणाश्व सुत ।
तिनिके भये कृशाश्व सेनजित तिन सुत बलयुत ॥
नृपति सेनजित् पुत्र भये युवनाश्व यशस्वी ।
मान्धाता तिनि पुत्र चक्रवर्ती तेजस्वी ॥

माता बिनु पैदा भये, पिता गर्भमहँ बास कर ।
सुनहु कथा आश्चर्ययुत, पुण्य प्रदायिनि मनोहर ॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाह्नमें इक्ष्वाकुवंशवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः

[२२]

छप्पय—पुत्रहीन युवनाश्व नारि शत संग लिये बनं।
गयो तनय बिनु खिन्न भूपको परम दुखित मन ॥
बनमहँ मुनि मिलि पुत्र हेतु इक यज्ञ करायौ।
मन्त्रपूत घटनीर निरखि निशि नृप तहँ आयौ ॥
प्यासो नृप जल शीत लखि, मनमहँ अति प्रमुदित भयो।
बिनु पूछे अनजानमें, घटको जल सब पी गयो ॥

प्रातकाल मुनि उठे कहैं—जल कौनें पीयो।
हाथ जोरि भूपाल वृत्त सबतें कहि दीयो ॥
सुनि मुनि धार्यो मौन समुझि गति प्रबल बिधाता।
कुक्षि फोरिकें प्रकट भये नृपतें मान्धाता ॥
बिन्दुमती रानी बरी, स्वय जाइ नृप स्वयंम्बर।
जने पुत्र पुरुकुत्स अरु, अम्बरीष मुचुकुन्द बर ॥

कन्या जनीं पचास सुन्दरी अति सुकुमारीं।
बड़ी भईं सब संग कमल नयनी पितु प्यारीं ॥
ब्रजमंडलमहँ परम तपस्वी सौभरि मुनिवर।
यमुना जलमहँ पैठि तपस्या करें उग्रतर ॥
बाल ब्रह्मचारी रहे, भये वृद्ध तनु छीन अति।
बरस सहसदश तप कर्यो, नहिं निरखी संसार गति ॥

इकदिन जलमहँ मत्स्य राजकूँ निरख्यो मुनिवर।
निज पत्नीके संग करत क्रीड़ा अति सुखकर॥
अति अनुराग समेत नीर नयननिमहँ भरिकैं।
किलकें इत उत पुत्र पौत्र पैरनिमहँ परिकैं॥

इच्छा मुनि मन महँ भई, व्रत करि करि अति सहे दुख।
जप तप महँ जीवन गयो, नहिं चाख्यो संसार सुख॥

ब्याह करन अभिलाष भई सब नियम भुलाये।
मान्धाता ढिँग पुरी अयोध्यामहँ मुनि आये॥
बोले—पुत्री हैं पचास तुमरें हे भूपति।
करूँ याचना एक ब्याहकी इच्छा चित अति॥

सुनि नृप अति विस्मित भये, बबराये सब अँग थके।
वृद्ध देह तप अधिक लखि, हाँ ना कछु नहिं करि सके॥

पुनि नृप बोले सम्हरि—महामुनि भीतर जाओ।
बरयँ सुता जो करै ताहि सुखतैं लै आओ॥
समुझि भूपको भाव योग तैं युवक भये मुनि।
आये मुनिवर सुघर भईं प्रमुदित कन्या सुनि॥

प्रथम बरैं पति मुनि हमनि, कलह करन कन्या लगीं।
सब स्वीकारीं ऋषि बिहँसि, निरखि प्रेममहँ सब पगीं॥

विधिवत कर्‌यो विवाह फेरि सुनरख मुनि आये।
सबकूँ सुन्दर महल पृथक सौभरि बनवाये॥
सबकूँ भूषन बसन सुखद शैयादिक दीन्हीं।
सबकी इच्छा पूर्ण तपस्यातें मुनि कीन्हीं॥

सब महलनिमहँ सरोवर, स्वच्छ नीर नीरज सहित।
असन बसन उबटन सतत, रहहिं पवन सुखप्रद वहत॥

मुनि पचास धरि वेष रमण नित सब सँग करहीं ।
तप प्रभावतैं ताप व्यथा तनमनकी हरहीं ॥
आये नृप इक दिवस देखि वैभव विस्मित अति ।
भये, सबनि ढिंग गये कहे नित इतहिं बसहिं पति ॥

सुरपुरको सुख अवनिपै, लखि प्रमुदित नृप ह्वै गये ।
सब सुख भोगे तृप्ति हित, किन्तु तृप्त मुनि नहिं भये ॥

शाप गरुड़कूँ दयो न सौभरिसर पुनि आवें ।
रमणक नामक द्वीप तहाँ नागनि नित खावें ॥
पारीतैं सब जाहिं गरुड़ सँग सन्धि कराई ।
कछुक दिवसमहँ काली अहिकी पारी आई ॥

काली अहिने मत्त ह्वै, भंग गरुड़को प्रन कर्यो ।
लड़्यो पराजित ह्वै गयो, सौभरिसरमहँ छिपि गयो ॥

गरुड़ शापवश तहाँ फेरि कबहूँ नहिं आये ।
अहिकूँ दीयो बास शेष सुनि अति हरषाये ॥
कालिय ह्रद अहिवास भयो विख्यात जगतमहँ ।
अहि बहु युग पर्यन्त रह्यो परिवार सहित तहँ ॥

अब तक जगमहँ ख्यात है, हलधर पूजक विप्रवर ।
अहिवासी के नाम तै, सौभरिऋषिके वंशधर ॥

स्वस्थचित्त इक दिवस बैठि मुनि सोचें मनमहँ ।
हाय पतन मम भयो रहूँ मुनि ह्वै महलनिमहँ ॥
तजिकें सब जन संग सलिलमहँ ध्यान लगायो ।
ठग्यो तहाँ हू दैव मत्स्य संभोग दिखायो ॥

मिथुन धर्ममहँ निरत नर-नारीको जे सँग करैं ।
ते पुनि जनमें पुनि मरें, स्वरग जाहिं नरकनि परैं ॥



सौभरि ऋषिका वैराग्य पृ० ३८८



सौभरि ऋषि का तप पृ० ३२६

रहै सदा निस्संग चित्त श्रीहरिमहँ राखै।
वाणी संयम करै व्यरथ तनिकहु नहिं भाखै॥
साधु संग ही करै कथा कीर्तनमहँ जावै।
नहिं तो है चुपचाप ध्यान एकान्त लगावै॥
नर फँसिकें निकसत नहीं, मायिक गुण हैं प्रबल अति।
इत उत भटकै लोभ वश, होवै नहिं जग विमलमति॥

यों करि पश्चाताप त्यागि गृह वनहिं सिधाये।
पत्नी लागीं संग विषय अरु भोग भुलाये॥
कर्यो घोर तप बुद्धि विमल करि काटे कल्मष।
ब्रह्म सत्य जग असत् कर्यो दृढ़ निश्चय मुनि अब॥
ब्रह्मलीन सौभरि भये, संग सती पत्नी भईं।
अगिनि बुझतही लपट जनु, मनहुँ शान्त सब है गईं॥

सौभरिऋषिको विमल चरित जे सुनें सुनावें।
श्रद्धातें जे मनन करें ते प्रभुपद पावें॥
यौं मान्धाता सुता विवाहीं सौभरि मुनिवर।
यौबनाश्व अब वंश कहूँ पुनि अति पावन तर॥
भये भूप पुरुकुत्स सुत, मान्धाताके विमल मति।
नारि नर्मदा नागकी, ब्याही तनया सुघर अति॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें सौभरि ऋषि चरितनामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।

[पाक्षिक पारायण-अष्टम दिवस विश्राम]

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

[२३]

त्रसद्दस्यु सुत तासु भये अनरण्य पुत्र तिन ।
तिनके सुत हर्यश्व अरुण तिन तिनहिं त्रिबन्धन ॥
भूप त्रिबन्धन तनय सत्यव्रत भये कुमति अति ।
शङ्कु तीनि जिन करे त्रिशंकू ख्यात भूमिपति ॥
गुरु बशिष्ठके शापतें, श्वपच भये अति दुख सहे ।
चाण्डालनिके बीचमहँ, पितु आयसुतैं ते रहे ॥

दारा बिश्वामित्र भरन पोषन नृप कीन्हों ।
ह्वै प्रसन्न मुनि नृपहिं मनो बाञ्छित फल दीन्हों ॥
इच्छा राजा करी सहित तनु स्वर्ग सिधाऊँ ।
बोले विश्वामित्र—यज्ञ करि तुरत पठाऊँ ॥
तपतें भेजे स्वर्ग नृप, सुरनि ढकेले गिरे नभ ।
लटके अधर त्रिशंकु तब, मध्यहिं डाँटे मुनि ऋषभ ॥

सुत त्रिशंकु हरिश्चन्द्र भक्ति जिन दृढ़ श्रीहरिपद ।
सन्तति बिनु अति दुखित बरुण ढिँग पठये नारद ॥
बरुण कह्यो हाँ होहि होमि यदि देवो तिहिं सुत ।
स्वीकार्‌यो भूपाल भये सुन्दर सुत रोहित ॥
भयो मोह भूपालकूँ, सुत पठयो बन बरुन भय ।
सुरपति रोक्यो किन्तु लै, आयो बदले द्विज तनय ॥

पिता वरुनकी इष्टि करी बुलवाये मुनि सब।
कौशिक युक्ति बताइ बचायो शुनःशेप तब॥
वरुन भये सन्तुष्ट दयो रथ हरिश्चन्द्रकूँ।
लख्यो वंशधर पुत्र भयो सुख परम इन्द्रकूँ॥
हरिश्चन्द्र दानी महा, भये दुःख कौशिक दयो।
विश्वामित्र वशिष्ठमें, महा युद्ध जिहि हित भयो॥

मृगया हित इक दिवस गये नृप क्रंदन धुनि सुनि।
गये लक्ष्य करि नारि लखी तहँ अरु कौशिक मुनि॥
अबला सुनत विलाप धनुषपै बान चढ़ायो।
अन्तरहित ते भईं क्रोध कौशिककूँ आयो॥
बोले—तू दाता बड़ो, हौं सुपात्र हूँ योग्य अति।
करो दान सर्वस्व तुम, दयो तुरत सब भूमिपति॥

दीन्यो सरबसु दान नगरतैं निकसे नरपति।
लखि सुत दारा जात प्रजाजन भये दुखित अति॥
करिकैं हमें अनाथ नाथ! तुम कहँ अब जाओ।
संग हमहिँ लै चलौ नहीं मझधार डुवाओ॥
प्रजारुदन सुनि दुखित नृप, ज्यों ही मग ठाढ़े भये।
त्यों ही डंडा मारि मुनि, रानीकूँ धक्का दये॥

मुनि रोक्यो मग कह्यो साङ्गता धन अब दीजै।
नृप बोले—मुनि! एक मास धीरज अरु कीजै॥
यों कहि काशी गये कपर्दीकी रजधानी।
अवधि पूर्ण लखि पहुँचि गये कौशिक अभिमानी॥
द्रव्य याचना करी मुनि, नृप रानी विक्रय करी।
रोहित हू बेच्यो स्वयं, विके दक्षिणा द्विज भरी॥

श्वपच दास बनि मृतक बस्त्र धरि मरघटमाहीं ।
लेवैं नृप तहँ बसहिँ दार सुधि बिसरत-नाहीं ॥
डस्यो सर्प सुत गोद लिये शैव्या तहँ आई ।
पहिचानी पुनि कथा भूप दुख सहित सुनाई ॥

मृत सुत सँग नृप नारि लै, जरिवेकूँ उद्यत भये ।
त्यों ही देवनि सहित विधि, धर्म इन्द्र दरशन दये ॥

तन धन सरबसु तज्यो धर्म हरिचन्द न छोर्‌यो ।
परी विपतिपै विपति नहीं सत तैं मुख मोर्‌यो ॥
गये नृपति वैकुंठ भये रोहित नृप श्री-युत ।
रोहितके सुत हरित हरितके चम्प भये सुत ॥

चम्प नृपति चम्पापुरी, रची बीर वर तिन तनय ।
नृप सुदेव हैं बिदित जग, भये तासु सुत नृप विजय ॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें त्रिशंकु हरिश्चन्द्रादि चरित नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ।





हरिश्चद्र द्वारा शैव्यारोहित विक्री पृ० ३६१



गंगावतरण पृ० ३९५

अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

[२४]

भये विजय के भरुक भरुकके वृक तिनि बाहुक ।
शत्रुनि छीन्यो राज गये वन पृथिवीपालक ॥
वनमहँ नृप तनु तज्यो गर्भिनी तिनकी रानी ।
सौतिनि गर दै दयो सगर सुत जनम्यो मानी ॥

भये सगर अतिही बली, शत्रुनिको शासन कर्यो ।
दान पुण्य मख अधिक लखि, सुरपति हू तिनतैं डर्यो ॥

द्वै रानी तिन हतीं एकके सुत असमंजस ।
दूसरि साठिसहस्र जने सुत मानी नीरस ॥
अश्वमेध नृप सगर धूमतैं यज्ञ रचायौ ।
भय वश सुरपति आइ यज्ञको अश्व चुरायौ ॥

कपिलाश्रममहँ इन्द्रने, मख हय बाँध्यो कपट करि ।
साठिसहस सुत भूमि खनि, पहुँचे नाना रूप धरि ॥

सप्तद्वीपके मध्य द्वीप जम्बू अति पावन ।
तामें हैं नववर्ष इलावृत मध्य सुहावन ॥
कमल कर्णिका सरिस इलावृतकूँ पहिचानों ।
अन्य आठ जो वर्ष कमल दल सम तुम मानों ॥

पहिले नौऊ एक हैं, सगर सुतनि खोदी मही ।
तातैं भारत भूमि चहुँ, दिशितै ह्वै गइ जलमयी ॥

कपिलाश्रमपै अश्व निरखि नृपसुत हरषाये।
कोलाहल अति कर्यो कपिल मुनि चोर बताये॥
इन्द्र रच्यो षडयन्त्र बुद्धि नृप सुतनि बिगारी।
मुनि मारन हित चले देहिँ गिनि गिनिकैं गारी॥
कोलाहल सुनि सहज ही, नेत्र कपिलके खुलि गये।
दृष्टि परत ।निज पापतैं, सगरपुत्र सब जरि गये॥

सुत नहिँ आये सोचि सगरने पौत्र पठाये।
अंशुमान चलि दये कपिल मुनि आश्रम आये॥
कुमर बिनय अति करी महामुनि अति हरषाये।
गंगा लाओ पितर हेतु ये बचन सुनाये॥
अश्व पाइ मख पूर्ण करि, सगर तपोबन चलि दये।
तदनन्तर मनु बंशके, अंशुमान भूपति भये॥

अंशुमान तप कर्यो अवनिपै गंगा आवैं।
मृतक पितर पय परसि नरक तजि सुरपुर जावैं॥
भये कुमार दिलीप राज तजि जाय बसे बन।
गंगा आई नहीं स्वरग नृप गये त्यागि तन॥
कुमर दिलीप पराक्रमी, पितु पीछे भूपति भये।
गंगा हित तप करनकूँ, हिमगिरिपै तेहू गये॥

करत करत तप भूप दिलीपहु स्वर्ग सिधारे।
तिनके सुत नृप भये भगीरथ सबके प्यारे॥
पिता पितामह मरे नहीं श्रीगंगा आईं।
पितर परे यमसदन दुःखतैं ते बिललाईं॥
भूप भगीरथ राज तजि, गंगाजी लैंवे गये।
अबकें जननी तुष्ट ह्वै, नरपतिकूँ दरशन दये॥

गंगा बोलीं—वेग बड़ो रोकै को मेरौ।
औरहु चिन्ता एक करूँ हौं कारज तेरौ॥
हौं सबके अघ हरूँ हरै मेरे को अघ नर।
कहैं नृपति—तब वेग सहेंगे शिवहर शंकर॥
अघहारी हरि हिय बसहिं, साधु पाप काटहिं सबहिँ।
है प्रसन्न अवतरन हित, गंगाजी गमनी तबहिँ॥

गर्जत तर्जत चलीं वेगतैं गंगा माता।
गिरीं जहाँ गिरिजेश विराजैं भवभय त्राता॥
सोचें शिवकूँ संग लिये पाताल पधारूँ।
जीजाजीकी जटनिमाँहि जल धारा डारूँ॥
भोले बाबा भगकी, बैठे सहज तरंगमहँ।
जटनिमाहिँ गंगा गिरीं, परीं भग तिनि रंगमहँ॥

इत उत सुरसरि फिरहिँ जटनिमहँ मग नहिँ पावैं।
भूप भगीरथ निरखि खेल अतिशय घबरावैं॥
शिव सन विनती करी जटनितै छोड़ीं गंगा।
ह्वैकें चंचल चलीं अवनिपै तरल तरंगा॥
हिमगिरि नग तोरति बहहिँ, सुर नर मुनि जय जय करहिँ।
रथ पीछे पीछे फिरहिँ, चलत दरशतै अघ हरहिँ॥

उतरि हिमालय अंक अवनिपै नीचे आईं।
सामग्री मुनि जह्नु यज्ञकी सबहि बहाईं॥
लखि अविनय मुनि कर्‌यो कोप गंगा पी लीन्हीं।
भूप भगीरथ बिनय बहुत विधि मुनिकी कीन्हीं॥
छोड़ीं गंगा कानतैं, तनया तिनकी ह्वै गईं।
तबईतैं भागीरथी, ख्यात जाह्नवी जग भईं॥

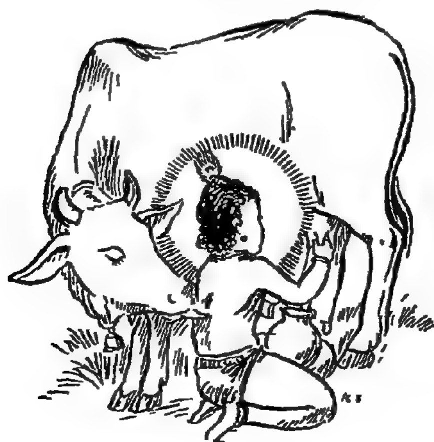
अवनि उतरि अब बढ़ीं रहीं नहिं गंगा छोटी ।
चंचलता छुटि गई भई अब कृश तैं मोटी ॥
संग भगीरथ लिये कपिल मुनि आश्रम आये ।
गंगा जलकूँ परसि पितर सब स्वरग सिधाये ॥

भस्मभूत माँ पय परसि, सगर सुतनि छूटी व्यथा ।
तट निवसैं नित पय पियैं, तिन सुकृतिनिकी का कथा ॥

गंगा गंगा कहे नित्य गंगाजल पीवैं ।
सदा बसैं तट निकट गंग जलतैं ई जीवैं ॥
गंगा रज तन लाइ नहावैं गंगा जल महँ ।
बसैं गंग पय परसि, अनिल बिहरैं जिहि थल महँ ॥

श्रीगंगा के नाम तैं, कोटि जन्म पातक नसहिं ।
भोगें भूपै भोग बहु, अन्त जाहि सुरपुर बसहिं ॥

इति श्री भागवत चरित के चतुर्थाह में श्रीगंगावतरण नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त



अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

[२५]

धन्य भगीरथ गंग लाइ जग कीन्हों पावन।
तिनके सुत श्रुत भये तासु सुत 'नाभ' सुहावन॥
सिन्धु द्वीप तिनि तनय भये तिनिके अयुतायू।
तिनके सुत ऋतुपर्ण सखा नलके परमायू॥
दमयन्तीपति नल भये, तिनि कलि दीये दुःख अति।
ह्वै बिरूप ऋतुपर्णके, बने सारथी भूमिपति॥

दमयन्ती पति तजी भाग्यवश आई पितु घर।
पति खोजन हित रच्यौ दुबारा मृषा स्वयम्बर॥
नल ऋतुपर्ण समेत ससुर गृह रथ लै आये।
नल दमयन्ती मिले, सुनत सब जन हरषाये॥
काया तैं कलियुग भग्यो, जब नृपके दिन फिरि गये।
गयो राज फिरितैं मिल्यो, जग यश भागी नल भये॥

हय विद्या ऋतुपर्ण नृपतिवर नल तैं लीन्हीं।
पासो फेंकन कला तिनहिं बदलेमहँ दीन्हीं।
सर्वकाल ऋतुपर्ण पुत्र बलवान शूर अति।
सुत सुदास तिनि भये सुरानी मदयन्तीपति॥
मृगया हित वनमहँ गये, हन्यो राकछस भूप तहँ।
तिहि भ्राता धरि सूद वपु, करै रसोई महलमहँ॥

राँध्यो नरको माँस परोस्यो नृपति पुरोहित।
देखि अमेध्य पदार्थ भये गुरुबर अति कोपित॥
दयो शाप पुरुषाद बने भूपति अति कोप्यो।
दैवे गुरुकूँ शाप चल्यो मदयन्ती रोक्यो॥

शाप नीर पैरनि धर्‌यो, भयो भूप कल्माष पग।
नरभक्षी नृप मित्रसह, भये ख्यात सौदास जग॥

मुनि वशिष्ठको शाप नृपति राक्षस बनि बिचरैं।
द्विज दम्पति बनमाहिँ सुघर संतति हित बिहरैं॥
लगी बुभुक्षा भूप पकरि द्विज खायो जबही।
द्विज पत्नी अकृतार्थ शाप नृप दीन्हों तबहीं॥

गर्भाधान करौ जबहिं, तबहि होइगी मृत्यु तब।
वंशनाशको शाप सुनि, भये दुखित अति सचिव सब॥

बीते बारह बरस शाप उद्धार भयो जब।
करिबे गर्भाधान भये उद्यत भूपति तब॥
बरजे रानी नृपति शापकी याद दिलाई।
महिषी संतति बिना बहुत रोई घबराई॥

बंशनाशको भय समुझि, लख्यो न अन्य उपाय जब।
गुरु वशिष्ठतैं बिनय करि, भूप प्रार्थना करी तब॥

बोले नृप सौदास—प्रभो! अब रक्षा कीजै।
चलै जासु मनु वंश पुत्र इक गुरुवर दीजै॥
कीयो गर्भाधान भई अति हर्षित रानी।
नष्ट वंश नहि होय बात जिह सबने जानी॥

सात बरस तक उदरतें, नहीं पुत्र पैदा भयो।
मदयन्ती अति दुखित ह्वै, वचन पुरोहिततैं कह्यो॥

भगवन् ! का भरि दयो उदरमहँ जो नहिं निकसत ।
अटक्यो एकहि ठौर तनिक तहँ तैं नहिं खिसकत ॥
मुनि हँसि लीयो अश्म मन्त्र पढ़ि उदर छुवायो ।
मदयन्तीने तुरत सुघर सुत श्रम बिनु जायो ॥
प्रमुदित सबही जन भये, राजारानी पुरोहित ।
तेई अश्मक नामतैं, भये भूप जगमहँ विदित ॥

अश्मकके सुत भये राजकुलके जो मूलक ।
तबई प्रकटे परशुराम क्षत्रियकुल - शूलक ॥
नारिनि कवच बनाइ बचाये मनुकुल त्राता ।
नारीकवच कहाय भये जगमहँ विख्याता ॥
मूलक सुत दशरथ भये, एडविडहु सुत तासुके ।
पुत्र एडविड विश्वसह, खट्वाङ्गहु नृप जासुके ॥

दो०—गहे स्वरग खट्वाङ्ग जब, देव कहे वर लेहु ।
वय मुहूर्त सुनि नृप कहें, सुर ! सत्संगति देहु ॥

छप्पय—जानी एक मुहूर्त आयु सब जग बिसरायो ।
करि के ध्यान अखण्ड परमपद नृपने पायो ॥
तिनके पुत्र दिलीप यशस्वी दीर्घबाहु वर ।
सन्तति बिनु अति दुखित गये निवसैं जहँ गुरुवर ॥
महिषी संग सुदक्षिणा, लिये जाय गुरुपद गहे ।
आशिष दै निज शिष्य तैं, वचन मुदित मन गुरु कहे ॥

गौसेवातैं पुत्र होहि यह मैंने जानी ।
करि सादर स्वीकार नन्दिनी सेवा ठानी ॥

कृपा नन्दिनी करी भये रघु रविकुल भूषन।
रघुके अज सुत भये तनिक जिनमहँ नहिं दूषन ॥
अज अति अनुपम नृप भये, इन्दुमतीने जो बरै।
एक छत्र जगमहँ नृपति, अगणित मख जिनने करै ॥

इति भागवतचरितके चतुर्थांहमें रघुवंशवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त



अथ षड्विंशतितमोऽध्याय

[२६]

छप्पय—दाशरथी श्रीराम रमें योगीजन जिनिमें।
प्रथम बन्दना करूँ मृदुल तिनिके चरननिमें॥
रघु-कुल पावन परम अधिक यश श्रीहरि दीयौ।
जामें लै अवतार कृतारथ कुल करि दीयौ॥
को कवि उपमा करि सकै, अवधपुरी सुखधामकी।
कहूँ कथा करुनामयी, अब श्री सीतारामकी॥

अजके दशरथ पुत्र यशस्वी अति ई पावन।
जिनके यशतै विमल धवल अब तक यह त्रिभुवन॥
भूपति परम उदार दान बहु विप्रनि दीन्हे।
भूरि दच्छिणायुक्त विपद मख जिन बहु कीन्हे॥
देवासुर संग्राममहँ, असुर पराजित जिन करे।
दिव्य अस्त्र आघाततैं, अगनित सुर कंटक मरे॥

सब सुख नृपके निकट पुत्र बिनु परि अति चिन्तित।
रानी सब सुतरहित वंशधर बिनु अति दुःखित॥
बिनती गुरुतैं करी रचायो मख सुतके हित।
ऋष्यशृंग पुत्रेष्टि यज्ञ करवायो प्रमुदित॥
बढ्यो भूमिको भार बहु, सुर सब मिलि हरि ढिँग गये।
सेतु करन भव उदधिपै, अज अच्युत प्रकटित भये॥

अगिनि कुण्डतैं प्रकट भये पायस नृप दीन्हों।
तीनहु रानिनि दियो भाग न्यायोचित कीन्हों॥
गर्भवती सब भईं सबनिके हिय हुलसाये।
शुभ मुहूर्त शुभ समय राम कौशल्या जाये॥

शुक्लपक्ष मधुमासकी, नवमी अति पावन परम।
प्रकटे रघुकुल चन्द्र शुभ, भयो अजन्माको जनम॥

कैकेयीने कुमर भरत कुलदीपक जाये।
जनम सुतनिको सुनत अवनिपै बजत बधाये॥
सती सुमित्रा जने संग लछिमन रिपुसूदन।
चारि पुत्र मुख निरखि भूप को अति प्रमुदित मन॥

नामकरन सस्कार गुरु, सबके कीन्हे नेमतैं।
है हरषित महिषी सबहिं, पुत्रनि पालैं प्रेमतैं॥

अब कछु घुटुअन चलत फिरत इत उत महलनिमहँ।
बलि बलि जावैं मातु बुलावति हँसि सैननिमहँ॥
छोटी छोटी लटैं लटकि आनन पै बिथुरैं।
चमकीली लखि वस्तु दौरि ताहींकूँ पकरैं॥

पानीकूँ पप्पा कहैं, हप्पा मागैं मातुतैं।
बप्पा भूपतिकूँ कहत, धूलि मलत निज गालतैं॥

चलिओ सिखवन हेतु मातु पग घूँघर बाँधे।
पाँ पाँ पैंया चलैं मातुकी उँगली साधे॥
कुत्ता बिल्ली काक पकरिवे हाथ बढ़ावैं।
जब नहि आवै हाथ रोइ जननी ढिँग जावैं॥

सम्मुख निरखत वस्तु जो, कर उठाय मुखमहँ धरत।
लोरत फोरत हँसत सब, मनहर शिशु क्रीड़ा करत॥

सखनि सग मिलि करैं खेल अब चारिहु भैया।
चरित निरखि नृप सहित मुदित हों तीनिहु मैया॥
बड़े भये उपनयन कर्यो गुरु गृह भिजवाये।
मुनि वशिष्ठ प्रभु शिष्य पाइ अति हिय हरषाये॥

गुरु सुश्रूषा करहिं सब, पढ़हिँ पाठ एकाग्र चित्त।
सभय शील संकोचयुत, सुनहिँ शास्त्र श्रुति तन्त्र नित॥

सीखे साखे राम लोक व्यौहार दिखावे।
गुरु महिमाको मर्म शिष्य बनि सबहिँ सुनावें॥
स्वल्प समयमहँ शास्त्र पढ़े गुरु चकित भये अति।
स्वयं सच्चिदानन्द समुझि अति विमल भई मति॥

बयकिशोरने वरे जनु, ओठनि छाई कालिमा।
पदतल, अधर, कपोलनिहिँ, बढ़ी सबनिकी लालिमा॥

दोहा—तबहिँ सरसता रामके, कहै कानमें आइ।
बिना शक्तिका करि सकौ, खोजो ताकूँ जाइ॥

[इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें। राघवेन्दुचरित अन्तर्गत प्रथम बालचरित नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ सप्तविंशातितमोऽध्यायः

[२७]

हे सीतापति राम ! प्रणतपालक परमेश्वर।
हे मिथिला पथ पथिक ! मुनिनि मख रक्षक सुखकर ॥
हे लछिमन सरवस्व ! जानकी जीवन जगपति।
हे रघुकुलके तिलक ! दीन दुखियनिकी गति मति ॥

खण्डन करि हर चापकूँ, अपनाई सीता यथा।
तव पदरज सिर धारि प्रभु, कहूँ ब्याहकी शुभ कथा ॥

राम-नाम अति मधुर सुखद सबकूँ सुखकारी।
राम-धाम अति विमल पुण्यप्रद सब अघहारी ॥
राम-रूप अति सुघर मनोहर सुख सरसावन।
राम-प्रिया जग जननि जीव जग-जराने जराबन ॥

राम-अनुज आदरश अति, राम भक्त सुख सार हैं।
राम-चरित पावन परम, होवें सुनि भवपार हैं ॥

वनमें विश्वामित्र करें तप यज्ञ रचावैं।
यातुधान तहँ आइ यज्ञकी अगिनि बुझावैं ॥
बार बार वहु विघ्न करें मिलिकें खल आवैं।
मुनि मन सोचें—शाप देहुँ सब सुकृत नसावैं ॥

करन कृतारथ जननि हरि, धरम सेतु बाँधन निमित।
भये अवधमहँ अवतरित, भक्त, धेनु, सुर, संत हित ॥

जाऊँ तिनिकी शरन तिनहिँ सब विपति सुनाऊँ।
दशरथकूँ समुझाइ अनुजयुत उनकूँ लाऊँ॥
मखपति जगपति सकल विश्वपति वनमहँ आवें।
तो संतनिके सकल शोक दुखभय भगि जावें॥

प्रभु दरशन करि सब सुकृत, जप तपको फल पाउँगो।
द्वार देवके जाइके, अवसि तिनहिँ लै आउँगो॥

तिनिकी बिछुरी शक्ति मिलाऊँ जग यश पाऊँ।
जोरी बनै मलूक युगल छविकूँ नित ध्याऊँ॥
शक्ति सिया मिलि जाईँ होहि अवतार सरस अति।
कविगन होहिँ कृतार्थ भनैं शुभ चरित यथामति॥

विश्वामित्र विचार करि, अति प्रसन्न मनमहँ भये।
राम लखन याचन निमित, अवधपुरीकूँ चलि दये॥

आये विश्वामित्र राम लछिमन तिनि माँगे।
वचन शूल सम नृपति हियेमहँ मुनिके लागे॥
गुरु वशिष्ठ समुझाइ दये मुनिकूँ दोउ सुत।
मुनिके पीछे चलें राम लछिमन अति प्रमुदित॥

मिली ताड़का पन्थमहँ, मारी गुरु आज्ञा दई।
प्रभु छोड़्यो शर सरतैं, लग्यो हियेमहँ मरि गई॥

मारि ताड़का चले फेरि सिद्धाश्रम आये।
गुरु मख दीक्षित भये राम रक्षक कहलाये॥
पूर्णाहुतिके दिवस निशाचर दल इक आयो।
मार्‌यो राम सुबाहु लंक मारीच पठायो॥

मखरक्षक श्रीराम पै, अति प्रसन्न मुनिवर भये।
आशिष दुलहिनि देनहित, धनुपयज्ञमहँ लै गये॥

सोरठा—सम्मुख निरखे राम, अति विनीत शोभा सदन ।
प्रेम सहित लै नाम, कौशिक सिर सूँघन लगे ॥

छप्पय—बोले विश्वामित्र तात ! मिथिला मखभारी ।
भूप जनककी परम सुन्दरी एक कुमारी ॥
चलो तहाँ सो मिलै धनुष मख अति सुखदायक ।
मुनिवर की सुनि बात सहमि सकुचे रघुनायक ॥
सिर नीचो करि सिकुड़िकें, बोले श्रीरघुनाथ तब ।
चाहे जहँ प्रभु लै चलैं, सौंपे पितु हम हाथ तब ॥

कौशिक सुनि हँसि परे कहे—तुम क्यौं सकुचाओ ।
मिथिला मम सँग चलो अवसि दुलहिनि तुम पाओ ॥
यों कहि लैकें संग चले मुनि कथा सुनावत ।
निरखें मुनि हँसि जबहिँ राम तबही सकुचावत ॥
चलत चलत मगमहँ मिली, शिला नारिके सरिस वन ।
प्रभु पूछैं—कैसी शिला, सुनि मुनि बोले तपोधन ॥

गौतम ऋषि की नारि अहल्या है यह रघुवर ।
छल करि नास्यो धरम कपट पति बन्यो पुरन्दर ॥
आये मुनि सब समझि इन्द्रकी दुरगति कीन्हीं ।
शाप नारिकूँ दयो शिला सम सो करि दीन्हीं ॥
निज पदरज दै अघ हरहु, गुरु अनुशासन मानि हरि ।
परसी पगतैं सो तुरत, करै विनय उठि पैर परि ॥

(१)

हे हरि ! हौं अति निन्दित नारी ।
नहिँ प्रभु जप तप पूजा कीन्हीं, करी न विनय तुम्हारी ।
विषय भोगमहँ सब छिन खोये, पाप करे अति भारी ॥ हे हरि

यौवन मदमहँ हैं मदमाती, नहीं भजे मदहारी।
निजपति परपति भेद न समुझ्यो तन मन बुद्धि विसारी ॥ हे हरि०

हौं पतिप्राना परम प्रेयसी, अति सुन्दर सुकुमारी।
पतन हेतु अभिमान वढ़ायो, मदन मोर मति मारी ॥ हे हरि०

पतित उधारन सब जग पावन, आये द्वार खरारी।
करी कृतारथ भई यथारथ, चरन कमल बलिहारी ॥ हे हरि०

(२)

प्रभुजी ! तुमरो एक सहारो।
पाप करत निसि वासर बीते, रट्यो न नाम तिहारो।
भववारिधिमें डूबि रहो हूँ, दीखै नाहिँ किनारो ॥ प्रभुजी०
माता पिता सगे सम्बन्धी, कोई नहीं हमारो।
शरन गही है तव चरननिकी, अशरन शरन उवारो ॥ प्रभुजी०
परमारथ पथ लगै न हितकर, पाप लगैं अति प्यारो।
पतित उधारन हौ तुम रघुवर, पापिनिकूँ हू तारो ॥ प्रभुजी०
वनी पषान परी प्रभु पथमहँ, नहिँ कोई रखवारो।
स्वयं आइ अपनाई राघव, अब नहिँ कबहुँ विसारो ॥ प्रभुजी०

छप्पय–सुनी अहल्या विनय राम मनमहँ मुसकाये।
करि सेवा स्वीकार सरल शुभ वचन सुनाये ॥
पतिपदमहँ अनुराग करो तिनि ईश्वर जानों।
भामिनि मेरो रूप उनहिंकूँ निशि दिन मानों ॥
यों शिक्षा दै राम पुनि, जनकपुरीकूँ चलि दये।
शुद्ध अहल्याकूँ निरखि, गौतम अति प्रमुदित भये ॥

मगमहँ गौतम नारि तारि मिथिलापुर आये।
राम सहित मुनि पूजि जनक निज महलनि लाये॥
राम निहारी सीय हियेमहँ तुरत छिपाई।
निरखे सीता राम मनहुँ खोई निधि पाई॥
भूप स्वयम्वर सीय हित, रच्यो शम्भु धनु धरि दयो।
खींचि धनुष सिय वर बनै, शतानन्द नृप प्रन कह्यो॥

सबई थाके भूप धनुष नहिँ उठै उठाये।
गुरु आयसु सिर धारि राम सम्मुख धनु आये॥
सीय दीठितैं दीठि मिली दोऊ मुख मोर्‌यो।
सिय मुख दीठि न लगै रामने धनु तृन तोर्‌यो॥
धनुष भंग शिवको भयो, अङ्ग अङ्ग सियके खिले।
चकवा चकवी सरिस सिय, राम नसै धनु तम मिले॥

भेजे भूपति दूत सुनत दशरथ हरषाये।
सजि बरात गुरु भरत शत्रुहन सँग नृप आये॥
राम लखन इत भरत शत्रुहन चारिहुँ भाई।
उत सीता उर्मिला माडवी कीर्ति सुहाई॥
विधिवत भये बिवाह शुभ, दुलहा दुलहिन संगमहँ।
सुतनि बहूनि समेत लखि, नृप समाईँ नहिँ अगमहँ॥

विदा करन बर बधुनि सकुचि महलनिमहँ आये।
माता पुत्रिनि परम पतिव्रत धरम सिखाये॥
जनक जननि तै मिलीं बिलखि चारिहुँ सुकुमारी।
पुत्रिनि रोवत निरखि जनक सुधि देह बिसारी॥
करि बिबाह है कें बिदा, वधुनि सहित नृप घर चले।
क्षत्रिय कुलनाशक परशु—राम कुपित मगमहँ मिले॥



सीताजी द्वारा जयमाल पृ० ४०८



ताडका वध पृ० ४०५

गर्जें तर्जें परशुराम रघुपति मुख मोर्‌यो।
दयो विष्णुको धनुष ताहि रघुनायक तोर्‌यो॥
जामदग्न्यकी आँखि खुलीं विनती बहु कीन्हीं।
गिरि महेन्द्रकूँ गये शक्ति तिनिकी हरि लीन्ही॥

नृप दशरथ ह्वैके मुदित, आये पुर वरवधुनि सँग।
ज्यों-ज्यों पुर आवत निकट, होहिं सबनिके पुलक अँग॥

इत महलनिमहँ मातु मनावें कब सुत आवें।
कब सुकुमारी सकल सुन्दरी दुलहिनि लावें॥
इतनेमें संवाद सुन्यो दुलहिनि सब आवत।
भईं मुदित मन मातु हरष हिय नाहिँ समावत॥

कर्‌यो आरतो अरघ दै, नेग जोग सबही करहिँ।
दुलहिनि घूँघट मारिकैं, सब सासुनिके पग परहिँ॥

सबके पाँइनि लगीं सुतनि सँग बहू निहारीं।
लेईं बलैयाँ मातु रूप लखि जावैं वारीं॥
मुँह दिखाव को नेग भयो सब धन मनि देवैं।
सकुची सहमी बहू देखि घूँघटतैं लेवैं॥

कनकभवन कैकेयिने, जनकदुलारीकूँ दयो।
देउँ कहा हौं बहूकूँ, सोच मातुके मन भयो॥

कौशल्या सुत बधू रूप छवि पुनि पुनि पेखें।
प्रेम न हिये समाइ चकित चित देउनि देखें॥
मनि मुक्ता धन रत्न, देहुँ का तुच्छ सबहिँ हैं!
मेरी जीवन भूरि परम धन रामलहिँ हैं।

यों माता मन सोचिके, राम कमल कर कर लयो।
जनकदुलारीके मृदुल, कर कमलनिपै धरि दयो॥

मन मुसुकाईं सीय राम अतिशय सकुचाये।
सब दुलहिनि इस्नान शयन भोजन करवाये॥
चारिहु विहरें रमा उमा रति शचि सम दुलहिनि।
हरि हर काम सुरेन्द्र सग लै मानों महलनि॥

होहिँ मुदित माता सकल, पुत्र वधुनि लखि कमलमुख।
करि क्रीड़ा रघुनाथ प्रिय, पितु मातनि नित देहिँ सुख॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दु चरित अन्तर्गत द्वितीय विवाह चरितनामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।



विना वत्सके धेनु सरिस माता रथ घेर्‌यो।
रोवत लखि नर नारि राम मुख रथमें फेर्‌यो॥
विहरै बाल बखेरि राम कहि रोवै जननी।
बहैं नयन जलधार भई गीली सब धरनी॥
राम कहाँ ? लछिमन कहाँ ? बड़भागी सीया कहाँ ?
मैं हूँ जाऊँ संगमहँ, जाइँ लाल मेरे जहाँ॥

सोरठा—इतने में चिल्लात, निकसे भूपति महलतैं।
रोवत नगे गात, डगमग डगमग परत पग॥
राम कहे बिलखाइ, दृश्य भयो जब करुन अति।
अब नहिं देख्यो जाइ, हाँकौ रथकूँ सूतजी॥
हाँकि दयो रथ सूत, नृप धड़ाम धरनी गिरे।
कहाँ गये मम पूत, नृप कौशल्या मिलि कहे॥

छप्पय—राम गये बन नृपति फेरि सुरलोक सिधारे।
गुरु बुलवाये भरत वृत्त सुनि भये दुखारे॥
पितुके सब करि करम मनावन चले राम बन।
रटत राम रज चरणमाँहि तनु छबिमहँ लय मन॥
चित्रकूटपै लखन सिय, राम भरत लखि पग परे।
ह्वै अधीर रोये भरत, नयन नीर सबके भरे॥

पुचकारे लघुबन्धु धरम अरु नीति सिखाई।
पितु गौरवकी बात विवशता राम बताई॥
भरत मरम सब समुझि दण्डवत् पग परि कीन्ही।
राम रजायसु पाइ पादुका प्रभुकी लीन्हीं॥
निवसैं नन्दीग्राममहँ, छाल बसन अति छीन तन।
राम रटहिं यवव्रत करहिं, राम चरनमहँ लीन मन॥

चित्रकूटतैं चले राम इत दंडकबनमहँ ।
निरखि राम सिय लखन होहिँ मुनि प्रमुदित मनमहँ ॥
अत्रि अगस्त्य सुतीक्ष्ण आइ मुनि पावन कीन्हे ।
भये कृतारथ सबहिँ स्वय हरि दरशन दीन्हे ॥
बसहिँ राम सिय संगमहँ, पंचबटीमहँ करि कुटी ।
रामरूप फँसि भई जहँ, रावणभगिनी नककटी ॥

दूषण खर अरु त्रिशिर रामतैं लड़िबे आये ।
निशिचर चौदह सहस राम यमसदन पठाये ॥
निशिचर कीट पतंग राम लौमहँ जरि जावैं ।
गूलर सम गिरि जाँय राम जब बान चलावैं ॥
यातुधान जब सब मरे, चली लककूँ नककटी ।
मरहि निशाचर बेगि कब, लगी रामकूँ चटपटी ॥

रावणके ढिँग जाय रोइ बोली नकटी सुनि ।
पंचवटीमें रहे राम लछिमन बनिके मुनि ॥
सङ्ग सीय इक सुघर नारि रति सम सुकुमारी ।
भाभी मेरी बने बात मनमाँहि बिचारी ॥
तिनि सुनि मम प्रस्तावकूँ, नाक काटि मेरी लई ।
खर, दूषण, त्रिशिरा, मरे, अपकीरति तेरी भई ॥

निरखि बहिन अपमान रक्त खौलै नहिँ तेरो ।
रावण बोल्यो—बहिन ! निरादर है जिह मेरो ॥
छल बल तैं तिनि मारि नारि तिनकी लै आऊँ ।
मृग बनाइ मारीच तहाँ है अबई जाऊँ ॥
डरि रावनतैं कनकको, बनि मरीच मृग चलि दयो ।
पंचवटी ढिँग फिरहि खल, सीताकूँ बिस्मय भयो ॥

इत श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत तृतीय वनचरित नामक अष्टाईसवाँ अध्याय समाप्त ।



सीताविनोदी राम पृ० ४१८



भरतजी द्वारा चरणपादुका पूजन पृ० ४१३

अथ–एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[२९]

हे सीतापति ! लखनबन्धु ! भक्तनि सुखदाता ।
हे अनाथके नाथ ! पतित पावन भयत्राता ॥
हे शोभाके धाम ! राम ! जग रमिवे वारे ।
हे वनवासी राम ! मुनिनि मन हरिवे वारे ॥

हे जग पावन ! तव चरन-रेखारञ्जित धूरि जो ।
कहूँ कथा सिर धरि विमल, भक्तनि जीवनि मूरि जो ॥

राम ! हृदयमहँ बसो कामकूँ तुरत भगाओ ।
राम ! मलिन मारीच बन्यो मन मारि गिराओ ॥
राम ! सिन्धु भव बहत सेतु करि पार लगाओ ।
राम ! निहारैं राह आइ तन तपन बुझाओ ॥

राम ! न साधन भजन मन, बने परे पाषान हम ।
राम ! छुआओ चरन निज, हो जड़ चेतन करन तुम ॥

कनक हिरन बनि गयो दुष्ट मारीच निशाचर ।
मनि मुक्ताकी पूँछ रूप अति अद्भुत सुन्दर ॥
क्रीड़ाकानन जनकनन्दिनीके में आयो ।
चरिवे लाग्यो दूब सीय लखि मन ललचायो ॥

करति प्यार अति मृगनिते नृप विदेहकी प्रिय लली ।
जाइ जिवाऊँ सुघर अति, सोचि प्रानपति ढिँग चली ॥

बोली पतितैं लिपटि—हरिन जिह अद्भुत प्रियतम ।
पकरो जाकूँ खेल कर्‌यो करिहैं मिलि हम तुम ॥
सीताकूँ सुख दैंन चले शर धनु लै रघुवर ।
अति उत्सुकता बढ़ी कनक मृगको हित हरिउर ॥

धनुधारी रघुनाथकूँ, लखि पीछे भाग्यो असुर ।
मारहिं नहिं पकर्‌यो चहे, सोचहिं प्रभु मृग अति सुघर ॥

नहिं जब आयो हाथ तीर तकि सियपति मार्‌यो ।
हा सीता ! हा लखन ! राम स्वर माँहिं पुकार्‌यो ॥
लखि रजनीचर राम भये व्याकुल इतसीता ।
पति आरत सुनि शब्द भई भामिनि भयभीता ॥

पग पगपै प्रिय प्रेममहँ, अनहित आशंका रहत ।
वचन कहे कछु कटु कुमरि, दास लखन सिर धुनि सहत ॥

बोले लछिमन—त्रियाचरित मत मातु दिखाओ ।
कहे जानकी—मरूँ राम ढिँग यदि नहिं जाओ ॥
लखन दुखित ह्वै चले दशानन तब तहँ आयो ।
साधु समुझिके सीय सहमि सादर बैठायो ॥

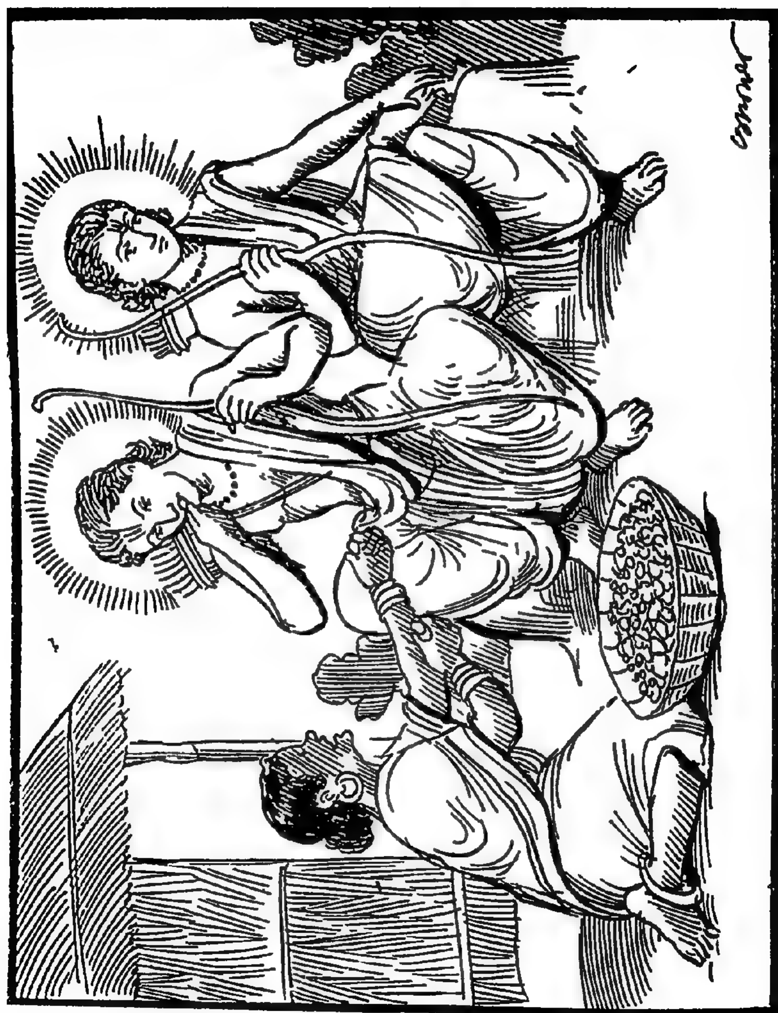
दुष्ट सीय लै चलि दयो, धेनु बधिक फंदे परी ।
दुखित गीध स्वर सुनि भयो, जानि दशानन सिय हरी ॥

टूट्‌यो नभतैं गीध झपट्टा रथपै मार्‌यो ।
तोर्‌यो रथ हय मारि सारथी हू संहार्‌यो ॥
रुदन जानकी करें तात कहि कहि चिल्लावैं ।
इत उत दौरें गिरे परें मूर्छित ह्वै जावैं ॥

करि विलाप पुनि पुनि कहति, हे खग मृग द्रुम बन फिरत ।
कहियों मम पति तें तुरत, लै हरि रावन गयो इत ॥



मारीचके पीछे राम पृ० ४१६



वेंनी झोटा खाइ गिरैं केशनिकी माला।
जेट नगनिकी भरें फिरैं व्याकुल बनि बाला॥
सचर अचर सम भये डरें सबई रावन तें।
जनकसुता दुरदशा लखें खग मृग छिपि वन तें॥

हा प्यारे देवर लखन! हा जीवनधन प्रानपति।
परी दुष्टके फंदमें, गीधहु पाई परमगति॥

समर दशानन सङ्ग गीधने अद्‌भुत कीन्हों।
अश्व सारथी मारि निशाचर मूर्छित कीन्हों॥
पुनि घायल करि गृद्ध चल्यो सीता लै रावन।
किष्किन्धापै फैंकि दये सिय पट आभूषन॥

पुरी लंक लै जाय सिय, वन अशोकमहँ रखिदई।
असन वसन तिनि सब तजे, पति वियोगमहँ कृश भई॥

इत मारीचहि मारि लखन लखि राम रिस्यावत।
कुटी सीय बिनु निरखि बिलखि रोवत पछितावत॥
जड़ चेतनको भेद भूलि भामिनि हित भटकैं।
खग मृगतैं सिय पतो पूछि सिर धुनि कर पटकैं॥

इत उत चितवत चकित ह्वै, नयन नीर धारा बहत।
तात धीर धारन करो, राम अनुज पुनि पुनि कहत॥

सोरठा—दुखी प्रिया बिनु राम, राजिवलोचन भुवनपति।
लै लै सियको नाम, पूछत सबर्डनैं फिरैं॥

छप्पय—निम्ब! कदम्ब! रसाल! पनस! सिय पतो बताओ।
प्रिया छिपी तुम कहाँ शीघ्र शशिवदन दिखाओ॥
जाइ तरुनि ढिँग कहत जनकतनया तुम देखी।
सरिता गोदावरी! कहो सखि सिय तुम पेखी॥

यों प्रलाप पुनि पुनि करें, सिरी सरिस राघव भये ।
सर, सरिता, वन, कन्दरा, ढूँढत दिशि दच्छिन गये ॥

ढूढत ढूढत राम गये सबरीके आश्रम ।
निरखि मुदित अति भई तापसी समुझि सफल श्रम ॥
चखि चखि लाई बेर प्रेम लखि हरि हुलसाये ।
लखन संग अति ललकि बेर भिल्लिनिके खाये ॥

सबरी बोली—जगत्पति, पंपासर ढिँग जाइकें ।
कपि पतितैं मैत्री करो, लावै सिय ढुढ़वाइकें ॥

प्रेम बेर चखि चले सोच सीता हित भारी ।
कपि कस होवै मित्र मिलै कस जनकदुलारी ॥
अगनित जे छिनमाहिँ बिश्व ब्रह्माण्ड बनावें ।
ते कपि मैत्री चहैं करुन नरनाट्य दिखावें ॥

राम लखन सुग्रीव लखि, पवनतनय पठये तहाँ ।
सिर चढ़ाइ लाये तुरत, डरि कपिवर बैठे जहाँ ॥

रघुबर परिचय पाइ आइ बैठे सब बानर ।
करे सखा सुग्रीव राम करुनाके सागर ॥
रोइ रोइ सुग्रीव दुखद निज कथा सुनाई ।
दशा देखि अति दीन दया राघवकूँ आई ॥

भुज उठाइ प्रभु प्रन कर्यो, सखा काज हौं करहुँ सब ।
सिय पट भूषन कपि दये, लखि प्रभु व्याकुल भये तब ॥

एक बानतैं सात ताल बेधे जब रघुपति ।
भइ प्रतीति कपि हृदय हर्ष मनमहँ बाढ़्यो अति ॥
संग लिये सुग्रीव वालि बध हित हरि आये ।
समर हेतु सुग्रीव वालि ढिँग तुरत पठाये ॥

बालि भिड़्यो सुग्रीवतैं, गुत्थम गुत्था ह्वै गई ।
भग्यो दुखित लघु बन्धु जब, पुनि पठये उर सग दई ॥

मालातैं पहिचानि बालि उर शर हरि मार्‌यो ।
राम बानतैं मरत तुरत हरिलोक सिधार्‌यो ॥
सुत अङ्गदकूँ सौंपि परमपद पायो कपिपति ।
राज पाइ सुग्रीव काममहँ फँसी तासु मति ॥

चारि मास गिरि गुहा महँ, बसे राम कपि काममहँ ।
फँस्यो, किन्तु हनुमान मन, सदा बसै श्रीराममहँ ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत चतुर्थ सीताहरणचरित नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३०]

हे रघुनायक राम ! गीधकूँ शुभ गति दाता ।
हे भुवनेश्वर ! सकल जगतके तुम पितु माता ॥
हे सबरी सरबस्व ! भिल्लिनी प्रिय रघुनन्दन ।
हे बदरी प्रिय ! सखा कपिनिके दुष्ट निकुंदन ॥

हे प्रनपालक विरहरत, हे सीताहित दुखित अति ।
सीय मिलनकी शुभ कथा, कहूँ होहि तव चरन रति ॥

राम कामनाहीन करैं क्रीड़ा करुणाकर ।
नीरस जगकूँ सरस करन प्रकटैं प्रभु दुखहर ॥
मनुज सरिस शुभ चरित दिखावहिँ जन मनरंजन ।
सुखी करन निज जननि करहिँ हरि करुणाक्रदन ॥

करैं कामना भक्त जब, तब तैसे बनि जात हैं ।
ह्वैकैं सर्व समर्थ प्रभु, भक्तनि हाथ बिकात हैं ॥

हनुमत सिखतैं सीय खोजिबे दूत पठाये ।
राम रजायसु पाइ लखन कपिपति धमकाये ॥
त्यागि काम सुग्रीव काम रघुपतिके आये ।
इत उत भेजे और पवनसुत लंक पठाये ॥

अंगदादि कपि सँग चले, दई मुद्रिका सीयपति ।
सिन्धु लाँघि लंका गये, हनुमत हिय उत्साह अति ॥

इत उत ढूँढ़त फिरे मिली नहिं जनकदुलारी।
करूँ कहा मरि जाउँ पवनसुत बात विचारी॥
पुनि कछु धरिकैं धीर गये जब पुरके बाहर।
उपवन लख्यो अशोक लखीं जननी तहँ तरुतर॥

वृक्ष शिशिपा छाँहमें, राम राम प्रति पल रटत।
निरखी कपि साकार छवि, आलोकित उपवन करत॥

निकट पहुँचि हनुमान रामको चरित सुनायो।
सुनत राम गुन गान हृदय माँको भरि आयो॥
पूछैं—को तुम तात! उड़ैलो श्रवननिमहँ रस।
प्याश्रो मधुमय अमृत परम दुरलभ रघुपति यश॥

अञ्जलि बाँधैं पवनसुत, आये सम्मुख सीयके।
भक्त समुझि पूछन लगी, समाचार सब पीयके॥

विनय सहित इतिहास पवनसुत सकल सुनायौ।
सुनत रामको विरह सीय नयननि जल छायौ॥
रोवैं अरु पछिताईं शोकमहँ गिरि गिरि जायें।
नेह नाथको सुमिरि लखनकी भक्ति सरायें॥

प्रभुपद कपिको नेह लखि, आशिष सीताने दईं।
अरपन कीन्हीं मुद्रिका, निरखि मुदित अतिशय भईं॥

मातु कहैं—कछु कंद मूल फल बेटा! खाश्रो।
छिपिके पत्तनिमाहिँ राति इक यहाँ बिताश्रो॥
कपि हिय हर्ष अपार खाइ फल वृक्षनि तोरें।
दूरि उखारे फेंकि कछुनिपै चढ़ि झकझोरें॥

आये लड़िबे निशाचर, मारि पटाये यमसदन।
नागपाशमहँ बँधि गये, कुपित कहैं लखि दशानन॥

मारौ कपिकूँ तुरत बिभीषन नीति बताई।
कपड़ा तेल लपेटि पूँछमहँ आगि लगाई॥
कपिहित शीतल अनल भये सब पुरकूँ जारैं।
पकरन आवें निकट पूँछ कसि मुँहपै मारैं॥
मैया बप्पा करि भगें, खिलखिलाय हनुमत हँसें।
बिना जरे निरखें भवन, कूदि तुरत तामें घुसे॥

अनल लपट अतिउठत जरत सब चटचट चटकत।
निकरि निकरि सब भगत फिरत बिलखत सिर पटकत॥
यातुधानिनी जरहिँ देहिँ रावनकूँ गारी।
जिह हारं लायो सीय रूपमहँ मृत्यु हमारी॥
इरि फिरि जार्‌यो नगर सब, पवनतनय प्रमुदित भये।
पुनि सागरमें न्हायके, जगजननीके ढिंग गये॥

हाथ जोरि कपि कहैं—चिन्हारी दै कछु माता।
आवें सजिके सैन अनुज सँग भवभयत्राता॥
अनुमति सियकी पाइ चले पुनि गर्जत तर्जत।
करत सवनि भयभीत यातुधाननि मद मर्दत॥
यों लंकाकूँ जारिके, कूदि पार सागर गये।
निरखे विजयी पवनसुत, अंगदादि प्रमुदित भये॥

है प्रसन्न सब चले रामढिंग मिलि कपि आये।
सुखद सीय सम्बाद आइ सियपतिहिं सुनाये॥
चूड़ामणि हनु दई पाइ प्रभु हिये लगाई।
उर अस बाढ्‌यो प्रेम मनहु बैदेही पाई॥
कपिपति सेना बानरी, साजि समर हित चलि दये।
लाँघि नदी गिरि नीरनिधि, तीर पहुँचि बिस्मित भये॥

इत जारी कपि लंक शङ्क रावन हिय पैठी।
देहुँ जानकी नहीं बात खलके मन बैठी॥
सब सुत सचिव बुलाइ समर हित सम्मति पाई।
किन्तु न सहमत भये बिभीषन छोटे भाई॥
नीति बिभीषनकी सुनी, भयो कुपित अति दशानन।
नाश समय लखि भक्त वर, तुरत गये तब हरि शरन॥

दोहा—सचिवनि सँग रावन अनुज, पहुँचे प्रभुढिँग जाय।
बिलखि बिनय लागे करन, सीतापतिहिँ सुनाय॥

छप्पय—आयो तुमरी शरन दीनवत्सल सुनि स्वामी।
सुनत शरन हरि लये कृपानिधि अन्तरयामी॥
सचिवनि करी कुतर्क राम एकहु नहिँ मानी।
तनिक न शङ्का करी भक्तहियकी सब जानी॥
बन्धु तिरस्कृत बिभीषन, लखे राम दुःखित भये।
तुरत मँगायो सिन्धुजल, झट लंकापति करि दये॥

पाइ बिभीषन राज चरन प्रभुके गहि लीन्हें।
कहे—कृपानिधि ! प्रनतपाल प्रन पूरे कीन्हें॥
तामस तनु रिपुअनुज बन्धुने मारि भगायो।
साधनहीन अनाथ नाथ ! फिरिहू अपनायो॥
राज पाट ऐश्वर्य सुख, नहिँ चाहूँ अपवर्ग गति।
जब जब जनमूँ तब चहूँ, प्रभु पद पद्मनि सुदृढ़ रति॥

सुनी बिभीषन विनय कृपामय बोले बानी।
मोकूँ पावैं भक्त नहीं पावैं अभिमानी॥
अब जलनिधितैं पार होनकी युक्ति बताओ।
कहे बिभीषन—सिन्धु शरनमें प्रभुवर जाओ॥
लछिमन यह मत नहिँ रुच्यो, किन्तु राम अनशन कर्यो।
कुश बिछाय मौनी बने, जलधि तीर धरनो धर्यो॥

पार जान हित सिन्धु विनय रघुपति अति कीन्हीं।
किन्तु जलधि जड़ गैल नहीं रघुबरकूँ दीन्ही॥
कर्यो कोप करुणेश धनुषपै शर सन्धान्यो।
लख्यो वेप बिकराल नाश निज जलनिधि जान्यो॥

तुरत रूप रखि भेंट लै; आयो राघवकी शरन।
हाथ जोरि गदगद गिरा, लग्यो बिनय इस्तुति करन॥

हे अनाथके नाथ! दीन दुखियन दुखत्राता।
हे कृपालु करुणेश! शान्ति सत सुखके दाता॥
हे अनादि अखिलेश! अनामय अज अघहारी।
हे अच्युत अवधेश! अमरपति लीलाधारी॥

जीव बिबश गुण प्रकृतितै, करै कर्म है कें अवश।
मोइ अगाध अपार तुम, रच्यो तजौ मर्याद कस॥

हौ हरि सर्व समर्थ विश्व छिनमाँहि बनाओ।
मोपै बाँधौ सेतु पार प्रभुवर पुनि जाओ॥
वालमीक मुनि चरित सेतु करि जगकूँ तारें।
सिन्धु सेतु कपि करै सैन्य सब पार उतारें॥

रामचरित मुनि सेतु करि, स्वयं अवशि तरि जायँगे।
बने रहैं पुनि जगतमहँ, सब सेवैं सुख पायँगे॥

बोले करुनासिन्धु—सेतु शत योजन भारी।
वेगि बँधे सो युक्ति बताओ अति हितकारी॥
कहै सिन्धु—नरनाट्य नाथ यदि आप दिखावैं।
तो नल डारें शिला नीरमें सो उतरावैं॥

लावैं कपि पाषान मिलि, जोरें शिल्पी नील नल।
प्रभु यश व्यापै जगतमे, होहिं न जलचर हू बिकल॥

नल सुरशिल्पी-तनय सेतु सुखकर बाँधै वर।
सुन्दर सेतु बनि जाइ ताहितैं जावैं बानर॥
मम मर्यादा रहै रहै यश तुमरो जगमहँ।
नरलीला हरि करहु नहीं नाप्यो जग पगमहँ॥
राम बुलाये नील नल, अन्तरहित सागर भयो।
बाँधौ बानर सिन्धुपै, सेतु विहँसि राघव कह्यो॥

राम रजायसु पाइ सेतु सब बाँधन लागे।
लैन वृक्ष अरु उपल बीरवर बानर भागे॥
उपल उठाइ उठाइ सलिलमहँ फेंके सबई।
देहिँ सबहिँ उत्साह बँध्यो पुल वीरो! अबई॥
धम्म धम्म पत्थर गिरै, धूम धड़ाको मचि गयो।
आर पारतैं सूधिमहँ, सूत सामने खिंचि गयो॥

बानर चंचल दौरि दौरिके इत उत जावैं।
नाना कौतुक करे परसपर हँसें हँसावैं॥
वृक्षनि सहित उखारि शिला परवतकी लावैं।
नभमें कूदैं फेरि धम्म जलमें गिरि जावैं॥
हनूमान डपटैं सबनि, चंचलता अति मति करौ।
हिलि मिलि लाओ शिला सब, हौलेतैं जलपै धरौ॥

सोरठा—आइ गये नल नील, राम लखन पद बन्दिके।
दोऊ परम सुशील, श्री गणेश अब करि दयो॥

छप्पय—माप दण्डतैं नापि बनायो चौदह योजन।
द्वितिय दिवस जब बीस बन्यो तब कीयो भोजन॥
तृतिय दिवस इक्कीस बन्यो बाइस चौथे दिन।
पहुँचे पंचम दिवस पार रचि तेइस योजन॥
सिन्धु सेतु पूरो भयो, रामेश्वर थापित करे।
आशुतोषके दरश करि, नयन नीर सब के भरे॥

पार पहुँचि सुग्रीव निशाचरपति समुझायो ।
मूढ़ न मानी बात राम अंगदहु पठायो ॥
रणके बाजे बजे घुसे लंकामहँ बानर ।
तोड़ें फोडें उछरि कूदि सब घूमे घर घर ॥
वन उपवन सब नगरमहँ, बानर ही बानर भरे ।
क्षत विक्षत नगरी भई, घर टूटे निशिचर मरे ॥

नख दाँतनितैं काटि करी क्षत लंका नगरी ।
मनु मसली नर करिनि नायिका सरिता सगरी ॥
इत उत बानर फिरहिँ करहिँ मिलि धक्कम धक्के ।
निरखि कपिनि उत्साह, छुटे रावनके छक्के ॥
उत निशिचर इत भालु कपि, दोऊ सेना सजि गईं ।
दोऊ विजई बनन हित, करि रव भीषण भिड़ि गईं ॥

पठये कुम्भ निकुम्भ इन्द्रजित निशिचरपति जब ।
समर करन सब चले बिभीषन भेद कह्यो सब ॥
मेघनाद रन छोड़ि भग्यो माया फैलाई ।
नर लीला प्रभु करी गिरे रन दोऊ भाई ॥
निशिचरदलमहँ हर्ष अति, कपिदलमहँ चिन्ता भई ।
राम जगे कपि लखन हित, लाये संजीवनि दई ॥

आये विनतातनय नाग सब तनुतैं भागे ।
सूँघि सँजीवन लखन उठे जनु सोवत जागे ॥
राम लखन लखि स्वस्थ भये कपि प्रमुदित भारी ।
सोचें माया व्यर्थ रामपै भई हमारी ॥
मायापतिपै निशाचर, करिकैं माया नहिँ डरत ।
जनु नानीके व्याहकी, बात सुतासुत मिलि करत ॥

चले राम रनमाँहि संग सुग्रीव सहायक।
जाम्बवान, नल, नील पनस, अंगद सब नायक॥
धनुष, प्राश, शर, शक्ति युक्त रावनकी सैना।
पकरि पकरि कपि भालु चबावैं मनहुँ चबैंना॥
सर्र सर्र शर समरमहँ, चलैं चपत हूँ चटाचट।
जहँ देखो तहँ ह्वै रही, पटका पटकी खटापट॥

अगद मार्यो वज्रदंष्ट्र धूम्राक्ष पवनसुत।
आयो लड़न प्रहस्त भये नहिं वानर विचलित॥
मरे मुख्य सब वीर दशानन अति खिसियायो।
स्वयं साजि सब सेन रामतें लड़िवे आयो॥
हनूमान अरु बालि सुत, नील लखन मूर्छित करे।
पवनतनयकी पींठ चढि, रावनतैं राघव लरे॥

रामबानतैं बिकल दशानन लंका आयो।
कुम्भकर्ण लघु बन्धु नींदतैं तुरत जगायो॥
जगिकें बोल्यो वीर—रामतैं रनमहँ लरिहौं।
लहूँ विजय करि कीर्ति नही हरि सम्मुख मरिहौं॥
यों कहि अंजन-गिरि सरिस, चल्यो देखि वानर भगे।
भगदड़ कपिदलमहँ निरखि, अंगद समुझावन लगे॥

अगदकी सुनि सीख रुके कपि लडिवे लागे।
कुम्भकर्ण सुग्रीव लखन सेनाके आगे॥
भयो भयानक समर लखन रन अद्भुत कीन्हों।
पुनि राघवतैं भिड्यो असुरकूँ अवसर दीन्हों॥
रामबानतैं कर कटे, पग मस्तक हू कटि गये।
कुम्भकर्ण खल मरि गयो, सुनि हर्षित सुर मुनि भये॥

कुम्भकर्ण सुनि निधन दशानन दुख अति पायो ।
तबहिँ तनय अति शूर युद्धकूँ तुरत पठायो ॥
देवान्तक अतिकाय गये पुनि आये नहिँ फिरि ।
इन्द्रजीत पुनि छले राम सौमित्र गये गिरि ॥
ह्वै चेतन लछिमन चले, सुनत सबनि अति सुख भयो ।
यतिबर लछिमन हाथतैं, इन्द्रजीत मार्‌यो गयो ॥

इन्द्रजीत रन मरन दशानन सुनि घबरायौ ।
बैदेही बध हेतु खड्ग लै निशिचर धायौ ॥
अनुचित कहिकें सचिव निवार्‌यो सम्मति मानी ।
मारूँ या मरि जाउँ लकपति मनमहँ ठानी ॥
समर हेतु रथ चढ़ि चल्यो, राम बिरथ लखि अमरपति ।
पठयो रथ मातलि सहित, चढ़े राम कपि मुदित अति ॥

समर निशाचर नाथ लख्यो प्रभु कोप दिखायो ।
नयन अरुन करि कहैं—नीच सम्मुख अब आयो ॥
चोर भीरु निरलज्ज निशाचर पामर कामी ।
पींठ पिछारी प्रिया हरी तू है खल नामी ॥
अति सुकुमारी जानकी, दयिता दुःख दुसह दयो ।
पृथक करहुँ धड़तैं शिरनि, उदय पाप खल तव भयो ॥

सुनत रामके बचन क्रोध करि रावन धायौ ।
धनुषबानकूँ तान समरमहँ सम्मुख आयौ ॥
उभय ओरतैं बानचलैं सुरमुनि सुख पावहिँ ।
भयो समर अति कठिन उभयशर दिव्य चलावहिँ ॥
ज्यों सागर, नभ, चन्द्र, रबि, की उपमा अनुपम कहीं ।
त्यों रावन अरु राम की, रन समता जगमहँ नहीं ॥

लीला रघुपति करहिं लरहिं जीते अरु हारें ।
अमित होहि जय करहिं सहहिं शर पुनि पुनि मारें ॥
कबहूँ आगे बढ़हिं फिरहिं घूमें मुरि जावहिं ।
कबहूँ उछरें दुबकि कुदकि झट सम्मुख आवहिं ॥
भक्तनि हित अवतार धरि, नरलीला रघुबर करहिं ।
बँधहि सेतु प्रभुचरितको, जाते सब भवनिधि तरहिं ॥

खेंचि कान तक बान राम रावनके मार्‌यो ।
काट्यो धड़तैं शीश धम्म धरतीपै डार्‌यो ॥
उदित भयो पुनि शीश तुरत पुनि काट्यो रघुपति ।
ज्यो ज्यों काटहिं उगहिं नये लखि प्रभु विस्मित अति ॥
मोहित सम चेष्टा करहिं, मातलि बोल्यो बचन तब ।
क्यौ नर लीला करहु हरि, ब्रह्म अस्त्रकूं लेहु अब ॥

मातलि सम्मति मानि ब्रह्मसर धनु पै धार्‌यो ।
करि अभिमंत्रित तुरत निशाचर पति तब मार्‌यो ॥
मरत निशाचर देव, विप्र, ऋषि, मुनि सुख पायो ।
सुनि रावन बध बन्धु विभीषन ढिंग तब आयो ॥
लंकापतिको निधन सुनि, आई तहाँ निशाचरीं ।
शिर पटकहिं छाती धुनहिं, मृतक पतिहिं लखि गिरि परीं ॥

बार बार पति देह अङ्कमहँ धरि धरि रोवें ।
मृतक बदन लखि दुखित होहिं धीरजकूं खोवें ॥
दृढ़ आलिङ्गन करहिं शीश धरनीमें मारैं ।
पटतैं पोछैं रक्त धूरि पतिशवकी झारैं ॥
निशाचरी रोवैं सतत, क्रन्दन ध्वनि नभमहँ भरी ।
तबई रानिनितैं घिरी, आई तहँ मन्दोदरी ॥

प्राणनाथकूँ निरखि मृतक मन्दोदरि रोई।
ह्वैकैं व्याकुल गिरी बिरहमहँ तनु सुधि खोई॥
प्राणनाथ हृदयेश प्राणपति कहि डकरावै।
क्रन्दन कुररी सरिस करै दुखतैं बिललावै॥
राम बवंडर वायुतैं, पति पादप जड़तैं कर्यो।
विधवा लंका ह्वै गई, मम सिंदूर सिरको मिर्यो॥

परे धरनिपै प्रभो! न दासिनितैं बोले अब।
लाये जिनकूँ जीति प्रिया रोवैं ठाढी सब॥
रावनके सब कर्म विभीषणने सोचे अब।
घृणा हृदयमहँ भई मृतक नहिँ कर्म करे जब॥
रघुनन्दन अति प्रेम तैं, प्रेत करम आयसु दई।
समुझाई मन्दोदरी, पृथक देह पतितैं भई॥

राम रजायसु पाइ विभीषन अनुमति दीन्ही।
सामग्री सब पितृ करम एकत्रित कीन्ही॥
चन्दन चिता बनाइ ताहिपै धर्यो बन्धु तन।
निरखत मृतक शरीर सबनिको दुखित भयो मन॥
धू-धू करिकें चिता जब, जरी निशाचर नाथकी।
एक संग फूटी तबहिँ, चूडी रानिनि हाथकी॥

डकरावैं सब नारि दृश्य अति ई दुखदायक।
दाह करम करि दई तिलाञ्जलि निशिचरनायक॥
धूम धामके सहित बिभीषन क्रिया कराई।
भस्म देहकी भई परमगति रावन पाई॥
सब सौतिनिकूँ संग लै, मन्दोदरि महलनि गई।
सब वानर प्रमुदित भये, विजय राम दलकी भई॥

आइ विभीषन रामचरनमहँ शीश नवायो।
पूँछे राघव—सीय कहाँ तव पतो बतायो॥
जानि नगरतैं दूरि गये रघुनायक नेही।
बिरह व्यथातैं लखी तहाँ बैठी वैदेही॥

मलिन बसन कच जटा बनि, बिथुरे इत उत म्लान मुख।
पति दरशनतैं भयो अति, सीय हृदयमहँ परम सुख॥

पवनतनय सुग्रीव विभीषन लछिमन आये।
वैदेही पद पदुम आइ सब शीश नवाये॥
लज्जित देवी भईं अधिक आभार जनायो।
राम रजायसु पाइ विभीषन यान मँगायो॥

रथ चढ़ि वैदेही सहित, उपवनमहँ राघव गये।
जगजननी जगजनककूँ, लखि वानर प्रमुदित भये॥

दोहा—कुमुदिनि सम सिकुरीं सिया, खिलीं पाइ रघुचन्द्र।
भईं मुदित मनमहँ मनहु, मिली चकोरी चन्द्र॥

चकवा चकवी राम सिय, रावन रात्रि समान।
इत उत सागर पार बसि, मिले निशाअवसान॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत पंचम सीता संयोगचरित नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त

अथ एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३१]

सीता के सरवस्व ! सकल जगपालक ! प्रभुवर !
रावणारि ! रघुतिलक ! राम ! रघुनायक ! रघुवर !!
कैसे कैसे करुन चरित रघुनाथ दिखाये।
प्रिया हेतु करि सेतु कपिनि सँग लंका आये ॥
खल दल दलि रावन हन्यो, हरी सियाकी सब व्यथा।
कहूँ युगल पदवन्दिके, राजतिलककी शुभ कथा ॥

मारि दशानन प्रिया शोक सन्ताप मिटायो।
दरश युगल छवि करें कपिनि अतिशय सुख पायो ॥
करि सोलह शृंगार पिया निज पति संग भ्राजें।
बरसावें सुर सुमन दुंदुभी नभतें बाजे ॥
जबहिं विभीषन शरनमहँ, गये तिलक तबही कर्यो।
अब लछिमन बुलवाइके, सिंहासन विधिवत दयो ॥

लंकामहँ अभिषेक विभीषनको करवायो।
जानि अवधिको अंत यान पुष्पक मँगवायो॥
पवनतनय सुग्रीव लखन अंगद बैठाये।
बैठे सीया सहित स्वयं रघुपति हरषाये॥
प्रानप्रियाकूँ सबहिं थल, लीलाके दिखरावते।
यानमाहिँ नभमहँ चले, प्रेम सहित बतरावते॥

जनक सुतातैं कहँ—प्रिये! देखो लीला थल।
यह त्रिकूट गिरि समर भूमि यह सागरको जल॥
है यह सुन्दर सेतु नील नल कपिनि बनायो।
यह रामेश्वर धाम विभीषन यहि थल आयो॥
किष्किन्धा पम्पापुरी, पंचवटी गोदावरी।
चित्रकूट सीते! लखो, यह तिरवैनी सुखकरी॥

जहाँ गंग अरु जमुन मिलैं मन मोद बढ़ावैं।
जहाँ सिद्ध सुरवृन्द नित्य दरशनकूँ आवैं॥
जहाँ सरसुती धार गुप्तहू अति सुखदैनी।
गंगा यमुना संग होहि मिलिके तिरवैनी॥
जहँ अक्षयवट वर विटप, सोमेश्वर भगवान हैं।
तहँ उतर्‌यो प्रभु भाव लखि, पुष्पक पुण्य विमान हैं॥

पग पग प्रभुजी चले संगमहँ जनकदुलारी।
अति सुशील लघु बन्धु लखन पाछैं धनुधारी॥
भरद्वाज जब सुन्यो राम आगमन सुहावन।
दौरि द्वारपै आइ निहारे प्रभु जगपावन॥
पग पकरन मुनिके बढ़े, ज्योंही शोभा धाम विभु।
त्योंही भरि मुनि अंकमें, कसि चिपटाये राम प्रभु॥

सीता अनुज समेत निहारत मुनि हरषावत ।
बार बार छबि निरखि सिहावत भाग्य सराहत ॥
दरशनतैं मम भये सफल जप तप ब्रत आजू ।
धन्य धन्य हौं भयो धन्य यह तीरथराजू ॥

सोई आश्रम पुण्यप्रद, परैं जहाँ भगवान पग ।
पदरजतें पावन बनें, पशु, पामर, पाषान, खग ॥

भरद्वाज मुनि लखे राम सौमित्र सीय सँग ।
निरखि सबनिकूँ कुशल भये मुनिके पुलकित अँग ॥
करि बहुविधि आतिथ्य सबनिकी कुशल-बताई ।
भरत तपस्या सुनी दया हरि उरमहँ आई ॥

पवनतनय पठये तुरत, भरत जहाँ बिरही बसहिँ ।
स्वाँस स्वाँस रघुपति जपहिँ, तप करिकें तनकूँ कसहि ॥

निरखि भरतकी दशा वायुसुत अति हरषाये ।
बोले—हे नरदेव ! अवधपति अब ई आये ॥
सुनत सुखद शुभ वचन सुधा रसमहँ साने जनु ।
व्यापो अँग अँग हरष भयो पुलकित सबरो तनु ॥

सुनि रघुपतिको आगमन, भरत मुदित मनमहँ भये ।
समाधान सब भाँति करि, पवनतनय प्रभु ढिंग गये ॥

सब सुनि मुनितें कहे राम—भगवन् ! अब जाऊँ ।
मातु भरत सब प्रजा दुखी तिनि दुःख मिटाऊँ ॥
मुनि भरि नयननि नीर कहे—प्रभु हिय बसि जाओ ।
छाँड़ि हृदय मम नाथ अनत कितहूँ मति जाओ ॥

एवमस्तु कहि कृपानिधि, पुष्पकपै पुनि चढ़ि गये ।
सीता सखनि समेत उड़ि, अवधपुरीकूँ चलि दये ॥

इत सजिकें सब साज भरत स्वागत हित धाये।
बाल वृद्ध नर नारि चले उठि सुनि प्रभु आये॥
चले पढ़त द्विज वेद गीत ललना शुभ गावत।
वाहन चढ़ि चढ़ि चले हरषि हय वीर नचावत॥
रामपादुका शीश धरि, राम चरनमहँ रोवते।
परे लकुटसम भरतजी, अँसुअनि भूमि भिगोवते॥

लखे भरत कृशगात राम रघुनायक रोये।
आलिङ्गन करि नयन नीरतैं चीर भिगोये॥
भरत रामको मिलन निरखि उपमा सकुचावै।
करुणा हू ह्वै द्रवित नयनतैं नीर बहावै॥
जनकसुता चरननि परे, रोवत अति बिलखात हैं।
मातु भरतकी दशा लखि, हृदय द्रवित ह्वै जात हैं॥

लछिमन पकरे चरन भरत अति ही सकुचाये।
लीये हृदय लगाय अश्रु इस्नान कराये॥
बार बार पुचकारि कहे—लछिमन बड़भागी।
कीयो जीवन सफल राम हित बने विरागी॥
सीता लछिमन सहित प्रभु, मिलि सब तैं पुष्पक चढ़े।
ह्वै के सत्कृत सबनितै, विनय सुनत आगे बढ़े॥

नरनारिनितैं घिरे राम पुष्पकमहँ भ्राजैं।
मनहुँ ग्रहनिके बीच पूर्ण शशि नभमहँ राजैं॥
भरत पादुका लिये बिभीषन चँवर ढुलावैं।
श्वेत छत्र हनुमान व्यजन सुग्रीव हिलावैं॥
धनु रिपुसूदन तीर्थजल, सीय लिये अंगद खड्ग।
ढाल भालुपति लै खडे, जनु शोभित शचिपति स्वरग॥

बोलें नर अरु नारि मुदित मन जय जय मिलि सब ।
सबकूँ दरशन देत चले पुष्पकतैं राघव ॥
अटा अटारी चढ़ीं सुमन सब तिय बरसावैं ।
रामदरश हित बाल वृद्ध इततैं उत धावैं ॥
तजि पुष्पक शिबिका चढ़े, जनसमूह अति राम लखि ।
नयननीर सबके भरे, मुनिव्रतयुत रामहिं निरखि ॥

करि सबको सम्मान मातु महलनि प्रभु आये ।
सबतैं पहिले भरतमातु चरननि सिर नाये ॥
झेंप छुड़ाइ हँसाइ सुमित्राके पग पकरे ।
कौशल्या रघुनाथ मिलन लखि रोये सबरे ॥
चूमें चाटें प्रेमतैं, धेनु बत्स अति लघुहिं लखि ।
कौशल्या प्रमुदित भईं, त्यों रघुनन्दनकूँ निरखि ॥

डगमगात सब गात हृदय उमड़त तनु पुलकित ।
कंठ भयो अवरुद्ध नयन जल अविरल बरसत ॥
कहन चहति कछु बात न निकसति बानी मुखतैं ।
भये शिथिल सब अंग राम दरशनके सुखतैं ॥
सीता लछिमन रामकूँ, निरखि निरखि मन नहिं भरत ।
तनु कृश हरष अपार अति, बार बार बेटा कहत ॥

राम मातु कृश गात निरखि बालक सम रोये ।
सिकुड़े अति सुकुमार चरन अँसुअनितैं धोये ॥
सीय लखन प्रति प्यार कर्यो माँ आशिष दीन्हीं ।
तबहिं सुअवसर पाइ भरत यह विनती कीन्हीं ॥
राम सम्हारे राजकूँ, हम सब मिलि सेवा करहिं ।
पावे प्राणी परम पद, बिनु प्रयास सब भव तरहिं ॥

भरतवचन सुनि सचिव सहित सब जन हरषाये।
निरखि राम रुख तुरत पुरोहित विप्र बुलाये॥
विधिवत क्षौर कराइ वस्त्र आभूषन पहिने।
सासुनि सीय न्हवाय दिव्य पहिनाये गहने॥
सप्तद्वीप अंकित करे, बाघंबरपै विप्र गन।
शुभ सिंहासन सजि गयो, आइ विराजे सुखसदन॥

चहुँ दिशि जय-जयकार जुर्यो सब बरन समाजा।
सब हिय हरष अपार भये रघुनायक राजा॥
अवनि गगनमहँ मधुर मधुर बर बाजे बाजैं।
सुर, नर, मुनि, गन्धर्व सकल शोभायुत भ्राजैं॥
सब नर नारिनिके नयन, भये तृप्त लखि राम नृप।
चिर आशा पूरन भई, भये अवध अच्युत अधिप॥

सीय सहित रघुनाथ राज सिंहासन राजैं।
शोभा अमित अपार काम रति सँग लखि लाजैं॥
करि नखशिख शृंगार बिराजैं सिय निज पिय सँग।
झाँकी करि नरनारि, समावैं नहिँ फूले अँग॥
गुरु वशिष्ठ मंत्री सचिव, प्रजा सहित प्रमुदित भये।
धन, आभूषन, अश्व, गज, रथ, पट, पुर विप्रनि दये॥

जबतैं राजाराम भये सब सुख जगमाहीँ।
आधि,व्याधि,भय,शोक,जरा,दुख,श्रम कछु नाहीँ॥
जोते बोये बिना अवनि ओषधि देवे अब।
वन, परबत, नद, नदी, द्वीप, सागर सुखकर सब॥
भये विटप सुरद्रुम सरिस, चिन्तामनि सम भूमिकन।
भई अवनि पावन परम, परे जहाँ रघुवर चरन॥

क्षमा, दया, बिश्वास, शील, तप, संयम, शमदम ।
ब्रह्मचर्य, नय, बिनय राममहँ राज ऋषिनि सम ॥
भरत शत्रुहन लखन सदा सेवामहँ तत्पर ।
रहैं प्रजा सब सुखी करे नहिं कोई मत्सर ॥
हरहि चित्त रघुनाथको, नारी सुलभ विलासतैं ।
सती शिरोमनि जानकी, बिनय हास परिहासतैं ॥

रामराजमहँ परम मुदित जड़ चेतन प्रानी ।
लखि तृन तोरें मातु राम राजा सिय रानी ॥
लौकिक गति दरसाइ रामने यज्ञ रचाये ।
वेद-विज्ञ आचार्य, विप्र, ऋषि मुनि बुलवाये ॥
उत्तम सामग्री सहित, सहस यज्ञ रघुपति करे ।
सरवसु दीन्हों दानमहँ, धन रतिनि द्विज घर भरे ॥

ह्वैकें अति सन्तुष्ट द्विजनि आशिष मिलि दीन्हीं ।
इष्ट देव सम राम सबनिकी पूजा कीन्हीं ॥
यों महत्व तप योग यज्ञको राम जतायो ।
गृही धरम करि स्वय लोककूँ पाठ पढ़ायो ॥
श्रेष्ठ करें जिह कर्मकूँ, अनुवर्तन सब नर करें ।
जावे जा पथ महतजन, तिहि पथ सब रज सिर धरें ॥

भूमि दान सत्र करी कोष धन धान लुटाये ।
चारिहुँ दिशि दै दई दान करि परम सिहाये ॥
विप्र वासनाहीन परा विद्या जे जानें ।
दानपात्रते श्रेष्ठ राम यह मनमहँ मानें ॥
त्याग प्रेम अरु दान लखि, गद गद ह्वैकें विप्र गन ।
राजपाट लौटाइकें, प्रेम सहित बोले बचन ॥

प्रभो ! कहा नहि दियो हमें तुम सरबसु दाता ।
करहु मोह तम नाश तिमिर हर भवभय त्राता ॥
हम नित तपमहँ निरत राजको काज न जानें ।
तुमहिं बिश्वपति सकल जगतको पालक मानें ॥
पुण्यश्लोक शिरोमणे, हे विश्वम्भर ! जगतपति ।
देहिं दया करि दान यह, तव चरननिमहँ होहि रति ॥

समुझि द्विजनिको न्यास प्रजाकूँ पालैं सुत सम ।
राम शील, संकोच, न्याय, नय, शम, दम, अनुपम ॥
सोवत जागत सतत प्रजाकी चिंता राखैं ।
निरखैं नहीं रिस्याइ कबहुँ कटुबचन न भाखैं ॥
त्रेतामें सतयुग कर्यो, रामराज आदरश अति ।
अधरम रह्यो न सबनि की, भई धरममहँ सहज मति ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत षष्ठम राज्याभिषेकचरित नामक इकत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३२]

हे राजा रघुनाथ ! प्रजारञ्जक ! परमेश्वर ।
हे कोमल अति कठिन ! सत्यपालक सरवेश्वर ॥
हे सीता सरवस्व ! प्रेम आदर्श निबाहक ।
हे दयिता दुख दुखी ! दयानिधि दीननि पालक ॥

जनकसुता प्रति कठिनता, करी प्रजाहित दुखमयी ।
श्रद्धायुत तव बन्दि पद, कहूँ कथा करुनामयी ॥

वैदेही पदधूरि धरूँ सिर आँजूँ नयननि ।
दीयो जीवनदान जगतके पीड़ित जीवनि ॥
पतिव्रतनिकूँ पुण्यपाठ पतिप्रेम पढ़ायौ ।
सहि सहि भीषण विपति धरमको मरम जतायौ ॥

अति कोमल माँ कमल सम, तव चरननि आश्रित रहूँ ।
हृदय विदारक दुखकथा, वन वियोगकी अब कहूँ ॥

जननि ! जानकी जड़ जीवनि ढिँग क्यौं तुम आयीं ।
क्यौं अति करुनामयी दुखद लीला दरसायीं ॥
तव करुना के पात्र अज्ञ जड़ जीव नहीं माँ ।
करुनावश ह्वै जगत हेतु अति विपति सहीं माँ ॥

हाय ! कहाँ अति मृदुल पद, कहँ कंकड़युत पथ विकट ।
ह्वैके अति प्रिय रामकी, रहि न सकीं तनतें निकट ॥



सीताचिह्न दर्शनसे दुखितराम पृ० ४४२



जानकी निर्वासन पृ० ४४२

वन्धु पुरोहित सचिव प्रभुहिं श्रद्धायुत सेवैं।
राजधर्ममहँ निरत राम सबकूँ सुख देवैं॥
दुख सुख सवको सुनहि सतत संतोष सिखावैं।
सदाचार करि स्वयं सबनिते नित करवावैं॥
पिता करहिं जस सुतनिकी, तस चिन्ता रघुपति करहिं।
वेष बदलिकें निशामहँ, गुप्त रूप पुरमहँ फिरहि॥

जिनमहँ योगी रमें ज्ञानतैं ज्ञानी जानें।
अन्तरयामी राम भाव सबके पहिचाने॥
मोते को है दुखी उठी उत्कण्ठा उरमहँ।
नरलीलाके हेतु फिरैं छिपि छिपिकें पुरमहँ॥
रजक एक दिन रातिमें, निज नारीके कच पकरि।
रही रातिमें कहाँ तू, पुनि पुनि पूछै क्रोध करि॥

दाँत पीसि यो कहै लाज कुलटा नहिं तोकूँ।
परघर कैसे रही राम तू समुझै मोकूँ॥
सीयरूपमहँ फँसे रामने वही लुगाई।
रावन घर दस मास रही फिरितें अपनाई॥
बड़े करें सो सत्य सब, छाजै सबई रामकूँ।
करूँ दूसरो व्याह मैं, जा तू अपने गामकूँ॥

सुनि अपयस अति बिकल भये रघुबर मनमाँहीं।
सोचें—सेवा सरल सुखद यहि जगमहँ नाहीं॥
कठिन हृदय करि त्याग सती सीताको करिहौं।
मन ही मन निशि दिवस बिरह ज्वालामहँ जरिहौं॥
दृढ़ निश्चय करि बात प्रभु, भरत शत्रुहनतैं कही।
सुनत तुरत विष सरिस वच, मूर्छा दोउनिकूँ भई॥

भरत शत्रुहन लखे मूरछित राम विचारें।
सुकुमारी सिय परम कवन विधि जाहि निकारें॥
वन निरखनकी करी सीय इच्छा मोतें कलि।
पठऊँ लछिमन संग प्रियाकूँ गंगा तट छलि॥
बुलवाये लछिमन तुरत, दई शपथ निज देहकी।
अति विनीत प्रिय बन्धुकी, लई परीच्छा नेहकी॥

लछिमन हाँमी भरी कहे—सीता लै जाओ।
छोड़ि घोर बनमाहिँ आइ सम्बाद सुनाओ॥
अति व्याकुल ह्वै गये महलमहँ बोले माता।
ऋषि मुनि दरशन हेतु चलो बन भेज्यो भ्राता॥
सब सासुनि पाइँनि लगीं, चलीं मुदित मन ह्वै तुरत।
मुनि पतिनिनि पूजा निमित, पट आभूषन लै अमित॥

बैठीं रथमहँ आइ कहे—कहँ तुमरे भ्राता।
राजकाजमहँ फँसे कहे लछिमन सुनु माता॥
मनसा बन्दन कर्यो भवन परदच्छिन कीन्हीं।
सहज भावतैं विहँसि लखन सँग बन चलि दीन्हीं॥
लछिमन अति चिन्ता करत, परम दुखित मगमहँ चलत।
इत उत चितवत व्यथित अति, विलखत विलपत हिय फटत॥

सेवकको अति कठिन धरम समुझ्यो घबराये।
प्रभु आयसु सिर धारि सीय सँग बनहिँ सिधाये॥
सीय सिहावत जाइ तापसिनिके बन्दौं पद।
करिकें सुरसरि पार, लखन रोये ह्वै गदगद॥
सुनि निर्वासन सहमि सिय, पति प्रति श्रद्धा प्रकट करि।
शून्य सरिस संसार लखि, बोली नयननि नीर भरि॥

आरज सुतने त्याग कर्यो देवर ! किहि कारन ।
अति कठोरता करी कान्तने कैसे धारन ॥
प्राननाथ बिनु देह रखूँ कैसे हौं लछिमन ।
मेरे तो सरवस्व प्रानपति ही जीवनधन ॥

हाय ! वत्स हौ लुटि गई, कितहूकी अब नहिँ रही ।
अवधपुरीतें चले जब, तब तुमने क्यौं नहिँ कही ॥

थर थर काँपै लखन बहुत रोवैं बिललावैं ।
ह्वै अधीर भयभीत निरन्तर अश्रु बहावैं ॥
बिलखि कहैं—हे मातु ! राम राजाको शासन ।
है कठोर अति गुप्त मिली आज्ञा निरबासन ॥

पराधीन हूँ मातु हौं, बिक्यो रामके हाथमें ॥
भयो विवश बनि वज्र हिय, आयो परवश साथमें ॥

रजक बात पै कर्यो मातु ! यह अनरथ आरज ।
जगमें अतिई कठिन प्रजारंजनको कारज ॥
छाँड़ि अकेली तुमहिँ अवध अब कैसे जाऊँ ।
दोष न मोकूँ देहिँ जननि ! चरननि सिर नाऊँ ॥

हौं मरिवेमें हू अवश, नृप आयसु भीषन जननि ।
करि निरबासन लौटिकें, आइ देहु सम्वाद पुनि ॥

जिनने परजा हेतु तजी माँ ! तुम सुकुमारी ।
ऐसे भूप कठोर करैं का प्रीति हमारी ॥
इक दिन मोकूँ तजैं नहीं कछु दुष्कर उनकूँ ।
बालमीक इत बसहिँ बिताओ विपति समयकूँ ॥

लखन विवशता समुझि सिय, भईं दुखित अति खिन्न मन ।
सती धरम पुनि सोचिकें, कहन लगीं—सुनु प्रिय लखन ॥

मंगलमय पथ होहि जाउ देवर ! रजधानी ।
अब भिखारिनी बनी रही जो कल तक रानी ॥
दिवरानिनितें जाइ अवसि आशिष मम कहियों ।
नृपकूँ अवसर पाइ यादि मेरी करवइयों ॥
दोष देहुँ काकूँ लखन, हौ अभागिनी जनमकी ।
सासुनिकी कबहूँ नहीं, सेवा समुचित करि सकी ॥

पति यश जगमहँ अमर होहि तुम सब सुख पाओ ।
देवर ! मेरो उदर निरखि नृपके ढिंग जाओ ॥
गरभवती हूँ दोष फेरि मोकूँ मत दइयों ।
पति परमेश्वर चरन कमलमहँ बन्दन कहियों ॥
लखन सुनत मूर्छित भये, गिरे भूमिपै है विकल ।
लखि प्रसङ्ग अति ई करुन, भये विकल खग मृग सकल ॥

बोले लज्जित लखन—मातु ! मत पाप लगाओ ।
अति लज्जितहूँ प्रथम देवि नहिं अधिक लजाओ ॥
बनमहँ चौदह बरष रामके सँगमें तबहूँ ।
केवल चरननि छाँड़ि अपर अँग लख्यो न कबहूँ ॥
अब अरण्य एकान्तमें, उदर लखूँ कैसे कहो ।
वज्र परै संसारपै, तुम बनमहँ निरभय रहो ॥

निन्दा प्रिय संसार खलनिकी निन्दित करनी ।
कुटिल हृदयके जीव तुम्हारे योग न जननी ॥
बिलखि बिलखिकैं मातु वत्स सम्मुख मत रोओ ।
होवैं पुत्र कुपुत्र कुमाता तुम मत होओ ॥
परे दंडवत भूमिपै, करि प्रनाम आगे बढ़त ।
पुनि लौटत चितवत चकित, गिरत परत रोवत चलत ॥

चरन धूरि सिर धारि लखन लौटे इत जबहीं।
ह्वैके मूर्छित गिरीं जगतजननी पुनि तबहीं॥
करुना क्रंदन सुन्यो मुनिनिशिशु दौरे आये।
लखि सीता सौंदर्य जाइ मुनि वचन सुनाये॥

भगवन्! वनमें अति सुघर, बैठी रोवति सुन्दरी।
नहीं मानवी सी लगति, है देवी या किन्नरी॥

शिशुनि संग वाल्मीक जनकतनया ढिँग आये।
बेटी! धारो धीर मृदुल मुनि वचन सुनाये॥
मुनिके चरननि परी बिलखि बोली सुकुमारी।
प्रभो! पापिनी भई उभयकुल कीर्ति बिगारी॥

परित्याग पतिने कर्यो, कैसे अब जगमहँ रहूँ।
दोष रहित हौं सर्वदा, कैसे निज मुखते कहूँ॥

धरिकैं सिय सिर हाथ कहें मुनिवर विज्ञानी।
बेटी! तू अति शुद्ध योगतैं मैंने जानी॥
जनक हमारे शिष्य पुत्रि मम पीछे आओ।
निज पितुको घर समुझि सकुच तजि समय बिताओ॥

गंगाजल सम शुद्ध तुम, रघुवरहू जानत मरम।
किन्तु प्रजारञ्जन परम, क्रूर कठिन निरदय करम॥

यों आश्वासन पाइ चली मुनि सँग सुकुमारी।
पहुँची आश्रममाँहि जनककी पुत्री प्यारी॥
मुनि पत्निनि सँग रखी सुता सम राजदुलारी।
सेवा मुनिकी करैं सबनिकी भई पियारी॥

समय पाइ द्वै सुत जने, मुनि सब अति हरषित भये।
करन जाति संस्कार मुनि, तुरत जानकीढिँग गये॥

रिपुसूदन तिहि समय लवन बध हित मधुबनमहँ ।
जात रहे विश्राम करन उतरे आश्रममहँ ॥
तहाँ सुन्यो सुतजनम सीयके ढिँग तब आये ।
गुप्त रहे यह बात शत्रुहन मुनि समुझाये ॥
सुनि शौनक शंका करी, कौन लवन जिह हनन हित ।
पठये रघुपति शत्रुहन, बल प्रभाव जिनको अमित ॥

सूत कही सब कथा लवन मधु राक्षसको सुत ।
पायो शिव सन शूल दिव्य अति ई प्रभाव युत ॥
क्रूर समुझि मधु सुतहि शूल दै सिन्धु सिधार्यो ।
शिव त्रिशूलतैं लवन न कबहूँ रनमहँ हार्यो ॥
ताहि अजेय बिचारि मुनि, गये दुखित हरिकी शरन ।
लवन हनन हित तुरत हरि, पठये रघुबर शत्रुहन ॥

जाइ लवनके द्वार शत्रुहन बैठे जबहीं ।
करिकै खल आखेट द्वारपै आयो तबहीं ॥
दौर्यो लैन त्रिशूल शत्रुहन जान न दीन्हों ।
गुत्थम गुत्था भई शत्रु मरमाहत कीन्हों ॥
रामदत्त शर तानिकैं, मार्यो तकि उर शत्रुहन ।
मर्यो शत्रु शिव शूल हू, गयो तुरत शिवकी शरन ॥

यों लवनासुर मारि करी मथुरा रजधानी ।
रहैं शत्रुहन तहाँ रामकी आयसु मानी ॥
वृद्ध पुरोहित भेजि युधाजित भरत बुलाये ।
करन विजय गन्धर्व तक्ष पुष्कल सँग धाये ॥
कोटि पुत्र सैलूषके, अति दुर्मद रनमहँ निपुन ।
आये लड़िबे भरत हू, भिडे धारि हिय हरिचरन ॥

सात दिवस तक युद्ध उभय दल कीयो डटिकैं ।
लड़े बीर गन्धर्व गये नहिँ कोई हटिकैं ॥
भरत और सैलूष भिड़े लखि सब घबराये ।
बिजय भरतकी भई शत्रु सुरसदन सिधाये ॥

तक्षशिला सुत तक्षकूँ, पुष्कलकूँ पुष्कलवती ।
चले सुतनि दै द्वै, पुरी रखि सेना तहँ बलवती ॥

भरत अवधमहँ आइ राम चरननि सिर नायो ।
बोले प्रभु नहिँ लखन कहूँको भूप बनायो ॥
लछिमनके सुत चन्द्रकेतु अङ्गद नृप होवें ।
तब हम है निश्चिन्त नींद फिरि सुखकी सोवें ॥

देश कारुपथ सुघर अति, भूमि उर्वरा बिपुल जल ।
कही भरत सुनि विजयहित, चले लखन सँग बिपुल बल ॥

पुरी कारुपथमाहिँ अङ्गदीया रचवाई ।
अंगद राजा करे प्रजा सुनि अति हरषाई ॥
चन्द्रकेतु हित चन्द्रकान्त शुभ पुर बनवायो ॥
लखन तनय नृप भये, हृदय हरिको भरि आयो ॥

सब बन्धुनिके पुत्र नृप, भये सुनो अब सिय कथा ।
अति करुनामय अति दुखद, सुनत होहिँ हियमहँ व्यथा ॥

सियवियोगमें दुखित राम नित मख करवावें ।
दान, पुण्य, तप यज्ञ माहिँ सब समय बितावें ॥
अश्वमेध मख वृहद् रच्यो बहु ऋषि बुलवाये ।
छोड्यो मखको अश्व शत्रुहन संग पठाये ॥

चल्यो अश्व स्वच्छन्द गति, घूमत देशनि बन विकट ।
आयो चहुँदिशि घूमिकैं, वालमीक आश्रम निकट ॥

द्वै सीताके तनय नाम लव कुश अति सुन्दर।
मुनि आश्रममहँ पले शूर तेजस्वी दुरधर॥
धनुरवेद अरु वेद शास्त्र वाल्मीक पढ़ाये।
अस्त्र शस्त्रके भेद यथाविधि सबहिं सिखाये॥
उभय वीररसके सरिस, सुर वैद्यनि सम सुघर अति।
धरें रूप द्वै काम जनु, विहरहिं बनमें यथामति॥

इक दिन घूमत लख्यो अश्व वनमहँ अतिभारी।
पकरैं चट्ठी लेहिं बात मनमाहिं विचारी॥
अश्वमेधको अश्व पकरि लव कुशने लीयो।
नहिं छोड़्यो नहिं डरे समर डटिकें तिनि कीयो॥
भयो घोर संग्राम अति, सब सैनिक मूर्छित भये।
पवनतनय सुग्रीव कपि, पूँछ बाँधि हयकी दये॥

अति प्रसन्न ह्वै गये मातु ढिँग दोऊ भैया।
भरि उमंगमहँ कहे! विजय कर आये मैया॥
अति ही सुंदर अश्व पकरि हम अबई लाये।
बँधे पूंछ द्वै कीश मनोहर परम सुहाये।
अवधपुरीको राम नृप, भाई तिनिको शत्रुहन।
घोड़ा तिनिके यज्ञको, लै आये हम जीति रन॥

सेना मूर्छित करी शत्रुहन हमने मार्यो।
पुष्कल राजकुमार लड़्यो सोऊ संहार्यो॥
सुनत रामको नाम भई व्याकुल अति सीता।
मरन शत्रुहन जानि दुखित चिंतित भयभीता॥
बोलीं—तुम अति ढीठ हो, चाचा तुमरे शत्रुहन।
अश्व तुम्हारे पिता को, कर्यो तुमनि अति लड़कपन॥

द्वै कपि लाये कौन तुरत चलि मोइ दिखाओ।
तुम अति चंचल भये नई नित रारि मचाओ॥
सुनि माताकी डाँट आइ कपि मातु दिखाये।
पहिचाने कपि डरीं तुरत दोऊ छुड़वाये॥

बिलखि बिलखि बोलीं वचन, पवनतनय ! सुग्रीव ! अब।
हौं तो बनवासिनि बनी, है करमनिको खेल सब॥

क्यों मोकूँ कपिराज ! जीति लंकातैं लाये।
क्यों बिछुरे पतिदेव सबनि मिलि मोइ मिलाये॥
मरि जाती हौं तहाँ धीर बँधि जातौ उनकूँ।
नहिं मिलते अपमान सहित ये दिन देखनकूँ॥

अपकीरति जगमहँ भई, निज पतिने हू तजि दई।
मरी नहीं पापिनि तऊ, दुख देखनकूँ रहि गई॥

आज सुमंगल घरी, मिले तुम दोऊ वनमहँ।
कर्यो लड़कपन शिशुनि बुरो मन मानों मनमहँ॥
कपि बोले—ये मातु ! हमारे स्वामीसुत हैं।
स्वामीतें तो सतत पराजित सेवक नित हैं॥

तुमरी कीरतितैं सतत, जननि ! व्याप्त त्रिभुवन रहै।
सतीशिरोमनि भगवती, को तुमकूँ अनभल कहै॥

सिय कीयो संकल्प जगी तब सबरी सैना।
रिपुसूदन इत लखे उभय कपिनति तहँ हैं ना॥
सीय चरन सिर नाइ फेरि कपि दोऊ आये।
नहीं दुरदशा कही न सिय संवाद सुनाये॥

भूमण्डलकूँ विजय करि, पुनि पहुँच्यो हय अवधपुर।
हरषित सबई जन भये, सिय चिन्ता नित राम उर॥

रामचन्द्र मख अश्वमेघ सुनि मुनिगन आये।
बालमीक भगवान सहित आदर बुलवाये॥
लीये लव कुश संग आइ डेरा कीयो मुनि।
प्रभु प्रमुदित अति भये आगमन मुनिवरको सुनि॥
संग सचिव नृप बन्धु सब, मुनि चरननिमहँ परि गये।
दयो अरघ मधुपरक प्रभु, कुशल प्रश्न इतउत भये॥

रामायन मुनि रची कंठ कुश लवने कीन्हीं।
वालमीक स्वर सहित यथाविधि शिक्षा दीन्हीं॥
आयसु मुनिने दई करो गायन सब मखमहँ।
करौ सबनिकूँ मुग्ध न सकुचाओ तुम मनमहँ॥
लवकुश बीना लै चले, गायन रामायन करत।
अम्मृतकी बरसा करत, नर नारिनिके मन हरत॥

राम प्रशंसा सुनी कुमर द्वै मखमें आये।
सबकी इच्छा समुझि सभामें तुरत बुलाये॥
सुनिकें गायन मधुर राम अति भये सुखारी।
सब तनु पुलकित भयो देहकी सुरति बिसारी॥
समाचार सब जानिकें, जनकसुताकूँ लैंन हित।
पठये लछिमन रथ सहित, पहुँचे तिनि ढिंग खिन्न चित॥

कही रामकी बात लखन सिय पग परि रोये।
नयन नीरतें मृदुल चरन माताके धोये॥
ह्वै अधीर सिय कहे न देवर! मख लै जाओ।
ज्यों त्यों काटूँ दिवस खिलौना अब न बनाओ।
सुतनि शुद्ध समुझें नृपति, तो राखैं निज पासमें।
व्याह समय जो छवि लखी, तिहि सुमिरूँ प्रति स्वासमें॥

दुखित भये सुनि लखन लौटि पुनि प्रभुढिँग आये।
सब सुनि दै सन्देश तुरत पुनि लखन पठाये॥
पति आयसु सिर धारि सहमि सिय अनुमति लीन्हीं।
सबतैं मिलि जुलि रोय बैठि रथमें चलि दीन्हीं॥
उतरीं मखमहँ मुनि निकट, पद बन्दन ऋषिके करे।
लिपटे लवकुश मातुतैं, लखि सिय सबके उर भरे॥

आज्ञा रघुवर दई सभामें सीता आवै।
है चरित्र मम शुद्ध सबनि विश्वास दिलावै॥
मुनि स्वीकारी बात चले सीताकूँ लैकैं।
सुनिवे सीता शपथ चले सब उत्सुक ह्वैकैं॥
सहमी सुकुड़ी लाजतैं, मुनि पाछे श्रुति सरिस सिय।
जनु करुना सँग शान्तरस, चलहि रामपद धारि हिय॥

सीय तापसी वेष लख्यो रोये नर नारी।
चहुँदिशि हाहाकार मच्यो सब सुरति विसारी॥
मुनिको आदर कर्यो न सिय रघुवीर निहारी।
पतिपद मनतें बन्दि खड़ी तहँ जनकदुलारी॥
बालमीक मुनि उठे तब, सम्बोधन करि सबनिकूँ।
कहन लगे गंभीर स्वर, साक्षी दै मख सुरनिकूँ॥

वालमीक मम नाम प्रचेता सुत व्रतधारी।
सत्य शपथ करि कहूँ विशुद्धा जनककुमारी॥
अब तक मैंने करे यज्ञ तप तीरथ सेवन।
यदि अघ सियमें होहिँ होहिँ सब निष्फल तत्छिन॥
प्राचेतस की शपथ सुनि, भये राम अति ही विकल
शुद्ध जाह्नवी सरिस सिय, लगे कहन मिलिकैं सकल॥

राम सभामहँ शपथ प्रचेता सुतने कीन्हीं।
सुर नर ऋषि मुनि सबनि विशुद्धा सीता चीन्हीं॥
पाइ राम रुख सीय धरातैं बोलीं बानी।
पतिपरायणा मोइ जननि! यदि तुमने जानी॥
तो अपनेई उदरमहँ, करहु लीन अपनाउ अब।
सुनत भूमि फाटी तुरत, धँसन लगीं सिय दुखित सब॥

धरा धँसत लखि मातु भगे लवकुश जब पकरन।
बोलीं सिय—पितु! गहँ सुतनिकूँ राखैं चरनन॥
लवकुश लीये पकरि महामुनि दोऊ रोवत।
हाय हाय करि विकल सभासद इतउत बिलखत॥
मणिमय सिंहासन परम, दिव्य तहाँ प्रकटित भयो।
सिय बिठाइ पुनि तुरत ही, धरनी भीतर धँसि गयो॥

निरखि विकल रघुनाथ भये साहस सब छूट्यो।
पुरुषारथ अब घट्यो धैर्यको दृढ़ पुल टूट्यो॥
प्रेम सहित ढिँग बैठि मातु सम कौन खवावै।
हाय! प्रिये! कहँ गईं कौन अब सीख सिखावै॥
को रम्भाके सरिस सुख, देहि बात केहि सँग करूँ।
जीऊँ काको मुख निरखि, क्रोड वदन काको धरूँ॥

सुनि बिधि रघुवर शोक लोक अपनेतैं आये।
करि बिनती बहु भाँति सीयसर्वस्व मनाये॥
त्यागि तुरत सब शोक बात ब्रह्माकी मानी॥
यज्ञ पूर्ण करि गये दुखित रोवत रजधानी॥
सिय वियोग हिय धारिकैं, राज काज सब ई करत।
भूले भटकेसे रहत, नयन नीर झर झर झरत॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत सप्तम सीता-वियोगचरित नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ—त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३३]

जय जय सीता नाथ जयति कौशल्यानन्दन।
जय रघुकुलके तिलक! जयति भक्तनि उर चन्दन॥
जय जय प्रभु परमेश प्रणतपालक रघुनायक।
जय जय करुणासिन्धु धर्मरक्षक प्रणपालक॥

बनि भूपति निज सुख तजे, उन्नति करी समाजकी।
चरनबन्दना करि कहूँ, कथा रामके राजकी॥

बरष सहसदस तीनि राज करि राम बिताये।
एक दिवस मुनि विकट निकट रघुबरके आये॥
लखन आगमन कह्यो राम मुनि तुरत बुलाये।
इत उत शंकित चकित निरखि मुनि बचन सुनाये॥

अति रहस्यमय बात इक, कहहुँ ताहि प्रभु चित धरहिं।
बीच आइ कोई सुनहिं, ताको निश्चय वध करहि॥

पण प्रभु करि स्वीकार द्वारपै लखन बिठाये।
पुनि मुनिसन प्रभु कह्यो—काल किहि कारन आये॥
समय समुझिकैं काल बेष मुनिको धरि आयो।
प्रभु आयसु सिर धारि ब्रह्म संदेश सुनायो॥

अंशनियुत अवतार धरि, भार उतार्यो अवनिको।
नियत काल जितनो कर्यो, भयो पूर्ण सो सबनिको॥

अब इच्छा यदि होइ नाथ ! निज धाम पधारें ।
करि नरतनु संबरन नित्यलीला बिस्तारें ॥
कृपायतन मुनि काल कथन बोले मृदु बानी ।
तिरोभाव तिथि काल प्रथम हम सबने जानी ॥
कही कालतैं प्रभु—करहुँ, होवे जातें जगत हित ।
तबई आये द्वारपै, क्रोधी दुर्वासा कुपित ॥

रामचन्द्रतैं मिलहुँ कहैं पुनि पुनि दुर्वासा ।
मुनि नहिं माने लखन गये तजि जीवन आसा ॥
बुलवाये मुनि बिदा काल रघुवरने कीन्हों ।
करि आदर सत्कार स्वादयुत भोजन दीन्हों ॥
पूर्ण प्रतिज्ञा करनहित, रघुपति लछिमन तजि दये ।
राम विरहमें तनु सहित, दुखित लखन सुरपुर गये ॥

लखन विरह अति दुसह राम तेहि सहि न सके जब ।
लवकुश कीन्हे नृपति चले तन धन जन तजि सब ॥
भरत शत्रुहन संग चले पुरके नर नारी ।
खग, मृग, बानर, वृक्ष, भीर लागी सँग भारी ॥
राम प्रेमके पाशमहँ, बँधे चले सब हरषिकें ।
अति प्रमुदित सुरपति भये, हरष जतावें बरषिकें ॥

अवध पुरीतैं सकल चले सियपतिहिं धारि उर ।
निखिल जीव निर्मुक्त भये सब शून्य भयो पुर ॥
कीयो प्रभुपद प्रेम सफल तनु तिननें कीन्हों ।
जगजीवनको लाभ जथारथ तिनहीं लीन्हों ॥
बिधि बिमान अगणित लिये, सरयूतट आये तुरत ।
बैठि पधारे परमपद, रघुनन्दन निज तनु सहित ॥

जिहि पदपावन हेतु करहिँ जप जोग बिरागी।
विविधि भाँति तनु कसहिँ तेजयुत तपसी त्यागी॥
सो पद पायो सहज अवधबासी जीवनिनें।
रामकृपातैं लोक उच्चतम पायो तिनिनें॥
पल्लो पकरें प्रेम तैं, आत्म समरपन जे करहि।
ते तप तीरथ जोग बिनु, भवसागर छिनमहँ तरहिँ॥

बिरहमाँहिँ अवसान चरित रघुनन्दनको सुनि।
शौनक अतिई दुखित सूतजीतैं बोले पुनि॥
सूत! चरित दुःखान्त नेंक नहिं इमहिँ सुहावै।
सुमिरि राम निर्वाण हृदय पुनि पुनि भरि आवै॥
सब सुनि बोले सूत जी, मुनिवर! राम अखंड अज।
तिनकी आद्या शक्ति सिय, जाहिं कबहुँ नहिँ तिनहिँ तजि॥

सुनहु सुखान्त चरित्र राम स्वामी त्रिभुवनके।
भरत लखन रिपुदलन रहें आज्ञामहँ तिनके॥
पतिकूँ सरवसु समझि सदा सीया सुख पावैं।
राम निरखि सिय कमल वदन छिन छिन हरषावैं॥
कनकभवन अति ई सुघर, सब सामग्री सुखद जहँ।
हरषित ह्वै रघुवंशमनि, रमन करहिं सिय संग तहँ॥

राम मातु पितु सुहृद सखा स्वामी वनि जावें।
पति परमेश्वर पुत्र रूप धरि सबहि कहावें॥
जो जैसे ही भजै भजैं वे ताकूँ तैसें।
क्रीड़ा अनुपम करे भक्त पावें सुख जैसें॥
मन विषयनितैं मोड़िकैं, प्रभु सेवा संलग्न चित।
ते रघुवरलीला लखहिँ कनकभवनमहँ होहिं नित॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें, राघवेन्दुचरित अन्तर्गत अष्टम उत्तरचरित नामक तेतीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

(३४)

जय शोभाके धाम ! राम ! चरननि सिर नाऊँ ।
वरदाता ! वर देहु रूप तुमरो नित ध्याऊँ ॥
रटूँ तुमारो नाम अन्य बानी नहिं भाखूँ ।
निरखूँ जग तव रूप भक्ति भक्तनिमे राखूँ ॥

धाम तुम्हारेमे बसूँ, नित लीला चिन्तन करूँ ।
राम राम रटिबौ करूँ, अन्त राम कहिके मरूँ ॥

राम नाम ही नाम और सब नाम असत हैं ।
राम रटैं तैं पाप कटैं सब सन्तनि मत हैं ॥
राम नामके लेत मधुर बानी ह्वै जावै ।
राम स्वादरस मिल्यौ जिनहिं तिनि अन्य न भावै ॥

राम नाम कानिनि प्रविसि, हियके मेंटै शोक सब ।
रोम रोम रमिजात है, राम रूप ह्वै जाय तब ॥

राम रूप लखि अचर सचर बनि द्रवहिं पसीजें ।
धन्य धन्य ते पुरुष रामरसमें जे भीजें ॥
यातुधानहू रूप लखैं मोहित ह्वै जावें ।
इकटक निरखत रहे समरमहँ लड़िबे आवें ॥

रूपजालमें जे फँसें, खल जन लखि उनकूँ हँसें ।
तिनिके भवबन्धन नसें, रामधाममें जे बसें ॥

परमधाम साकेत अयोध्या सुख सरसावनि ।
हरन सकल संताप जगतके दुःख नसावनि ॥
सरयूको शुभ नीर पीर सब ई हरि लेवै ।
हियकूँ शीतल करै अन्तमें प्रभु पद देवै ॥
करें धाममहँ वास जे, ते निश्चय तरि जायँगे ।
धामी सब अघ मेंटिके, धाम प्रभाव दिखायँगे ॥

जीवनको फल जिही रामलीलाको सुमिरन ।
अष्टयाममहँ करै चित्त चरितनिको चिन्तन ॥
लीला अपरम्पार शेष शारद सकुचावे ।
कैसे प्राकृत पुरुष तुच्छ भाषामें गावें ॥
नरतनु धरि लीला करी, जग जीवनि कल्यान हित ।
तिनहिँ सुनहिँ समुझहिँ पढ़हिँ, होवै तिनिकूँ सुख अमित ॥

जो अज अच्युत राम जनम तिनि रघुकुल लीयो ।
दशरथ कोशलसुता जनक जननी पद दीयो ॥
भरत शत्रुहन लखन भये अंशनि सँग प्रकटित ।
जननि, जनक,जगजीव जनम सुनि भये प्रफुल्लित ॥
प्राकृत शिशु सम दिव्य अति, करीं सरस लीला सुघर ।
जिनिके सुमिरनतें हृदय, होहि विमल अतिशय मधुर ॥

दशरथ सुखमयसदन कर्यो क्रीड़ा करि पावन ।
बालकालके खेल करे अतिशय मनभावन ॥
पढ़न गये गुरुगेह गुरुनिको मान बढ़ायो ।
यों शिशुपनको चारु चरित अति मधुर दिखायो ॥
पुनि कौशिक मुनि सँग गये, मारे मखके शत्रु सब ।
धनुषयज्ञ मिथिला सुन्यो, राम लखन मख चले तब ॥

तारि अहल्या गैल गये तिरहुत हुलसावत।
लेन सुमन चहुँ ओर फिरहिँ रस सो बरसावत॥
राजा रानी सीय प्रजा सबके मन भाये।
निश्चय सबकूँ भयो सियाके दुलहा आये॥
राम लखन तप तेज सम, शोभित धनुधर मुनिनि सँग।
भये मुग्ध नर नारि सब, निरखि नयन तनु रूप रँग॥

शिवको तोर्‌यो धनुष वरीं सिय अति सुकुमारी।
जोरी भोरी लखी, भये प्रमुदित नर नारी॥
चारिहुँ भाइनि संग ब्याह करि पुर चलि दीये।
परशुराम मग मिले मर्दि मद बिनु मद कीये॥
जननिनि नयननि सफल करि, सिय सँग सुख सरसाइकें।
चोरि चित्त सबके लिये, दम्पति दृश्य दिखाइकें॥

कैकेयी चित कुमति बसी कुवरी मतिमानी।
राम न राजा भये गये तजि निज रजधानी॥
गमने सुरपुर भूप भरत सुनि पुरमहँ आये।
पुरजन, मन्त्री, सचिव, मातु, गुरुने समुझाये॥
नहिँ मानी सिख सबनिकी, चित्रकूट प्रभु ढिँग गये।
राम लखन सिय वेष मुनि, निरखि भरत विह्वल भये॥

चरन पादुका लईं न लौटे जब रघुनन्दन।
नन्दिग्राममहँ बसहिँ भरत करि करुनाक्रदन॥
इत रघुवर सिय लखन संग लै बन बन बिहरत।
कन्द मूल फल खात मुनिनिके आश्रम ठहरत।
पंचवटीमें लखननें, सूपनखा नकटी करी।
राम निरखि हिय कामकी, लपट लगी कुलटा जरी॥

हैके रावन कुपित हरिन मारीच बनायो।
निरखि कनक मृग सिया पकरिवे चित्त चलायो॥
गये हरिन सँग राम लखन पीछेंतें धाये।
रावन आयो तहाँ कपट मुनि वेष बनाये॥
करि छल बल हरि सीयकूँ, गीध मारि पुर लै गयो।
बगदे प्रभु सिय नहिं लखी, हृदय शोक भीषन भयो॥

खोजत खोजत राम करी मग पावन शबरी।
ऋष्यमूक मग मिले पवनसुत प्रभुके प्रहरी॥
सुग्रीवहिं करि मित्र वालि कपि मार्यो छलतें।
कीये कपि एकत्र गये हनु लंका बलतें॥
सुन्यो सीय सम्वाद सब, सागर सेतु बनाइकें।
गए विभीषन लंक लै, शरनागत अपनाइकें॥

रावन सेना सहित मारि सुर कष्ट मिटाये।
जनकसुता अपनाइ विभीषन भूप बनाये॥
अवधि अन्त जब भयो अवधपुर रघुवर आये।
भरत हृदय अति हरष चरन कमलनि सिर नाये॥
राजतिलक रघुनाथको, भयो राम राजा भये।
शोक मोह भ्रम दुःख भय, सब प्रानिनिके भगि गये॥

राखी प्रजा प्रसन्न सती सीता सी त्यागी।
आज्ञापालन कठिन करी लछिमन बड़भागी॥
तेऊ त्यागे अत सबरन लीला कीन्हीं।
त्याग ग्रहनतें श्रेष्ठ राम जग शिक्षा दीन्हीं॥
लीला मधुमय रामकी, सुनि हिय करुनातें भरै।
राम बिना या जगतकूँ, मर्यादायुत को करै॥

रामचरित जे पुरुष प्रेमतें पढ़े पढ़ावे।
तिनके छूटे बन्ध परम पदवी ते पावें॥
श्रवनिपुटनितें पिये हिये आवे कोमलता।
मिटहिं कठिनता निखिल होहि जीवनमहँ मृदुता॥

नित प्रति नव दिन नियमतें, रामायन जे नर सुनहि।
ते न भूलि भवजालमहँ, श्रबन रसिक कबहूँ फँसहि॥

ग्राम्यकथामहँ व्यर्थ जीव जीवन सब खोवें।
अंत समय यमदूत निरखि डरि पुनि पुनि रोवें॥
रामकथा यदि सुनहिं दुःख काहेकूँ पावैं।
देखें नहि यमसदन नित्य बैकुन्ठ सिधावैं॥

चिन्ता, दुख, भय शोकयुत, नीरस यह संसार है।
है यदि जामें तत्व तो, रामचरित ही सार है॥

सोरठा—सुने भक्त दै चित्त, राघवेन्दु को शुभ चरित।
ते पावें प्रभुदत्त, भक्ति भक्त भगवन्त की॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें राघवेन्दुचरित अन्तर्गत नवम महिमाचरित नामक चौतीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३५]

कुशके सुत नृप अतिथि निषध नृप तिनके नभ सुत ।
हिरण्यनाभ नृप दशम पीढिमहँ भये योगयुत ॥
जैमिनि मुनितैं योग सीखि कीरति बहु गाई ।
याज्ञवल्क्यकूँ जिननि योग विधि सरल सिखाई ॥

तिनकी छठवीं पीढ़िमहँ, भूर वंशधर मरु भये ।
वंश बचावनके निमित, अजर अमर नृप ह्वै गये ॥

मरुतैं अष्टम पीढिमाँहि नृप भये बृहद्बल ।
जिनकी द्वापरमाँहि भई कीरति अति उज्वल ॥
भारतमहँ अभिमन्यु संग लड़ि स्वर्ग सिधारे ।
कुमर बृहद्रण बचे बने राजा अति बारे ॥

पीढी उन्तिसमहँ भये, अन्तिम नृपति सुमित्र वर ।
फिरि कलिमहँ इक्ष्वाकुके, रहे विशुद्ध न वंशधर ॥

अब इक्ष्वाकु कुमार द्वितिय निमि वंश सुनाऊँ ।
गुरु वशिष्ठतैं कह्यो नृपति—रौ यज्ञ कराऊँ ॥
ऋत्विज बनि गुरुदेव ! यथा विधि मख करवावें ।
बोले गुरु—सुरराज बुलायो तहँ ह्वै आवें ॥

भये मौन सुनि निमि नृपति, इन्द्र यज्ञ हित गुरु गये ।
छिनभगुर जीवनि निरखि, चिन्तित नृप सोचत भये ॥

है यह देह अनित्य यज्ञ अबिलम्ब कराऊँ।
यदि गुरु आवे नहीं अन्य आचार्य बुलाऊँ॥
करि दृढ निश्चय तुरत यज्ञ आरम्भ करायो।
मुनि बशिष्ठ पुनि आइ नृपति प्रति क्रोध दिखायो॥

देहपातको शाप मुनि, दयो भूप क्रोधित भये।
नृपहु शाप मुनिकूँ दयो, तनु दोउनिके गिरि गये॥

तनु तजि मित्रावरुण बीर्यतैं प्रकटे पुनि मुनि।
निमिहू नेत्रनिमाँहिं बसहिं नित पलक निमिष बनि॥
निमिको मृतक शरीर मथ्यो बैदेह भये सुत।
आदि जनक मिथिलेश मुक्त जीवन समाधियुत॥

तबतैं निमि बशी नृपति, जनक विदेह कहाहिं सब।
छिनभगुर समुझे सबहिं, राज पाट बाहन बिभव॥

उन्निस पीढ़ीमाँहि ह्रस्वरोमा जनमे सुत।
सीरध्वज तिनि पुत्र जगतमहँ परम कीर्तियुत॥
भये यशस्वी पुत्र कुशध्वज तिनके प्यारे।
पुत्री सीता भईं उभय कुल जिनने तारे॥

जनकदुलारी मैथिली, जनकसुता सीता सती।
बैदेही जनकात्मजा, जिनहिं जपहिं जोगी जती॥

सीरध्वज मख करन भूमि शोधन हित आये।
ऋषि मुनि ज्ञानी विप्र शोधिवे तहाँ बुलाये॥
शोधी सबने भूमि जनक हल तहाँ चलायौ।
तबहिं अवनितैं प्रकटि, सीय निज रूप दिखायौ।

सीर'माँहि सीता भई, लखि कृतार्थ नृप ह्वै गये।
पालीं पुत्री मानिकें, सीरध्वज तातैं भये॥

सीय पिता बनि जगतमाँहिं यश विपुल कमायो।
कियो राम सँग ब्याह नृपति निज भाग्य सरायो॥
आदि शक्ति हैं सीय जगत छिनमाँहिं बनावें।
पालें पोसें सतत अंतमहँ प्रलय करावें॥
यह प्रपच सब शक्तिको, क्रीड़ा थल ऋषि मुनि कह्यो।
जगदम्बाके पिता बनि, सीरध्वज अति यश लह्यो॥

सीरध्वज सुत भये कुशध्वज जनक अमानी।
धर्मध्वज तिनि पुत्र कर्मयोगी अति ज्ञानी॥
लोकबेदमहँ निपुण सबनिकूँ ज्ञान सिखावें।
परमारथके प्रश्न पूछिवे पंडित आवें॥
भयो सुखद संवाद शुभ, सुलभा योगिनि सगमहँ।
घुसो योगिनी योगतैं, जनक नृपतिके अंगमहँ॥

भये योगिनी संग जनक नृपके प्रश्नोत्तर।
योग ज्ञान अध्यात्मयुक्त सुन्दर अति सुखकर॥
दोऊ ज्ञानी परमज्ञानकी गंग बहाई।
जनक त्याग तप तेज निरखि सुलभा हरषाई॥
स्वयं तरे तारे बहुत, द्वै तिनिके अनुरूप सुत।
भये कृतध्वज प्रथम नृप, द्वितिय मितध्वज योगयुत॥

पुत्र कृतध्वजमाँहिं भये केशिध्वज ज्ञानी।
भूप मितध्वज तनय भये खाण्डिक्य अमानी॥
केशिध्वज अध्यात्म्य ज्ञानमहँ विदित दिवाकर।
कर्म तत्त्व परवीन नृपति खाण्डिक्य उजागर॥
क्षत्रिय धर्म कठोर अति, समर उभय दलमहँ भयो।
हार्‌यो लघु खाण्डिक्य नृप, डरिके बनमहँ भगि गयो॥

इत केशिध्वज कर्यो यज्ञ इक अतिशय भारी।
सिंह यज्ञकी धेनु खाइ सब बात बिगारी॥
पूछ्यो प्रायश्चित्त सबनि खाण्डिक्य—बताये।
तिन ढिंग भूपति गये, वृत्त सब तिनहिं सुनाये॥

प्रायश्चित्त सुन्यो जनक, आइ कर्यो विधिवत सकल।
सोचें गुरु खाण्डिक्यकूँ, दई दछिना नहिं विपुल॥

दैन दछिना गये न याच्यो राज कोष धन।
कह्यो दछिना देहु असत सत समुझै कस मन॥
हँसि केशिध्वज कह्यो—लाभ जग तुमही पायो।
समुझि विषय विष सरिस न तिनिमहँ चित्त फँसायो॥

देही देह पृथक् सतत, सुनहु ज्ञान परमार्थयुत।
देही नित्य अनित्य तनु, तत्सम्बन्धी गेह सुत॥

यों दीयो बहु ग्यान भये कृत कृत्य जनक जब।
कीयो बहु सत्कार गये केशिध्वज गृह तब॥
करन योग खाण्डिक्य गये बन भूपति करि सुत।
केशिध्वज हू क्लेश कर्म ताज भये योगयुत॥

जगमहँ जीवनमुक्त नृप, केशिध्वज हू ह्वै गये।
तिनिके पीछे तनय तिनि, भानुमान भूपति भये॥

पीढी सत्ताईसमाँहि अंतिम मैथिल कृति।
भये जनक कुलमाँहि परम ज्ञानी सब भूपति॥
ऋषि मुनि नित प्रति आइ करहिँ सत संग सदा हीं।
या कुल कोई कृपण अज्ञ नृप प्रकट्यो नाहीं॥

शुक सम त्यागी जनक ढिंग, परमारथ सीखन निमित।
ा ये तिनिके शुभ चरित, करहिँ सतत ससार हित॥

जनक वंशको विमल चरित अति सुखद सुनायो।
तिहि जगमहँ यश ज्ञान दानतैं विपुल कमायो॥
प्रकटीं आद्या शक्ति अमर कुल भयो भुवनमहँ।
करन जीव कल्यान फिरीं प्रभु सँग वन वनमहँ॥
यों विकुक्षि निमि वंशकी, कही कथा अति सुखमयी।
दंडक तीसर तनयकी, सुनहु कथा अब दुखमयी॥

सुत इक्ष्वाकु तृतीय गयो दंडक वनमाँहीं।
शुक्रसुता लखि भई विकलता अति मनमाँहीं॥
अनुचित करि प्रस्ताव कुपित कन्या तिनि कीन्हीं।
भयो कामवश शिखा पकरि कन्याकी लीन्हीं॥
गुरुकी कन्या द्विजसुता, विरजा संगमतैं रहित।
बुद्धि भ्रष्ट नृपकी भई, करि अनुचित कीयो अहित॥

लज्जित पितु ढिँग गई शुक्रतनया जब रोवति।
दुहिता देखी दुखित कुपित तब भये शुक्र अति॥
दयो शाप नृप राज नष्ट ह्वै जावै सबई।
बरसी बालू तत भयो दंडक—वन तबई॥
घोर पापतैं पलकमहँ, धूरि माँहि वैभव मिल्यो।
नष्ट भयो परिवार सब, फिरि दंडक कुल नहिं चल्यो॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें निमि दंडक चरितनामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिकपारायण सत्रहवें दिवसका विश्राम]

अथ षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३६]

कहैं सूत—अब प्रथम शीश शुक चरननि नाऊँ ।
तब अति पावन चन्द्रबंशकी कथा सुनाऊँ ।।
नारायण के नाभि—कमलतैं अज चतुरानन ।
प्रकटे तिनके पुत्र अत्रि कुल जिनको पावन ।।
चन्द्र तनय तिनिके भये, अति तेजस्वी तपस्वी ।
राजसूय करि दिग्विजय, भये जगतमहँ यशस्वी ।।

यौवन, धन, सम्पत्ति और प्रभुता जगमाँही ।
होवै यदि अविवेक सहित तो फल शुभ नाहीं ।।
यौवनतैं उन्माद मान धनतैं ह्वै जावै ।
सम्पति प्रभुता पाइ सबनिकूँ कुटिल सतावै ।।
सुन्दरताकी ठसकमहँ, सोमकार्य अनुचित कर्‍यो ।
यौवन मद ऐश्वर्यने, सब विवेक तिनिको हर्‍यो ।।

अत्रि तनय अद्वितीय सुघर अतिशय त्रिभुवनमहँ ।
लखैं उनहिं जे नारि काम प्रकटै तिनि मनमहँ ।।
रूप निरखि आसक्त भईं मुनिपत्नी सबही ।
निज निज पति तजि गईं समुझि सोमहिं सरबसुहीं ।।
अति साहस तब सोमको, बढ्यो पाप मनमहँ धँस्यो ।
तारा गुरुपत्नी हरी, रूर अनूपम चित बस्यो ।।

दाराको सुनि हरन देवगुरु दुख अति पायो।
धर्मनीति कहि चन्द्र विविधि विधि गुरु समझायो॥
भयो काम वश चन्द्र सीख गुरुकी नहिं मानी।
लियो सोमको पक्ष शुक्रने अवसर जानी॥
शिव सुरगुरुको पक्ष लै, तारा हित लड़िवे चले।
अस्त्र शस्त्रतैं सजि असुर, आइ चन्द्रमातैं मिले॥

कमलयोनिढिंग जाइ अङ्गिरा वृत्त सुनाये।
सुनि चतुरानन तुरत शुक्र शिव गुरु ढिंग आये॥
झिड़के आके चन्द्र कोप करि डाँट वताई।
कीयो बीच विचाव देवगुरु दार दिवाई॥
देखि गर्भिणी वृहस्पति, आग बबूला ह्वै गये।
कछुक कहे कटु दुर्वचन, पत्नीपै क्रोधित भये॥

पूछ ताँछ विधि करी भेद तारा वतलायो।
जानि चन्द्रको तनय तुरत बुध तिन्हैं दिवायो॥
गुणी तपस्वी परम सुघर बुध वनमहँ तपहित।
निवसैं तबई फँस्यो इलामहँ चन्द्र पुत्र चित॥
मनु कुमार सुद्युम्न इक, दिवस सेन सजि वन गये।
तहँ शिवजीके शापतैं, छोरातैं छोरी भये॥

घोड़ा घोड़ी भये लोग सब भये लुगाई।
नरतैं कैसे नारि बने सुधि बुधि विसराई॥
परम सुन्दरी भईं फिरैं इत उत सब वनमहँ।
इला रूप सर काम घुस्यो श्रीबुधके मनमहँ॥
सैननिके संकेत तैं, सङ्ग पङ्ग कछु ह्वै गई।
सहमत दोऊ ई भये, इला बधू बुध की भई॥

नृप पुरूरवा भये इलामहँ बुधसुत मनहर ।
सुनि वशिष्ठ तहँ आइ शैव मख कीन्हों सुन्दर ॥
भये तुष्ट शिव कह्यो मास भरि नृप नर होवै ।
रहै मास भरि नारि जाइ महलनिमहँ सोवै ॥
प्रतिष्ठानपुर आइ गय, पुत्र बिमल उत्कल भये ।
नृप पुरूरवहिं राज दै, तपहित पुनि बनमहँ गये ॥

प्रतिष्ठानपुर अधिप जगतमहँ अति ही सुन्दर ।
भूप रूप लखि धँस्यो उरवशी हृदय काम शर ॥
निज ऊरूतैं प्रकट करी नारी-नारायन ।
भई उरवशी श्रेष्ठ स्वरगको सुन्दर-भूषन ॥
सो पुरूरवा रूप पै, भ्रमरी सम मोहित भई ।
अमृत, इन्द्र, सुर, स्वरग तजि, बिह्वल ह्वै नृपपुर गई ॥

वन उपवन सर हाट बाट विस्मित ह्वैकैं अति ।
निरखै इत उत चकित भई भूली अमरावति ॥
लै रम्भाकूँ संग उरवशी पहुँची पुरमहँ ।
प्रतिष्ठानपुर निरखि भई प्रमुदित अति उरमहँ ॥
पल पल भारी ह्वै रह्यो, बनी भ्रमरिका रूपकी ।
महल वाटिकामहँ, सखी, करे प्रतीक्षा भूपकी ॥

आवत निरखे नृपति सखा सँग अति हरषाईं ।
किन्तु न लखि एकान्त भूप सम्मुख नहिं आईं ॥
नृपति मनोगत भाव जानिबेकूँ छिपि इत उत ।
सुनैं करे जो वात सखातैं नृप विह्वल चित ॥
चित्त उरवशीमहँ फँस्यो, नृपको, रम्भा जानिकैं ।
आई सम्मुख सखीसँग, हरषे नृप पहिचानिकैं ॥

करि स्वागत नृप कहें—आजु हौं भयो कृतारथ।
पृथिवीपति नरदेव नाम मम भयो जथारथ॥
देवि उरवशी देखि चन्द्रमुख तव हौं हरष्यो।
मनहु मृतक द्रुम उपरि सुधारस बरवश वरस्यो॥
प्रान दान दयिता दयो, दुरलभ दरश दिखाइकैं।
जनम सफल मेरो करो, अनुचर मोहिं बनाइकैं॥

कहे उरवशी—देव! कौन ललना जग माहीं।
जो लखि तुमरो रूप होहि बरबस वश नाहीं॥
प्यारे पुत्र समान मेष बालक द्वै मम सँग।
पालन तिनिको करहिं न रति तजि लखहुँ नगन अँग॥
घृतको भोजन करहुँ नित, दुख सुख सब कछु सहुङ्गी।
प्रन यदि पूरे भये नहिं, तो न यहाँ फिरि रहुङ्गी॥

सब स्वीकारे नियम उरवशी नृप अपनाये।
पाइ ऐल सुरवधू हियेमहँ अति हरषाये॥
सचिवनि शासन सौंपि प्रिया सँग ह्वै प्रमुदित अति।
वन उपवन गिरि निकट नदीतट विहरहिं भूपति॥
जने पाँच सुत अप्सरा, आयु श्रुतायु सतायु रय।
सब सुन्दर सब सर्वविद्, भये पाचवें सुत विजय॥

इत सुरपति लखि स्वरग उरवशी बिनु घबराये।
प्रेरित करि गन्धर्व ऐलपुरमाहिं पठाये॥
लै मेषनि गन्धर्व रातिमहँ छिनिकैं भागे।
सुनिकैं तिनिको शब्द उरवशी सँग नृप जागे॥
भूपतिकूँ कोसन लगी, चोरनि सुत मेरे हरे।
भये व्यरथ नृपके नियम, लगन समयमहँ जो करे॥

प्रिया बचन सुनि परुष नगन नृप असि लै धाये।
करि प्रकाश गन्धर्व भेष तजि तुरत बिलाये॥
जब नृप निरखे नगन-उरबशी अति सकुचाई।
अन्तरहित ह्वै गई, फेरि सुरपुरमहँ आई॥
फिरे नृपति नहिं लखी तहँ, प्रिया अधिक बिह्वल भये।
अन्वेषण हित तुरत ही, रोवत बनकूँ चलि दये॥

सुमिरि सुमिरि गुन रूप भूप रोवें पछितावें।
कस्तूरी मृग सरिस फिरै बिह्वल डकरावे॥
जड़ चेतनको भेद भाव भूले भ्रम छायो।
पूछैं पच्छी पशुनि पतो कोई न बतायो॥
जाति, बरन, पद, प्रतिष्ठा, सब अभिमान बिसारिकैं।
इत उत भूले फिरहिं हिय, रूप उरबशी धारिकैं॥

बैठें तरु तर तनिक तुरत औचक उठि धावैं।
भ्रम बश प्रिया निहारि बढ़ैं आगे गिरि जावैं॥
अट सट कछु बकैं सिड़ी पागल सम रोवें।
निशिबासर पथ चलें करें भोजन नहिँ सोवें॥
चलत चलत द्वादश दिवस, महँ पहुँचे कुरुक्षेत्र ढिँग।
भूख प्यास श्रम नीदतैं, भये नृपतिके शिथिल अँग॥

लखी उरबशी तहाँ पाँच सखीयनिके सँगमहँ।
अति प्रसन्नता भई प्रिया लखि नृप अँग अँगमहँ॥
बोले—जाया! प्रान तुम्हारे बिनु ये जावें।
तब निरखत तन मृतक होहि गीदड़ वृक खावे॥
कहै उरबशी—कामिनी, करैं प्रीति निज स्वार्थतैं।
नष्ट करहिं सर्वस्वकूँ, भ्रष्ट करहिं परमार्थतैं॥

नृपवर धारो धीर कष्ट कब तलक सहोगे।
एक बरष पश्चात् रात्रि मम संग रहोगे॥
होवेगो सुत और शोक सब मनको त्यागो।
गन्धर्वनिकूँ पूजि, मोइ उनतैं तुम माँगो॥
नृप सँग निशि बसि गई पुनि, राजा तप लागे करन।
भये तुष्ट गन्धर्व तब, भूपतितैं बोले बचन॥

बर माँगो सुनि नृपति नीर नयननिमहँ छायो।
बोले—यदि बर देहु उरवशी मोइ दिवाओ॥
अग्निस्थाली दई कह्यो करि तीनि भागमहँ।
करो यजन पुनि जाइ उरवशी बसहिं सदा जहँ॥
तब ई आई उरवशी, दे सुत निज पुरकूं गई।
थाली रखि सुत संग पुर, गये लुप्त पावक भई॥

बिनु पावकके पात्र लख्यो चित चिन्ता छाई।
गन्धर्वनिने आइ नृपतिकूं युक्ति बताई॥
मथो अरनि द्वै प्रकट होहिं पावक मानो सुत।
कीन्हो मन्थन भये प्रकट लै गये अनलयुत॥
यज्ञ याग पुर पहुँचिकैं, करे उरवशी मिलन हित।
दान, धरम, शुभ करम, मख, करहिं प्रिया महँ फँस्यो चित॥

भयो कामतैं क्रोध शाप विप्रनिने दीन्हों।
जीवित ह्वै तप घोर जाइ बदरीबन कीन्हों॥
नारायणने कृपा करी नृप स्वरग सिधाये।
निज शरीरके सहित गये सुर लखि हरषाये॥
सुरपति सँग बैठाइकैं, सब सुख सामग्री दई।
पतिहिं पाइ पुनि उरवशी, प्रेम सहित प्रमुदित भई॥

पाइ अपसरा संग सुखी भूपति अति मनमहँ ।
दिव्य विमान विठाइ प्रिया सँग विहरैं बन महँ ॥
नित अधरामृत पान करे सुधि बुधि बिसराई ।
नहिँ जाने कब दिवस होहि पुनि निशि कब आई ॥

मोह दाममहँ फस्यो मन, रहै अतृप्त दुखी सतत ।
विषयनिमहँ सतोष नहिँ, भयो फेरि नृप चित विरत ॥

नृपकूँ भयो विवेक मोह निद्रातैं जागे ।
निज स्वरूप पहिचान विषय बिष सम अब लागे ॥
अब न उरवशी भली लगे गुन सरब विलाने ।
समुझि दोपकी खानि हाथ मलि मलि पछिताने ॥

हाड़, माँस, मल मूत्रको, तनु थैला दीखन लग्यो ।
भक्त भये भगवानके, विषय भोग भल भ्रम भग्यो ॥

भयो ज्ञान तन नाशवान अबिनाशी श्रीहरि ।
साधक तरे अनेक काम तजि प्रभु चिन्तन करि ॥
नारि फँसे नर रूप निरखि नर नारि रूपमहँ ।
दोऊ तजि परमार्थ गिरैं जग अंध कूपमहँ ॥

चरम, मास, रज, बीर्यमहँ, अज्ञ लिपटि समुझै सुखी ।
ज्यों-ज्यों विषयनिमहँ फसे, होहिँ अधिक त्यों त्यों दुखी ॥

करै न कबहूँ संग कामिनी कामुक जनको ।
नहीं करै विश्वास पचइन्द्रिय अरु मनको ॥
योगी ज्ञानी सिद्ध विवेकी हू फँसि जावें ।
त्यागि तपस्या योगकाम भोगनि अपनावें ॥

तातैं ह्वै निसंग नित, निरत भजन ही महँ रहै ।
विषयनितैं बचिके चलै, मम मनवश कबहुँ न कहै ॥

यों करि मनहि प्रबोध भये विषयनितैं उपरत।
त्यागि उरवशी लोक आत्म सुखमाहिं निरत नित॥
बिखरी मनकी वृत्ति योगतै वशमहँ कीन्हीं।
करि स्वरूप संधान चित्तकूँ शिक्षा दीन्हीं॥

मन पुरूरवा उरवशी—माया पुर तनकूँ कहैं।
फँसिकैं ताके फंदमहँ, जीव त्रिविध विधि दुख सहैं॥

इति श्री भागवतचरितके चतुर्थाहमें चन्द्रवंशी ऐल चरित नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३७]

भये ऐलके बिजय विजयके भये भीम सुत ।
तिनिके काँचन भये होत्र तिनि भये धरमयुत ॥
होत्र पुत्र जगमाहिं जह्नु ऋषि बड़े तपस्वी ।
गगा सब पी गये जगतमहँ भये यशस्वी ॥
मख सामग्री गगने, जलमहँ दई डुबोइ जब ।
पान करी जनि कानतें, भयो जाह्नवी नाम तब ॥

जह्नु तनय नृप पुरू पुरूके पुत्र बलाक हु ।
परम प्रसिद्ध बलाक भये तिनके सुत अजक हु ॥
अजक जगतमहँ भये यशस्वी तिनके कुश सुत ।
तिनतैं कौशिक गोत्र भयो जगमाहिं धरमयुत ॥
पुत्र चारि तिनके भये, भिन्न भिन्न पुरके अधिप ।
श्री कुशाम्बु भूतप वसू, चौथे भये कुशाम्बु नृप ॥

अति सुन्दर कुशनाभ घृताची लखि नृप दृढ़ व्रत ।
पत्नी बनिके रही भई ताते कन्या शत ॥
कन्या क्रीड़ा करहिं अनिल तिनिके ढिँग आयौ ।
करयो व्याह प्रस्ताव कुमारिनिने ठुकरायौ ॥
कुपित वायु अति ही भयो, सब कन्या कुबरी करीं ।
रोवत सब पितु ढिँग गई, नृप चरननिमहँ गिरि परी ॥

बायु बात सब सुनी क्षमा भूपतिने कीन्हीं।
ब्रह्मदत्त बुलवाइ तिनहि सब कन्या दीन्हीं॥
पति परसत ही भईं सुन्दरी सब सुकुमारी।
लखि घर वर अनुकूल भूप सुधि देह बिसारी॥
कन्या अपने घर गईं, पुत्र हेतु हरितैं विनय।
करी यज्ञ करि नृपतिने, भये गाधि तिनके तनय॥

ते कुशाम्बुके पुत्र कहाये गाधि भूमिपति।
तिनकी कन्या सत्यवती जगमहँ सुन्दर अति॥
आइ महर्षि ऋचीक याचना कन्या कीन्हीं।
सुनि घबराये बात बदलि भूपतिने दीन्हीं॥
बोले—देउ सहस्र हय, स्वच्छ—शुभ्र जिनको वरन।
वेगवान अति कान्तियुत, एक कृष्ण होवे करन॥

सुनि मुनि नृप मनभाव समुझि जललोक पधारे।
वरुण कर्यो आतिथ्य प्रेमतैं पाद पखारे॥
श्यामकरन हय सहस दये लै नृप ढिँग आये।
मुनि प्रभाव तप निरखि गाधि अतिशय सकुचाये॥
सत्यवती कन्या दई, मुनि प्रसन्न अति ह्वै गये।
मिले प्रेमतैं वर वधू, अंगुलीय नग सम भये॥

सत्यवती सुत और बन्धुहित इच्छा कीन्हीं।
क्षात्र ब्रह्म द्वै पृथक् तेज धरि पायस दीन्हीं॥
सुता भागकूँ श्रेष्ठ समुझि माताने खायौ।
स्वयं मातुको भाग खाय सब वृत्त छिपायौ॥
जानि योगतैं मुनि कह्यो, निज अनर्थको भोगि फल।
तव सुत क्षत्रिय दंडधर, करै बन्धु तव तप प्रबल॥

पति चरननिमहँ सत्यवती बिनती बहु कीन्हीं।
होहि पुत्र नहिं पौत्र घोर मुनि आयसु दीन्हीं॥
भयो कछुक संतोष जने जमदग्नि तपोनिधि।
जाति नाम सब करम करे मुनि हरषि यथाविधि॥

रेणुसुता श्रीरेणुका, सग ब्याह मुनिने कर्यो।
परशुराम तिनतैं भये, भूमिभार जिनने हर्यो॥

छोटे से बहु राम धनुष कधापै धारें।
शस्त्र शास्त्रमहँ निपुण निशानों तकिके मारें॥
परशु प्राप्त जब भयो निरखि अतिशय हरषाये।
तबहीतैं मुनि परशुराम जगमाँहि कहाये॥

क्षत्रिय अति निर्दय भये, अभिमानी अघ नित करहिं।
बेद बिप्र मानें नही, ऋषि मुनि हू तिनतैं डरहिं॥

तिनके बध हित बिष्णु बिप्र बनि बसुधा तलपै।
प्रकटे लै के परशु बिजय कीन्हीं शत्रुनिपै॥
कर्यो न मनमहँ मोह जनक हित माता मारी।
आज्ञा अनुचित उचित पिताकी सिरपै धारी॥

पितु रुख लखि कारज करहिं, डरहिं न रूठहिं पितु कहीं।
पितृभक्तिको दिव्य अस, उदाहरन जगमहँ नहीं॥

पूछें शौनक—सूत! रामकी कथा सुनाओ।
सूत कहहिं—सब कहहुँ कथामहँ चित्त लगाओ॥
एक दिवस जल भरन रेनुका गई लखे तहँ।
सुर बनितनि सँग करहि चित्ररथ खेल नदीमहँ॥

रति क्रीड़ा नृप रूप लखि, भयो कामयुत तिय हृदय।
बीत्यो मुनिको तबतलक, अग्निहोत्र संन्ध्या समय॥

आई अति भयभीत रेनुका कोपे तब मुनि।
कही सुतनितै मातु हनो चुप रहे पुत्र सुनि॥
सोचें मुनिवर—अधिक धृष्टता पुत्रनि कीन्हीं।
आये तबई राम सबनि वध आज्ञा दीन्हीं॥
पितु प्रभाव तप राम लखि, मातु भ्रात मारे तुरत।
पितु प्रसन्नता वर लह्यो, सब जीवित ह्वैकें फिरत॥

सहसबाहु बलवान भूप हैहय कुल भूषन।
दत्त प्रभुहिं आराधि प्राप्त कीन्हे जिन बहुगुन॥
तेज, ओज, पुरुषार्थ, सहसभुज, अव्याहत गति।
यश अजेयता आदि लहे गुन भयो मत्त अति॥
रावन त्रिभुवन विजय करि, घूमत बल मदमहँ भर्यो।
पशु समान तिहिं पकरिकें, दलन दर्प ताको कर्यो॥

मुनि पुलस्त्य निज पौत्र पराभव अति सकुचाये।
उतरि अवनिपै तुरत नृपति अर्जुन ढिंग आये॥
कार्तवीर्य सत्कार कर्यो मुनि आयसु दीन्हीं।
छोड़ो रावण तबहि मित्रता गाढ़ी कीन्हीं॥
यो जग जीत्यो जोगतैं, अतिशय मद बलको बढ़्यो।
मम समान जगको बली, भूत भूपके सिर चढ़्यो॥

एक दिवस आखेट करन बन भूप पधारे।
तेज पुञ्ज जमदग्नि निजाश्रममाँहिं निहारे॥
हैहय बंशी नृपति समुझि मुनि कीन्हों आदर।
कर्यो निमन्त्रन सैन्य सहित नृप मान्यो सादर॥
कामधेनुकी कृपातै, करे तृप्त सैनिक सकल।
धेनु सिद्धि लखि सहसभुज, लोभ भयो मनमहँ प्रबल॥

माँगी नृप मखधेनु नहीं मुनिवरने दीन्हीं।
बल प्रयोगकरि पकरिधेनु भृत्यनिने लीन्हीं॥
बारबार चिल्लाइ नयनतैं नीर बहावै।
बछरा बनिकें बिकल लखै जननी डकरावै॥

नृपहठ जगमहँ अति विकट, कामधेनु पुर लै गये।
परशुराम आये तबहिं, सुनत रुद्र सम ह्वै गये॥

फरसा लीन्हों हाथ चले नृप कुल संहारन।
राम रूप लखि उग्र लगे हाथी चिघारन॥
सहस करनि शर धनुष लिये नृप लरिबे आयो।
सम्मुख निरख्यो शत्रु राम तकि परशु चलायो॥

कर शर धनु तनु मृग चरम, अरुन नयन रिसयुत बदन।
मनहुँ परशु लै वीररस, दर्प-दर्प आयो दलन॥

भयो युद्ध घनघोर वीर हैहयपति रथ चढ़ि।
आयो इततैं परशुराम नृप लखि आये बढि॥
तीक्ष्ण परशुतैं भुजा काटि अर्जुनकी दीन्हीं।
सुत सैनिक सब भगे राम गर्जन पुनि कीन्हीं॥

नृपसिर धड़तैं पृथक् करि, कामधेनु लै चलि दयें।
कही कथा पितु सन सकल, सुनि मुनि हरषित नहिं भये॥

बोले मुनि जमदग्नि–राम! भल कियो न कारज।
विप्रनि भूपन क्षमा जिही मर्यादा आरज॥
अरे, कहा जिह कर्यो विप्र ह्वै नरपति मार्यो।
कर्यो कर्म अति क्रूर कलंकित कुल करि डार्यो॥

नृपबध द्विजबधतैं अधिक, प्रायश्चित जाको करहु।
हरि चित धरि कीर्तन करत, पावन तीर्थनिमहँ फिरहु॥

पितु गौरवकूँ मानि हरषि आयसु सिर धारी।
तीर्थनिमहँ अघ हरन फिरहिँ द्विजवर अघहारी॥,
सम्वतसरमहँ सकल अवनि परदच्छिन कीन्हीं।
पुनि पितु आये निकट निरखि आशिष बहु दीन्हीं॥

इत पितु आज्ञातें, परशु—राम यज्ञ जप तप-करत।
उत हैहय क्षत्रिय अधम, बदलौ लैबेकूँ फिरत॥

परशु पराक्रम पराभूत पापी पामर खल।
क्षात्रधर्म तजि फिरहिँ करहिँ नहि रण सब निरबल॥
एक दिवस सँग बन्धु गये बन परशुराम जब।
आये छिपिकें सहसबाहु सुत अस्त्र लिये सब॥

विष्णु ध्यान लवलीन मुनि, निरखि भये हर्षित सकल।
प्रतिहिंसा हियमहँ जगी, बध हित उद्यम करहिँ खल॥

लखि आश्रम सब शून्य शीघ्र सिर मुनिको काट्यो।
मृतक लख्यो पतिदेह रेणुकाको हियफाट्यो॥
रोवै कुररी सरिस पुकारै राम धुनै सिर।
सुनि जननीको रुदन राम तब आये सत्वर॥

जनक मृतक तनु निरखि तब, परशुराम रोवन लगे।
गये तात तजि हमहिँ कहँ, क्रूर कालने हम ठगे॥

पितुतनु बन्धुनि सौंपि चले क्षत्रिनि सहारन।
पहुँचे पुरमहँ तुरत परशु लै लागे मारन॥
हैहय कुल संहार कर्यो पुनि जे ई पाये।
क्षत्रिय सब ई मारि-मारि यमसदन पठाये॥

युवक, वृद्ध, शिशु, उदरमहँ, लखहिँ जहाँ क्षत्रिय तनय।
तुरत पठावें यमसदन, सुनहिँ नहीं अनुनय बिनय॥

कर्यो क्रूर अति काज कृपा कीन्हीं नहिँ तिनपै ।
नहीं बचें ते कोउ काल को होवै जिनपै ॥
चिड राजनितैं भई जहाँ देखें तहँ मारैं ।
पकरै बलिपशु सरिस साथ सबकूँ सहारैं ॥
रक्त कुन्ड नौ भरि दये, सम्मुख नहिँ कोऊ लर्यो ।
पितरनिको ग्वा रक्ततैं, परशुराम तरपन कर्यो ॥

पुनि पितु सिर धडमाहिँ जोरि मन्त्रनितैं दीन्हों ।
सर्वदेवमय यज्ञपुरुषको पूजन कीन्हों ॥
करे यज्ञ अति विषद भूमि कश्यपकूँ दीन्हीं ।
करि अवभृत इस्नान प्रतिज्ञा पूरी कीन्ही ॥
त्यागि रोष अति शाँत ह्वै, भूमि द्विजनिकूँ सौंपि सब ।
पूजित प्राणिनितैं भये, गिरि महेन्द्रपै बसहिँ अब ॥

जब जस निरखें समय रूप तब तस हरि धारैं ।
साधुनि रक्षा करहिँ नीच खल दुष्टनि मारैं ॥
करन धरम उत्थान सदा प्रकटे जगमाहीं ।
ऊँच नीच व्यौहार जगतको उनमहँ नाहीं ॥
क्षत्रानिनिके उदरतैं, प्रकटे सुररिपु अवनिपै ।
राम परशुतैं ते हने, करी कृपा सुर नरनिपै ॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें श्री परशुराम चरित नामक सेंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३८]

सत्यवतीकी मातु ब्रह्ममन्त्रनि चरु खायो।
तातैं द्विज गुनयुक्त परम ज्ञानी सुत जायो॥
तेई विश्वामित्र कर्‌यो जिन तप अति दुष्कर।
बिप्रनि सिर धरि पैर भये क्षत्रियतैं द्विजवर॥

विश्वामित्र वशिष्ठमहँ, लागडाँट अतिशय भई।
कामधेनु हित परस्पर, गुत्थम गुत्था ह्वै गई॥

भयो परस्पर युद्ध गाधिसुत रनमहँ हारे।
ब्रह्मतेजहित करन तपस्या बनहिं सिधारे॥
काम क्रोधने आइ तपस्या नष्ट कराई।
आई रम्भा कबहुँ मेनका कबहूँ आई॥

पुनि पुनि आये बिघ्न बहु, किन्तु निराशा नहिं भई।
ह्वै प्रसन्न बिधि ब्रह्म ऋषि, की पदवी तबई दई॥

मुनि वर विश्वामित्र करे तप पुष्करमाहीं।
शुनःशेपकूँ भूप यज्ञ बलि हितलै जाहीं॥
मामा विश्वामित्र विनयके मत्र सिखाये।
अति प्रसन्न सुर भये यज्ञमहँ प्राण बचाये॥

मातु पिता ढिँग पुनि नहीं, शुनःशेप कबहूँ गये।
गाधितनय सुत सम करे, भार्गवतैं कौशिक भये॥

निज सुत बिश्वामित्र प्रेमतैं पास बुलाये।
देवरातकूँ ज्येष्ठ करो बहु बिधि समुझाये॥
आधे माने नहीं शापदै म्लेच्छ बनाये।
शेषनि करि स्वीकार मनोवाञ्छित बर पाये॥

ब्राह्मण क्षत्रिय म्लेच्छ हू, कौशिक गोत्री ही रहे।
विमल चरित सक्षेपमहँ, गाधितनयके कछु कहे॥

अब पुरूरवा पुत्र आयुकी बरनौ संतति।
नहुष, रम्भ, रजि और अनेना क्षत्रबृद्ध अति॥
वीर पाँच सुत भये पाँचहू परम यशस्वी।
क्षत्रबृद्धके काशि काशिके राष्ट्र तपस्वी॥

धन्वन्तरि तिनि सुत तनय, बनि हरि प्रकटित ह्वै गये।
कुवलयाश्व ज्ञानी नृपनि, पंचम पीढ़ीमहँ भये॥

भूप शत्रुजित वत्स ऋतध्वज शूरवीर अति।
पालहि पितु सम प्रजा धर्ममहँ रखहिं सदा मति॥
गालव दीन्हों अश्व पवन मनतैं द्रुतगामी।
तापै चढ़ि पातालकेतु, मार्‌यो खल नामी॥

कुवलयाश्वकी कृपातैं, नृप पतालतलमहँ गये।
विश्वावसु तनया तहाँ, मिली पाइ प्रमुदित भये॥

सँग मदालसा लई ऋतध्वज पितुपुर आये।
जननी पितु अति सुघर बहू लखि अँग न समाये॥
अति प्रगाढ़तर प्रेम परस्पर कुँवरि कुँवर महँ।
जन रक्षा हित गये अश्व चढ़ि नृप सुत बनमहँ॥

तालकेतु पातालको, बन्धु कपटतैं बन्यो मुनि।
छल मदालसातैं कर्‌यो, मरी प्राणपति मृत्यु सुनि॥

नाग अश्वतर पुत्र ऋतध्वजके प्रेमी अति।
करिवे प्रत्युपकार करी सुत पितु मिलि सम्मति॥
पितु मदालसा फेरि तपस्या करि प्रकटाई।
कुमर पताल बुलाइ प्रिया फिरि तिननि मिलाई॥
पाइ परस्पर प्रियाप्रिय, अति प्रसन्न दोऊ भये।
पितु प्रयाण सुरपुर कर्‌यो, भूप ऋतध्वज ह्वै गये॥

सुत मदालसा जने चारि ज्ञानी ते सबई।
तीनि त्यागि घर गये नृपति लखि बेले तबई॥
चौथेकूँ मति मोक्षधर्मको पाठ पढ़ाओ।
गृहीधर्मकी सीख देहु निज वंश चलाओ॥
सुत अलर्क राजा करे, धर्म प्रवृत्ति सिखाइकें।
गुप्त मंत्र दै वन गई, बन्धु प्रबोधे आइकें॥

सेना सहित सुबाहु काशिराजा सँग आये।
पुर अलर्कको घेरि लयो नृप अति घबराये॥
दत्तात्रेय समीप गये माँ मंत्र मानिकें।
पाइ ज्ञान समभाव दिखायो रिपुहिं आनिकें॥
लखि अलर्कंकूँ बोधयुत, काशिराज निजपुर गये।
पायो पुनि निर्वान पद, तिनि सुत संतति नृप भये॥

संतति सुलहु सुनीथ सुकेतन सुत शुभ तिनिके।
धर्मकेतु तिनि पुत्र सत्यकेतू सुत उनिके॥
क्षत्रवृद्धको वंश कह्यो कुल रम्भ भयो द्विज।
नृपति अनेना छटी पीढ़ि तक चल्यो वंश निज॥
आयु तनय रजि अति बली, होहिं चरनमहँ इन्द्र नत।
भये पुत्र रण बाँकुरे, तेजस्वी तिनि पंचशत॥

गये पिता परलोक पंचशत राजा बनिकें।
सब ई हैं हम इन्द्र कहें शतक्रतुतैं तनिकें॥
सुरगुरुने अभिचार यज्ञ करि भ्रष्ट बनाये।
भये धर्मरिपु तुरत इन्द्र यमसदन पठाये॥
इन्द्र वज्रतैं मरे सब, चल्यो नहीं रजिवंश पुनि।
आयु तनय नृप नहुषको, विषद चरित अब सुनहु मुनि॥

दत्त दयो फल आयु नृपतिपत्नीने खायो।
फल प्रभावतैं इन्दुमतीने सुत इक जायो॥
नहुष नाम विख्यात हुण्डने ताहि चुरायो।
पाचक राँधन दयो प्रेमवश कुँअर छिपायो॥
मुनि वशिष्ठ पालन कर्यो, बड़े भये रिपु हनन हित।
चले दैत्य ढिंग जासुको, शिवपुत्रीमहँ फँस्यो चित॥

दो०—शौनक जी शंका करी, सूत! सुता शिव कौन ?
सूत कहे—मुनि! उमाशिव, गये शक्रके भौन॥

छप्पय—सुरपुर उमा अशोकसुंदरी पैदा कीन्हीं।
कल्पवृक्षतैं भई शिवा पुत्री करि लीन्हीं॥
नहुष होहिं पति उमा हरषि आशिष तिहि दीन्हीं।
विप्रचित्ति सुत हुंड करी माया सो चीन्हीं॥
कर्यो ब्याह नृप नहुषने, गुरु आज्ञातैं हुंड हनि।
गये पितृ गृह निरखि सुत, प्रमुदित जनु अहि पाइ मनि॥

रानी पाइ अशोकसुन्दरी नहुष सुखी अति।
गये आयु वन करी तपस्या लही परम गति॥
सुत यति और ययाति वियति संयाति यशस्वी।
आयति कृति सब षष्ट भये यति ज्येष्ठ तपस्वी॥
वृत्र मारि हत्या ग्रसित, है शतक्रतु जब छिपि गये।
तब सुर-सम्मतितैं नहुष, स्वर्गमाँहि सुरपति भये॥

इन्द्रासनपै बैठि नृपति मनमाहिँ सिहावें।
देव, उरग, गन्धर्व, सिद्ध सिर आइ झुकावें॥
ऋषि मुनि विनती करें अप्सरा चँवर डुलावें।
गुन गावें गन्धर्व नृत्य सुरवधू दिखावें॥
अमृत अशन, भूषन परम, दिव्य गन्ध, नन्दन भ्रमन।
सुरललननिको सतत सँग, पाइ भयो उन्मत्त मन॥

पाइ स्वर्गको राज नहुष मन गर्ब भयो अति।
लख्यो अतुल ऐश्वर्य भूपकी भई भ्रष्ट मति॥
शची समीप सँदेश पठायौ मोइ भजो अव।
सती भई भयभीत बृहस्पति निकट गईं तव॥
करि सम्मति गुरुतैं शची, कहवायो तव वरुङ्गी।
ऋषि ढोवें शिविका जबहिं, इच्छा पूरी करुङ्गी॥

शिविकामहँ ऋषि लगे नहुष चढ़ि शचिगृह गमने।
पद प्रहार करि सर्प, कहे मुनि भये अनमने॥
दुष्ट होहि तू सर्प—शाप कुम्भज मुनि दीन्हों।
तुरत सर्प ह्वै गिर्‌यो, पापको फल चखि लीन्हों॥
धर्मराज सत्संगतैं, सर्प योनितैं छुटि गये।
सब तजि यति जब वन गये, तब ययाति भूपति भये॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें पुरूरवा वंशवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[३६]

उल्ला०—ईश भजनतें सब तरहिँ, होहिँ बासनातें पतित।
अति शिक्षाप्रद मुनि ! सुनहु, अब ययातिको शुभ चरित॥

छप्पय—नृप ययातिने ब्याह शुक्र तनया सँग कीन्हों।
शौनक शंका करी धर्म नृप क्यौं तजि दीन्हों॥
सूत कहे—मुनि ! सुनो, कथा अति कहौ मनोहर।
गुरु-सुत कच सुरस्वार्थ हेतु व्रत कीन्यो दुष्कर॥
सीखन मृतसंजीवनी, विद्या उशना ढिँग गये।
मारे असुरनि द्वेषवश, गुरु प्रसाद जीवित भये॥
असुरनि कच वधि सुरा संग गुरु उदर पठायो।
शुक्र शिखायो मंत्र मृतकतैं फेरि जिवायो॥
ह्वै कृतार्थ कच चले देवयानी बोली तब।
करो ब्याह मम संग न कचने स्वीकार्यो जब॥
शाप दयो विद्या नहीं, होहि फलवती निकट तब।
मिलहि न तोकूँ विप्रवर, कचहु कुपित ह्वै कह्यो तब॥
वृषपर्वाकी सुता नाम शर्मिष्ठा युवती।
लै सखियनि बन गई देवयानी सँग हँसती॥
शोभा निरखि बसंत मोदमहँ नाचे गावें।
ह्वै विवस्त्र जलमाहिँ करें क्रीडा सब न्हावें॥
निरखे आवत वृषभ चढि, पशुपति पारवती सहित।
ह्वै लज्जित सरतैं निकसि, पहिनत पट लोचन चकित॥

उलटे पुलटे बायुदेवने पट अरु गहने।
गुरुपुत्रीके वस्त्र भूलि शर्मिष्ठा पहिने॥
शुक्रसुताने कहीं बहुत अनकहनी बानी।
वृषपर्वाकी सुता सुनत मनमाहिं रिसानी॥

अन्धकूप धक्का दयो, गिरी देवयानी तबहिँ।
छाँड़ि बिवस्त्रा कूपमहँ, आईं लै पुरमहँ सबहिँ॥

दैवयोगतैं नृप ययाति मृगया हित आये।
नगी निरखी कूप देवयानी सकुचाये॥
दयो दुपट्टा डारि दयावश तुरत निकासी।
दया उलटिके परी भूपके गरमहँ फाँसी॥

पितु ढिँग आईं दुखित ह्वै, द्विजतनया नृप बरि लये।
सुनि घटना तनया सहित, उशना अति दुःखित भये॥

भृगुसुत कीन्हीं शान्त न मानी सुता हठीली।
लाड़प्यारमहँ, पली लड़ैती अति गरबीली॥
पुत्री हठकूँ मानि त्यागि बृषपर्वा पुरकूँ।
चले सुता सँग शुक्र त्यागि नृप शिष्य असुरकूँ॥

सुनि सब सुर हरषित भये, असुरनि के छक्के छुटे।
यदि गुरु तजि सुरपुर गये, तो अधबरमहँ हम लुटे॥

पुत्री सँग गुरु जहाँ तहाँ सब दानव धाये।
गुरु चरननिमहँ परे बिबिध विधि शुक्र मनाये॥
शात भये गुरु कहे—सुताकूँ नृपति मनाओ।
सुनि नृप पैरनि परे देवि! अब लाज बचाओ॥

दासी शर्मिष्ठा बने, गुरुपुत्री बोली—कहूँ।
सब सेवा सादर करै, सहस सखिनि सँग जहँ रहूँ॥

सुनि वृषपर्वा तुरत बुलाई सुता दुलारी।
बन्धु बिपति सुनि असुरकुमारी बात बिचारी॥
यदि दासी ह्वै बनूँ निरापद होवैं परिजन।
परस्वारथमहँ लगे वही बड़भागी है तन॥
गुरुपुत्री पद पकरिकैं, बोली—दासी बनुङ्गी।
जहाँ बिबाहे पिता तव, तहाँ संगही चलुङ्गा॥

शर्मिष्ठा नृपसुता देवयानीकी दासी।
बनी असुर भय रहित भये परि चित्त उदासी॥
प्रतिहिंसामहँ पगी देवयानी इतरावै।
शर्मिष्ठातै सदा चरनसेवा करवावै॥
वाही बनमहँ एक दिन, पुनि ययाति आये नृपति।
गुरुपुत्री प्रस्ताव पुनि, कर्यो देव! अब होहु पति॥

नृप शंका कछु करी देवयानी समुझाये।
नृपकूँ निरभय करन तुरत पितु शुक्र बुलाये॥
अनुमोदन पितु कर्यो साज सखियनिने साजे।
कडक कड़क धुं लगे व्याहके बाजन बाजे॥
शर्मिष्ठा सँग सुता दै, बोले पितु—पावैं न दुख।
दोऊ आदर पाइँ परि, शर्मिष्ठा नहिं सेज सुख॥

लै शर्मिष्ठा सङ्ग देवयानीकूँ भूपति।
आये पुरमहँ हरषि मनायौ प्रजा मोद अति॥
शुक्रसुताकूँ सदा शैल सर सरित घुमावैं।
सरस हास परिहास करें अति सुख सरसावें॥
पुत्रवती उशना सुता, कछुक कालमहँ ह्वै गई।
शर्मिष्ठा ह्वै ऋतुमती, नृप सगम इच्छुक भई॥



परशुराम द्वारा क्षत्रियवध पृ० ४८६



देवयानी और कच पृ० ४८७

बोली—हे नरदेव ! धर्मके तुम मेरे पति ।
दासिनिकी सब भाँति बताये स्वामी ही गति ॥
वीर्य दान अब देहु पसारूँ पल्लो प्रियतम ।
दासीपै मति बनो दयासागर अस निरमम ॥
रूपवती अरु ऋतुमती, शर्मिष्ठाकी सुनि विनय ।
शुक्र प्रतिज्ञा भग करि, दयो दान ह्वैकेँ सदय ॥

शर्मिष्ठा सुत जन्यो देवयानी सुनि आई ।
भई क्रोधतेँ लाल असुरतनया धमकाई ॥
इत उत बात बनाय देवयानी टरकाई ।
गुरु पुत्रिहिं बहकाइ दैत्यपुत्री हरषाई ॥
शरमिष्ठामहँ फँस्यो मन, बस्यो दंभ नृपके हिये ।
भये,कामवश शील तजि, रति सुख हित कारज किये ॥

यदु अरु तुर्वसु तनय, देवयानीने जाये ।
शर्मिष्ठा हू तीनि तनय भूपतितैं पाये ॥
द्रुह्यु और अनु पुरू नाम तिनिके अति मनहर ।
प्रकट न बाहर होहिं रहे महलनिके भीतर ॥
शरमिष्ठाके रूपमहँ, रँग्यो रँगीलो नृप हृदय ।
देव सरिस सुन्दर भये, ताईतैं तीनिहु तनय ॥

एक दिवस नृप सग देवयानी उपवनमहँ ।
घूमत घूमत गई परम प्रमुदित ह्वै मनमहँ ॥
देवकुमार समान निहारे द्वै शिशु सुन्दर ।
रूप ,रंग उनहार शील नृप सरिस मनोहर ॥
पूछै पति तैं प्रेम वश, जीवनधन ! ये शिशु सुघर ।
ह्वै निर्भय क्रीड़ा करहिं, कहहु कौनकें हैं कुमर ॥

भये भूप भयभीत न बोले कछु घबराये।
करि करको संकेत कुमर द्विजसुता बुलाये॥
पूछै किनके पुत्र शिशुनि सच बात बताई।
शर्मिष्ठा ढिंग कुपित देवयानी सुनि आई॥
बात खरी खोटी कहीं, शर्मिष्ठा डरपी न जब।
भरी क्रोधमहँ नृपहिं तजि, पितु ढिंग रोवत गई तब॥

लखी भूपने जात देवयानी फुफकारत।
पीछे पीछे चले पुकारत ह्वै अति आरत॥
पुनि पुनि पैरनि परें कहैं—मत पितु ढिंग जाओ।
तुम ही देओ दंड न मोकूँ अधिक लजाओ॥
हिये सौतिया डाह अति, शुक्रसुता मानी नहीं।
भूपतिकी करतूत सब, रोइ रोइ पितुतें कहीं॥

वृत्त सुन्यो सब शुक्र शाप भूपतिकूँ दीन्हों।
करी प्रतिज्ञा भग अनादर मेरो कीन्हों॥
तातैं तुरतहिं जरा देह तेरीमहँ आवै।
भोगि सके नहिं भोग अनृतको अब फल पावै॥
नृप बोले—तव सुतातैं, ब्रह्मन्! तृप्ति भई नहीं।
उभय ओरतैं विषयकी, इच्छा अबहिं गई नहीं॥

मुनि प्रसन्न पुनि भये भूपतैं बोले बानी।
नृपवर! मनकी बात तुम्हारी सब हौं जानी॥
जाओ अपनी जरा बदलि तनयनितैं लेओ।
सुतको यौवन पाइ जथा रुचि विषयनि सेओ॥
राजा बोले—जराजो स्वीकारे मेरो तनय।
पावै सो सम्राट पद, जगमहँ यश कीरति विजय॥

एमवस्तु मुनि कही विहँसि नृप पुरमहँ आये।
पाँचहुँ प्यारे पुत्र प्रेमतैं पास बुलाये॥
शुक्र शापकी बात बताई यौवन माँग्यो।
यदु, अनु, तुर्वसु, द्रुहु सुनत बच मरमम लाग्यो॥
चारिहुँ ही पितुवचन सुनि, वय देवेतैं नटि गये।
क्षात्रधर्मतैं शाप दै, भ्रष्ट भूपने करि दये॥

पुत्र पुरूतैं भूप अन्तमहँ माग्यो यौवन।
सुनि सुत बोल्यो—पिता तुम्हारो ई सब तन मन॥
यों कहि यौवन दयो जरा भूपतिकी लीन्हीं।
अति प्रसन्न पितु भये हरषि आशिष बहु दीन्हीं॥
बोले नृप गम्भीर ह्वै, पुत्र शब्द कीयो सफल।
बनहु चक्रवर्त्ती तुमहिं, लहो जगतमहँ यश विपुल॥

यों सुन यौवन पाइ भोग भोगे संसारी।
तौऊ तृप्ति न भई चित्त अति भयो दुखारी॥
भयो विषय वैराग्य विचारे नहिँ सुख पायो।
बनि विषयनिको दास समय सब व्यर्थ गँवायो॥
तृप्ति करि सकैं विषय ये, विषय ग्रस्त नरकूँ नहीं।
शान्त होहि कहु प्रज्ज्वलित, अग्निबिन्दु घृततैं कहीं॥

राग द्वेषतैं रहित शान्त नर होवै जबहीं।
समदरसीकूँ होहिँ दशहु दिशि सुखमय तबहीं॥
तृष्णा दुखको मूल सहज गुन सब ही खोवै।
बूढ़ो होहि शरीर न तृष्णा बूढी होवै॥
पावै सत् सुख तबहिँ जब, हौवै विषयनितैं विरत।
जो सुख चाहै जगतमहँ, तृष्णाकूँ त्यागै तुरत॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठा होहि पूजनीया हू नारी।
युवती होवै बहिन मातु पुत्री अति प्यारी॥
तबहू ह्वै एकान्त न बैठै इनके सँगमहँ।
सावधान नित रहै सटावै अँग नहिँ अँगमहँ॥
प्रबल प्रचण्ड पिशाच सम, यह इन्द्रिय समुदाय अति।
होवै सम्मुख बिषय लखि, पडितहूकी भ्रष्ट मति॥
नृपति ययाति बिचार करें हा ! पाप कमायौ।
पायौ दुरलभ देह भजन बिनु व्यरथ गँवायौ॥
सुतको यौवन लयो भोग भोगे निशि बासर।
तोऊ तृप्ति न भई लह्यो नहिँ सुखमय अवसर॥
तातैं अब सब त्यागिकें, तप हित बनमहँ जाउँगो।
बिषयाशा तजि भक्तितैं, चित हरिमाहिँ लगाउँगो॥
यों करि पश्चात्ताप पुरू सुत तुरत बुलायो।
यौवन दैकें लई जरा बहु बिधि समुझायो॥
सबकूँ दीयो राज पुरू सम्राट—बनाये।
राज पाट सब त्यागि गये बन मन हरषाये॥
करै घोंसला त्याग ज्यों, पक्षी परके जमत ही।
त्यौं बिरागमें बिरत ह्वै, बंन गमने नृप तुरत ही॥
घोर तपस्या करी चित्त भगवतमहँ लाग्यो।
त्रिभुवन व्यापी कीर्ति अंतमहँ नृप तनु त्याग्यो॥
गये स्वरग तप अहंकारतैं, गिरि भुवि आये।
करि सज्जन सत्संग फेरि हू स्वरग सिधाये॥
सब लोकनिके भोगि सुख, करी नहीं तिनमहँ रती।
पहुँचे पुनि बैकुण्ठ नृप, पाई भागवती गती॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थांहमें ययातिचरित नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[४०]

नृप ययाति लघु पुत्र पुरू को बंश सुनाऊँ।
जन्मेजय तिनि पुत्र भये तिनि कुल यश गाऊँ।।
चौदहपीढ़ी माँहि भये दुष्यन्त भूपवर।
परम यशस्वी बीर शत्रुजित बंश यशस्कर।।
भयो बर्ष जिनि नामतैं, भरत तनय तिनिके भये।
देवबधूटी मेनका, सुता प्रेममहँ फँसि गये।।

मृगया हित नृप गये सेन सजि निरजन बनमहँ।
सिंह व्याघ्र मृग मारि श्रमित ह्वै सोचें मनमहँ।।
ऋषि आश्रम इत होहि मिटाऊँ श्रम तहँ जाई।
कण्वाश्रम तब दिव्य, दूरितै दयो दिखाई।।
राज चिह्न तजि चले नृप, ब्राह्मी श्री लखि ह्वै चकित।
खग मृग सेवित पुष्पफल—युत आश्रम शोभा लखत।।

होहि हवन कहुँ साम बैठि बटु सस्वर गावैं।
नाचैं केकी कहूँ-कहूँ मृग पूँछ हिलावैं।।
कोई समिधा कुशा पुष्प फल लैकें आवैं।
कोई वल्कल वस्त्र उटजपै डारि सुखावैं।।
तरुछायामहँ बैठि मृग, करहि जुगार खुजाइँ तन।
आश्रम शोभा निरखिकें, भयो भूपको मुदित मन।।

कही भूप—को यहाँ ! सुनत इक युवती आई ।
सहज सुन्दरी निरखि नृपहिं मनमहँ सकुचाई ॥
लज्जातै सिर नाइ अरघ दै आसन दीन्हों ।
करे भेंट फल फूल यथाविधि स्वागत कीन्हों ॥

करि स्वागत स्वीकार जब, नृप परिचय पूछन लगे ।
कह्यो सुता हौं कराबकी, पूछें नृप ऋषि पितु सगे ॥

कराव न कीयो ब्याह भई पुत्री तुम कैसें ।
सखी कहे—नृप ! कहूँ सुता मुनिकी यह जैसें ॥
विश्वामित्र महर्षि करें तप डरप्यो सुरपति ।
करन तपस्या भंग पठाई सुरललना रति ॥

परमसुन्दरी मेनका, रति सँग भेजी मुनि निकट ।
डरपति पहुँची सुरवधू, करहि जहाँ मुनि तप बिकट ॥

यौबन रूप निहारि भये मोहित मुनि ज्ञानी ।
कीयो भोग विलास दिवस अरु निशा न जानी ॥
भयो चेत इक दिवस मेनका भागी डरिकें ।
गई स्वरग इक सुता सुन्दरी बनमहँ जनिकें ॥

कुलपति कन्या बन लखी, घिरी शकुन्तनितें बिबश ।
तातैं नाम शकुन्तला, धर्यो करी कन्या सरिस ॥

क्षत्रिय कन्या जानि नृपति मनमाँहिं सिहाये ।
भूप कामबश भये नीतिके बचन सुनाये ॥
मैं पौरव तुम कुशिकवंशकी राजकुमारी ।
वरण करहु पति मोहिं प्रीति यदि होहि तुम्हारी ॥

ब्राह्म, दैव गान्धर्व अरु, राक्षस आसुर आर्ष वर ।
प्राजापत्य पिशाच यो, ब्याह अष्ट संतानकर ॥

करि गान्धर्व विवाह होहु पत्नी तू मेरी।
सब विधि इच्छा करूँ सकल पूरन हौं तेरी॥
राज पाट धन धाम वस्तु सब मेरी जो है।
देह, प्रान सर्वस्व आजतैं तेरी सो है॥
बोली सोचि शकुन्तला, यदि अधर्म है नहीं नृप।
करूँ वरन यदि ममतनय, होहि सकल भूको अधिप॥

नृप स्वीकार्‌यो भयो ब्याह गान्धर्व तुरत तहँ।
पति पत्नी बनि भये निरत दोऊ रति सुखमहँ॥
मुनितनया तन अरपि अतिथिकूँ अति सुख दीन्हों।
रज अरु वीर्य अमोघ गरभ थापन नृप कीन्हों॥
भयो प्रात अति कष्टतैं, विलग भये दोऊ विकल।
रति श्रम प्रिया वियोगतैं, दोउनिके सब अँग शिथिल॥

कण्वशापतैं डरपि प्रियातैं अनुमति माँगी।
महिषी समुझि वियोग दुःखतैं रोवन लागी॥
दै आश्वासन तुरत निकसि निज पुरकूँ धाये।
इतनेमहँ फल पुष्प लिये कुलपति मुनि आये॥
तब शकुन्तला लाजवश, मुनि समीप आई नहीं।
सोचे—पितु होवें न रिस, पति परमेश्वरपै कहीं॥

मुनि आश्वासन दियो ब्याह अनुमोदन कीन्हों।
पुत्रवती हो पुत्रि! हरषि कुलपति वर दीन्हों॥
समय पाइकें पुत्र जन्यो ऋषि मुनि हरषाये।
जाति करम संस्कार कण्व विधिवत करवाये॥
अति सुन्दर अति स्वस्थ सुत, लखि प्रमुदित सब जन रहें।
करै दमन सिंहादिको, सर्वदमन सब मुनि कहें॥

दोहा—नहीं नृपति आये बहुरि, भेज्यो नहिं संदेश।
मुनि सोचें भेजें हमहिं, का पतिघर अंदेश॥

छप्पय—सुत शकुन्तला सहित पठाई पुनि पतिगृह मुनि।
दुखित निहारत चली लता, तरु, खग, मृग पुनिपुनि॥
कुलपति करुना करी हृदयतैं सुता लगाई।
पितुगृहतैं ह्वै बिदा, राजमहलनिमहँ आई॥
सभा भवनमहँ आइके, नृपकूँ निज परिचय दयो।
सुनि अवाक् से रहे नृप, अति बिस्मय सबकूँ भयो॥

राजा बोले—कौन कहाँको है तू नारी।
जान नहीं पहिचान बने तू बहू हमारी॥
ह्वै शकुन्तला क्रुद्ध कहे—कायर तुम भूपति।
करिकें छल ब्योहार बनो अब इत भोरे अति॥
करि गान्धर्व बिवाह वन, गर्भ कर्यो थापन तहाँ।
कण्वाश्रममहँ जन्यो सुत, है समुपस्थित यह यहाँ॥

पुनि शकुन्तला शपथ करी भूपति नहिं मानी।
है निराश जब चली भई तब नभतै बानी॥
माता धारन करै पिताकी बस्तु कहावै।
पति ही बनिकें पुत्र उदर जायाके आवै॥
यह कुमार तुमरो तनय, भूप भरन जाको करो।
पितर सहित पुं नरकतै, पाइ जाइ सुखतैं तरो॥

स्वीकार्यो सुत नृपति प्रजा अनुमोदन कीन्हों।
जानि बूझिकें भूप पुत्र अपनो नहिँ चीन्हों॥
सबकूँ भई प्रतीति निरखि सुत सबहिँ सिहाये।
घर घर मंगल भयो राजमहँ बजत बधाये॥
सर्वदमन युवराज करि, नाम भरत नृपने धर्यो।
भरत वंश जिनतैं चल्यो, जग उज्ज्वल यशतै कर्यो॥

भरत सरिस जग माँहिं वीर को ज्ञानी दानी ।
परम यशस्वी युद्ध क्षेत्रमहँ अति ही मानी ॥
अगणित दीये दान अश्व, भू, रथ, गज, गोधन ।
कीये रिपु वश बाह्य भीतरी मन इन्द्रिय गन ॥
भोगे सब संसार सुख, तोऊ तुष्ट न नृप भये ।
भोग सकल मिथ्या समुझि, उपरत तिनतैं ह्वै गये ॥

नृप विदर्भकी सुता सुंदरी राजदुलारी ।
पत्नी तिनकी तीनि सुशीला अति सुकुमारी ॥
तिनतैं जे सुत भये, भरत अनुरूप न माने ।
त्यागे पत्नी वश वितथ लखि नृप खिसिआने ॥
भाभी ममता गर्भतैं, पैदा सुर-गुरु कर्यो सुत ।
त्यागि दयो पितु मातुने, मरुत उठायो शिशु तुरत ॥

दयो मरुत् गन लाइ भरतने सुत निज जान्यो ।
पायो मरुत् प्रसाद वंश निज उज्वल मान्यो ॥
वितथ नामतैं ख्यात जगतमहँ भये भरतसुत ।
त्यागि राज परिवार गये बन नरपति तप हित ॥
वन शकुन्तला संगमहँ, रहैं करें तप रोकि मन ।
मिथ्या समुझि प्रपंच सब, योग मार्गतैं तज्यो तन ॥

भये वितथके मन्यु पाँच सुत तिनके सुन्दर ।
वृहत्क्षत्र, जय, गर्ग, भये नर महाव यंवर ॥
नर सुत संकृति भयो तासु सुत द्वै जगभूषन ।
प्रथम भयो गुरु रन्तिदेव दूसर निष्किञ्चन ॥
विनु पुरुषारथ दैववश, मिलहि अयाचित जो अशन ।
दै अभ्यागत अतिथिकूँ, पावैं ह्वै सन्तुष्ट मन ॥

रन्तिदेवके सरिस कौन नर जगमहँ दानी।
अतिथि हेतु निज क्षुधा पिपासा जिन नहिँ जानी॥
भये दिवस चालीस आठ बिनु पीये खाये।
उनन्चासवेँ दिवस स्वादयुत व्यंजन आये॥
जेँमन बैठे कुटुम सँग, बिप्र वृषल चाडाल बनि।
याञ्चा हरि हर अज करी, नृपति अन्न जल दयो सुनि॥

हरषे तीनिहु देव दैन दुरलभ बर लागे।
हरिचरननि अनुराग त्यागि जगसुख नहिँ माँगे॥
माया भई बिलीन प्रेम प्रभु हियमहँ छायो।
नृप अनुयायी सबनि सहज ही परपद पायो॥
ज्येष्ठ श्रेष्ठ सुत मन्युके, बृहत्क्षत्र भूपति भये।
रच्यो हस्तिनापुर जिननि, हस्ति सुवर सुत ह्वै गये॥

हस्ती सुत अजमीढ नील सुत शान्ति भये तिनि।
उनके पुत्र सुशान्ति पुरुज सुत अर्क लहे जिनि॥
अर्क पुत्र भरम्याश्व पुत्र मुद्गल द्विज तिनिकी।
भई अहल्या सुता नारि मुनिवर गौतमकी॥
शतानद तिनितै भये, पुत्र सत्यधृत तासुके।
शरद्वान सुत धनुर्बिद, कृपाचार्य सुत जासुके॥

लखी उरबशी शरद्वान चित चंचलता अति।
भई काम बश वृत्ति तुरत सतधृति सुतकी मति॥
तनु तो रोक्यो किन्तु रुक्यो नहिँ रेत, गिर्यो जहँ।
कुशा झाड़के मध्य भये सुत सुता प्रकट तहँ॥
लाये शन्तनु कृपाबश, दोउनिको पालन कर्यो।
जानि बिप्र सतान शुभ, नाम कृपी कृप नृप धर्यो॥

कुरुकुलके कृप भये सुतनिके शिक्षक घरमहँ।
युवती निरखी कृपी भई चिन्ता नृप उरमहँ॥
भरद्वाज-सुत आइ ब्याहकी इच्छा कीन्हीं।
ह्वै प्रसन्न नृप कृपी द्रोणकूँ विधिवत दीन्ही॥

द्रोण वीर्यतैं कृपीमहँ, अश्वत्थामा सुत भये।
जगमहँ द्रोणाचार्य्य द्विज, वीर अग्रणी ह्वै गये॥

दिवोदास सुत भये भूप मित्रेयु च्यवन तिनि।
च्यवन कुमार सुदास भये सोमक आदिक उनि॥
सोमकके शततनय पृषद्सुत छोटे सबतैं।
पृषद् पुत्र नृप द्रुपद द्रौपदी तनया तिनतैं॥

धृष्टद्युम्न आदिक तनय, भये द्रुपदके जग विदित।
शत्रुसेन घन दूरि करि, रवि सम रणमहँ ह्वै उदित॥

हस्ती सुत अजमीढ़ नृपतिके ऋक्ष अपर सुत।
तासु पुत्र संवरण तेज तप परम कीर्तियुत॥
नृप बड़भागी परम सेन सँग मृगया हित बन।
गये प्रकृतिसौंदर्य निरखि प्रमुदित नृपको मन॥

लख्यो विशाल बराह बन, एकाकी पीछो कियो।
दौरत ठोकर खायकें, गिर्‌यो तुरत हय मरि गयो॥

पाँइ पियादे अश्वहीन नृप बनमहँ डोलें।
परम मनोहर प्रान्त मधुर सुर शुक पिक बोलें॥
शीतल मंद सुगंध पवन बहि सुख उपजावे।
हरित दूब दल नीर निरखि नृप नयन जुड़ावे॥

निरखी निभृत निकुञ्जमहँ, नारी नयनानन्दिनी।
करत प्रकाशित प्रान्तकूँ, कनकलता सम कामिनी॥

निरखि भये आसक्त देहको सुधि बिसराई ।
मूर्छित भूपति लखे सुन्दरी नृप ढिँग आई ॥
समुझाये बहु भाँति कहे संबरण—भामिनी ।
तीनिलोकमहँ लखी नहीं तव सरिस कामिनी ॥
मोहि बचाओ कामतैं, मारहि शर घायल करहि ।
अपनाओ यदि मोइ तुम, तो यह अरि डरिकें भगहि ॥

बोली तपती—नृपति ! मोइ रबि तनया मानों ।
कन्या जनक अधीन होहि तुम सब कछु जानों ॥
करो याचना जाइ दान यदि पितु दे देवैं ।
तो हम तुम मिलि धर्मयुक्त कामहिं नित सेवैं ॥
यों कहि अन्तरहित भई, नृप पुनि मूर्छातैं जगे ।
तपती हित उपबास व्रत, दृढ़ जप तप करिबे लगे ॥

गुरु बशिष्ठ रवि निकट गये बिनती बहु कीन्हीं ।
माँगी तपती हरषि सूर्य नृप हित दै दीन्हीं ॥
बिधिवत कर्यो बिबाह भये दोऊ अति प्रमुदित ।
प्रिया प्रेममहँ फँस्यो संबरण भूपतिको चित ॥
रानी तपती गर्भतैं, भये पुत्र कुरु जग विदित ।
कुल कौरवके नामतैं, भयो पुत्र तिनि परीक्षित ॥

सुधनु जह्नु निषधाश्व तीनि सुत और हु तिनके ।
रहे प्रथम सुतहीन सुहोत्र हु भये सुधनुके ॥
च्यवन सुहोत्र कुमार च्यवनके कृती भये सुत ।
कृती पुत्र बसु नृपति उपरिचर अष्ट सिद्धि युत ॥
सुरऋषि बाद बिबादमहँ, पच्छपात नृपने कियो ।
क्रुद्ध भये ऋषि भूपकूँ पतन शाप मिलिकैं दियो ॥

स्वर्गच्युत ह्वै भूमि-विवरमहँ बसहिं उपरिचर।
नारायणको मंत्र जपैं पूजामहँ तत्पर॥
नारायणको नाम निरंतर नित-नित गावैं।
नारायणको ध्यान करैं तन्मय ह्वै जावैं॥
नारायण आज्ञा दई, गरुड़ शाप मोचन कर्यो।
नारायणने नृपतिको, ताप शाप सबई हर्यो॥

बसुके चेदि नरेश बृहद्रथ तिनि कुशाग्र सुत।
तिनिके सुत नृप ऋषभ ऋषभके पुत्र सत्य हित॥
नृपति वृहद्रथ अपर नारि द्वै भाग देहके।
जने मृतक लखि तुरत, फिँकाये निकट गेहके॥
जरा नामकी राक्षसी, भाग उभय जोरे जबहिं।
जीव-जीव कहिबे लगी, उठि रोयो सो शिशु तबहिं॥

जरासन्ध अति बली भयो नृप सेवें पदरज।
जातें हरि रणछोड़ द्वारका भगे त्यागि ब्रज॥
तासु पुत्र सहदेव भये सोमापि तासु सुत।
श्रुतश्रवा तिनि तनय चेदि कुल भूषण रणजित॥
कुरुसुत तीसर जह्नुके, पौत्र बिदूरथ है गये।
तिनिकी नौमी पीढ़िमहँ, नृप प्रतीप भूपति भये॥

नृप प्रतीपके तीनि नयन देवापि बड़े सुत।
गये राज तजि नृपति भये शन्तनु शोभायुत॥
परसैं करतैं जाहि शान्ति पावैं सो प्रानी।
जानि अग्रभुक् इन्द्र नहीं बरसायो पानी॥
भेजि सचिव षड्यन्त्र करि, वेद भ्रष्ट अग्रज कर्यो।
तब सुरपति बरषा करी, यों नृप सबको दुख हर्यो॥

शल अरु भूरिश्रवा भूरि बाह्लीक नृपतिसुत।
शन्तनुके सुत भीष्म भये बसु ज्ञानी श्रीयुत॥
पितु प्रसन्नता हेतु प्रतिज्ञा दुष्कर कीन्हीं।
संतति सुख ऐश्वर्य भोग इच्छा तजि दीन्हीं॥
नहीं पुत्र तोऊ सकल, द्विज तरपन नित प्रति करैं।
होहिं जगतमहँ यशस्वी, जो पितु आयसु सिर धरैं॥

सोरठा—क्यौं बसु लीयो जन्म, शौनक मुनि शंका करी।
सुनो कथाको मरम, कहैं सूत, मुनिवर कहूँ॥

छप्पय—वसुगण इक दिन जात रहे नभमहँ ह्वै प्रमुदित।
मुनि बशिष्ठ मग मिले भूलि नहिँ करी दंडवत॥
निरखि अवज्ञा क्रोध ब्रह्मसुत तिनिपै कीन्हों।
जनमो भूपै सकल शाप तिनि सबकूँ दीन्हों॥
ते ई गंगा गरभतैं, नृप शन्तनुके सुत भये।
जनमत फेंके सात सुत, एक भीष्म ही बचि गये॥

गंगा जननी कर्‌यो भीष्मको पालन बनमहँ।
शन्तनुकूँ पुनि दये पाइ सुत हरषित मनमहँ॥
लाइ करे युवराज राजमहँ चहुँदिशि मंगल।
शन्तनु नृप इक दिवस गये मृगया हित जंगल॥
बहु हिंसक पशु बध करे, पहुँचे नृप यमुना जहाँ।
लखी पार पथिकनि करत, दाशराज कन्या तहाँ॥

जिनतैं कीन्हे प्रकट पराशर ब्यास महामुनि।
योजनगंधा तुरत भई कन्या मुनि जनि पुनि॥
लखि कन्या सौन्दर्य नृपति अतिशय हरषाये।
कन्या याचन हेतु दाशपतिके ढिँग आये॥
नृप प्रस्ताव निषाद सुनि, हरषित ह्वै बोल्यो बचन।
सत्यवती सुत होहि नृप, देहुँ करहिं यदि आप प्रन।

शन्तनु भये उदास लौटि निजपुरमहँ आये।
निज पितु इच्छा जानि कुँवर केवटढिंग धाये॥
समुझि दाशपण भीष्म प्रतिज्ञा दारुण कीन्हीं।
त्यागों पद युवराज सीख सब जगकूँ दीन्हीं॥
जीवन भर क्वारे रहे, पितु प्रसन्नताके निमित।
सत्यवतीके गरभतैं, द्वै शन्तनुके भये सुत॥

चित्राङ्गद नृप भये हते गन्धर्वराज रन।
दूसर कुँवर विचित्रवीर्य नृप करे प्रजागन॥
काशिराजकी सुता तीनि हरि लईं दुलारीं।
शन्तनु लघु सुत संग विवाहीं उभय कुमारीं॥
बोली अम्बा भीष्मतैं, वरे शाल्व मैंने प्रथम।
धर्म जानि पठओ तहाँ, इच्छा पूरन करहु मम॥

अम्बा इच्छा जानि शाल्व ढिंग भीष्म पठाई।
कन्याने निज प्रीति विवशता नृपहिं जनाई॥
बल अभिमानी शाल्व कहै—पर विजित कुमारी।
करूँ ग्रहण तो होहि जगतमहँ हँसी हमारी॥
अति अनुनय अम्बा करी, झुड़कि कहै नृप क्यौं बकै।
अपर गृहीता नारिका ? नृप पटरानी बनि सकै॥

ह्वै निराश वनमाहिं लौटि अम्बा तव आई।
बिलखि-बिलखि निज विपति कथा सब मुनिनि सुनाई॥
दैवयोगतैं परशुराम मुनिवर तहँ आये।
सुनि अम्बा वृत्तान्त राम जल नयननि छाये॥
अम्बाके हित भीष्मतैं, परशुराम लड़िवे चले।
शुभागमन मुनि सुनि तुरत, हरषि भीष्म गुरुतैं मिले॥

करिवे अम्बा ग्रहण भीष्मतैं राम कही परि।
मानी नहिँ जब बात कही मुनि—आ मोतैं लरि ॥
भयो युद्ध घनघोर देवव्रत परि नहिँ हारे।
भये राम सन्तुष्ट सकुचि बनमाँहिं सिधारे ॥

अम्बा बनिकें शिखडी, भीषमतैं बदलो लयो।
नृप विचित्र आसक्त अति, निज रानिनिमहँ ह्वै गयो ॥

भयो रोग क्षय पुत्र हीन नृप स्वरग सिधारे।
माता सुमिरन करे व्यासमुनि तुरत पधारे ॥
कुरुकुलको क्षय जानि व्यासतैं करवाये सुत।
अंध भये धृतराष्ट्र पाण्डु अरु विदुर नीतियुत ॥

पुत्रवती रानी लखी, भये हृदय सबके हरे।
शन्तनु सुतने सब तनय, पालि पोसि समरथ करे ॥

अंध न राजा होहि विदुर दासीके जाये।
तातै मझिले पांडु प्रजाने भूप बनाये ॥
अंध कुमर धृतराष्ट्र संग व्याही गान्धारी।
जानि अंध पति कबहुँ स्वयं नहिँ वस्तु निहारी ॥

पति समान अन्धी भई, नयननि पट्टी बाँधिकें।
बिपुल कीर्ति जगमहँ लही, यों अखंड व्रत साधिकें ॥

एक सुता शत पुत्र जने गान्धारी रानी।
दुर्योधन जिनिमाँहिं ज्येष्ठ अतिशय अभिमानी ॥
कौरव सबकूँ कहे पाडुसुत पाँचहु पाण्डव।
अर्जुन हरिके सखा जरायो जिन बन खाण्डव ॥

भारतमहँ कौरव मरे, पुत्र मित्र बान्धव सहित।
कुन्ती माद्रीमहँ भये, पाँच पाडु के अमरसुत ॥

भये धरमतैं धरमराज वृकउदर वायुतैं।
पार्थ इन्द्रतैं जने पृथाने परम चावतैं॥
नकुल और सहदेव अश्विनीकुमर भिषक्वर।
माद्रीतैं उत्पन्न करे दोऊ सुत सुन्दर॥
पाँचहुँकी पत्नी भई, द्रुपदसुता अति सुन्दरी।
पूर्व जन्मको वृत्त सुनि, आपति काहू नहिं करी॥

धर्मराज प्रतिविन्ध्य पुत्र तामें प्रकटायो।
भीम पुत्र श्रुतसेन द्रौपदीदेवी जायो॥
अर्जुनतैं श्रुतिकीर्ति नकुलतैं सतानीक सुत।
श्रुतकर्मा सहदेव तनय अति भये धरमयुत॥
अश्वत्थामा सबनिके, काटे सिर सोवत शिविर।
अनव्याहे सबही मरे, चल्यो वश तिनको न फिर॥

धर्मराजकी पत्नि पौरवीतैं सुत देवक।
भीम घटोत्कच कर्यो हिडिम्बामहँ सुत सेवक॥
दूसरि कालीमाहि सर्वगत सुत प्रकटाये।
श्रीसहदेव सुहोत्र कुमर विजयाने जाये॥
नकुल करेणुमती उदर—तैं कीन्हे नरमित्र सुत।
अर्जुन रानी तीनितैं, भये तीनि सुत विनययुत॥

दोहा—पुत्र घटोत्कच भीमके, भये हिडिम्बा माहिं।
कहूँ कथा संक्षेपमहँ, सब प्रसंग मिलि जाहिं॥

छप्पय—लाक्षागृहतैं भागि गहन वन आये पाण्डव।
लखि हिडंबने बहिन हिडंबा तहँ पठई तब॥
मारन आई स्वयं भीम लखि भई विमोहित।
जान्यो भाव हिडम्ब भीमतैं भिड्यो क्रूरचित॥
द्वंदयुद्ध भीषण भयो, भिड़े भीम नहिं भय कर्यो।
यातुधानको बल घट्यो, मरि धरनीपै गिरि पर्यो॥

करी हिडम्बा विनय दया कुन्तीकूँ आई।
आयसु दीन्हीं भीम राक्षसी बहू बनाई॥
ताहीतैं सुत भयो घटोत्कच अति बलशाली।
इन्द्र-दत्त जो शक्ति कर्णकी कीन्ही खाली॥
अर्जुन बध हित सुरक्षित, रखी कर्णने यत्न करि।
बीर घटोत्कचकें लगी, लगत भूमिपै पर्‌यो मरि॥

इरावान सुत जन्यो उलूपीतैं अरजुनने।
दई पुत्रिकाधर्म सहित मणिपुरनरेशने॥
सुता ब्याहि प्रण कर्‌यो पुत्र जो पुत्री जावै।
सो होवै युवराज हमारो पुत्र कहावे॥
तासु गर्भतैं अति बली, पुत्र बभ्रुवाहन भयो।
लखि रण कौशल जासुको, बिस्मित अरजुन ह्वै गयो॥

अश्वमेधको अश्व बभ्रुवाहनने पकर्‌यो।
रनको बानो पहिन पितातैं लड़िवे निकर्‌यो॥
अति ई भीषण युद्ध भयो पितु सुततैं हार्‌यो।
सुनी मातु जिह बात पुत्रने मम पति मार्‌यो॥
अति विलाप पति हित कर्‌यो, आइ उलूपी समरमहँ।
मणितैं पति जीवित करे, गये पार्थ निज नगरमहँ॥

रचवायो अति स्वाँग सूत्रधर सखा कृष्णने।
हरी सुभद्रा जाय द्वारकामहँ अरजुनने॥
तिनके सुत अभिमन्यु बीरगति भारत पाई।
नारि उत्तरा गर्भवती हरि चरननि आई॥
तातैं जनमे भागवत, देवरात नृप परीक्षित।
सुर-तरु सम पूरन करहिँ, प्रजा मनोरथ धरमबित॥

भूर भागवत भये अंतमहँ भये भक्तियुत।
जनमेजय श्रुतसेन भीम अरु उग्रसेन सुत॥
जनमेजय जो ज्येष्ठ भये सुत शतानीक तिनि।
पच्चिस पीढ़ीमाँहिँ भये क्षेमक भूपतिमनि॥

क्षेमक ही जा वंशके, सबते अंतिम नृप भये।
कलि प्रभावतैं शुद्ध कुल, छिन्न भिन्न अब ह्वै गये॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें पुरुवंश वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[४१]

नृप ययातिके भये पुत्र चौथे जो नरपति ।
तिनि, अनु, को अब वश सुनहु जो है पावन अति ॥
भये सभानर, चक्षु, परोक्षहु अनुसुत रनजय ।
पुत्र सभानर भये कालनर तिनिके सृञ्जय ।
जनमेजय सृञ्जय तनय, महाशील तिनि पुत्र बर ।
महामना तिनिके तनय, तिनितैं नृपवर उशीनर ॥

बनिकें अग्नि कपोत उशीनर नृप ढिंग आये ।
शक्र श्येन धरि रूप भूपकूँ वचन सुनाये ॥
यह कपोत आहार हमारो जाकूँ त्यागो ।
नृपति कहे—तजि जाहि, और चाहे जो मागो ॥
माग्यो नृपतनमास जब, हरषि कर्‌यो तन समरपन ।
कृष्ण धैर्यतैं करे बश, लह्यो अन्तमहँ भक्तिधन ॥

तिनिके सुत शिबि भये क्रोधजित धैर्यवान अति ।
माँग्यो द्विज सुत-मास दयो हरषित ह्वै भूपति ॥
लैन परीक्षा महलमाँहि द्विज आगि लगाई ।
तनिक न बिचलित भये बात द्विज शीश चढ़ाई ॥
आये अज द्विज वेष धरि, लई परीक्षा कठिन-अति ।
मृतक पुत्र जीवित भयो, शिबि नरपतिकी बिमल मति ॥

भये चारि शिवितनय पिताके सम तेजस्वी ।
वृषादर्भ कैकेय सुवीरहु मद्र यशस्वी ॥
नृपति तितिक्षु सुशील उशीनर नृप लघुभ्राता ।
पुत्र उशद्रथ भये हेम सुत तिनि सुख दाता ॥

हेमपुत्र सुतपा भये, सुतपा सुत बलि जग विदित ।
राज पाट धन धान्य पशु, सुख सब किन्तु न एक सुत ॥

भूनति बलि सुत बिना रहे मनमहँ अति चिन्तित ।
सूझै नहीं उपाय नृपतिकूँ सुत हित समुचित ॥
गंगातटपै बैठि बात नृप मनमहँ आई ।
द्विजतैं सुत करवाहुँ नाव इक दई दिखाई ॥

दीर्घतमा तामे बँधे, पड़े तपस्वी अंध मुनि ।
नाव पकरि तटपै करी, भये मुदित मुनिनाम सुनि ॥

दीर्घतमातैं भये नृपति सुत क्षेत्रज सुखकर ।
अंग बंग अरु कलिंग सुह्म अरु पुण्ड्र अन्ध्रवर ॥
निज निज नामनि पूर्वदेशमहँ थापित कीन्हें ।
दासीसुत मुनि दीर्घतमा निज सुत करि लीन्हें ॥

अङ्गराज खनपानसुत, दिविरथसुत तिनके अधिप ।
तिनिके सुत नृप धरमरथ, पुत्र चित्ररथ भये नृप ॥

रोमपादहू नाम न तिनके कोई सन्तति ।
शान्ता कन्या दई मित्र लखि दशरथ भूपति ॥
विप्रनिको अपमान कर्‌यो नहिं सुरपति बरसे ।
भीषन पर्‌यो अकाल अन्न बिनु सब जन तरसैं ॥

भये चित्ररथ दुखित अति, सम्मति मन्त्रिनितैं करी ।
कौन पापतै घोर यह, विपदा हम सबपै परी ॥

बोले द्विज—यदि ऋष्यशृंग मुनिवर पुर आवें ।
तो सुरपति अविलम्ब राजमहँ जल बरसावें ॥
मुनि आगमन उपाय बतायो सब मिलि मन्त्रिनि ।
ऋषिकुमार तप निरत न निरखी नारी नयननि ॥
यदि प्रमदाको मुख कमल, निरखैं तो फँसि जायँगे ।
रूपाकर्षण डोरिमहँ, बँधे विवश ह्वै आयँगे ॥

मानी सम्मति नृपति बारबनिता बुलवाईं ।
मुनि मोहनकी बात सुनी सब ई घबराईं ॥
बोली वेश्या वृद्ध—प्रभो ! यदि आज्ञा पाऊँ ।
तो छल बल करि ऋष्यशृङ्ग मुनिवरकूँ लाऊँ ॥
सब सामग्री सौंपि नृप, वेश्याकूँ अयासु दई ।
ठगिनी तनया दास सँग, चढ़ि नौकापै चलि दई ॥

बीर्य विभाण्डक पान नीर सँग हरिनी कीयो ।
जन्यो शृङ्ग सिर पुत्र नाम शृङ्गी धरि दीयो ॥
विषयनितैं अनभिज्ञ वृत्ति तपमाँहि लगाई ।
नारि न कबहूँ लखी करन छल वेश्या आई ॥
परमसुन्दरी षोडषी, लखि समुझे मुनि तपोधन ।
आलिङ्गन छलतैं कर्यो, मोहित मुनिको कर्यो मन ॥

अति भोरे सब बात कपट बिनु पितुहिँ बताई ।
समुझि गये मुनि यहाँ कामिनी कुलटा आई ॥
सुत समुझायो वत्स ! न मुनि खल तोहिं भुलायो ।
अब करियो मत बात असुर माया करि आयो ॥
पितु आयसु मानी नहीं, दशा अनोखी सी भई ।
घायल करि शर सैनते, ठगिनी ठगिकै लै गई ॥

मुनि सुतके छिपि पास बारवनिता पुनि आई।
नौकापै ले गई नाव पुनि तुरत चलाई॥
गावति रसमय गीत नृत्य करि वाद्य बजावति।
अंग देश लैगयी चित्तमहँ अति-हरपावति॥
ऋष्यशृङ्ग पहुँचे जबहिँ, राज्यमाँहिँ बरषा भई।
भये सुखी सब प्रजागन, विपति भूतिनी भगि गई॥

शान्ता कन्या संग व्याह मुनि सुतको कीन्हों।
सुकुमारी लहि बहू जगत-सुख मुनि अब चीन्हों॥
कोप विभाण्डक कर्‌यो रोपतैं नृप पुर आये।
बहु स्वागत नृप कर्‌यो बहू सुत पैर गिराये॥
पुत्रबधू सँग पुत्रकूँ, लखि मुनिवर लट्टू भये।
उड़्यो क्रोध कर्पूर सम, पुत्र वधूकूँ बर दये॥

ऋष्यशृङ्ग मुनि गृही बने बहु मख करवाये।
दशरथ अरु नृप रोमपाद जिनितैं सुत पाये॥
रोमपादके भये पुत्र चतुरङ्ग अमानी।
दशवीं पीढ़ी भये कर्ण कुन्तीतैं दानी॥
सुत ययाति अनुवशमहँ, भये धरमयुत भूप सब।
कह्यो वंश अनु पुरूको, कहूँ द्रुह्युको वंश अब॥

नृपति द्रुह्यु सुत बभ्रु बभ्रुसुत सेतु जिनहिंतैं।
सेतुपुत्र आरब्ध भये गान्धार तिनहुतैं॥
चौथी पीढ़ी माँहि प्रचेता भये शक्तियुत।
तिनतैं अति बलवान भये तेजस्वी शत सुत॥
उत्तर दिशिके भूप ये, म्लेच्छनिके राजा विदित।
अब तुर्वसुको सुनहु कुल, जो ययातिके द्वितिय सुत॥

तुर्वसुके सुत बह्नि बह्निके भर्ग भूमिपति।
भानुमान् तिनि तनय त्रिभानुहु तिनि सुत दृढमति॥
नृप त्रिभानुके तनय करन्धम भूप मनस्वी।
मरुत नृपति तिनि पुत्र यज्ञ करि भये यशस्वी॥

पुरुबशी दुष्यन्तकूँ, गोद लयो परि लोभ बश।
निजकुलमहँ पुनि मिलिगयो, वढ़्यो न पुनि तिनि वंश यश॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें अनुवंश वर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त



अथ द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

[४२]

यदुनन्दनके पाद पद्ममहँ शीश नवाऊँ।
अब ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदु-वंश सुनाऊँ॥
भये चारि यदुपुत्र सहस्रजित, क्रोष्ठा, रिपु, नल।
नृप सहस्रजित पुत्र भये शतजितहु अमितबल॥
शतजितके सुत महाहय, हैहय दूसर वेणुहय।
हैहय कुल बलवान अति, करी जिननि दश दिशि विजय॥

हैहय नृपतें भये आठवीं पीढ़ी अरजुन।
कार्तवीर्य अति बली, सहसभुज सिद्ध सर्वगुन॥
दत्तकृपातें सिद्धि सहससुत सब सुख पाये।
परशुरामतें सुतनि संग मरि स्वरग सिधाये॥
सहसनिमहँतें पाँच सुत, बचे जयध्वज मधु वृषभ।
सूरसेन ऊर्जित नृपति, सुनहु जयध्वज कुल ऋषभ॥

तालजङ्घ तिनि पुत्र भये तिनिके हू शत सुत।
वीतिहोत्र ही बचे शेष लरि मरे शक्तियुत॥
वीतिहोत्रके पुत्र भये मधु वृष्णि भये तिनि।
माधव अरु वार्ष्णेय नामतैं पालहिं देशनि॥
क्रोष्टा यदुके द्वितिय सुत, वृजिनवान तिनिके तनय।
वृजिनवानके वंशकूँ, सुनहु विप्रगन ह्वै सदय॥

चौथी पीढ़ीमाँहिं भये शशविन्दु योगिवर।
भोग, योग, ऐश्वर्य बसहिं जिनमहँ गुन सुखकर॥
दश सहस्र तिनि नारि कोटि दशसुत उपजाये।
जिनको वैभव देखि स्वर्गपति इन्द्र लजाये॥
पृथुश्रवा तिनिके तनय, धर्मपुत्र तिनि श्रेष्ठतर।
उशना—उशनाके तनय, रुचक पञ्च तिनि सुत सुघर॥

पुरुजित, पृथु, रुक्मेष, रुक्म ज्यामघहु रुचकके।
ज्यामघ छोटे नृपति न सतति कोई तिनके॥
शैव्यानृपकी नारि भूप निजवश करि लीन्हों।
सतति इच्छा रही ब्याह डरि और न कीन्हों॥
सीमावर्त्ती भूपकी, कन्या, हरि लाये नृपति।
रथासीन युवती लखो, बोली शैव्या कुपित अति॥

कुहक! कहाँतैं सौति पकरि रथपै बैठाई।
डरिके बोले भूप—पतोहू रानी! आई॥
बोली रानी—वन्ध्या हौ क्यौ बात बनाओ।
कैसे मेरी होहि पतोहू मर्म बताओ॥
बोले नृप—भावी तनय, बने वधू बर सुर दियो।
गर्भवती शैव्या भई, सुत विदर्भ पैदा कियो॥

कुश, क्रथ, नृपवर रोमपाद तीनिहुँ विदर्भ सुत।
क्रथकी पीढ़ी बीस माँहिं प्रकटे नृप सात्वत॥
सात्वतके भजमान, दिव्य, भजि, वृष्णि हु अन्धक।
देवावृध अरु महाभोज सातहुँ सुत धार्मिक॥
षष्ठ पुत्र भजमानके, देवावृधके बभ्रुसुत।
पिता पुत्र दोऊ परम, ज्ञानी तारक योगयुत॥

महाभोजतें भये भोजवंशी यादवगन।
वृष्णिवंश वार्ष्णेय कहावैं यदुकुलनन्दन ॥
वृष्णि तनय नृप भये युधाजित पौत्र वृष्णि पुनि।
सुत स्वफल्क तिनि पुत्र भये अक्रूर सरिस मुनि ॥
अन्धक दशमी पीढ़िमहँ, उग्रसेन देवक भगत।
देवकतनया देवकी, उग्रसेनको कंस सुत ॥

नृप विदर्भकी सुता विवाही उग्रसेनकूँ।
सुता प्रेमतैं नृपति पठाये दूत लेनकूँ ॥
मातु पिता घर जाय भई स्वच्छन्द दुलारी ॥
सखियनि सँग सजि फिरै वननिमहँ राजकुमारी ॥
मदमाती पद्मावती, विहरति है स्वच्छन्द जहँ।
धनदवास गोभिल असुर, आयो घूमत फिरत तहँ ॥
उग्रसेनको रूप धर्‌यो रानी बहकाई।
कर्‌यो कपट छल असुर कुमरि एकान्त बुलाई ॥
थापन कीयो गर्भ जानि पीछे पछिताई।
आई महलनि तुरत पिता, पतिघर पहुँचाई ॥
कालनेमि आयो उदर, होनहार सो है गयो।
जन्यो पुत्र दश वरष महँ, असुर कंस सोई भयो ॥

दो०—भोज वंशमें कंस खल, भयो दुष्ट अति क्रूर।
वंश विदूरथ को सुनो, भये पुत्र जिनि शूर ॥

छप्पय—पुत्र चित्ररथ भये विदूरथ शूर तनय तिनि।
शूर तनय भजमान भये तिनिके सुत नृप शिनि ॥
शूर मारिषा माँहि जने दशसुत तेजस्वी।
तिनिमहँ सबतैं बड़े भये वसुदेव यशस्वी ॥
तिनिकी पत्नी त्रयोदश, भाग्यवती अति देवकी।
अजर अमर जगमहँ भईं, जननी बनि हरिदेवकी ॥

सुता शूरकी पाँच बहिन बसुदेव भूपकी ।
पृथा सबनिमहँ बड़ी खानि जो रही रूपकी ॥
कुन्तिभोजकूँ दई नृपति पुत्री करि लीन्हीं ।
दुर्वासाने देव बुलावन विद्या दीन्हीं ॥
आवाहन रविको कर्यो, मत्र परीक्षा करन हित ।
आये सम्मुख सूर्य जब, भयो कुँवरि चित संकुचित ॥

दो०—हाथ जोरि कुन्ती कहे, छमहु देव मम दोष ।
बोले रवि ह्वै के विवश, मनमहँ राग न रोष ॥

छप्पय—व्यर्थ आगमन होहि न मेरो तेरो अनहित ।
थापन कीयो गर्भ भई कुन्ती अति लज्जित ॥
करी प्रकट नहिँ बात जन्यो छिपिके सुन्दर सुत ।
अति तेजस्वी बीर कवच पहिने कुडलयुत ॥
कन्या सुत अनुपम निरखि, लोक लाज वश डरि गई ।
प्यायो पय मुख चूमिकें, पुनि पुनि लखि व्याकुल भई ॥

धरि मन्जूषामाँहिं नदीमहँ बत्स बहायो ।
चवल, यमुना, गग बहत चम्पारन आयो ॥
अधिरथ पकर्यो तुरत मुदित ह्वै पुत्र बनायो ।
राधाकूँ दै दयो कर्ण राधेय कहायो ॥
पृथा विबाही पाण्डुकूँ, पाण्डव जाके भये सुत ।
श्रुतदेवातैं भयो खल, दन्तवक्र सुत पापयुत ॥

केकयकूँ श्रुतकीर्ति विबाही बूआ हरिकी ।
चौथी बूआ भई सुरानी अवन्तीशकी ॥
श्रुतश्रवाने चेदिराज शिशुपालहु जायो ।
मारि चक्रतैं कृष्णचन्द्र बैकुन्ठ पठायो ॥
नौ चाचा भगवानके, कछु मौसिनिके पति भये ।
कछु इत उततैं बहू लै, बेटावारे बनि गये ॥

शूर पुत्र वसुदेववंशकूँ अवहौं गाऊँ।
तेरह रानी हतीं सवनिके नाम गिनाऊँ॥
सुनहु रोहिणी, इला, पौरवी अरु धृतदेवा।
भद्रा, मदिरा, देवरक्षिता अरु सहदेवा॥
शान्तीदेवा सुन्दरी, श्रीदेवा हू नामकी।
उपदेवा इन सबनिमहँ, सबतैं छोटी देवकी॥

आठ सात दश एक सबनिके जनमे सुत बर।
आठ देवकी जने भये अष्टम श्री गिरिधर॥
जब जब होवै धरम नाश बाढ़ैं अघ अतिशय।
तब तब लै अवतार करहिँ धरि धरम अभ्युदय॥
कौन कहि सके कौतुकी—के कारण अवतार को।
कौतुकवश क्रीड़ा करत, काज सरत संसारको॥

जापै चितवन मधुर मंद मुसकानमयी है।
नयन पुठनितैं पान करन छवि सुधामयी है॥
कानन कुंडल सुघर कपोलनि आनन दमके।
चक्षु रश्मिके परत सुदामिनि सम सो चमके॥
इकटक निरखहिँ नारि नर, मन अटकै चित चकित ह्वै।
परैं पलक व्यवधान तो, निमिकूँ कोसें दुखित ह्वै॥

जन्म अष्टमी पक्ष कृष्ण भादौंकी रजनी।
विद्युत घनमहँ चमक उठै काँची जनु बजनी॥
पितुकूँ आज्ञा दई गये गोकुल गिरिधारी।
नंद यशोदा महल मनहुँ खिलि गई उजारी॥
गो गोपी अरु गोप गन, सँग नित हरि क्रीड़ा करहिँ।
असुर देहिँ दुख सबनिकूँ, हनि तिनकूँ जग-भय हरहिँ॥

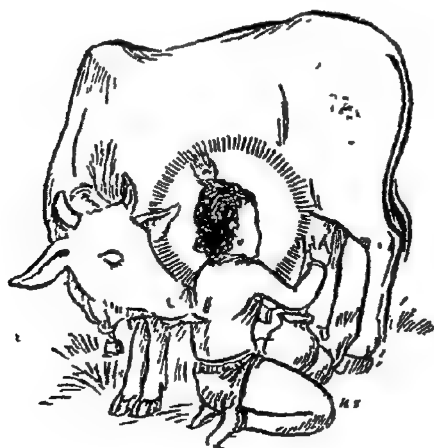
गोकुलतैं पुनि लौटि सबल मथुरामहँ आये।
डरि हरि रनकूँ छोरि भगे रनछोर कहाये॥
आइ द्वारका ब्याह सहस सोलह करवाये।
पुत्र पौत्र बहु बढ़े निरखि यादव गरबाये॥
करि कुलको संहार हरि, उद्धवकूँ शिक्षा दई।
यों प्रभासमहँ अन्तकी, पूरन भूलीला भई॥

सो०—सब अवतारहि अंश, परिपूरनतम कृष्ण हैं।
कृष्ण चन्द्रको वंश, सुनि सुख पावें सकलजन॥

इति श्रीभागवतचरितके चतुर्थाहमें यदुवंशवर्णन नामक ब्यालीसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण-अठारहवें दिनका विश्राम]

इति चतुर्थाह समाप्त।



अथ पञ्चमाह

अथ प्रथमोऽध्यायः

[१]

जय जय अखिल अनन्त अनामय अज अविनाशी ।
जय जय राधारमन गोप गोलोक निवासी ॥
जय मथुराधिप वासुदेव जय देवकिनन्दन ।
जय नँदनंदन दुष्ट निकंदन जन-मनरंजन ॥
जय वृन्दावनचन्द्र ,जय, जय व्रजवनितनि हृदयधन ।
जय रसमय गाऊँ चरित, तव चरननिमहँ रमहि मन ॥

कहत कहत हरिवंश भर्यो शुक मुनिको हिय जब ।
सुधि बुधि तनकी भूलि भये अति प्रेम मगन तब ॥
अश्रुधार वहि गंग धारकूँ अधिक बढ़ावै ।
कण्ठ भयो अवरुद्ध वचन मुखतें नहिँ आवै ॥
तनु पुलकित सब अँग शिथिल, रस सरितामें वहि गये ।
प्रभुपद मनमें वन्दिकें, ज्योंके त्यों ई रहि गये ॥

प्रभुचरननिकूँ वन्दि व्याससुत मौन भये जब ।
सुनि सञ्चित चरित्र विकल ह्वै बोले नृप तब ॥
चन्द्रवंश रविवंशमाँहिँ बहु भये भूप गन ।
सुनि शुभ तिनिके चरित मुदित अति भयो मोर मन ॥
अब अति रसमय सारमय, सुखमय अनुपम शक्तिमय ।
कृष्ण चरित गुरुवर ! कहहु, हृदय होहि प्रभु शक्तिमय ॥

तनय रोहिणी देव ! प्रथम बलदेव बताये ।
मातु देवकी पुत्र आठमहँ फेरि गिनाये ॥
एक देहतै द्वै उदरनिमहँ जनमे कैसे ।
कहे शेषकी कथा, भये संकर्षण जैसें ॥
घर तजि व्रजमहँ दुबकिके, बसे अहीरनिबंश क्यौं ।
क्यौं भागे रन छोड़िके, मारे मामा कंस क्यौं ॥

नंद यशोदा त्यागि फेरि क्यौं मथुरा आये ?
क्यौ मथुरातैं बन्धु द्वारका लाइ बसाये ?
क्यौ अति मधुमय चरित गोप गोपिनिहिं दिखाये ?
क्यौं व्रजमहँ नहि लौटि यशोदानन्दन आये ?
व्रज मथुरा अरु द्वारका, महँ जो लीला करी हरि ।
पावन परम प्रसंग प्रभु, मोहि सुनावहिं कृपा करि ॥

सुनत परीक्षित प्रश्न महामुनि शुक हरषाये ।
तनु अति पुलकित भयो अश्रु नयननिमहँ छाये ॥
अति उत्कठित चित्त नृपतिकी करें प्रशंसा ।
'धन्य धन्य अभिमन्युतनय कुरुकुल अवतंसा ॥
सफल जन्म भूपति भयो, कृष्ण चरनमहँ भई रति ।
अन्त समय हरि कथामहँ, उमग्यो अस अनुराग अति ॥

राजन् ! हरिकी कथा गग सम सबकूँ तारै ।
जो पूछै जो सुनै प्रेमतें जो उच्चारै ॥
मज्जन, दरशन, परश, बालु मिट्टी अथवा जल ।
नाम श्रवन गुन कथन सबहिं मेटैं मनके मल ॥
अथवा नियमित देशमहँ, ही श्रीगगाजी बहहिं ।
किन्तु कथा मन्दाकिनी, नर सबई थल पै लहहिं ॥



यशोदारानी और वसुदेव पृ० ५३२



कंसको आकाशवाणी पृ० ५२२

अब नृप ! उत्तर देहुँ करे जो प्रश्न जगत हित ।
प्रभु अवतार निमित्त कहहुँ चित करहु समाहित ॥
बाढ़े भूपै असुर वेष भूपतिको धारें ।
करें यथेच्छाचार साधु गो विप्रनि मारें ॥
प्रकटे अगनित असुरगन, अवनि अधिक पीड़ित भई ।
धेनु रूप धरि दुखित ह्वै, अज चतुरानन ढिँग गई ॥

अश्रुविमोचन करति दुखित मनमहँ पछितावति ।
कमलासनने लखी बिकल भूदेवी आवति ॥
अज प्रनाम करि कहे—मातु ! च्यों अश्रु बहाओ ।
निज दुख कारन जननि ! मोइ अविलम्ब बताओ ॥
बसुधा बोली—वत्स ! बहु, बोझ बढ़्यो भारी भई ।
सहनशीलता नृप बने, असुरनि मेरी हरि लई ॥

सुरगन करहु उपाय भार मेरो उतरै सब ।
जाउँ रसातल चली वहनकी शक्ति नहीं अब ॥
सुनिकैं भूकी बात सुरनि ब्रह्मा उकसाये ।
सुनि बोले अज—असुर अवनिपै अगनित आये ॥
गंगाधर शिव ढिँग चलहु, वे कछु युक्ति बतायँगे ।
फिर उनकूँ हू संग लै, कमलापति ढिँग जायँगे ॥

ब्रह्मादिक सब देव अवनि सँग शिव ढिँग आये ।
पुनि अज, हर, सुर अन्य छीर सागरहिं सिधाये ॥
देखि अपार पयोधि विष्णुकूँ खोजे सब सुर ।
परि दरशन नहिं भये अधिक चिन्ता व्यापी उर ॥
ह्वै अधीर श्रद्धा सहित, लगे करन विनती सबहिं ।
अज आयसु हरिकी सुनी, बोले देवनितैं तबहिं ॥

होवें यदुकुलमाँहिं शीघ्र अवतरित मुरारी।
हरितें अविदित नहीं बिपतिकी बात तुम्हारी ॥
प्रभु प्रकटैं बल सहित योग माया हू आवै।
पूजित जगमहँ होहि असुर सहार करावै ॥
यदुकुल गोकुलमाँहि सब, सुर सुरललना देह धरि।
प्रकटि करहु सुर तनु सफल, ऐसी आयसु दई हरि ॥

हरि सन्देश सुनाइ धराकूँ धीर बँधायो।
ब्रह्मलोक अज गये सबनिको मन हरषायो ॥
निज ललननिके सग अवनिपै जनमे सुरगन।
जिन सौंप्यो सर्वस्व कृष्णकूँ निज तन मन धन ॥
सुनहु कथा पावन परम, श्रीमथुराकी मधुर अब।
शूरतनय बसुदेवजी—के बिबाहको वृत्त सब ॥

श्रीबसुदेव बिबाह देवकीके सँग कीन्हों।
देवक अधिक दहेज बिदाबेलामहँ दीन्हों ॥
रोवत रोवत चली देवकी पीछे घरके।
अश्रु बिमोचन करत गये रथ तक सब घरके ॥
सब परिजन रोवन लगे, नेह कंस हियहू जग्यो।
कर्यो सारथी दूर रथ, स्वय हरषि हाँकन लग्यो ॥

पथमहँ सहसा सुनी कंसने नभतें बानी।
जाकूँ लैकें जाय प्रेमतें ओ! अज्ञानी ॥
ताको अष्टम पुत्र पकरिकें तोइ पछारै।
भरी सभामहँ खेंचि मञ्चतें निश्चय मारै ॥
कंस सुनत अति कुपित ह्वै, चल्यो देवकी बध करन।
लखि उद्यम बसुदेवजी, सहमि सरल बोले बचन ॥

शूर कुलीन प्रवीन भोजकुलभूषन सज्जन।
क्यौं कायरता करहु बहिनकूँ मारौ राजन॥
अरे, जीव तो नित्य देह छिनभंगुर नश्वर।
जनम्यो सो ध्रुव मरै, देरमहँ अथवा सत्वर॥

भगिनी मोरी भययुता, अबला दुहिताके सरिस।
थर थर काँपति देहु अब, अभय दान तजि द्वेष रिस॥

कंस कहै—वसुदेव! सुनी नहिँ नभ की वानी?
कौन मृत्युकूँ प्यार करै प्रानी अज्ञानी॥
सुनि बोले वसुदेव—देवकीतैं नहिँ कछु डर।
अष्टम सुततैं मृत्यु कही सोई भयको घर॥

अच्छा हौं यह प्रन करहुँ, अष्टम सुतकी का कथा।
जनमत सुत सौंपों सबहिँ, होहि न तुमकूँ अब व्यथा॥

कंस कर्यो विश्वास बहिन निज फिर नहिँ मारी।
आये घर वसुदेव देवकी दुखित विचारी॥
प्रथम पुत्र वसुदेव देवकी जाया जायौ।
भयो न मनमहँ मोद हरष हियमहँ नहिं छायौ॥

अति कोमल अति सरल शिशु, सुन्दर सरसिज सम बदन।
सुनत कंसपन मातुको, अति ई कातर भयो मन॥

बोले श्रीवसुदेव—प्रिये! मत मोह बढ़ाओ।
निज पन पूरन करूँ, कुमरकूँ अब ई लाओ॥
बिलखि हियेतैं लाइ प्याइ पय सुत मुख चूम्यो।
कंपित कर ह्वै गये मातुको माथो घूम्यो॥

बिलखत जाया छोड़ि सुत, लयो अंक वसुदेव पुनि।
क्रूर कंसके गये ढिँग, विहस्यो सुतको जनम सुनि॥

जीजाजी ! तुम दृढ़ प्रतिज्ञ समदरसी ज्ञानी।
शुचिता समता सत्य सरलता तुमरी जानी॥
शिशुकूँ घर लैजाउ काम का मेरो जाते।
अष्टम जो हो पुत्र बतायो सुर भय ताते॥
सुनि लौटे बसुदेवजी, दुष्ट बचन नहिं सत गने।
समुझि महाखल कंसकूँ, भये पुत्र लखि अनमने॥

लौटि गये वसुदेव तबहिं नारद मुनि आये।
कस कर्यो सत्कार कहे मुनि—सुत च्यौ लाये॥
कस कहानी कही बताई नभकी बानी।
नारद बोले बिहँसि—नीति नृप नहि तुम जानी॥
नंद और वसुदेवके, बन्धु दार सुत सुहृदगन।
सुर सुरललना सबहि ये, चहत भार भूको हरन॥

नभबानीमहँ छिपी गूढ अतिशय चतुराई।
कमल कुसुममहँ सबहि आठवें दल तो भाई॥
यादव तुमरे शत्रु करो इन सबतैं कुट्टी॥
मुनिने खलकूँ तुरत पढ़ाई उलटी पट्टी॥
नारद आगि लगाइकें, गये कंस चिन्ता भयी।
आयसु यादवदमनको, सेना पतिकूँ दै दयी॥

मँगवाये पुनि तुरत पकरि बसुदेव देवकी।
जजीरनितै जकड़ि हनै सुत कस पातकी॥
पितु पग बेड़ी डारि बनाये बन्दी भूपति।
सिहासनपै स्वयं बिराज्यो पापी खलमति॥
अनाचार नित प्रति करै, अति दुःखित यादव भये।
कोशल, कुरु, केकय, निषद, सब दशनिमहँ भगि गये॥

तृणावर्त चाणूर पूतना और बकासुर।
धेनुक, केशी, द्विविद, प्रलम्बहु असुर अघासुर ॥
कंस सचिव सब बने करें उतपात निरन्तर।
कछु यादव बचि गये न पावें परि ते आदर ॥
विनय करत सब अति दुखित, होयँ अवतरित हे प्रभो।
काहिं असुर अब अघ अमित, हरहु भार भूको विभो ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें वसुदेव विवाह श्रीकृष्ण-जन्मोपक्रम नामक प्रथम अध्याय समाप्त।



अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

भर्‌यो पापको घड़ा हिल्‌यो हरिको सिंहासन ।
आयसु नटवर दई योगमायाकूँ तत् छिन ॥
रहै रोहिनी मातु नंद बाबाके घरमहँ ।
तेजोमय मम अंश देवकी बसै उदरमहँ ॥
ताहि रोहिनी गर्भमें, थापित करि प्रकटो तुमहु ।
वासुदेव हम होहिं तुम, सुता यशोदाकी बनहु ॥

हरिकी आयसु पाइ योगमाया तहँ आई ।
मातु देवकी गर्भ खेंचिकें गोकुल लाई ॥
कर्‌यो रोहिनी उदर तेज माता मुख छायौ ।
दशम मासमहँ पुत्र राम संकरषन जायौ ॥
भाद्र शुक्ल छटि तिथि लगन, शुभ मुहूर्तमहँ उदित हैं ।
दये दरश व्रज जन सकल, नाचे उदितइ मुदित हैं ॥

इत व्रजपति नँदराय पुत्र हित मख करवाये ।
विप्र वेदवित् बहुत मंत्र जप करन बिठाये ॥
उदर यशोदामाँहिं योगमाया आई जब ।
व्रजमहँ मंगल भये परस्पर कहहिं गोप सब ॥
लाल होइगो नंदके, हल्ला व्रजमहँ मचि गयो ।
गाऊ गोप गोपीनिको, तब हियो शीतल भयो ॥

जाया श्रीवसुदेव देवकी जन्यो न लल्ला।
गिर्‌यो सातमों गर्भ मच्यो मथुरामहँ हल्ला॥
अति ई चिन्तित कंस भयो अब अठमों आवै।
जीवित यदि रहि जाय मोइ यमसदन पठावै॥
इत रक्षा साधन सुदृढ़, करे विविध मथुरेशने।
उत मनमहँ वसुदेवके, कर्‌यो प्रवेश परेशने॥

विश्वम्भरको तेज शूर-सुत धार्‌यो मनमहँ।
सुखद सौम्य दुर्धर्ष तेज तिनि प्रकट्‌यो तनमहँ॥
पतितैं सोई तेज देवकी देवी धार्‌यो।
दिव्य कान्ति लखि कंस सभय हियमाहिं विचार्‌यो
निश्चय जाके गर्भमहँ, वास शत्रुने करि लयो।
विनु प्रकासकी निशामहँ, भवन प्रकाशित ह्वै गयो॥

बालकपनते लखी देवकी घरके माहीं।
किन्तु कबहुँ अस प्रभा अनोखी देखी नाहीं॥
होहि न जब तक प्रसव तबहिँ तक जाकूँ मारूँ।
प्रथमहिँ दुख जड़ काटि विपति भागीकूँ टारूँ॥
लैकेँ कर करवाल खल, पुनि मनमहँ सोचन लग्यो।
ब्याह समय वसुदेवने, छल करिके मोकूँ ठग्यो॥

अब यदि मारूँ जाहि बात मेरी बिगरेगी।
बध भगिनीको सुनत प्रजा सबरी भड़केगी॥
अबला बंदिनि बहिन गर्भिनी भयकी मारी।
जाके बधतें होहि नाश श्री कीर्ति हमारी॥
तेज देवकीको लख्यो, कुल कलंक कातर भयो।
साँप छँछूँदरिके सरिस, असमजसमहँ परि गयो॥

निश्चय कीयो जिही बहिन बध सबविधि अनुचित ।
दृढ़ प्रतिज्ञ बसुदेव होहिं नहिं तिनतैं अनहित ॥
बधको त्यागि बिचार निरन्तर हरिहि बिचारै ।
असन बसन अरु शयनमाँहिं जगदीश निहारै ॥
बैरभावतैं बिष्णु भजि, तदाकार मन बनि गयो ।
शत्रु समुझि सर्वेशकूँ, अति सर्वोत्तम पद लह्यो ॥

समुझि देवकी गर्भमाहिं हरिहर चतुरानन ।
सब सुर मुनि सँग आइ करे हरिको अभिबादन ॥
प्रभुकी इस्तुति करैं मधुर स्वरमहँ मिलि सुरगन ।
जय सर्वेश्वर, सत्य, नित्य, शिव, अगजग भावन ॥
बिश्वबृक्षके बीज तुम, सब भूपनिके भूप हो ।
सगुण सर्वगत सत्वमय, सुखकर सत्य स्वरूपहो ॥

गर्भस्तुति

हे सत्यसंकल्पा, सत्य स्वरूपा, तीनिकालमहँ सत्या ।
हे ऋत सत्नेता, चितके चेता, नाथ ! निरञ्जन नित्या ॥
जगवृक्ष सनातन, पुरुष पुरातन एकाश्रय बनवारी ।
सुखदुख द्वै फल हैं, तीनि मूल हैं, पुरुषारथ रसचारी ॥
पञ्चेन्द्रिय विष हैं, छै स्वभाव हैं, त्वचा सात सब मानें ।
शाखा आठहु हैं, नौ कोटरहैं, पत्र प्रान दश जानें ॥
बैठे द्वै खग हैं, ईश जीव हैं, तुमही सबके कारन ।
कल्यान करन जग, यही सत्य मग, करहिं रूप बहु धारन ॥
तव चरननाव करि, भवसागर तरि, स्वयं तरे जग तारें ।
जे अहंकार वश, गाईं न तव यश, वृथा मनुज तनु धारें ॥
जे तव चरनन रत, भजहिं सतत सत, ते न जगत पुनि आवें ।
जो अलख अगोचर, रहे निरन्तर, तिनिकूँ कैसे गावें ॥

जो चिन्तें चरनन, करहिं कीरतन, नाम रूप नित ध्यावें।
ते घरमें रहिकें, द्वन्दनि सहिकें, अन्त परमपद पावें॥
तव जनम, करम, गुन, साधक, साधन, सब है लीला खेला।
तनु समय समय धरि, खलनि दमन करि, दुख मेंटें अब बेला॥
भूभार बढ़यो है, धरम घट्यो है, आइ असुर दलमारें।
हम चरन परत हैं, विनय करत हैं, भूको भार उतारें॥
यों बिनती कीन्हीं, जननी चीन्हीं, सब मिलि धीर बँधावें।
मुख मातु मलीना, ह्वै अति दीना, देवनि पद सिर नावें॥

छप्पय—देखि देवकी देव दीन ह्वै बोली बानी।
हे चतुरानन! शंभु! सुरेश्वर! वीनापानी॥
हौं अबला अति अधम दया दासीपै कीजे।
कंस न मारै सुतहिं कृपा करि जिह बर दीजे॥
सुरगन बोले—मातु! तुम, जगजननी मत भय करो।
अखिलभुवनपति होहिं सुत, हनहिं कंस धीरज धरो॥

आश्वासन दै देव विनय करि स्वरग सिधारे।
भये सकल अनुकूल लगन, ग्रह नखतहु तारे॥
वृष्टि करहिं सुर सुमन दुन्दुभी मधुर बजावैं।
विद्याधर गन्धर्व अपसरा नाचैं गावैं॥
कृष्णा भादौं अष्टमी, नखत रोहिणी शुभ समय।
अर्धरात्रि बेला सुखद, तब प्रभु प्रकटे प्रेममय॥

अप्राकृत शिशु सुघर चतुरभुज कमलनयन वर।
शंख, चक्र, अरु गदा पद्म सुन्दर आयुधधर॥
पीताम्बर वर अंग सजल जलधर शोभा तनु।
कारे कुंचित केश रूप साकार भयो जनु॥

सुन्दर श्याम शरीरकी, शोभा अति अद्भुत बनी।
शोभित तनुकी कान्तितैं, कंकन कुंडल करधनी ॥

बनि विस्मित वसुदेव वत्स को बहुरि विचारें।
नहिं सुत ये सरबेश चतुरभुज शुभ वपु धारें ॥
कर्‌यो मानसिक दान ध्यानतैं चीन्हे श्रीहरि।
परम पुरुष परमेश, जानि विनवें बन्दन करि ॥

आप अखिल जगदीश हैं, पहिचाने प्रभु परावर।
अज, अनादि, विश्वेश विभु, व्यापक सुखकर तत्व-पर ॥

वसुदेव-विनय

(१)

प्रभु ! तुम पुरुष पुरातन ईशा।
सबके साक्षी शुद्ध सनातन, जगन्नाथ जगदीशा।
प्रथम करो रचना जा जगकी, पालो बनि अवनीशा ॥१॥ प्रभुतुम०
प्रकृति, महत्, मन, अहकार गुन, देव कोटि जो तीसा।
करें काज तुमरी अनुमतितें, हो तुम भुवनाधीशा ॥२॥ प्रभुतुम०
जो जा जगकूँ सत्य वतावें, बुद्धि हीन ते कीशा।
करो कृपा करुनाके सागर, तव पद नाऊँ शीशा ॥३॥ प्रभुतुम०

(२)

विभु ! तुम अखिलेश्वर दुखहारी।
निरगुन, निष्क्रिय निरविकार, नित, उतपति थिति लयकारी ॥१॥ विभु०
तुमरे आश्रित हैं गुन तीनिहु, तुम अज हरि त्रिपुरारी।
शुक्ल, रक्त अरु श्याम वरन बनि, गुन-लीला विस्तारी ॥२॥ विभु०
करी विनय सुरगुन सब मिलिकें बहुविधि नाथ तुम्हारी।
शरनागत प्रतिपालक हौ प्रभु विनती सुर स्वीकारी ॥३॥ विभु०

जगकूँ करन कृतारथ मम धर, प्रकटे श्याम विहारी।
कंसत्रासतें दुखी दयानिधि नाशौ विपति हमारी ॥४॥ विभु०

दोहा—नारायन निज सुत निरखि, विनय करति है मातु।
कंस कुटिलता सुमिरिकें, थर थर काँपतु गातु॥

(१)

नाथ! तुम सदानंद सुखराशी।
नेति नेति कहि वेद बखानत हौ घट घटके वासी ॥१॥ नाथ तुम०
अज, अखिलेश, अनामय, अच्युत, अजर, अमर, अविनाशी।
अभिमानी तुमकूँ नहिं पावैं, पावैं नर विश्वासी ॥२॥ नाथ तुम०
रूप चतुरभुज देव छिपाओ, होहि हमारी हाँसी।
जामें वास करतु जग सबरो, सो मम उदर निवासी ॥३॥ नाथ तुम०
कंश कहावै बन्धु हमारो, परि है सत्यानाशी।
तातें अभय करौ अखिलेश्वर, हौं तव चरननिदासी ॥४॥ नाथतुम०

छप्पय—करी देवकी विनय विवशता बहुरि बनाई।
बोले श्रीभगवान—मातु तू क्यौं घवराई॥
पृश्निगर्भ अरु रूप बनायो वामन मैंने।
तृतिय चतुरभुज रूप निहार्यो अबई तैंने॥
डरहु कंसतैं माहिं तो, गोकुलमहँ पहुँचाइकें।
छोरी नँदरानी जनी, धरहु यहाँ तिहि लाइकें॥

दोहा—हरि दरशन दंपति करे, भये प्रसन्न महान।
गोकुलमहँ वसिवो चहें, सोचें अब भगवान॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें चतुर्भुज श्रीकृष्ण जन्मनामक द्वितीय अध्याय समाप्त।

अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

छप्पय—आयसु हरि सिर धरी करी गोकुल की त्यारी।
परीं हथकरीं हाथ जाउँ कस बात बिचारी॥
स्वय हथकरीं गिरीं कटीं पाँइनिकी बेरी।
धरे सूपमहँ श्याम चले नहिं कीन्हीं देरी॥
शेष छत्रवत्त बनि गये, बरषातैं बालक बच्यो।
इत गोकुलकी गैलमें, यम-भगिनी कौतुक रच्यो॥

गर्जन तर्जन करति बहत यमुना मदमाती।
भावी पतिकूँ निरखि उछरि मनमाँहि सिहाती॥
लैकें हरिको नाम शूर-सुत जलमहँ प्रबिशे।
कालिन्दीके कमल नयन निज पति लखि बिकसे॥
पद परसन हित बढीं जब, समुझि गये बसुदेव सब।
लै चरनामृत घटि गईं, भये प्रेमतैं पार तब॥

इत यसुदाके भये गर्भके पूरे दिन जब।
साजि प्रसवको साज प्रतीक्षा करहि नारि सब॥
गोबर, तिल, शिल, सींक, शस्त्र, घट, जल, फल, मिट्टी।
धूप, तेल, रँग, दुग्ध, दीप सरसों, पट, घुट्टी॥
और प्रसवकी वस्तु सब, लैं बूढ़ी गोपी जुरीं।
इत उत बिहरत मुदित मन, खन खनाईं ककन चुरीं॥

पल पलमहँ सब करें प्रतीक्षा नंदलालकी।
नँदरानीके होहि न पीरा प्रसवकालकी॥
लीला अपनी तहाँ योगमाया फैलाई।
सोये सबई योगनींदमहँ लोग लुगाई॥
परी पलँग पै यशोदा, तनिक आँखि सी झपि गई।
भयो कछू परि सुधि नहीं, छोरा वा छोरी भई॥

दोहा—उत आये वसुदेवजी, पहुँचे नँदके द्वार।
कैसें जसुमतिके निकट, पहुँचूँ करें विचार॥

छप्पय—लखि ब्रजमहँ वसुदेव गोप गोपी सब सोवत।
पुनि पुनि सुत मुख कमल नेहतैं जोहत रोवत॥
कंपित करतैं कृष्ण यशोदा शयन सुवाये।
कन्या लई उठाय नीर नयननिमहँ छाये॥
हौलै तैं मुख चूमिकें, कन्या लैकें चलि दये।
करि कालिन्दी पार पुनि, चुपके घरमहँ घुसि गये॥

सुत वियोग अरु कंस त्रासतैं माँ घबराई।
पतितें कन्या लई सेजपै साथ-सुवाई॥
पहिनी श्रीवसुदेव हथकरीं बेरीं फिरतैं।
दम्पति थर थर कँपै कंस पापीके डरतैं॥
रुदन योगमाया कर्‌यो, द्वारपाल सब जगि गये।
बाल जन्म सुनि कहनकूँ, तुरत कंस ढिँग भगि गये॥

कहे कंसतें—देव! देवकी बालक जायौ।
उग्रसेन-सुत सुनत जन्म रिपु अति घबरायौ॥
हड़बड़ाइकें उठ्यो मूँड़ चौखटमहँ लाग्यो।
सुधि न मुकुटकी रही केश खोले ही भाग्यो॥
आयो कारावास महँ, सरांटेतैं घुसि गयो।
कन्या देखी पलँगपै, निरखि तेज विस्मित भयो॥

कन्या माँगी रोइ देवकी बोली भैया ।
पुत्री सम लघु वहिन तुम्हारी मैं हूँ गैया ॥
मारे सब सुत किन्तु कृपा कन्यापै कीजे ।
परि पैरनिपै करूँ याचना जाकूँ दीजे ॥
अतिम मेरी धीय है, जिह अनरथ का करेगी ।
रँगौ रक्ततैं हाथ क्यौं, देह सदा नाहँ रहेगी ॥

एक न खलने सुनी सुता पत्थरपै पटकी ।
सटकी कर तैं तुरत, बनी देवी नभ चटकी ॥
अष्ट भुजी बनि गई दिव्य आयुध धारें कर ।
शङ्ख, चक्र, धनु, खड्ग, चर्म, तिरशूल, गदा, शर ॥
लक्ष्य कसकूँ करि कहे, मंद मोइ मारे वृथा ।
प्रकट्यो तेरो शत्रु तो, मति दै बालनिकूं व्यथा ॥

यों कहि अन्तरधान भई फिरि दीखी नाहीं ।
विन्ध्याचलमहँ जाइ भई पूजित जगमाहीं ॥
सुनि चिन्तित अति भयो कंस पुनि पुनि पछितावै ।
जाइ देवकी निकट दुखित है के समुझावै ॥
करि बन्धनतैं मुक्त पुनि, कराइ प्रदर्शित प्रेम अति ।
चिकनी चुपरी बात करि, देहि भुलावो मूढ़—मति ॥

बोल्यो—भगिनी ! भाम ! छमहु अपराध हमारे ।
मैंने शठता करी तुम्हारे शिशु सब मारे ॥
सुरनि कर्यो छल कपट पाप मोतें करवाये ।
करि नभबानी मृषा बहिनके सुत मरवाये ॥
अस्तु, भई सो भई अब, हौं लज्जित अरु दुखित अति ।
भोगें है प्रारब्ध बश, सब सुख दुख सम्पति बिपति ॥

सुख दुखकूँ को देहि, भाग्य ही सब करवावै।
दैवाधीन वियोग दैव ही लाइ मिलावै ॥
अहं बुद्धि अज्ञान जन्म प्रारब्ध बनावे।
हर्ष, शोक, भय, लोभ मोह आदिक उपजावे ॥
ऐसें ज्ञान बघारिकें, करि प्रसन्न दोऊ लये।
कारागृहतें मुक्त ह्वै, हरि चित धरि निज घर गये ॥

इत ह्वै के अति दुखित कंस घर अपने आयौ।
मन्त्री लये बुलाय वृत्त सब सत्य सुनायौ ॥
सुर-द्रोही खल दैत्य कहैं—का चिन्ता स्वामी।
अज हरि हर सुर करें कहा हम स्वेच्छागामी ॥
सुर निरबल पुनि विप्रगन, मख कारें पोसें रिपुनिकूँ।
मारें जहँ द्विज मुनि मिलहिं, आयसु देवें सबनिकूँ ॥

कुटिल कुमन्त्रिनि कही कंस सो सब कुछ मानी।
गो, द्विज, तप, मख, वेद नाशकी मनमहँ ठानी ॥
काल-पाशमहँ फँस्यो असुर हिंसा हित मानै।
समुझे संतनि शत्रु द्विजनि निज नाशक जानै ॥
यों मथुरामहँ असुर गन, धेनु द्विजनि दुख देहिं नित।
मातु यशोदा सुत जन्यो, सुनहु भयो जो वृत्त इत ॥

इति श्री भागवत चरितके पञ्चमाहमें कंस चिन्ता नामक तीसरा अध्याय समाप्त

[पाक्षिक पारायण नवम दिवस विश्राम]

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

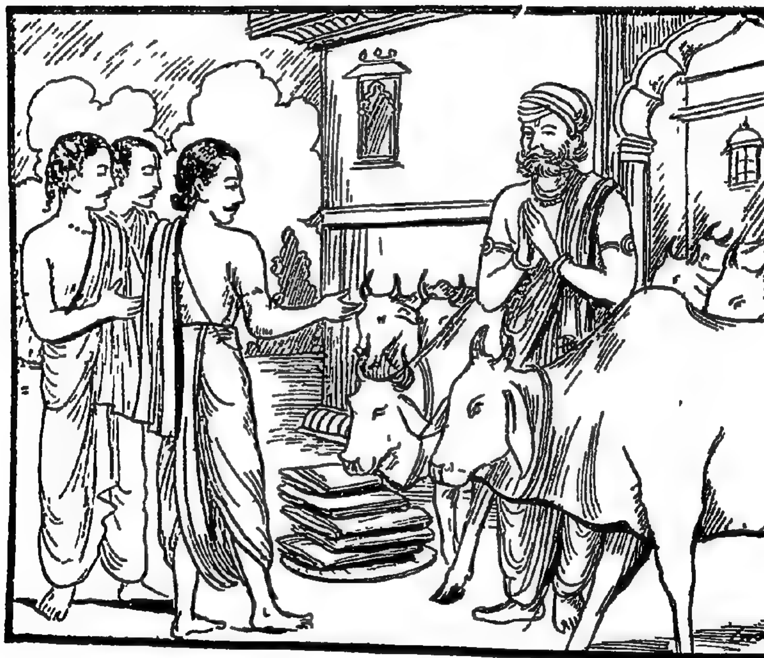
धरि हरिकूँ वसुदेव गये तब जगीं लुगाईं ।
अति सभ्रमके सहित दौरि सौहरि घर आईं ॥
बनि नीलम नवनीत यशोदा ढिंग जनु विकसित ।
नील कमल जनु खिले चन्द्र जनु मिलि के अगनित ॥
बोलि उठीं सब एक सँग, यशुमतिने लल्ला जन्यो ।
छिनभरमहँ श्रीनंदघर आनँदको सागर बन्यो ॥

जाइ सुनन्दा कह्यो—जन्यौ भाभीने लाला ।
छिनमहँ फैली बात सुनत दौरीं ब्रजबाला ॥
नंद अकबके भये देहकी दशा भुलानी ।
छायो नयननि नीर पुलक तनु गद् गद् बानी ॥
आवें गावत गीत सब, अति उमङ्गमहँ गोप गन ।
पकरि नचावें नदकूँ, डगमग डगमग होहि तन ॥

ज्योतिषविद्या-विज्ञ बहुतसे विप्र बुलाये ।
नंदमहरि सुत जन्यो सुनत सब द्विज उठिधाये ॥
सबने आशिष दई ग्रहनिके सुफल बताये ।
सबकी सम्मति समुझि नद यमुनामहँ न्हाये ॥
बूढ़े बाबा पहिन पट, आज अनँगके सम खिले ।
वृद्ध गोप अरु द्विजनि सँग, प्रमुदित अन्तःपुर चले ॥



पूतनापयपान पृ० ५५१



नन्दजी द्वारा विप्रोंको गोदान पृ० ५२७

गोपिनितैं घर. घिर्यो गीत सोहरिके गावे।
सुधि बुधि भूलैं खडी हटैं नहि विप्र-रटावें॥
ज्यों त्यों भीतर गये द्विजनि सामान मँगाये।
जातकरम अरु देव पितर पूजन करवाये॥
व्रज सुख सागर शान्त सम, उमड़ि हरष प्रकटित करे।
उदित भये व्रजचन्द्र हरि, रत्ननितैं तटकूँ भरे॥

लौकिक वैदिक कर्म करे सुतके मंगल हित।
निरखि निरखि सुत बदन हृदय होवै आनंदेत॥
चितमहँ अति उत्साह विचारे का दै डारूँ।
ऐसे सुतकू पाइ क्यौं न सरवसु हौ वारूँ॥
यौं - विचारि चौपारिमहँ, कोषाध्यक्ष बुलाइके।
बोले—ताले खोलिकें, धन सब देउ लुटाइकें॥

पुनि बुलवाये गोप कही—खिरकनिकूं खोलो।
मनमानी द्विज धेनु लेहिं मत तिनतैं बोलो॥
चाँदीके खुर करो सींग सोंनेतैं मढिकैं।
सुन्दर वस्त्र उढ़ाइ पूँछ मोतिनितै जड़िकें॥
माँगे जितनी जो गऊ, तितनी तिनकूँ दानमहँ।
देहु न होवै नेंकहू, कमी मान सम्मान-महँ॥

सब गोपनि व्रजराज नंद आज्ञा सिर धारी।
कनक रतन लै धेनु दान की कीन्हीं त्यारी॥
हल्ला व्रजमहँ मच्यो सुनत सब द्विजगन आवें।
छाँटि छाँटिकें धेनु लेहिं अतिशय-हरषावें॥
पाँच, सात, दश, बीस, सौ, लेऔ चाहे सहस हू।
आज खिरक सबई खुले, रोक टोक नहिं नेंक हू॥

बीस लच्छ दै धेनु नहीं सन्तुष्ट भयो चित।
तिलके परवत सात रत्न पट दीये हरषित॥
द्यो शुद्धि हित दान यही सद्व्यय धनको है।
शुद्ध कालतैं भूमि तोष कारन मनको है॥
मज्जनतें तनु वस्तुकी, शुद्धि शौचतैं कहे मुनि।
गर्भादिक संस्कारतै, आशय होवै शुद्ध पुनि॥

तपतैं इन्द्रिय शुद्ध होहि मखतैं सब द्विज जन।
हरि भक्तनितै देश दानतैं होहि शुद्ध-धन॥
सब वस्तुनिकी शुद्धि विविध बिधि वेद बताई।
नँदनदनके जन्म समय बिधिवत करवाई॥
देशकालवित नंदको, दान देत नहिं भरहि मन।
आवे दशहू दिशनितैं, मागध बन्दी सूतगन॥

सबकी आशा लगी नित्य ही टोह लगावैं।
नँदरानी कब कमलनयन लालाकूं जावे॥
धुनि भेरीकी सुनी सुनत सब जन हरषाये।
जामा पगडी पहिन दौरि गोकुलमहँ आये॥
दूरिहि तैं अति मुदित मन, जय जय कार सुनाइकें।
आशिष सुतकूं देहि शुभ, गीत मनोहर गाइकें॥

दो०—पीरी पगरी पहिनकें, वृद्ध एक हरषात।
आयो, पूछे नदजी, आप कौन हैं तात?
नंद वचन सुनि मुदित मन, करि पुनि पुनि परनाम।
कवितामें बूढ़ो कहे, हरष सहित निज नाम॥
गोपेश्वर ब्रजराजजी! मैं तुम्हरो हूँ सूत।
दौर्यो आयो सुनत ही, भयो तुम्हारे पूत॥

सवैया

ब्रजराज ! कहँ सब सूत हमे, मुनि व्यास कृपा करिकें अपनाये ।
सुनिकें सुत जन्म उमंग भरे, हियमहँ हुलसे सरसे इत आये ॥
दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये ।
ब्रजमहँ बिहरें घुँघची पहिरें, बर देहु जिहीं तनु धूरि लगाये ॥

कवित्त

धरती धन धाम धान मानहू न माँगो भूप,
मोहनकी मोहनी-सी मूरति निहारौंगो ।
पढ़िकें पुरान ज्ञान भयो नाहँ बाढ़्यो मान,
दान पाहि आइ ब्रजमाँहिँ डेरा डारौंगो ॥
कुलको तुम्हारो सूत नयो नयो भयो पूत,
धूतताई छांड़ि अब जीवन सुधारौंगो ।
नेहतैं निहारि मुख समुझि श्याम सत्यसुख,
साँवरी-सी सूरतपै सरवसु हौ वारौंगो ॥

दो०—नद सूत सत्कार करि, लख्यो वृद्ध पुनि एक ।
पूछें—तुम को ? सो कहै, शीश भूमिमें टेक ॥

दो० मढ़्यो झगा सोने तगा, दगा करूँ नहिँ नेंक ।
हरो पेच तुर्रा पगा, 'जगा' हमारो बेक ॥

पुनि हँसि पूछें नद जी, को यह तुमरे पास ।
कहै जगा ब्रजराज यह, आयो लै बड़ आस ।

सवैया

धोती फटी कछु नाक कटी पिचकी चिपटी हमरो जिह भैरा ।
कंठ सुरीलो रँगीलो बड़ो चटकीलो छबीलो बड़ो ही गवैया ॥
भाँग चढ़ाइ नहाइ मलाई उड़ाइ चुराइ सदाहिँ रुपैया ।
दूबर दूध बिना ब्रजराज ! बड़ोहि लबार जि माँगतु गैया ॥

दो०—बालक पकरे ऊँट लखि, परिचय पूछे नंद।
जगा कहे-मुसकाइके, उर छायौ आनद ॥

सवैया

ऊँट बिठाइ सिहाइ रह्यो करहाइ रह्यो करमहँ बड़ फोरा।
गोरो छिछोरो लुटेरो बड़ो चख चाहि रह्यो जिह माँगत तोरा ॥
मगमहँ बतरावतु आवतु हो शरमावत माँगत पाग पिछौरा।
ब्रजराज! बतावत लाज लगे जिह छत्तिस छोरिनिमहँ इक छोरा॥

दो०—लखी लुगाई नदजी, पूछे—तुमरी कौन।
झाँकि बगल बोल्यो जगा, सुनों भूप यह जौन ॥

सवैया

हे ब्रजराज! कहूँ नहिँ लाज समाज जुर्यो जिह फूहरि नारी।
सोवे सिदौसि अबेरि उठे नित देइ परोसिनिकूँ गिनि गारी ॥
आवत देखि पिछारि परी चटकीलि रँगीलि टरी नहिँ टारी।
घरवारि हमारि हिलावति हार चलावति सैन मँगावति सारी ॥

दोहा—लदे ऊँट लखि नंदजी, पूछे का इन माहिँ।
है प्रसन्न बोल्यो जगा, मनमहँ गोप सिहाहिँ ॥

दोहा—बही पुरानी सबनमहँ, सब गोपनिके वंश।
आप सबनिके मुकुटमनि, गोपबंश अवतंश ॥
बंश बखानों जगाजी, आयसु दीन्हीं नंद।
खोलि बही बाँचन लाग्यो, करि नयननिकूँ बंद ॥

छप्पय—प्रथम गोपकुलमुकुट भये नृप चन्द्र सुरभिजी।
भीमक, तिनके पुत्र भये तिनि, 'महाबाहु' जी ॥
तिनिके सुत गोपेश 'काननेचर' बड़भागी।
'कञ्जनाभि' तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी ॥

कंजनाभिके पुत्र सुठि, 'वीरभानु' आभीरवर।
'कृती' तनय तिनि गोपपति, 'धर्मधीर' सुत धीरधर॥

धर्मधीरके भद्रश्रवा, तिनि 'देवराज' सुत।
देवराजके 'नवल' नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥
'काननेन्दु' सुत द्वितिय पुत्र 'जयसेन' भये तिनि।
देवमीढ़ मथुरेश संग ब्याही कन्या जिनि॥
ताके सुत परिजन्यजी, नानाकी गोदी गये।
तिनिके अति सुन्दर सुघर, पुत्र पाँच पैदा भये॥

दोहा—ते पाँचों ई शूर अति, भये ज्येष्ठ उपनंद।
नन्दन अरु सन्नन्दजी, अभिनन्दन श्रीनंद॥

छप्पय—मातामहकी गोद गये गोकुलमहँ गोपति।
वृद्ध भये परिजन्य गये तपहित हरषित अति॥
गद्दीको अधिकार पाइ उपनन्द सिहाये।
सुकृति मूर्ति श्रीनन्द यशस्वी भूप बनाये॥
इतनो जानूँ वंश मैं, नारायन किरपा करी।
वृद्धावस्थामहँ बहुरि, गोद यशोदाकी भरी॥

दोहा—दान मान करि जगतको, नंद निहारे फेरि।
करिकें जय जयकार तब, बन्दी बोल्यो टेरि॥

कवित्त—नंदको दुलारो सुत प्यारो ब्रज-वासिनिको,
कोई कहै कारो परि जगको उजारो है।
वेद नहिँ पायो भेद ताहीको नाल छेदि,
आगनमें गाढ़ि तापै अगिहानो वारो है॥

भक्तनिको जीवनधन गोपिनिको प्रान मन,
वालनिको बन्धु धेनु धनको रखवारो है।
यशुमतिको लाल ब्रज गोपिनिको ग्वाल बाल,
दर्शनतें निहाल होहुँ सरवसु सो हमारो है॥

दो०—रायभाट ज्यों चुप भये, त्योंही गायकआइ।
बाजे सबहिं मिलायके, गावै भजन बनाइ॥

पद

नंद घर आज भयो आनन्द।
मातु यशोदा लाला जायो, ज्यों पूनोंने चंद ॥१॥
गोपी गोप गाय गायक-गन, सबहिय सरसिज वन्द।
नदनँदन रवि उदित भये हिय, बिकसे पंकज बृन्द ॥२॥
बसुधा मुदित समीर बहत वर शीतल मद सुगन्ध।
गरजत मंद मंद घन नभमहँ, प्रकटे आनँद कंद ॥३॥
माया-बन्धु सिन्धु सब सुखके स्वय सच्चिदानन्द।
प्रभुके प्रभु विभु विश्वविदित वर, काटैं यमके फंद ॥४॥

पद

यसोदा कैसो लाला जायो।
कोई कहे कुसुम अरसी सम अंजन अपर बतायो ॥१॥
कोई दूर्वाघन सम शोभा उत्पल द्युति कहि गायो।
कोई कहे जनम नहिं याको छिपि मधुवनतैं आयो ॥२॥
कोई कहे ब्रह्मको बाबा वेदहु भेद न पायो।
कैसो कहैं कहत सकुचावत नहिं हम दरशन पायो ॥३॥
गोविंद गोकुल कुँवर गोपपति गोपीश्वर कहलायो।
कहा कहूँ कछु कहत न आवै चरन कमल सिरनायो ॥४॥

छप्पय—अति आनदित नद सबनिको स्वागत कीन्हों।
जाने जो जो करी याचना सो सब दीन्हों॥
बार बार ह्वै मुदित गीत लालाके गावें।
गोरगान अरु वाद्य सुनत अतिशय हरषावें॥
नदलालके जनमको, घर घरमें उत्सव भयो।
मानों ब्रजमडल सकल उत्सवमय ही बनि गयो॥

सकल राजपथ गली गिगरे घर पिछवारे।
सबनि स्वयं मिलि सींक सोहनी लाइ बुहारे॥
चन्दनको छिरकाव इतर करपूर मिलायौ।
करि केशरिकी कीच सबनि निज घर लिपवायौ॥
टाँगीं बन्दनवार वर, घर घर सुघर बनाइकें।
बिच बिच कलियाँ कुसुमकी, पल्लव ललित लगाइकें॥

लीपे पोते द्वार बार घर अटा अटारी।
आँगन, पौरी, बगर, रसोई और तिवारी॥
नीली पीरी हरी गुलाबी पचरँग सारीं।
टाँगीं द्वारनि लाइ कबहुँ जो नहीं निकारीं॥
दीप चौमुखा वारिकें, कलशनिके ऊपर धरे।
मगलदायक द्रव्य सब, घर घर एकत्रित करे॥

गैयाँ सब वगदाइ खिरकमहँ फिरितै लाईं।
तेल फुलेल लगाइ न्हवाईं फेरि सजाईं॥
मोरपंखके मुकुट लसै घुँघुरू पग जिनिके।
गेरू तेल मिलाइ रँगे तन सींग सबनिके॥
गड़ा गरमहँ चमकनों, कनकहार पहिराइकें।
हरषित ह्वै पूजन करें, शाल दुशाल उढ़ाइकें॥

बछरा गोप कुमार सजावें सब हरषावे ।
बहुबिधि करें किलोल तुरावें मूँड़ हिलावे ॥
अति चंचलता करे फुदुकि इततें उत आवे ।
मानों बालगुपाल जनमको हरष मनावे ॥
बहु उमगमहँ उछरिके, सबई भागे नन्द घर ।
मनहु सुनमुने सखाकी, लगी चटपटी दरश उर ॥

सजिबजिकें सब गोप ढोल करताल बजावत ।
नन्द महलकी ओर जाहिं सब रसिया गावत ॥
पहिन अँगरखी पाग दुपट्टा उरमहँ डारें ।
लम्बे तिलक लगाइ मूँछ अरु बाल सम्हारें ॥
चले बिबिध बिधि भेंट लै, प्रेम रसिकतामहँ पगे ।
मनहुँ कमल बिकसित सुनत, भ्रमर तुरत उतई भगे ॥

मिलहिं परसपर गहकि हृदयतैं हृदय सटावैं ।
कोई छूवै पैर गहकिकें ताहि उठावैं ॥
कोई केशर मलै सुपारी बीरी देवैं ।
कोई लैन न पाहिं झपटि तिनि करतैं लेवैं ॥
सिद्धिनि सब सत्कार करि, जनम सुफल अपनो कर्‌यो ।
गोकुल धन, मणि, अन्न अरु, सबई बस्तुनितैं भर्‌यो ॥

इत गोपिनि सम्बाद सुन्यो सुत यशुमति जायो ।
रोम रोममहँ हरष सुनत सबईकें छायो ॥
नन्द भवनकूँ गमन करनकी करीं तयारीं ।
लँहगा नये निकारि पँचरङ्गी ओढ़ीं सारी ॥
सुमन लगाइ सजाइ कच, वैंणी बाँधी विधि विहित ।
सिर सिंदूर लगाइ पुनि, अधररँगे शोभा सहित ॥

मुखमहँ मिस्सी पान नाक नकवेसरि सोहै।
कुच कुङ्कुमकी कीच कठिनता रति मनमोहै॥
बेंदी, कुंडल, हार, भूमका, कठा, लटकन।
चम्प कली, जौमाल, बरा, बाजूबंद कगन॥
मुदरी, छल्ला, आरसी, पगपान हु पायल, कड़े।
पहिने पैरनि साँट अरु, पाइजेब, छमछम, छड़े॥

करि सोलह श्रृंगार बनीं रति सम सब नारीं।
चाँदीको लै थार चावकी वस्तु सम्हारीं॥
किसिमिसि, गोलागिरी, छुआरे और मखाने।
पिस्ता अरु बादाम, चिरौंजी, एला दाने॥
हँसली, कठुला, कौंधनी, कुरता, टोपी, खिलौना।
न्योछावर, राई, नमक, लयो ललाकूँ भुन्भुना॥

लीये कर उपहार भावमहँ भरिकें भामिनि।
कटि कुचभार सम्हारि नमितसी ह्वै गजगामिनि॥
नेह पागमहँ पगी सरसतासी सरसावति।
मुखरित पथकूँ करते चलति रस सो बरसावति॥
देह गेह सुधि बुधि न कछु, कृष्ण कृपाकी कामिनी।
नवजलधरमहँ चमकिवे, चली मनहुँ सौदामिनी॥

काननि कुंडल कनक समुज्वल मणिमय विलसत।
चमकैं दमकैं हार मनहुँ नभ उडुगन बिकसित॥
घूँघटतैं मुख ढक्यो मनहु छिपि घनमहँ निशिपति।
भरहिं सिरनितैं सुमन मनहु शर छाँड़ैं रतिपति॥
हृदय हार अरु कुचनमहँ, होवे संघर्षण प्रबल।
ज्यों भकभोरें मीन द्वै, मानसरोवर हृत्कमल॥

ब्रजरजमहँ पदकमल परहिँ पृथिवी हरषावैं।
जा रजकूँ अज शम्भु चहे परि ते नहिँ पावैं॥
प्रकटे ब्रजमहँ नंदलला हम सबके भरता।
मिलन चली जिमि जाहिँ उदधितैं मिलिबे सरिता॥

यह अभिसार विचित्र अति, जामें नहिँ ईर्ष्या कपट।
छाँड़ि सौतिया डाह सब, जाहिं हँसति खेलति प्रकट॥

यों सब मिलिकें नन्द महलमहँ पहुँचीं बाला।
जहँ गुलगुलसे परे मुनमुना यशुमति लाला॥
बाँधे मुट्ठी नयन मूँदि कछु ध्यान लगावत।
चरननि रहे हिलाय मनहुँ जग सार बतावत॥

बोलीं बुढ़ियाँ—वत्स! तुम, चिरजीवो सुखतैं रहो।
वेगि बढ़ौ बेटा! बिहँसि, जसुमतितैं मैयो कहो॥

महरानेतैं गोप लालकूँ देखन आये।
भीतर आदर सहित नंद बाबा जब लाये॥
गोपिनि तुरतहिँ अधिक तैलमें हरदी घोरी।
छिरकें रसमहँ पगी मची भादौंमहँ होरी॥

लै पिचकारी गोपहू, फैंट बाँधि ठाढ़े भये।
रँग रस बरसें संगडें, सब रस-रंगमहँ रंगि गये॥

भेरी, तुरही, चंग, मजीरा मधुर मधुर स्वर।
ढोल, खोल, करताल, बजैं वंशी वीनाबंर॥
कृष्ण जन्मकी मची धूम जड़ चेतन हरषें।
कल्पवृक्षके सुमन गगन फुलझरिया वरषें॥

ब्रजमंडलके गोपगन, सब मिलि दधिकाँदौं करैं।
दूध, दही, घृत उलचि घट, खाली करि पुनि पुनि भरैं॥

मुखमहँ मक्खन मारि गोप कोई भगिजावें।
कोई चुनके आइ दही मुखनें लपटावें॥
कोई दूध उड़ेलि हृदयमहँ नाचें गावें।
कोई पटके पकरि सिङ्गौग पाग भिगावें॥

यों खेलत लोटत हँसत, नाचत गावत गोप सब।
घड़ी कालकी सुधि न कछु, उदित भये रवि अस्त कब॥

प्रेम पुलकि व्रजराज आज सर्वस्व लुटावें।
जो माँगे जो वस्तु ताहि सो तुरत दिवावें॥
राय, भाट अरु कथक सूत सब पढ़िवे वारे।
नर्तक, नट अरु भाँड़ विविध विधि बाजेवारे॥

देत सिहावत अति मुदित, पुनि पुनि देवे पुनि कहैं।
और लेउ संकोच नहिं, किन्तु लीये कोउ न रहैं॥

नंदराय सब करत धरत बिसरत नहिं श्रीपति।
अद्भुत सुत तनु निरखि भई चितकी चंचल गति॥
दान धरमतैं होहि सुखी सुत सोचत मनमहँ।
तनय अभ्युदय सुमिरि रही आसक्ति न धनमहँ॥

याचक याचक रहे नहिं, नंदभवनतैं लेत हैं।
पावें जो गो, रत्न, धन, पुनि बनि दाता देत हैं॥

नंद भवनमहँ रहैं रोहिनी पतितैं न्यारी।
मलिन बसन परिधान न वेंणी माँग सम्हारी॥
किन्तु कृष्णको जन्म सुनत सजिवनिके विभिवत।
आज करत सत्कार सबनिको इत उत विहरत॥

कहे स्वामिनी नारि नर, करि आदर आयसु चहहिँ।
समाधान सबको करहिँ, मधुर वचन सबतैं कहहिँ॥

उत्सव ब्रजमहँ नये नारि नर नित्य मनावैं।
गावत गोपी गीत ग्वाल गोधन सँग आवें॥
दूध दहीकी बहे नदी घृत कोउ न खाईं।
मंदिर मंदिर भरीं मनोहर मनहु-मिठाईं॥
केसरि कीच भरी सकल, गोकुल गाँव गलीनिमहँ।
मणि मुक्ता बिखरे फिरैं, कोउ न पूछे खेतिमहँ॥

दो०—नन्दोत्सव घर घर भयो, नर नारिनि मन मोद।
आवें निरखें लालकूँ, लेवैं पुनि पुनि गोद॥
नँद नंदन निरखत तुरत, सब उर उमड़त प्यार।
छटवें दिन छठी भई, पूरी और कसार॥

इति श्री भागवत चरितके पञ्चमाहमें नन्दोत्सव नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।



अथ अष्टमोऽध्यायः

[५]

भई लालकी छटी राजकर चिन्ता व्यापी।
सोचें श्री-व्रजराज—कंस नृप अति ई पापी॥
वार्षिक कर नहिं जाइ करै उत्पात न दुरजन।
छकरनिमहँ भरि दूध दही घृत- चले गोपगन॥
गोकुल रच्छाको सकल, करि प्रबन्ध मथुरा गये।
पुण्य पुरी शोभा लखी, गोप परम-हरषित भये॥

दई भेंट कर सहित रतन अगनित घृत पय धन।
पाइ अमोलक वस्तु कंस पूछत प्रसन्न मन॥
व्रजमहँ सबजन कुशल बहुत दिनमहँ कर आयो।
सकुचि कहें व्रजराज—महरि घर लाला जायो॥
कंस कहें—जुग जुग जिये, पालन सब व्रजको करै।
विजयी होवे सुत सतत, सब-प्रानिनिको दुखहरै॥

नंद दयो कर कंस लौटि डेरा पै आये।
समाचार वसुदेव सुनत तुरतहिं उठिधाये॥
सजल नयन तनु पुलकि ललकि हिय नंद लगाये।
दोऊ सुधि बुधि भूलि गहकि हिय उभय सटाये॥
दई बधाई नंदकूँ, कुशल प्रश्न पुनि पुनि करें।
सुमिरि सुमिरि बल कृष्ण कूँ, नीर नयन नीरज भरें॥

बोले श्री वसुदेव—दयो कर भेंट भई अब।
अधिक रहे नहि यहाँ, काज सम्पन्न भये सब ॥
ब्रजमहँ नव उत्पात कौनसे कब का आवैं।
तातै अब अविलम्ब आप गोकुल कूँ जावें ॥
राम कृष्णमहँ मन फँस्यो, नंद हृदय शंका भई।
तुरतहिं गोकुल गमनकी, गोपनिकूँ आज्ञा दई ॥

छकरनि जोरे बैन नद वसुदेव मिले पुनि।
गोकुलकूँ चलि दये कथा अब एक कहूँ मुनि ॥
निज रिपु हनिवे हेतु पूतना कंस पठाई।
सब थल मारत शिशुनि खेचरी गोकुल आई ॥
पीन पयोधर भारतैं, नमित चलति छैलिनी बनी।
केशपाशमहँ मल्लिका, गुँथी कुसुम माला घनी ॥

मायातैं अति सुन्दर नारिको रूप बनायो।
मधुर मधुर मुसकाइ सबनिको चित्त चुरायो ॥
महरानेकी समुझि रोहिणी बिहँसि बिठाई।
यशुमति समुझीं नई बहू मथुरातैं आई ॥
गगरी सोनेकी मधुर, भरि विषतैं ढकिकें धरी।
त्यों ठगिनी गोरी बनी, कारेके पल्ले परी ॥

बनि अति सुन्दरि नारि महलमहँ बैठी लुची।
गरल लपेटी दई लालके मुखमहँ चुची ॥
हरिकूँ आयो रोष पकरि कर बोबो लीन्हीं।
कचकचाइकें चढ़े युद्धमुनि मुखमहँ दीन्ही ॥
पीवैं पय प्रभु प्रान सँग, अति अद्भुत छवि लालकी।
मातु निहारति चकित चित, बनी अकबकी सी बकी ॥

अरे छोड़दै लाल छोड़दै बकी पुकारै।
किन्तु लालकी बानि पकरिकें अवसि उचारै॥
हाथनि पाइनि पटकि पटकिकें हा हा खावै।
दैया बप्पा मरी राँड कहि कहि डकरावै॥

चूचीमें पीड़ा अधिक, माया ताकी खुलि गई।
मुँह फाट्यो निरजीव ह्वै, बाल बखेरें गिरि गई॥

गिरी पूतना तुरत नाश सब ब्रजको कीन्हों।
कंस बाग छै कोस ताहि चौपट करि दीन्हों॥
मुख मानों गिरि गुहा दाढ खूँटा सम ताकी।
चूची पर्वत शिखर आँखि कुआ सम वाकी॥

सूखे सर सम उदर अति, थूल देह पग सेतु सम।
डरपे गोपी गोप गन, वज्र गिर्‌यो अस भयो भ्रम॥

छातीपै प्रभु परे प्रेमतैं करत किलोलें।
मामा भेज्यो बँध्यो खिलौना मानों खोलें॥
नहिं भय नहिं कछु रोप सरकि इततैं उत आवें।
मैया हाहाकार करै गोपी घबरावें॥

भईं रोहिणी विकल अति, गिरीं लिये बलरामकूँ।
झपटि एक गोपी तुरत, लै आई घनश्यामकूँ॥

धरि धीरज गोपूँछ लाल अँग अँग घुमाई।
द्वादश गोबर तिलक करे गोरज लिपटाई॥
करि कर अंगन्यास नाम पढ़ि मंत्र उचारे।
पद अज रक्षा करे जानु मणिमान सम्हारे॥

यज्ञ पुरुष उरुउभयकी, कटि अच्युत केशव हृदय।
हयग्रीव प्रभु उदरकी, ईश होहिँ हियपै सदय॥

सूर्य कण्ठ, भुजविष्णु, उरुक्रम मुख, सिर ईश्वर।
रच्छें चक्री अग्र, हलायुध बाहर भीतर॥
मधुसूदन अरु अजिन करें रच्छा पार्श्वनिकी।
पृष्ठ गदाग्र, परम पुरुष श सबहिं दिशनि की॥
कौंणनिमहँ उरुगाय प्रभु, हृषीकेश इन्द्रिय सकल।
श्वेतद्वीपपति चित्तकूं, योगेश्वर मनकूं प्रबल॥

अहङ्कार भगवान बुद्धिकूं पृश्निगर्भ प्रभु।
क्रीड़ामहँ गोविन्द शयन रच्छें माधव विभु॥
चलिबेमहँ वैकुन्ठ बैठिबेमहँ शं श्रीपति।
करें यज्ञभुग् अशन माँहि भयतें कमलापति॥
सुनि रच्छा हरि हँसि गये, स्तन पीयो कीयो शयन।
इत गोपनि मगमहँ लख्यो, पर्यो पूतना भीमतन॥

कृष्ण करनितैं मरी पूतना सद्गति पाई।
काटि कूटि सब अंग गोप मिलि आँच लगाई॥
विष पिआइवे द्वेषभाववश दुष्टा आई।
दई धाइ गति श्याम बकी निज लोक पठाई॥
बकी परमगतिकी कथा, पढ़ैं सुनें जे नेमतैं।
इह सुख भोगें अंतमहँ, पाहिं परम पद प्रेमतैं॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें पूतना मोक्ष नाम पञ्चम अध्याय समाप्त।

अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

कहे परीक्षित—प्रभो ! अपर हरि-चरित सुनावें ।
भक्तनि सुख हित श्याम अवनिपै तनु धरिआवें ॥
बोले शुक—सुनु भूप ! श्यामने करवट लीन्हीं ।
मैया अति मन मुदित बुलायो ब्रजमहँ दीन्हीं ॥
आईं गोपी चाव लै, सजी बजी सब आज हैं ।
जन्मोत्सव करवट बदल, एक पंथ द्वै काज हैं ॥

द्विजनि दीन अरु दुखिनि दान दिनभर करवायो ।
बुलवाये बहु विप्र महरि अभिषेक करायो ॥
पीवत पीवत दूध लालकूँ निदिया आई ।
छकरा नीचे सुघर पलकिया मातु बिछाई ॥
हौलें हौलें जाइके, मातु सुवाये श्याम तहँ ।
भई लीन सत्कारमहँ, गोपी उत्सव करहिं जहँ ॥

खुली लालकी आँखि मातु तहँ नाहिं निहारी ।
रोये बालक बने साम जनु ऋचा उचारी ॥
हूहल्लामहँ फँसी सुनी नहिं माता बानी ।
धूमधड़ाको करूँ लालने मनमहँ ठानी ॥
नव पल्लव सम सुघर पग,- लखि छकरा सूवे करे ।
छुवत भाँड़ रस बट शकट, अड़ड़ धम्म करिकें गिरे ॥

गोपी इत उत भगीं भईं भयतैं ब्याकुल अति ।
एकमात्र घनश्याम नंदरानीकी गति मति ॥
दौरी छकरा ओर अबहिं जहँ श्याम सुवाये ।
उलट्यो देख्यो शकट झपटिकें लाल उठाये ॥
प्यायो पय द्विज आइ तब, शांति पाठ सबने कर्यो ।
अति विस्मित सबईं भये, गोपनि छकरा पुनि धर्यो ॥

कागासुर इक दिवस काक बनि हरिढिंग आयो ।
पकरि टेंटुआ तुरत कंसके पास पठायो ॥
पुनि द्विज श्रीधर असुर कंसको बनिकें सेवक ।
आयो हरिकूँ हनन परे जहँ जगके रक्षक ॥
श्रीहरि-लीलाशक्तितैं, दंत भजि मुख खीर भरि ।
व्रजतैं बाहर कर्यो नँद, अद्भुत कीयो कृत्य हरि ॥

पलनामहँ पौढ़ाइ लालकूँ मातु झुलावैं ।
थपथपाइ कछु कहैं हलावै अति सुख पावैं ॥
लीन्हीं करवट श्याम लगे रोवन जगवन्दन ।
दीयो आँचल मातु पियो पय पुनि नँदनन्दन ॥
पय पिआइ मुख चूमिकें, गोदीमहँ बैठाइकें ।
मातु खिलावति मगन मन, इत उत वस्तु दिखाइकें ॥

तृणावर्त हरि लख्यो देखिकें मन मुसकाये ।
अति भोरे बनि गये मातुके अङ्ग पिराये ॥
भूमि बिठाये श्याम मतु मनरु हूँ घबरावै ।
क्यों सुत भारी भयो भेद माता नहिं पावै ॥
लगी मातु गृह काजमहँ, असुर बवन्डर बनि गयो ।
लै हरिकूँ नभमहँ उड़्यो, अन्धकार व्रजमहँ भयो ॥

सैर सपट्टो करत असुर सँग नभमहँ डोलत।
इत गोपी अरु गोप बिरहमहँ सब मिलि रोवत ॥
हरि सब देखे दुखी असुरको गरो दबायो।
पटियापै लै गिरे ताहि परलोक पठायो ॥

निरखि लालकूँ कुशल सब, मुदित मातु गोदी धरे।
बालकृष्ण अद्भुत चरित, यों ब्रजमहँ बहुतक करे ॥

एक दिवस लै अङ्क लालकूँ मातु खिलावैं।
मातृनेहमहँ झरत मधुर पय मुदित पिआवैं ॥
निरखि मदमुसकान मातु मनमाँहि सिहाई।
जमुहाई हरि लई मातु तब चुटकि बजाई ॥

मुखमहँ माताने लखे, रवि, शशि, सागर, द्वीप, बन।
अनिल, अनल, जल, नभ, अवनि, सरिता पर्वत, जीवगन ॥

सहसा सुत मुख माँहि निरखि सब सहमी जननी।
थर थर काँपहिं मनहुँ जाल लखि डरपति हरिनी ॥
जिहि हित तरसत विश्व मातु सो विपदा चीन्हीं।
निश्छल निरख्यो नेह सबरन लीला कीन्हीं ॥

सूत कहै—बल श्यामकी, नाम करन लीला कहूँ।
भूल्यो हौं आवेशमहँ, कृष्ण भाव भावित रहूँ ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें शकटासुर काकासुर तृणावर्त मोक्ष तथा विश्वरूप दर्शन नामक छटवाँ अध्याय समाप्त

अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

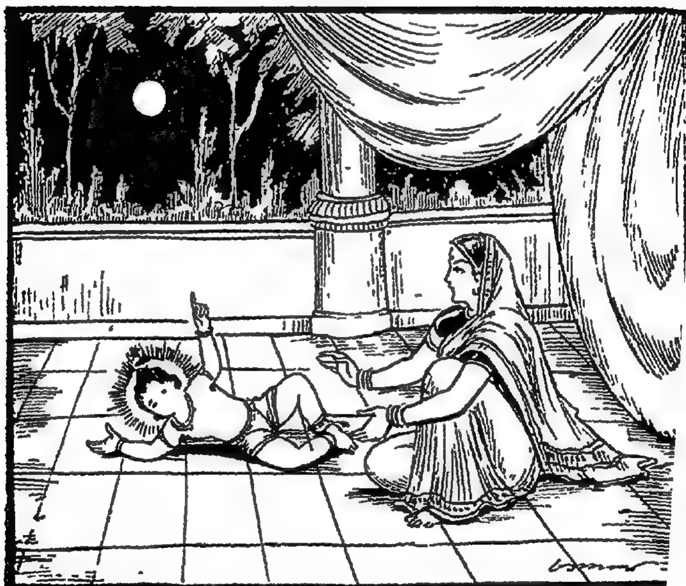
एक दिवस वसुदेव पुरोहित गर्ग बुलाये।
करि पूजा सत्कार विनय युत बचन सुनाये ॥
बोले—गुरुवर ! आज आप गोकुलकूँ जावें।
तहँ द्वै बालक बसहिं नाम तिनके धरि आवें ॥

शौरि बचन सुनि गर्गमुनि, अति ही आनन्दित भये।
पोथी पत्रा बाँधिके, तुरत नंद ब्रजमहँ गये ॥

नन्द निहारे गर्ग बिष्णु सम पूजा कीन्हीं।
करि पूजा स्वीकार हरषि मुनि आशिष दीन्हीं ॥
नामकरण संस्कार सुतनिको कीजे मुनिवर।
मुनि समुझाये नंद न मेरो करिबो हितकर ॥

बोले ब्रजपति—जाति कुल, के जन नहीं बुलाउँगो।
गुप्त भावतैं गोष्ठमहँ, नामकरन करवाउँगो ॥

सोरठा—नन्द विनय स्वीकारि, नामकरन अनुमति दई।
सबई साज सम्हारि, आई मैया गोष्ठमें ॥



बालविनोदी श्याम पृ० ५५६



बालविनोदी श्याम पृ० ५५७

छप्पय—श्याम रोहिणी लिये रामकूँ मैया यशुमति।
बोले मुनिवर गर्ग—रोहिणी सुत जिह व्रजपति॥
संकर्षण, बल, राम नामतैं बोले जावैं।
जे यशुमति-सुत वासुदेव हरि कृष्ण कहावैं॥
नारायण सम तनय तव, व्रजकी रक्षा करिङ्गे।
हरि-सुर-द्रोही असुर दलि, भूमि भार भय हरिङ्ग॥

सोरठा—सुतकें धरिकें नाम, गर्ग मधुपुरीकूँ गये।
लैके बल अरु श्याम, गईं मातु पुनि महलमहँ॥

छप्पय—मैया पूछें—धर्यो नाम का मुनि छोरनिको।
जशुमति बोलीं—नाम कृष्ण बलराम ललनि को॥
भारी हैं कछुनाम कहे हम कनुआ बलुआ।
उत्सव भयो न कछू पठाओ घर घर हलुआ॥
हरि कनुआ बलुआ बने, गोकुलमहँ बढ़िबे लगे।
कछुक दिवसमहँ रेंगिकें, घुटुअन बल चलिबे लगे॥

बन्दर बालक सरिस हाथ पाँइनि बल किढ़िरें।
इत उत भोरे बने नन्द आँगनमहँ विहरैं॥
घिसिरि घिसिरिकें कबहुँ गोष्ठमें घुटुअनि जावें।
गोशालाकी कीच चलत निज तन लपटावें॥
पग नूपुर कटि करधनी, चलिबे महँ रुनु भुनु बजहिं।
शब्द सुनत इत उत लखत, हिय हुलसत किलकत भजहिं॥

समुझि नन्द लखि वृद्ध सग ताके लगि जावें।
जब मुरि देखें पुरुष मातुके ढिँग भगि आवें॥
अम्मा बब्बा मधुर तोतली बोली बोलें।
गोबर अरु गोमूत्र पंकमहँ विहरत डोलें॥
जब देखो तब गोष्ठमहँ, चंचलता अद्‌भुत करें।
गौयनिके पैरनि परें, मैया अति मनमहँ डरें॥

करि उबटन अन्हवाइ मातु झँगुरी पहिनावें ।
गोरोचनको तिलक डिठौना भाल लगावें ॥
इत उत दीठि बचाइ गोष्ठमहँ लाला जावें ।
बछरा, गोबर-घास कीचतैं दुंद मचावें ॥
मातु उठावत हरि तुरत, पुनि पुनि चूमति मधुर मुख ।
छातीतैं चिपटाइकें, हियमहँ पावैं परम सुख ॥

चचलताकूँ निरखि मातु खीजे हरषावें ।
कच्छ मच्छ बाराह कबहुँ बटु बिप्र बतावें ॥
पाँ पाँ पैयाँ चले खाईं अब माखन रोटी ।
करें मातुतें रारि रोषमहँ पकरें चोटी ॥
मधुर मधुर बतिआँ करें, ब्रजबासिनिके मन हरें ।
रसिया गावे नाचिकें, नित नूतन लीला करें ॥

बछरनिकी गहि पूँछ लटकिकें इत उत जावें ।
गैया मैया भैसि चमरिया कहि कहि गावें ॥
पकरैं गैयनि सींग कुदकि ऊपर चढ़ि जावें ।
ताता थैया करे लुगाइनि नाच दिखावें ॥
कण्ठ मधुर स्वर मनहरन, बाल सुलभ कूजत कलित ।
होहिं मुदित मन मातु अरु, गोपी लखि लीला ललित ॥

कबहुँ साँडके सींग पकरिकें तिनितैं खेलें ।
कबहूँ पकरैं श्वान सर्प तिनि मुख कर मेले ॥
कबहूँ ताता करें आगिकूँ पकरन जावें ।
कबहूँ बन्दर मोर खगनिकूँ पकरि नचावें ॥
कबहूँ शस्त्रागारमहँ, अछिपै हाथ फिराइकें ।
किलकैं होवैं मगन अति, बस्तु अनोखी पाइकें ॥

कबहूँ खेलन चन्द्र मातुतैं पुनि पुनि माँगैं।
कबहूँ पीकैं दूध गोदतैं झटपट भागैं॥
कबहूँ जलमहँ घुसें भिगोवें तन पट सगरे॥
कबहूँ पच्छिनि पकरि करें गोपिनितैं, झगरे॥

कबहूँ द्विजकूँ देखिकें, करि प्रनाम भगि जातहैं।
कबहूँ परसी खीरिकूँ, चाटि चाटिकें खात हैं॥

कबहूँ घरकी वस्तु लाइकें बाहर खोवें।
कबहूँ टूटे दाँत दिखावें पुनि पुनि रोवें॥
कबहुँ कंटकाकीर्ण गैलमहँ वरवश जावें।
माता लावें पकरि नहीं आवैं चिल्लावें॥

बहु विधि लीला लालजी, ललित ललित नित प्रति करहिं।
ब्रजमहँ बसि बलदेव सँग, ब्रजवासिनिके मन हरहिं॥

एक दिवस बल श्याम गोप बालनि सँग खेलैं।
यमुना तटपै जाइ दंड सब मिलिकें पेलें॥
पेलि पालिकें दंड कदम तर गये कन्हाई।
मीठी माटी निरखि दुबकि थोरी सी खाई॥
लखि बोले बलदेवजी, कनुआ! माटी खातु है।
मैयातैं अबहीं कहूँ, अब तू बिगर्यो जातु है॥

यों कहि पकरे श्याम राम माता ढिँग लाये।
डरे मातुकूँ देखि कमल नैंननि जल छाये॥
पूछें माता—कहो श्याम! क्यौं माटी खाई।
बोले नटवर-तनिक न खाई माटी माई॥
नहिं पतिआवे देखि मुख, दै दिखाइ, फार्यो वदन।
सुत-मुखमहँ माता लखे, तीन लोक चौदह भुवन॥

लखि मुखमहँ ब्रह्माण्ड गोप गोपी पति ब्रजकूँ।
निरखत पकरें श्याम अकबकी ठाढ़ी निजकूँ॥
जगदीश्वरकी शरन गई तारी सी लागी।
ब्रह्मज्ञानकी बात करै ममता सब भागी॥

सुत सनेहमय तुरतई, माया फेरी श्याम जब।
फिरि कनुआ कहिबे लगी, भूली मुखकी बात सब॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें नामकरण बाललीला तथा मृद्भक्षण नामक सप्तम अध्याय समाप्त।



अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

वय जब कछु कछु बढ़ी नन्दलालाकी थोरी।
सीखी विद्या प्रथम दही माखनकी चोरी॥
संग सखा सब लिये खेलिवे घर घर जावैं।
कहँ माखन दधि धर्‍यो सैनतें ताड़ लगावैं॥
भाभी कहि भापै भवन, कहँ नई पहिनी चुरी।
बतिआँ बोलैं मधुर अति, जुल मिश्री हियमहँ छुरी॥

चोरीके सब साज सजे संगी शिशु कीन्हे।
भेद लगावैं कछू कछू इत उत करि दीन्हे॥
कछू बहानों करैं सरलता मुँहपै लावैं।
इत उत बात बनाइ श्याम घरमाहिं घुसावैं॥
चोर कलामहँ निपुण अति, नंदनँदन घनश्याम हैं।
चोरैं मन, माखन मद-नमोहन शोभाधाम हैं॥

भोरो बदन बनाइ विहँसि घरमहँ घुसि जावैं।
चाची भाभी कहैं प्यारतैं गहकि बुलावैं॥
यदि देखैं नहिं डौल लौटिकैं पुनि पुनि आवैं।
जब घर सूनों लखैं चोरि दधि माखन खावैं॥
गोपी अति उत्सुक रहहिं, कथा कृष्णकी ही कहहिं।
माँगहिं विधितैं सतत वर, कब हरिकी साँसति सहहिं॥

ब्रजवनिता श्रीकृष्ण ललित लीलनिपै रीझीं।
जब लाला अति लगे करन तब कछु कछु खीझीं॥
मनमहँ तो अति मोद क्रोधयुत बदन बनायो।
यशुमति ढिंग चलि कहहिँ सबनि मिलि मतो कमायो॥
सजि बजिकेँ सब मिलि मुदित, उपालम्भ दैवे चलीं।
गोकुलकी सब गलिनिमहँ, खिलीं मनहुँ पंकज कलीं॥

लखि गोपिनिकूँ मातु कुशल पूछी बैठाईं।
करि पालागन सबनि कृष्णकी बात चलाईं॥
नहिँ हम ब्रजमहँ रहें कान्ह अब बहुत सतावै।
घर घर चोरी करे नित्य तकरार मचावै॥
दूध, दही, नवनीत, घृत, चोरि सखनि सँग खातु है।
कहनी अनकहनी कहे, ढीठ भयो सतरातु है॥

चुपके घरमहँ घुसे धर्यो दधि माखन पावै।
संगी साथी मोर बानरनि तुरत खवावै॥
यदि न मिलहि नवनीत कुपित ह्वै मटुकी फोरै।
पटकि पुरातन पात्र लाइ आँगनमहँ तोरै॥
पकरैं गोपी तुरत तो, छोरनिके सँग भगतु है।
घरमहँ आगि लगाइके, मारि ठठाको हँसतु है॥

जिह छोटो है नहीं छोकरा खोटो भारी।
मुँहफट अति ई भयो देइ छूटत ई गारी॥
छींकेपै चढ़ि जाय जानि दधि माखन जावै।
चोरी विद्या निपुण विविध विधि युक्ति चलावै॥
कबहूँ बाबाजी बनै, छोरी हू बनि जातु है।
मूसे बिल्लीकी तरह, घुसि घरमहँ दधि खातु है॥

कबहूँ फिरकै आइ हमें ही चोर बतावै।
रानी तेरो पूत भूत बनि कबहुँ डरावै॥
बन्दर लावै पकरि कहै—जे तोकूँ काटें।
खिल खिलाइ हँसि जाइ जबहिँ हम जाकूँ डाँटें॥

चितवनमहँ टोना भर्यो, बानी मिसरी सम मधुर।
करै काज अन्यायके, तोऊ लागे अति सुघर॥

मैया! कहँ लगि कहैं बात कछु कहत न आवै।
निशिदिन चोरी युक्ति सोचि उत्पात मचावै॥
मुखतैं सीटी मारि बाल गोपाल समेटैं।
देखै आँगन लिप्यो वहीं टट्टीकूँ बैठैं॥

खाइ, बिगारै, उलीचै, बर्तन फोरै हँसि परै।
त्यागि देहि मल मूत्र हू, घर आँगन मैलो करै॥

नदरानी सुनि हँसीँ कहै—मदमाती तुम सब।
कनुआ ममढिँग रहै, करै घर घर चोरी कब॥ ?
ऊपरतैं करि रोष कहै गोपी—तुम रानी।
पच्छ करोगी पुत्र प्रथम ही हमने जानी॥

जो जिह बाहर करतु है, सो घरमहँ हू करैगो।
चोरी पकरो दंड फिरि, दैवो तुमकूँ परैगो॥

• सोचैं मनमहँ मातु—बने जिह कैसें छोरी।
कैसें घर घर जाइ करै माखनकी चोरी॥
करि करि क्रीडा सरस श्याम सुख सबकूँ दीन्हों।
मातु मनोरथ सिद्ध करहुँ हरि निश्चय कीन्हों॥

भोर भयो जननी उठीं, दधि परौंदि मथिवे लगी।
घमर घमरको मधुर रव, सुनि हरिकी निंदिया भगी॥

मातु मथहिँ दधि हिलहिँ कान कुंडल बोबो कर।
स्वेदबिन्दुयुत बदन कमलपै ।जनु हिम-कन बर॥
राजमालती सुमन झरहिँ सिरतैं अति सुन्दर।
मनहुँ कुसुम बरसाइ करहिँ सुर मान निरन्तर॥

श्याम त्यागि शैया तुरत, मातु मथानी पकरिकैं।
अम्मा बोबो प्याइ दै, पुनि पुनि बोलें अकरिकें॥

सम्मुख सुतकूँ निरखि नेहतैं मातु उठायौ।
अङ्ग लाइ मुख चन्द्र चूमि पय पान करायौ॥
इत जननी हिय हरषि कृष्णकूँ दूध पिआवै।
धर्यो बरोसी दूध उफनि उत आगि बुझावै॥

दूध पूत इक सगाई, उफने माता सुतहिँ तजि।
दूध उतारन आगितैं, लैंयाँ पैयाँ गई भजि॥

नहीँ अघाये श्याम रोष मैयापै आयौ।
लोढ़ा ढिंगई धर्यो क्रोध करि ताहि उठायौ॥
मार्यो तकिकें भाण्ड दहीको फूट्यो फटई।
फुटत मथानी भगे श्याम माखन लै झट ई॥

आइ यशोदा दृश्य लखि, हँसी पुत्र पकरन चली।
सोचें मनमें श्यामकी, चोरीकी कलई खुली॥

माता चुनकें चली चोरकी चोरी पकरन।
निरखत इत उत सभय चपल दृग जनमनरंजन॥
जननी आवत लखी ओखरी तजि हरि भागे।
पीछें दौरी मातु कृष्ण डरि काँपन लागे॥

करमहँ छोटी सी छड़ी, भार नितम्बनतैं नमित।
खुले केश सिरतैं सुमन, गिरहिँ भगहिँ तन अति श्रमित॥



दधिमंथन पृ० ५६५



गोरस बेचनलीला पृ० ५६६

जिनकूँ जप, तप, ध्यान योगतैं पकरि न पावैं ।
तिनकूँ जननी छरी लिये डर सहित भगावैं ॥
देह थूल सुकुमार अमित जब जानी माता ।
स्वयं पकड़महँ आइ गये तब भवभयत्राता ॥
निज करतैं हरि कर पकरि, बोली—क्यौ चोरी करी ?
रोये आँखिनि मीड़ि प्रभु, तब जननी फेंकी छरी ॥

कसिकें पकरे श्याम दई मीठी सी गारी ।
हरिकूँ बाँधन हेतु कचनितैं डोरि निकारी ॥
दयो लपेटा एक कमरमहँ बाँधन लागी ।
द्वै अंगुल कम रही जेबरी दूसरि माँगी ॥
पुनि द्वै अङ्गुर कम परी, पुनि बाँधी पुनि कम भई ।
घरकी सब रस्सी चुकी, हँसी मातु विस्मित भई ॥

चकित चकित है मातु लालको उदर निहारें ।
पुनि पुनि पकरें पेट भयो का सभय विचारें ॥
भयौ स्वेद सब अंग थके खुलि बाल गये सब ।
माला खिसकीं गिरे फूल हरि रीझि गये तब ॥
कृष्ण कृपा जिनपै भई, तिनिके कारज सँध गये ।
श्याम नेह बश आपु ही, प्रेमपाशमहँ बँध गये ॥

गोपी कीन्हीं विदा करै गृह कारज मैया ।
ग्वाल बाल मिलि कहें—खेल कछु होवै भैया ॥
दाम उदरमहँ कसी उलूखलमहँ सो बाँधी ।
उलट्यो गाड़ी बनी बैल बनि प्रभुने साधी ॥
ग्वालबाल तिकि तिकि करें, हाँकें हरि खींचन लगे ।
सम्मुख यमलार्जुन लखे, धनदपुत्र धनमद ठगे ॥

बडो अटपटो पन्थ प्रेमको नहिं सब जानैं।
जिनकूँ योगी यती, जगन्मय जगपति मानैं॥
तिनकूँ मैया पकरि बाँह मारै धमकावै।
पिटि पिटाइके श्याम गोद वाहीकी आवै॥
जिनकी लीला ललित सुनि, सब जग आनँदमहँ भर्यो।
जगदीश्वर जिनिसुत बने, कौन सुकृति यशुमति कर्यो॥

दोहा—सूतकहे ऋषिगन सुनहु, नद यशोदा वृत्त।
पूर्वजन्ममें जो कर्यो, हरिहित चारु चरित्र॥

छप्पय—नद द्रोण द्विज हते धरा पत्नी सँग बनमहँ।
भिक्षापै निर्बाह करहिं धरि श्रीहरि मनमहँ॥
करन परीक्षा बिष्णु अतिथि द्विज बनि बन आये।
धरा कर्यो सत्कार मातु पितु बिप्र बिठाये॥
करी याचना अन्नकी, धरा अधिक चिन्तित भई।
पति अभावमहँ अन्नहित, स्वय बनिक्के घर गई॥

बनिक अन्न घृत दयो रूपने जादू डारो।
लखि कुच करि सकेत मूल्य माँगत मतवारो॥
सती प्रतिज्ञा करी काटि कुच दोऊ दीन्हें।
लै सामग्री आइ अतिथि पद बन्दन कीन्हें॥
अतिथि विष्णु बनि बर दयो, ममहित कुच काटे जननि।
पुत्र बनूँ तव स्तन पिऊँ, तू प्रकटै मम मातु बनि॥

वसु बनि पुनि द्विज द्रोण भये ब्रज नन्द गोपपति।
धरा यशोदा भईं बने सुत कृष्ण जगतपति॥
बाँधि उलूखल दये कृष्ण खींचें गाड़ी सम।
बाल वृषभ सम चलैं श्याम शोभा अति अनुपम॥
यमलार्जुनके मध्य हरि, गये उलूखल फँसि गयो।
खींच्यो बलतैं बाल प्रभु, गिर्यो वृक्ष अति रव भयो॥

टूटत तरु अति घुघर देव-सुत प्रकट भये तहँ ।
करत प्रकाशित दिशनि नम्र है आये हरि जहँ ।।
नलकूवर मणिग्रीव धनद-सुत बुद्धि गँवाई ।
पायो नारद शाप भये तरु दोऊ भाई ।।
कृष्ण दरशतैं दुख कटे, विषय वासना हू जरी ।
तनु पुलकित गद् गद् गिरा, दामोदर विनती करी ।।

यमलार्जुन-विनय

कृष्ण ! करुनामय कहलाओ , पार परमेश्वर पहुँचाओ ।
सबके तुम तनु प्रान हो, मन इन्द्रियके ईश ।
काल कालके सत्य तुम, जगनायक जगदीश ।।
सृष्टि लीलातें रचवाओ, पुण्यपथ प्रभुवर दरशाओ ।।१।। पार परमे०
कैसे इन्द्रिय करि सकें, ग्रहन तुमहि हे नाथ ।
पकरें कैसे असत् ये, भौतिक तनके हाथ ।।
बुद्धि, मन, अहं सबहिं हारे, हमें यदुनंदन अपनाओ ।।२।। पार परमे०
को तव महिमा कहि सके, वेदहु गये भुलाइ ।
स्वयं भये अवतीर्ण अब, व्रजमंडलमें आइ ।।
परम मङ्गलमय सुखकारी, मातुकूँ लीला दिखलाओ ।।३।। पार परमे०
नारदजीके शाप वश, भये वृक्ष हम आइ ।
करे कृतारथ रूप यह, दामोदर दिखलाइ ।।
विनय है हमरी अघहारी! मोह हिय को हरि हटवाओ ।।४।। पार परमे०
बानी गावै गुन सदा, कथा सुनें नित कान ।
कर परिचरियामे रहें, चित्त चरनके ध्यान ।।
नवै सिर जगनिवास तुमकूँ , सत दरशन नित करवाओ ।।५।। पार परमे०

प्रभु प्रसन्न ह्वै परम प्रेम दुरलभ बर दीन्हों ।
आयसु हरिकी पाइ गमन निज पुर तिनि कीन्हों ॥
पूछे शौनक—सूत ! धनद सुत का अघ कीयो ।
क्यों मुनि नारद शाप वृक्ष बनिबेको दीयो ॥
हँसिकें बोले सूतजी, भगवन् ! धनमद अति विकट ।
तिहि मदमहँ मदमत्त बनि, बिहरहिं दोऊ सर निकट ॥

संग अपसरा वस्त्रहीन नगे ह्वै न्हावें ।
हरि गुन गावत परम रसिक नारदमुनि आवें ॥
लखि मुनि युवती निकरि पहिन पट ऋषि सन्माने ।
किन्तु धनद-सुत मत्त नग्न ठाढ़े भौं ताने ॥
शाप दयो मुनि तरु बनों, यमलार्जुन ते ह्वै गये ।
पुनि द्वापरके अन्तमहँ, परसि प्रभुहिं पावन भये ॥

दोहा—यह प्रसगवश धनदसुत—कथा कही अभिराम ।
प्रकृत कथा मुनिवर सुनों, चरित कर्‌यो जो श्याम ॥

छप्पय—वृक्ष पतन रव सुनत नन्द गोपादिक धाये ।
बँधे उलूखल कृष्ण करत क्रीड़ा तहँ पाये ॥
कहे परस्पर—गिरे वृक्ष नहिं आँधी पानी ।
बालनि सच सब कही बात काहू नहि मानी ॥
गिरे दूधके दाँत नहि, जिह छोटो सो छोकरा ।
तरु उखारि कैसे सके, कहे युवक अरु डोकरा ॥

बँधे बिलोके श्याम नदबाबा ढिँग आये ।
दाम खोलि मुख चूमि प्रेमतैं हृदय लगाये ॥
बाबा बोले—वत्स ! गोद मैयाकी जा अब ।
मैया मारे मोइ न जाऊँ, बोले हरि तब ॥
यशुमति मन संताप अति, तब मम मति मारी गई ।
नहि सुत आयो अब तलक, सुमिरि मातु व्याकुल भई ॥

साँझ भई पुनि श्याम मातुके हिय लपटाये।
उमग्यो पुत्र सनेह नयनके नीर न्हवाये॥
यों व्रजमहँ हरि नित्य नई ई धूम मचावें।
साधारन शिशु सरिस हरिहिं युवती फुसलावें॥
वेद विदित वंदित जगत, भोरे शिशु सम बनि गये।
जाके बशमहँ सब जगत, ते व्रजवासिनि बस भये॥

कबहूँ नाचें नाच गीत कबहूँ वर गावें।
माँगें माखन कबहुँ, कबहुँ हठि रार मचावें॥
कबहूँ माँगें भीख भिखारी वेष बनाई।
कबहूँ घर घर जाइ दिखावें स्वाँग कन्हाई॥
कबहूँ आँगन लीपिकें, चौक पूरि ज्योनार करि।
ब्याह करें दुलहा बनें, मोरपंख शिर मौर धरि॥

काम बतावें मातु पिता ततछिन करि लावें।
माँगै माता वस्तु दौरिकें ताहि उठावें॥
बाट तराजू लाइ धरें आगे मैयाके।
कपड़ा लावैं दौरि बड़े हलधर भैयाके॥
धोवें पग नँदराय जब, लाइ खड़ाऊँ प्रभु धरें।
भक्तवश्य श्रीजगतपति, सेवक सम कारज करें॥

जगमहँ भटकै जीव प्रेम बिनु शान्ति न आवैं।
छिन भगुर जग भोग भोगिकें सुख नहि पावै॥
प्रेम धाम हैं श्याम हियेमहँ यदि वसि जावें।
होवैं जीव कृतार्थ दुःख संताप नसावें॥
प्रेम पन्थ अति अटपटे, बिनु बोले दिन दिन बढ़ै।
चाहें वह यह फेरि मुख, जाय रंग गहरो चढ़ै॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें माखनचोरी तथा दामोदर लीला नामक अष्टम अध्याय समाप्त।

अथ नवमोऽध्यायः

[६]

ब्रजमहँ काछिनि हती एक सुखिया हरिप्यारी ।
कृष्ण प्रेममहँ रहति सतत पगली मतवारी ॥
हरि हियकी सब जानि उपेक्षा भाव दिखावें ।
यों उत्कण्ठा तासु दिनहिं दिन अधिक बढ़ावें ॥

जब अति उत्कण्ठा बढ़ी, सदय साँवरो है गयो ।
अभिलाषा पूरन करी, सुखियाकूँ अति सुख दयो ॥

नंदभवनके निकट 'लेउफल' सुखिया बोली ।
जानी अनुगत कृष्ण कृपाकी गठरी खोली ॥
पस भरि लाये अन्न दयो कर आगे कीये ।
सुखिया सब फल तुरत करनिमें हरिके दीये ॥

कृष्ण हाथ फलतें भरे, हरि रतननि डलिया भरी ।
यों सुखिया सब श्यामकूँ, फल दैके जगतैं तरी ॥

अति क्रीड़ा प्रिय कृष्ण ग्वाल बालनि सँग जावें ।
होहिं खेलमें मगन बुलावें मातु न आवें ॥
कहे मातु प्रिय बचन प्यार करिके फुसलावें ।
आवें भरि तनु धूरि लाइ पुनि मातु न्हवावें ॥

मैया परसै प्रेमतै, बाबा सँग भोजन करें ।
कबहूँ लिपटैं प्रेमतै, कबहूँ मातातैं लरें ॥

अति चंचल अति चपल गोदतैं उठि उठि भागैं।
निरखे मैया भगत खड़ी हैजामें आगे॥
जननी दृष्टि बचाइ कृष्ण हौलेतें सटकैं।
ऊधम नव नित करें जाइ पेड़नितें लटकैं॥

वनमहँ विहरत मुदितमन, नील पीत पट तन लसहिं।
व्रजवासिनि सुख देहिं नित, श्याम राम गोकुल बसहिं॥

यमलार्जुनको पतन अशुभ अति गोपनि मान्यो।
नहीं निरापद ठौर शिशुनि हितकर नहिं जान्यो॥
पंचायत सब करहिं होहिं उत्पात यहाँ अति।
नाना रूप बनाइ असुर इत आवें नित प्रति॥

तातें तजि गोकुल तुरत, श्रीवृन्दावन चलहु सब।
भूमि सरस जल थल विमल, बोले श्रीउपनन्द तब॥

साधु साधु सब कहे कर्यो अनुमोदन सबनें।
बोले बूढ़े गोप—लख्यो वृन्दावन हमनें॥
सबई तहाँ सुपास दूब, द्रुम, जल, बन, गिरिवर।
श्रीयमुनाके निकट परम सुन्दर अति सुखकर॥

चलो आजई चलिङ्गे, निश्चय सब मिलिके कर्यो।
सुनत बँधे विस्तर तुरत, छकरनिमहँ सब धन भर्यो॥

तुरही बाजन लगीं जोरि छकरा सब दीन्हे।
धनुष बान लै हाथ गोप कछु आगे कीन्हें॥
तिनके पीछे धेनु साँड़ बछरा सब जावें।
छकरनि गोपी चढ़ीं गीत गोविंदके गावें॥

माता यशुमति रोहिनी, राम श्याम सँग रथ चढ़ीं।
ज्यों मन सँग इन्द्रिय चलहिं, त्यों हरि सँग गैया बढ़ीं॥

सुतनि गोदमहँ लिये मातु जावें वृन्दावन।
मगमहँ निरखत श्याम वृक्ष, खग, मृग, वन, पशुगन॥
कौतूहलके सहित मातुतैं पूछें नटवर।
मैया! जे को रहैं कहाँ कित है इनको घर॥

मैया प्यार दुलारतै, इत उतकी बतियाँ कहैं।
कहैं अटपटी बात जब, हँसि मुख फेरैं चुप रहैं॥

वृन्दावनमहँ पहुँचि सबनिने डेरा डारो।
कृष्णचन्द्र ह्वै उदित कर्यो नभ बन उजियारो॥
वन, गिरि, तटकी छटा निरखि हरि अति सुख पायौ।
वत्सपाल बनि मातु पिता मन मोद बढ़ायौ॥

गोपवत्स गोवत्स सँग, लिये बिबिध कौतुक करैं।
मुरली मधुर बजाइके, गावें नाचें स्वर भरें॥

पाई अपनी वेनु बिहँसि कर कमलनि धारी।
बिना बताये लगे बजावन श्रीबनवारी॥
मुरलीकी धुनि सुनी भये जड़ चेतन प्रमुदित।
मनहुँ प्रिया रव सुनत प्रेष्ठ हिय पंकज बिकसित॥

अधरामृत नित प्याइकें, पालि पोसि मोटी करी।
बैरिनि वशी बनि गई, व्रजबासिनिकी मति हरी॥

बछरनि लावैं घेरि लकुट लै मुरलीधारी।
नित प्रति बनमहँ जाइँ बजावें बेनु बिहारी॥
गोफिनमहँ धरि ढेल घुमावें तकिकें मारें।
जावै मेरो दूरि मुदित सब ग्वाल पुकारें॥

चरननि नूपुर बाँधिकें, नाचैं सैन चलाइकें।
चाईं माईं करि फिरैं, गिरैं रेतपै जाइकें॥

ग्वालनि गाय बनाय साँड़ सम स्वयं रम्हामें ।
बने वाल कछु ग्वाल साँड़ ढिंग गाइनि लामें ॥
कबहूँ ह्वै बनि साँड परस्पर टक्कर मारे ।
कबहूँ जीतें श्याम कबहुँ बलदाऊ हारे ॥
सारस मोर चकोर सम, बोली बोले हँसि परें ।
यों प्राकृत शिशु सरिस हरि, बाल सुलभ क्रीड़ा करें ॥

बनमहँ बालनि सहित करें हरि हलधर खेला ।
आयो तबई दुष्ट तहाँ इक दैत्य जरैला ॥
बनिकें बछरा जाइ मिल्यो हरिके बछरनिमहँ ।
समुझि गये हरि बलहि बतायो खल सैंननिमहँ ॥
मति कछु जानत नाहि जे, ऐसे भोरे बनि गये ।
चितवत इत उत बालवत, चुपके खलतें सटि गये ॥

पकरि पूँछ अरु पाँइँ कुहकुआ सरिस घुमायौ ।
बछराको तजि रूप असुर तनु खल प्रकटायौ ॥
कैथनि मार्‍यो दैत्य वृक्ष फल टूटि गिरे तब ।
निरखि दैत्यकूँ ग्वाल बाल बोले हँसिकें सब ॥
मार्‍यो सारो दुष्ट जिह, भलो कर्‍यो दुख हटि गयो ।
वत्सासुर उद्धार लखि, देवनि अति विस्मय भयो ॥

यों बनि बछरापाल लाल डोलें बन बनमहँ ।
इक दिन ग्वालनि लख्यो बड़ो बक सोचें मनमहँ ॥
है यह निश्चय असुर खड़ो मुख ऊपर कीये ।
जब तक सोचें ग्वाल लीलि ग्वाने हरि लीये ॥
गये कृष्ण बक बदनमहँ, निरखि ग्वाल व्याकुल भये ।
तुरत दुष्टके कंठमहँ, पावक सम हरि ह्वै गये ॥

सहन करि सक्यो नहीं उगल दीये खलने हरि ।
मारन दौर्‌यो दुष्ट चोंचतै तुरत कोप करि ॥
हरि हँसि पकरी चोंच ग्वाल लखि अति हरषाये ।
दयो बीचतैं फारि सुमन देवनि बरसाये ॥
अति विस्मित बालक भये, आलिङ्गन हरिको करें ।
पत्र, पुष्प, फल, लाइकें, हरष सहित सम्मुख धरें ॥

असुर मृतक हरि कुशल निरखि बालक हरषावे ।
मनहुँ मृतक तनु प्रान आइ इन्द्रिय सुख पावे ॥
लै बछरनिकूँ ग्वाल बाल बृन्दावन आये ।
अति उत्सुक ह्वै वृत्त सबनि यशुमतिहि सुनाये ॥
बगुलासुरकी बात सुनि, सबकूँ अति विस्मय भयो ।
कहे गोप—मुनि गर्गने, सब भविष्य पहिलिहिं कह्यो ॥

यह दुष्टनिकूँ मारि सबनिकूँ सुख अति देगो ।
करै अलौकिक कर्म सुयश जिह जगमहँ लेगो ॥
मारि न कोई सकै जिही असुरनिकूँ मारै ।
जीतै सबकूँ सदा नहीं वैरिनितैं हारै ॥
यों नित हरि बलरामको, कहे सुने सोचें कथा ।
रम्यो रहे मन उनहिं महँ, होहि न सांसारिक व्यथा ॥

खेलें बनमहँ चोर एक बालकहिँ बनावें ।
अपर बाल सब भागि जाहिँ इत उत छिपि जावे ॥
खोलै तब वह आँखि जाइ खोजै बालनिकूँ ।
बनि जावें ते चोर खोजि छूवै वह जिनिकूँ ॥
आँखमिचौनी खेल पुनि, खेलें पुल बन्धन करें ।
कबहि कछनी बैठक करें, ताल ठोंकि कबहूँ लरें ॥

कबहूँ सेन सजाइ विजय करि गाडे झन्डा ।
कबहूँ खेले खेल भट्टूइ गुल्लीडंडा ॥
अन्धाथापी और मलूकाघाड़ा खनखन ।
कैकैडडा चीलझट्टा अटकनबटकन ॥
जा छप्पनके पेडपै, कै कै दूनी कै ।
खेलें हरि सब मिलि कहे, कृष्णचन्द्रकी जै ॥

सोरठा—बनविहँगनि सँग श्याम, विहरें बन बन बाल बनि ।
संग सखा बलराम, करहिँ चरित अनुपम रुचिर ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें वृन्दावन आगमन वत्सासुर बकासुर उद्धार नामक नवम अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण-उन्नीसवें दिन का विश्राम]



अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

एक दिवसकी बात सुनहु हरि निश्चय कीन्हों ।
कालिह कलेऊ करें बनहिँ जिह आयसु दीन्हों ॥
लड्डु, पूआ, खीरि, जलेबी, पेड़ा, पपड़ी ।
हलुआ, मोहनथार, समौसे, फैनी, रबड़ी ॥
सब सामग्री साजिकें, श्याम सखनि सँग चलि दये ।
ग्वाल बाल सबई सजे, बन शोभा निरखत भये ॥

मुख करि हरिकी ओर प्रेमतें बैठे आगे ।
अब सब सुखतैं बैठि हँसी कछु करिबे लागे ॥
कोई बालक बस्त्र बस्त्रतैं बाँधे चुपकें ।
काहूकी लै छाक सखा कछु पेड़नि दुबके ॥
छींको लै चम्पत करें, और औरकूँ देहिँ जब ।
खिसिआवे रोवे सखा, खिलखिलाइ हँसि जाइँ तब ॥

जो कनुआकूँ छुए बीर ताहीकूँ जाने ।
पहिलें जो छू लेइ बिजय ग्वाईकी माने ॥
करहिं अनुकरन भ्रमर सरिस स्वर गुन गुन गावें ।
नाचें खेलें हँसे बाँसुरी मधुर बजावें ॥
नभमहँ कछू दिखाइकें, जिह का जिह का कहि बकें ।
बोले—छम्मक परि गई, कान भाद्रपदमहँ पकें ॥

नरसिंहाको शब्द करें श्वाननि सँग भूकें।
सुनि कोकिलकी कूक ताहि सँग कोई कूकें॥
कोई वनिकें व्यास कथा वेदनिकी बाँचें।
कोई पट फैलाइ विहँसि मोरनि सँग नाचें॥
कोई खग-छाया लखें, सँग सँग दौरें दूरतक।
हसचाल अनुकरन करि, कोई पहुँचे प्रभु तलक॥

कोई वगुला वनें ध्यानको ढोंग वनावें।
कहि कहि वगुला भगत अन्य गोपाल चिड़ावें॥
कोई बन्दर वनें चढ़ें तरु ताहि हिलावें।
कोई खों खों करें कपिनि लखि मुँह मटकावें॥
बकरी वकरा मेड़ वनि, चेंमें चेमें कछु करै।
करि धुनि प्रतिधुनि सुनि शपैं, कोई ऊँचेतैं गिरैं॥

कोई मेढ़क वनें मलिन जलमहँ घुसि जावें।
कुदकि कुदकिकें चले टर्र करि शब्द सुनावें॥
जलमहँ लखि प्रतिविम्ब, हँसें इत उत भगि जावें।
लखि लखि लीला ललित लाल अति हिय हरपावें॥
भक्तनिके भगवान जो, ज्ञानिनिके जो ब्रह्म हरि।
कहें अश शिशु आज ते, व्रज विहरें नरवेष धरि॥

जिनकूँ ग्वाल गँवार खेलमें खेलि हरावें।
तिनि ग्वालनिके भाग्य इन्द्र विधि शम्भु सरावें॥
यों करि क्रीडा कृष्ण सवनिको चित्त चुरायो।
तवई तहँ अघ असुर वकी वक भाई आयो॥
वहिन बन्धु मेरे हने, सोचै खल जा श्यामने।
मारूँ गोपनिके सहित, अव अरि आयो सामने॥

यों करि निश्चय बन्यो असुर अजगर अतिभारी।
मुख गिरि गुहा समान सड़क सम जीभ निकारी॥
अधर धरापै धर्यो ओठ घन नभमहँ लाग्यो।
बालनिके उर दृश्य निरखि कौतूहल जाग्यो॥

उपमा अजगरतें करें, गिरिकी गुहा बताइकें।
कोई कछु कहि कहि हँसैं, तुलना करैं सिहाइकें॥

बाल सुलभ चाचल्य कहे—जामें घुसि जावें।
होहि असुर बक सरिस मरै लखि सब सुख पावें॥
यों कहि अहिमुख घुसे बजावत बालक तारी।
पुनि बछरा घुसि गये भये चिन्तित बनवारी॥

अन्तरयामी असुरकौ, जानि सकल छल बल गये।
बालक बछरा बचें कस, मरै असुर सोचत भये॥

नन्दनँदन सरबज्ञ सबनिके घटकी जानें।
असुर अघासुर तिन्हे बन्धु-घाती रिपु मानें॥
अघ मुख प्रबिशे तुरत दयासागर बनवारी।
सब सुर हाहाकार करें असुरनि सुख भारी॥

अनुगत दासनिके निमित, सब कारज नटवर करहिं।
भक्त-चरन रज लोभतें, नित पीछे पीछे फिरहिं॥

मुखमहँ हरिकूँ निरखि अघासुर अति हरषायौ।
सुर मुनि चिन्तित लखे श्याम तनु तुरत बढ़ायौ॥
स्वाँस रुकी स्वर रुद्ध नेत्र निकसे फाट्यो सिर।
बछरा बाल जिवाइ करे अघ मुखतें बाहर॥

असुर बदनतें ज्योति इक, दिब्य निकसि ठाढ़ी भई।
मुखतें हरि निकसे तबहिं, श्याम अगमहँ मिलि गई॥

अघ उद्धार निहारि अप्सरा सुर मुनि आये।
नृत्य बाद्य सगीत श्यामकूँ मधुर सुनाये॥
वेदपाठ द्विज करें देव जय शब्द उचारें।
ब्रह्मलोक विधि बैठि बाघकी बात विचारें।
होहि कहाँ चलिकें लखें, आनन्दोत्सव अवनिमहँ।
तुरत हंस चढ़ि चलि दये, आये व्रजमहँ कृष्ण जहँ॥

यह कुमार बय चरित शिशुनि पौगण्ड-वयसमहँ।
कह्यो आइ व्रज श्याम आज अहि मार्यो बनमहँ॥
शुकतें बोले भूप परीक्षित—प्रभु! रुकि जाओ।
गयो कहाँ इक बरस कृपा करि भेद बताओ॥
कर्म दूसरे छिन कर्यो, ग्वाई छिन कहि सकहिं नहिं।
कौतूहल मम हृदयमें, समाधान गुरुवर! करहि॥

सुनि भूपतिको प्रश्न हृदय शुकको भरि आयो।
गद्गद बानी भई नीर नयननिमहँ छायो॥
कुपित सेहके सरिस पुलकि तनु श्वेद युक्त जब।
भयो प्रेममहँ मगन इन्द्रियाँ शिथिल भईं सब॥
उतरे लीला लोकतैं, कृष्ण कथा संकल्प करि।
बाह्य दृष्टि जब कछु भई, बोले प्रभु छबि हृदय धरि॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें अघासुर उद्धार नामक दशम अध्याय समाप्त।

अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

राजन् ! करि करि प्रश्न कथाकूँ नयी बनाओ।
सुनहु सतत हरिचरित तबहुँ नहिँ नृपति अघाओ ॥
मन मनमोहनमाँहिँ लग्यो बानी गुन गावै।
श्रवन कथा रस मत्त तिनहिँ कछु नाहिँ सुहावै ॥
जार पुरुष ज्यों कामिनी, कथा सुनहिँ हिय बढत रस।
बार बार सुनि तृप्त नहिँ, होवे तुमहू रसिक अस ॥

राजन् ! अब हम गुह्य चरित अति ताहि सुनावैं।
भक्त शिष्य गुरु पाइ रहसहू नाहिँ छिपावैं ॥
करि अघको उद्धार तुरत हरि बाहर आये।
विस्मित गोपनि निरखि विहसिँ प्रभु बचन सुनाये ॥
यह अजगर अघ असुर है, समुझि घुसे गिरि गुहा तुम।
चलो भयो सो भयो अब, बन भोजन मिलि करहिँ हम ॥

यह यमुनाको पुलिन बालुका कोमल कैसी।
जैसी सुन्दर घास छटा हू अनुपम तैसी ॥
खिले सरनिमहँ कमल तरुनिपै पच्छी फुदकें।
लागी भैया भूख उदरमहँ मूसे कुदकें ॥
हम सब पावें छाककूँ, पी पानी बछरा चरें।
बैठौ गोलाकार सब, प्रीति-भोज वनमहँ करें ॥

सुनि नटवरके बचन बाल बैठे सुनियमतैं ।
छोटे छोटे प्रथम बड़े पुनि बैठे क्रमतैं ॥
कमलकर्णिका आस पास फैले मानों दल ।
सबने पत्तलि करीं पत्र बल्कल कोमल फल ॥
पत्तलि परसीं प्रेमतैं, प्रिय पदार्थ पावन लगे ।
हँसत हँसावत ग्वाल सब, प्रेम सरसतामहँ पगे ॥

नटवर गोपनि सहित करत भोजन बर बनमहँ ।
मुरली पटमहँ कसी बेंत अरु सींग बगलमहँ ॥
माखन दधि मधु भात हाथमहँ ग्रास सलोनों ।
हँसत हँसावत सतत सखनिकूँ सुख अति दीनों ॥
विधि विधानतैं मखनिमहँ, भाग गहहिँ जे नेमतैं ।
ते ग्वालनि सँग बैठिकें, जूठो खावें प्रेमतै ॥

विधिने लीला लखी मोह अति मनमहँ छायौ ।
करूँ परीक्षा भाव चित्त चतुरानन आयौ ॥
बछरा लये चुराइ छिपाये निज पुर जाकें ।
पुनि बालनिलै गये भोजके थलपै आकें ॥
सोचे—अब का करतु है, जिह यशुमतिको छोहरा ।
बछरनिकूँ ढूँढ़त फिरें, इत हरि गिरि गुह कंदरा ॥

पुनि नहिँ निरखे बाल लाल विधिकृत सब जान्यो ।
कृष्ण कुपित नहिँ भये मोह मायाको मान्यो ॥
होवै नहिँ विधि ग्वाल बाल बछरनि जननिनि दुख ।
बालक बछरा बने विष्णु सबकूँ देवैं सुख ॥
शोभा, शील, स्वभाव, स्वर, नाम, रूप, वय, वेप सब ।
जैसे जितने जब हते, तितने तस हरि बने तब ॥

बनिकें पालक ग्वाल पाल्य बछरा हरि बनिकें ।
वृन्दावनकी ओर चले प्रभु बनतें चरिकें ॥
बछरा बालक मातु उटीं हियतें चिपटावें ।
चूमें चाटें वदन प्यारतें अंक बिठावें ॥
अशन, वसन, उबटन; शयन, करवावें सुत समुझिकें ।
बाल बने बन जाहिं हरि, बछरनि लावें घेरिकें ॥

जैसी पहिले प्रीति कृष्णपे माँ यशुमतिकी ।
तैसी ब्रजमहँ भई सुतनिपै सब गोपिनिकी ॥
बाढ़ै छिन छिन प्रेम बेलि सब मरम न जानें ।
उमड़ै अति अनुराग ब्रह्मकूँ सब सुत मानें ॥
बरषमाँहिँ कछु दिन बचे, समुझे श्रीबलराम तब ।
कृष्ण कहा माया रची, श्याम बतायो वृत्त सब ॥

भैया ! चढ़ि अज हंस चारि मुखवारो आयो ।
देख्यो मेरो खेलमाल सारो घबरायो ॥
लैकें बछरा ग्वाल बाल चोरीतें भाग्यो ।
जानि ताहि कंगाल न मैं फिरि पीछें लाग्यो ॥
मैं बछरा बालक बन्यो, मेरो प्रेम स्वरूप है ।
करै प्रेम मोतें सकल, भव तो अंधो कूप है ॥

समुझि रहस बल कृष्ण चरणमहँ प्रीति दृढाई ।
इत अज आये लौटि बुद्धि तिनकी चकराई ॥
ज्योंकें त्यों सब लखे ग्वाल बछरा घबराये ।
दौरि गये तहँ लखे लौटि पुनि बनमहँ आये ॥
बछरा, बालक, बाँसुरी, बेत्र, निरखि सब रूप-हरि ।
निरखें इत उत बिकल बनि, तुरत हंसतें अज उतरि ॥

सबई निरखे श्याम चतुर्भुज शोभासागर।
शंख चक्र अरु गदा, पद्म धारें नटनागर॥
सबके सिरपै मुकुट कंठमहँ माला सोहे।
बिचरहिँ अगनित कृष्ण भुवन-मोहन मन मोहे।

जीव चराचर मधुर स्वर, करहिँ प्रार्थना वेणु धरि।
सेवें काल स्वभाव गुण, पूजा अर्चा सविधि करि॥

अगनित निरखे कृष्ण पितामह मुनि-मन-रंजन।
सबई सत्य स्वरूप ज्ञानमय नित्य निरंजन॥
नित्यानंद सुरूप अगोचर अलख एकरस।
भासै जिनमें विश्व चराचर अग जग सरबस॥

शङ्कर विष्णु असंख्य अज, लखि अज मन अति होत सुख।
निरिखे ब्रह्मा विविध विधि, दशमुख शतमुख सहसमुख॥

अहि शैयापै बिष्णु निरन्तर सुखतें सोवें।
कमला पैर पलोटि प्रेमतैं श्रीमुख जोवें॥
निकसें बहु ब्रह्माण्ड श्वास प्रश्वासमाँहि नित।
जानें कितने लीन होहिँ नित प्रविसे अगनित॥

परमैश्वर्य निहारि अज, हक्के बक्के-से भये।
लाये बछरा बाल सब, नन्दनँदन पग परि गये॥

लकुट सरिस अज गिरे नयनतै नीर बहावें।
पुनि पुनि करें प्रनाम उठें पुनि पुनि परि जावें॥
रोमाञ्चित तनु भयो श्याम छवि समय निहारे।
गद्‌गद बानी भई कष्टतें बचन उचारें॥

कछु आवेग घस्यो जबहिँ, मानो सोवततैं जगे।
करि नत मस्तक जोरि कर, बहुरि विनय करिवे लगे॥

ब्रह्मस्तुति

हे सजल मेघ सम हरि नटवर गिरिधारी।
घनश्याम! करो अब अविनय क्षमा हमारी॥

काननिमें कुंडल कनक मकर सम भ्राजे।
लखि मुखकी शोभा कोटि सूर्य शशि लाजे॥
शिर मोर मुकुटमहँ मिले कुटिल कच राजें।
आनन सर सरसिज नयन मधुप मनु भाजे॥
गर गुंजमाल वनमाल पँचरँगी प्यारी॥ १॥ घनश्याम०

सुकुमार पदनिते कठिन भूमिपै विचरें।
कर कौर शृंग बंशी लकुटी लै विहरें॥
व्रजकी रज अरु तृन धन्य गहकि पग पकरें।
बरसावें नभते सुमन नाथ जित निकरें॥
हौ करूँ विनय गिरिधर पीताम्बर धारी॥ २॥ घनश्याम०

जे भक्ति छोड़ि दुरबोध बोध हित धावैं।
वे नहीं परमपद प्रभुजी कबहूँ पावैं॥
जे नाम निरन्तर नित प्रति तुमरो गावैं।
वे फेरि नहीं जग अन्धकूपमें आवैं॥
अगनित पतितनिकी तुमने नाव उवारी॥ ३॥ घनश्याम०

करि सकै गुननिकी गिनती को जग माहीं।
शिव शेष शारदा वेद थके परि पार न पाहीं॥
जे कृपा प्रतीक्षा करें पुरुष तरि जाहीं।
तव कृपा छोड़ि दूसर उपाय जग नाहीं॥
मायाने मोह्यो मोइ मदनमदहारी॥ ४॥ घनश्याम०

कहँ हौ मायाको चेरो परिमित प्रानी।
कहँ तुम अचिन्त्य अखिलेश वेद जिनि बानी॥
हौं निजकूँ कर्ता कहूँ परम अभिमानी।
प्रति पल अगनित ब्रह्माण्ड रचौ अब जानी॥

अपराध करै शिशु, छिमा करै महतारी॥ ५॥ घनश्याम०

हौं पुत्र पिता तुम मेरे नाथ! कहाओ।
हौ डूबूँ भवजलमाँहि कृपालु बचाओ॥
भव ग्राह ग्रस्यो लै चक्रसुदरशन आओ।
करिकें सेवक स्वीकार चरन लिपटाओ॥

ब्रजमें बसि जाऊँ बनि पशु, तरु, तृन, झारी॥६॥ घनश्याम०

ये धन्य धेनु ब्रजवासी सब नर नारी।
कालिन्दी कोकिल कमल कुंज बन क्यारी॥
पी दूध गरल सँग बको पापिनी तारी।
पावैं फिरि गति का धेनु सकल महतारी॥

का दैकें होवें उरिन दयालु विचारी॥ ७॥ घनश्याम०

ये राग रोष हैं चोर तबहिं तक स्वामी।
जब तक न भक्त बनि भजै तुम्हें यह कामी॥
अवतार लेहिं भक्तनि हित अन्तरयामी।
ते तरे भक्ति मारगके जे अनुगामी॥

तव बार बार पद बन्दौं हे बनवारी॥ ८॥ घनश्याम०

छप्पय—बहु विधि विनती करी ब्रह्म निज लोक सिधाये।
तब बछरनिकूँ घेरि श्याम भोजन थल आये॥

मायावश सब भूलि कालकी जानी नहिँ गति ।
निरखि कृष्णकूँ भये ग्वाल सबई प्रमुदित अति ॥
बोले—कनुआ ! च्यौ करी, देर कहाँ तक तू गयो ?
तेरी सूँ हमने नहीं, एक कौर मुँहमें दयो ॥

हरि हँसि भोजन कर्यो सबनि सँग लै ब्रज आये ।
समुझि आजके खेल सखनि ब्रजमाँहिँ बताये ॥
हरि माया वश जीव भूलि सब सुधि बुधि जावै ।
जातैं होवे बन्ध ताहि हँसि हिये लगावै ॥
एक कृष्ण पुनि बनि गये, ग्वाल बाल बछरा भये ।
प्रेम पूर्ववत पुनि भयो, बिसरि भाव पहिले गये ॥

देह आतमा समुझि जीव जगमाहीं भटक्यो ।
मैं मेरीमहँ फँस्यो मोह घाटीमहँ अटक्यो ॥
कृष्ण कृपा जब करें, घड़ा मायाको फूटै ।
पावै प्रभुको प्रेम जाल जगको तब छूटै ॥
कही अघासुरकी कथा, मोह नाश अजकी सुखद ।
पढ़ैं सुनें जे प्रेमतै, कटैं सकल तिनिकी बिपद ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें ब्रह्ममोहनाश नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ द्वादशोऽध्यायः

[१२]

अब जब कछु हरि बढ़े सखनि सँग गोपालन हित ।
गैयनि लै बन जाहिँ कर्यो बलदेव सहित चित ॥
कातिक शुक्ला बहुल अष्टमी जबई आई ।
लै गैयनि हरि चले सखा सँगमहँ बलभाई ॥

कुसुमित कानन अति सुखद, प्रविशि करहिँ क्रीड़ा तहाँ ।
खग मृग विहरहिँ सुख सहित, अलि कमलनि गूँजे जहाँ ॥

कोमल किसलय अरुन बरन शाखातैं झुकिकैं ।
कृष्ण और बल-चरन छुएँ जनु वृक्ष सकुचिकैं ॥
भैया, देखो करें सफल जीवन ये पादप ।
बोले बलतैं श्याम—कर्यो का इनने जप तप ॥

तुमहिँ अतिथि अनुपम समुझि, झुकि झुकिकें स्वागत करहिँ ।
पत्र, पुष्प, फल, नम्र ह्वै, सब तव पद-तलमहँ धरहिँ ॥

अलिगन गुन गुन करें सुयश तुमरो जनु गावें ।
मुनिजन वेष छिपाइ भ्रमर बनि चरननि आवें ॥
अतिथि अलौकिक जानि प्रेमतें केकी नाचें ।
चकित चकित करि दृष्टि प्रणयरस हरिनी याचें ॥

कल कण्ठनितैं कोकिला, कूजि कूजि कौतुक करहिँ ।
रूप माधुरी तव सुखद, जीव नेत्र रसनि भरहिँ ॥

धन्य धन्य तृन गुल्म लता पादप ये वनके।
पावें कर पद परस सफल जीवन ही इनके॥
बिचरत नि:खत तुमहिँ धन्य ये खग, मृग अलिगन।
सरिता, पर्वत, पुलिन धन्य पावन बृन्दावन॥
लालायित नित श्री रहहिं, तव आँलिगन अति सरस।
ब्रज-बनिता बड़भागिनी, पावें तव हिय हिय परस॥

यों करि बलकी विनय बननि बिहरें बनवारी।
शिशु सम क्रीड़ा करहिं, सरस सुन्दर शुभ प्यारी॥
हंसनिकी चलि चालि कूजिके हँसे हँसावें।
मोरनिके सँग नाचि सखनिकूँ श्याम रिझावें॥
धौरी धूमरि धूसरी, धेनुनिके लै नाम हरि।
टेरि बुलावें दूरितैं, छुएँ खुजावे प्यार करि॥

कबहूँ बलके करें पाद संवाहन स्वामी।
कबहूँ डरिके भगें ग्वाल सँग अन्तरयामी॥
मल्लयुद्ध करि कबहुं सखनिकूँ पकरि पछारैं।
कबहूँ जावैं जीति कबहुं गोपनितैं हारैं॥
ब्रज ऐश्वर्य भुलाइके, त्रिभुवनपति हरि रमापति।
बाल सुलभ क्रीड़ा करहिं, सुख ब्रज-जीवनि देहि अति॥

एक दिवस बन गये गोप बोले—सुनि कनुआँ।
बलुआ भैया सुनों आज मचल्यौ अति मनुआँ॥
पके तालकी गंध सबनिको चित्त चुरावै।
मनमहँ उठै उचंग जीभ पानी भरि लावै॥
पके पके फल परे परि, रहे धेनुकासुर तहाँ।
मारे पिछले पगनि खर, जो जावै प्रानी वहाँ॥

हरि हँसि बोले—चलो ताल फल सब मिलि खावें।
जो कछु बोले असुर मारिकें ताहि गिरावें॥
यों कहि बल अरु श्याम ताल बनमाँहिं सिधाये।
पादप पकरि हिलाय तालफल बहुत गिराये॥
सुनत शब्द धेनुक असुर, आइ दुलत्ती झाड़िकें।
भग्यो फिर्यो बल पकरिकें, वृक्षनि फेंक्यो मारिकें॥

दोहा—शौनक मुनि पूछ्यो तबहिं, खर धेनुक को वृत्त।
कहन लगे तब सूतजी, ताको पूर्व चरित्र॥

असुर साहसिक बली युवक बलिसुत अति सुन्दर।
गयो एक दिन दैत्य गन्धमादन गिरि ऊपर॥
लखि तिलोत्तमा तहाँ कामवश आहत कीन्हों।
सोऊ व्याकुल भई साहसिक संगम दीन्हों॥
गये गिरि गुहामें उभय, करें काम क्रीड़ा तहाँ।
दुर्वासा मुनि प्रथम ही, ध्यान मग्न बैठे जहाँ॥

उभय भये कामान्ध अत्रिसुत नहीं निहारे।
समुझि तिन्हें निर्लज्ज होहु खर वचन उचारे॥
सुरवनिता बनि बानसुता ऊषा धरनीपै।
सुनत शाप मुनि पैर परे त्रिलखैं करनीपै॥
पुनि मुनिवरने वर दयो, कृष्ण कृपा सद्गति लही।
भये मुक्त हरि संगतें, धन्य कथा धेनुक कही॥

इत धेनुक वध सुनत कुपित खर दौरे आये।
बन्धु विघाती राम श्यामपै बहुत रिसाये॥
पकरें दोऊ टाँग खरनिकूँ मारि गिरावें।
मारि मारिकें फेंकि ताल तरुवरनि हिलावें॥
सकल कर्यो बन खर रहित, वृन्दावन हरि चलि दये।
आवत मुरलीधर सुने, नर नारी हरषित भये॥

साँझ समय श्री श्याम सखनि सँग सुखतै आवत।
मंद मंद मुसकात मधुर स्वर बेनु बजावत॥
अलकनि पलकनि और कपोलनिकी झलकनिपै।
गोरज छाई मुकुट, पीतपट, लकुट, लटनिपै॥

करि प्रवेश ब्रजमहँ सकल, विरह ताप सबको हर्‌यो।
भोजन करि दाऊ सहित, श्याम शयन शय्या कर्‌यो॥

लिये ग्वाल अरु गाय गये यमुना तट ब्रजपति।
आज न सँग बलराम ग्रीष्म ऋतु घाम विकट अति॥
कालियहृदके निकट प्यासतैं सब घबराये।
करि विषयुत जलपान ग्वाल गौ प्रान गँवाये॥
अमृतमयी लखि दृष्टितैं, जीवित प्रभुने सब करे।
करी कृपा करुनायतन, दुःख आश्रितनिके हरे॥

रमनक नामक द्वीप नाग सब बास करहिँ जहँ।
विष बलतैं उनमत्त नाग कालियहु रहै तहँ॥
गरुड़ आइ कछु खाइँ कछुनिकूँ मारि गिरावैं।
बिनतासुतको कृत्य निरखि अहि अति भय पावैं॥
सब नागनि सम्मति करी, सन्धि गरुड़जीतैं करो।
रोकि जाति विध्वंसकूँ, सब सर्पनिको भय हरो॥

अरुणानुजके निकट सर्प सब मिलिकैं आये।
प्रति मावस बलि देहिँ सबनि मृदु बचन सुनाये॥
हरि वाहनने बात अहिनिकी सब स्वीकारी।
पर्व पाइकैं सर्प आहिँ सब बारी बारी॥
कालिय अति बल वीर्य मद, युक्त भयो नहिँ देहि बलि।
स्वयं गरुड़ बलि खाइकें, पहिले ही खल जाहि चलि॥

गरुड़ कुपित अति भयो दुष्टकूँ दौरि दबायो।
कालिय हू भिड़ि गयो बहुत विष वीर्य चलायो॥
जब नहिं लाग्यो दाव भागि कालीदह आयो।
सौभरिमुनिके शाप कवचतैं प्रान बचायो॥

रहै तहाँ विष वमन करि, जल अपेय सब करि दयो।
मरहिँ अचर चर जीव सब, हरि कौतुक अद्भुत कियो॥

चढ़े कदँबपै कृष्ण कूदि कालीदह माहीं।
उठि उत्ताल तरंग उछलि जल तटनि डुबाहीं॥
सागरमहँ जनु तरी करें डगमग त्यों नटवर।
नीचे ऊपर उछरि करें क्रीड़ा विश्वम्भर॥

निकरि भवनतैं अहि लख्यो, शिशु सुकुमार सुहावनो।
कर, पद, सब अँग अति मृदुल, मुख प्यारो मनभावनो॥

दहमहँ क्रीड़ा करै न कछु भय मनमहँ मानै।
मेरो विष अति उग्र अज्ञ बालक नहिं जानै॥
ऐसो मनमहँ सोचि क्रोध करि कालिय आयो।
डसै दुष्ट करि कोप कृष्ण तनु अँग लपटायो॥

अहि बन्धनमहँ श्यामकूँ, निरखि बाल व्याकुल भये।
गौ बछरा अरु ग्वाल तहँ, मूर्छित सबरे ह्वै गये॥

इत ब्रजमहँ उत्पात होहिं अति उग्र भयङ्कर।
तन, मन, भू, आकाश सबनिमहँ उठै बवंडर॥
आज बिना बल गयो श्याम वन गाय चरावन।
नर नारी अति दुखित लगे सब वन वन खोजन॥

ध्वज अङ्कुश वज्रादितैं, चिन्हित पद पहिचानिकैं।
पहुँचे कालियदह निकट, डरे मृतक सब जानिकैं॥

लखि अहि अगनि बँधे श्याम गोपिनि दुख दूनो।
भयो निरखि अति करुन दृश्य सबगो जग सूनो॥
करि करि हरिकी यादि दुखित होवें डकरावें।
दौरि दौरिकें मातु डूबिवे जलमहँ जावें॥

ह्वै मूर्छित सब गोप गन, गिरे परें द्रहमहँ धँसे।
बार बार बल बरजिकें, हरि लीला लखिकें हँसे॥

समुझे हरि सब दुखी सुनी बलदाऊ बानी।
कालियफनपै नृत्य करन नटवर मन ठानी॥
समुझि श्याम सकेत सुमन सुरगन बरसावें।
वीणा पणव बजाइ तालमहँ ताल मिलावें॥

मधुर मधुर वीणा बजहि, नाचें नटवर फननिपै।
जो न नवे रौंदे तिनहिँ, चरन चलावें सबनिपै॥

बहन मुखनितैं रक्त भयो कालिय मूर्छित तब।
छिन्न भिन्न ह्वै गये नागफण छत्ररूप सब॥
अनत शरन नहिँ निरखि शरन हरिकी अहि आयो।
अखिल भुवनपति पाद पदुममहँ चित्त लगायो॥

पत्नी सब ही नागकीं, आईं पतिकूँ बिकल लखि।
शिशु सम्मुख करि नयन भरि, श्रीहरितै बोलीं बिलखि॥

दोहा—दमन दुष्ट अवतार तव, शत्रु पुत्र सम दृष्टि।
प्रायश्चित हित दड दैं, है सब तुमरी सृष्टि॥

नागपत्नी-स्तुति

नाथ! तव दण्ड ज्ञानको हेतु, देवको कोप परम वरदान।
नित्य अहि उगिलत विष करि क्रोध, मर्दि फन मेंट्यो मोहन मान॥
कर्यो जाने का जप तप योग, रीझि दीये घर दरशन आइ।
चरन दरशन दुरलभ जगमाहिँ, धरे सिर सो हरि आपु रिस्याइ॥

चरनरज इच्छुक तुमरे भक्त, स्वरग अपवरग देहिँ ठुकराइ।
रह्यो अब कौन कृत्य अवशेष, धूरि पग धरी शीश अकुलाइ॥
करें हम चरननिमाहिं प्रनाम, बने गोपाल आइ- व्रजमाँहिं।
आपु हैं साक्षी सत चित रूप, नित्य अजवेद भेद नाहिँ ।।हिँ॥

अस्ति अरु नास्ति आप ही थूल, सूक्ष्म सरवज्ञ प्रेमके धाम।
प्रकृतितें परे परावर श्याम, करें पुनि पुनि पद पदुम प्रनाम॥
आपु ही संकरषन प्रद्युम्न, आपु ही वासुदेव अनिरुद्ध।
आपु ही यदुपति जगपति ईश, आपु ही नित्य शुद्ध अवरुद्ध॥

आपु निष्क्रिय प्रपञ्चतें परे, तऊ जग रचें कालके काल।
दये दरशन धरि मनहर वेष, बने व्रज ग्वाल बाल नँदलाल॥
प्रजा जो करै प्रथम अपराध, छिमा कर देवें प्रभु भूपाल।
प्रानको देवें दान दयालु, शरन आईं हम लैके बाल॥

दयाकी अधिक पात्र हैं नारि, दीन अति अबला हम सुकुमारि।
जानि सेवक अपनावें नाथ, सकल अविनय अपराध बिसारि॥
देर नहिं कीजे राधारमन, शरननें राखें अशरनशरन।
निहारें नेह सहित गिरिधरन, गहे दुखहरन सुखद तव चरन॥

छप्पय—हम सबके पति प्राण प्राणपति भिक्षा दीजे।
हैं अबला भयभीत अभय अखिलेश्वर कीजे॥
नाग बहुनिकी विनय करुन स्वर मुरलीधर सुनि।
कर्यो न पादप्रहार फननिपै नटनागर पुनि॥
नाग तज्यो तब मो कहे, नाथ! तुमहिं सब कछु करो।
तुमहीं डारो जगतमहँ, जीव विपति तुमहीं हरो॥

सुनि बोले घनस्याम—यहाँतैं अहि तुम जाओ।
अब स्वदेशमहँ रहो सदा मेरे गुन गाओ॥
मम पद-अङ्कित शीश गरुड़ लखि ढिँग नहि आवै।
कालियदहमहँ न्हाय सुकृत करि नर सुख पावै॥

कालिय दह अरु कृष्णको, अति पावन सुखकर चरित।
रहहिँ अभय ते अहिनितै, पढ़हिँ सुनहिँ श्रद्धा सहित॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें धेनुकमोक्ष तथा कालियदमन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

छप्पय—दिव्य वस्त्र, मणि, माल पहिरि हरि दहतैं निकसे।
मनहुँ उदधिमहँ नील सरोरुह मणियुत विकसे॥
मृतक देह जनु प्राण लौटिकैं फिरितैं आये।
त्यों उठि सबने प्रेम सहित हरि हृदय लगाये॥
आलिङ्गन पुनि पुनि करें, दये दान प्रमुदित भये।
भूखे प्यासे ग्वाल गौ, ग्वा दिन तटपै बसि गये॥

शीतल मंद सुगन्ध पवन बालू अति कोमल।
सोये आधी रात्रि, उठी बनमहँ दावानल॥
देखि अगिनिकी लपट गोप सबरे घबराये।
दीन दुखी अति भये शरन श्रीहरिकी आये॥
व्रजबासिनिकूँ सभय लखि, हँसि मोहन ठाढ़े भये।
नयन मुँदाये सबनिपै, तुरत अगिनि सब पी गये॥

करि कालिय उद्धार प्रात आये वृन्दाबन।
नित नित जावें श्याम सबल बन धेनु चरावन॥
मोर मुकुट सिर धारें गले बैजन्ती माला।
बनि ठनि बनकूँ जाहिं करें क्रीड़ा नँदलाला॥
दादुर, केकी, हंस, अहि, चाल चलें चंचल चपल।
समर करहिं नृप बनि कबहुँ, करहिं खेल नित नव नवल॥

घुड़चढ्ढीको खेल होहि बालक बोलें सब।
दलपति बनि बल श्याम उभय दल बँटे ग्वाल तब ॥
शुभ अवसर लखि असुर गोपब्रनि कें तहँ आयौ।
प्रभु प्रलम्ब पहिचान, पक्ष निज माँहि मिलायौ ॥

हारे हरि निज दल सहित, जीते बल आगे बढ़े।
श्रीदामा हरिपै चढ्यो, बल प्रलम्ब ऊपर चढ़े ॥

श्रीदामाकूँ लिये श्याम निरखें मुरि मुरिकें।
बलकूँ लीये असुर बेगतैं चले उछरिकें ॥
हँसि श्रीदामा कहै—हमारो घोड़ा अड़ियल।
बलदाऊको भगे देखि वे महँ जो सड़ियल ॥

सकर्षनकूँ लै असुर, दाईतैं आगे बढ्यो।
गोप रूप तजि रूप निज, धारनकरि नभमहँ उड्यो ॥

अञ्जन परवत सरिस उड़ै नभमहँ जनु सितघन।
प्रथम डरे बलदेव फेरि सम्हरे सकरषन ॥
मस्तक मुक्का मारि असुरके सिरकूँ फार्यो।
यो प्रलम्बकूँ तुरत रोहिनीनन्दन मार्यो ॥

ग्वालबाल सब आइकें, साधुबाद बलकूँ दयो।
लखि बल द्वारा असुर बध, अति विस्मय सबकूँ भयो ॥

पुनि भाण्डीरक निकट आइ खेले सब बालक।
गैयाँ निकसीं दूरि खेलमहँ तन्मय पालक ॥
आई पुनि जब याद ढूढ़िबे गैयनि भागे।
दावानलकूँ देखि ग्वाल सब रोमन लागे ॥

विपद सघन वन मूँजके, दावानलतैं सब जरे।
डकरावें फँसि धेनु तहँ, ग्वाल लपट लखि अति डरे ॥

रक्षा अनत न समुझि शरन माधवकी आये।
सभय शब्द सुनि श्याम अभय बर वचन सुनाये॥
मींचो तुम सब आँखि सुनत मीचीं सब गोपनि।
दावानल करि पान कहे हरि—निरखो गैयनि॥
भाण्डीरक नीचे निरखि, सकुशल गैयनिके सहित।
भये सुखी पुनि चलि दये, लै गैयनि ब्रजकूँ तुरत॥

निरखे आवत श्याम हृदय गोपिनिके हरषे।
गीले भये कपोल श्याम-घन रस जनु बरसे॥
पल छिन जिन बिनु समय कोटिबरसनि सम बीत्यो।
श्याम दीठितैं दीठि मिली सब जग जनु जीत्यो॥
मुरलीको रव श्रवन सुनि, कुंचित कच पट पीत बर।
अँग अँग लखि पुलकित भये, नटवरकी छबि अति सुघर॥

दोहा—वेनुगीतकी शुभ कथा, मेंटै सब संताप।
मुनिवर सुखमय सरस अति, सुनहिं हुलसि हिय आप॥

छप्पय—सुखद शरदको समय सरित सर स्वच्छ भये सब।
गो गोपाल समेत श्याम प्रबिशे बनमहँ तब॥
सघन सुभग द्रुम सुमन सहित कोमल पल्लवयुत।
शुक पिक केकी आदि उड़ैं खग जिनपै इत उत॥
शारदीय बिकसे कमल, प्रकृति वधू सब बिधि सजी।
हिय मनसिजकूँ उदय करि, तब मोहन मुरली बजी॥

श्रवन शबद सुनि रहीं ठगी-सी सब ब्रजनारी।
कछु गुन बरनन करे बधुनि मन बात बिचारी॥
कर्यो कछुक आरम्भ यादि मोहनकी आई।
तब चित चचल भयो देहकी सुरति भुलाई॥
अपर सम्हरि बोली—अली, मुरली अधरामृत भरहिं।
पुनि झुकि फूँकें नँदनँदन, छिद्रनितैं वितरित करहिं॥

अपर कहे—जगमाँहिं सफल जीवन ही उनके।
कृष्ण मुखामृत पान करें नित लोचन जिनके॥
आवत धेनु चराइ सखनि सँग बेनु बजावत।
सुषमा श्याम सिहाइ लुटावत सुख सरसावत॥
मुरली अधरनिपै धरें, इत उत निरखत दृग चपल।
चोट करत कछु गाइके, बेनु माधुरी अति प्रबल॥

एक कहे—बलराम श्याम दोऊ ही नटवर।
रंगभूमि अति सुघर सरस बृन्दाबन सुखकर॥
नित नव अभिनय करें ग्वाल बालनि सँग आवें।
किसलय नूतन सुमन धातुतें बेष बनावें॥
स्वर सब मुरलीमहँ भरहिं, नाचें गावें हँसि परें।
नील पीत पट धारिकें, बेनुनि लै कौतुक करें॥

वेनु रेनु अति धन्य श्याम अँगमहँ जो चिपटैं।
वेनु अधरपै रहै रेनु सब अगनि लिपटैं॥
वेनु बाँसकी सुता रेनु धरनीकी दुहिता।
पुत्रिनि भागि सराहि, मातु दोउनिकी मुदिता॥
यद्यपि ब्रज-रजके निमित, लालायित सुरगन रहहिँ।
तदपि बेनुकूँ ही परम, भाग्यवती हम सब कहहिँ॥

जा मुरलीने कर्यो कौन तप श्याम रिझाये।
मुरलीधर जिहि हेतु जगत घनश्याम कहाये॥
अधरनि शय्यामाहिँ बेनुकूँ बिहँसि सुआवें।
हौलें हौलें कमल करनितैं चरन दबावें॥
करें बायु मुखकमलतैं, एक पैर ठाढ़े रहे।
प्राननि प्यारी मुरलिका, मैयातैं नित हरि कहे॥

लखि बंशी सौभाग्य बशकुल अति सुख पावैं।
सरिता धाईं सरिस रोम जनु कमल खिलावैं॥
पादप प्रमुदित होहिं फूलि जावे बन उपबन।
निज दुहिताके करें गान गुन गरजि गरजि घन॥
मदधारा तरु बाँसके, आनन्दाश्रु बहाहिं जनु।
वृद्धनि कुलमहँ भक्त लखि, बहे नयन जल पुलकि तनु॥

यह वृन्दाबन धन्य धराको धन जनु अनुपम।
चरननि नूपुर धारि चलें हरि बाजें छमछम॥
वेनु बजावत श्याम मोर समुझें जनु घनरव।
गरजि रहे हिय जानि मत्त ह्वै नृत्य करें सब॥
मोहन मुरली मधुर सुनि, नाचें केकी तालमहँ।
हम सब बिलपति दिवस निशि, फँसी निठुरके जालमहँ॥

ह्वै त्रिभङ्ग दै फूँक बजावे बेनु बिहारी।
बंशी बंशी बनी फँसाईं सब ब्रजनारी॥
मृगी पतिनि सँग सुनत तुरत जड़वत बनि जावें।
प्रनय कटाक्ष चलाय श्याम प्रति भक्ति दिखावें॥
चढ़ि बिमान सुनि वेनु धुनि, सुरनि सहित सुर सुन्दरीं।
भईं बिवश नीवीखिसीं, शिथिल केश माला गिरीं॥

चरत चरत तृन धेनु सुनीं मादक मुरली धुनि।
श्रवन पुटनितैं पान करैं हरषित ह्वै पुनि पुनि॥
नयननि नीर बहाइ हृदयमहँ छवि ले जावैं।
आलिङ्गन करि होंहिं सुखी सुधि तन बिसरावैं॥
बछरा मुखमहँ कौर धरि, ज्योंके त्यों ठाढ़े रहे।
झाग गिरैं मोती सरिस, धुनि प्रवाहमहँ सब बहें॥

सखि ! इन बिहँगनि लखो बने मौनी बाबा मनु ।
अपलक निरखत रहत करत साधक त्राटक जनु ॥
बैठि तरुनिकी डार सुनें बंशी धुनि नित प्रति ।
हम लालायित रहे रूप रसकी प्यासी अति ॥

बड़भागी सरिता सफल, भुज तरङ्गतैं सुमन धरि ।
आलिङ्गन हियमें करहिं, रूप माधुरी नयन भरि ॥

घोर घाममहँ श्याम निरखि उमड़े घुमड़ें घन ।
फुलझरियाँ बरसाइ करें छतरी छाया तन ॥
कुच कुकुमकी कीच सने पग बन बिहरें हरि ।
दूबनिपै लगि जाइँ बनचरिनि हृदय जाय भरि ॥

हिय, मुख, कुच कुकम मलें, प्रेम व्यथा मेटें अलीं ।
स्वर्ग सराहे सुरबधू, हमतैं तो भीलिनि भलीं ॥

गिरि गोबरधन धन्य श्रेष्ठ सब हरि भगतनितैं ।
जापै श्रीहरि फिरैं नित्य नगे चरननितैं ॥
हरपें हियमहँ निरखि ग्वाल गैयनि सँग नटवर ।
दै तृन, जल, फल, मूल करै सत्कार निरन्तर ॥

हरि मुरलीकी तान सुनि, होहिं अचर चर चेर अचर ।
पान करहिं बेसुधि बनहिं, वेनुमाधुरी परस्पर ॥

प्रिय मुरलीकी माधुरी, ब्रजवनिता करि पान ।
मदमाती बनि बकहिं नित, करहिं न कुलकी कान ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें दावानल पान प्रलम्बासुर मोक्ष तथा वेणुगीत नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।

[मासिक पारायण—बीसवें दिनका विश्राम]

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

कहे सूत-मुनि ! सुनहु कुमारिनिकी लीला अब ।
कृष्ण प्रेममहँ पगीं करें मिलि व्रत जप तप सब ।।
व्रत कातिकको करहिँ नियमतैं जमुना न्हावें ।
न्हाय बालुकामयी भगवती मूर्ति बनावें ।।
माला चदर्न धूप वर, अक्षत दल ताम्बूल फल ।
पूजा सब विधिवत करहिँ, अरपि अन्न सुस्वादु जल ।।

करि पूजा सब बिनय करें दुर्गे ! जगदम्बे ।
नँदनदन पति होहिँ देहु वर वरदे ! अम्बे ।।
यों हविष्य करि असन नियम व्रतके सब साधें ।
श्रद्धा भक्ति समेत भगवतीकूँ आराधें ।।
सुखद सरस लीला करी, प्रेम निरखि निष्कपट हरि ।
अपनाईं चिरसंगिनी, सब दोषनिकूँ दूरि करि ।।

पट यमुनातट धरें न्हाय नित नंगी जलमहँ ।
करन कृतारथ कृष्ण गये छलतैं तिहि थलमहँ ।।
जल विहार मिलि करें उलीचैं सलिल परस्पर ।
लै सबके पट चढ़े कदँबपै नागर नटवर ।।
संग सखनिके हँसत हरि, धरि अधरनिपै बाँसुरी ।
डरति लजति थर थर कँपति, सब सुकुमारी सुन्दरी ।।

४०

सब बोलीं—ब्रजबाल लाल मति पाप कमाओ।
हैं हम नंगी नारि न ऐसी हँसी उड़ाओ॥
कँपति नीरमहँ खड़ीं दया हम सबपै कीजे।
उतरि कदँबतें कुँवर बसन हम सबके दीजे॥

कहे कृष्ण—जलतैं निकरि, अपने अपने लेउ पट।
सुमुखि सुनहु साखी सखा, करहुँ कबहुँ नहि छल कपट॥

सुनी श्यामकी सरस रहसमय अनुपम बानी।
एक एककी ओर निरखि मनमहँ मुसकानी॥
पुनि बोली—घनश्याम! निपट हम दासी तुमरी।
अरपन सरवसु करें लाज लेओ मत हमरी॥

कहहिं श्याम—सुन्दरि! सुनहु, यदि दासी तो क्यौं डरो।
जैसो जो कछु कहहुँ हौं, तुम तैसो निर्भय करो॥

जानि बिबशता निकरि बारितैं बाला आईं।
गुह्य अंग कर ढाँकि सहमि सबरीं सकुचाईं॥
हरि बोले—अपराध बरुनको कीयो तुम सब।
न्हाई नंगी करहु बिनय करपुट सिर धरि अब॥

निजव्रतकूँ खंडित समुझि, धर्म भीरु सब डरि गईं।
पाप प्रनाशक प्रभुचरन, कमल माँहिं प्रनमत भईं॥

प्रभु प्रसन्न ह्वै गये, तुरत पट सबके दीये।
पाइ बसन प्रिय परस पहिन निज निज तिनि लीये॥
प्रेम बिवश बनि गईं सकुचिकें श्याम निहारे।
पूजन चाहे चरन न मुखतैं वचन उचारे॥

जानि मनोगत भाव हरि, बोले—बाला डरहु मति।
शरद् निशिनिमहँ रमन मम, संग करोगी सुखद अति॥

सुनत श्याम वर बचन भयो सुख दुख सँग मनमहँ ।
हरि आयसु सिर धारि चलीं सब हठवश ब्रजमहँ ॥
आइ नियम व्रत भूलि प्रतीक्षा करहिं सदाहीं ।
कब मनमोहन मोद भरें सबके मनमाहीं ॥

इत ब्रजबाला ब्रज गईं, श्याम सखनि सँग वन गये ।
निरखि सफल पुष्पित द्रुमनि, तिनहिं सत समुभत भये ॥

कहे सखनितैं श्याम वृक्ष ये अति उपकारी ।
घाम, वायु, जल सहहिं करहिं परहित नित भारी ॥
सबई इनकी वस्तु काम सबके ही आवें ।
इन ढिँग अरथी आइ विमुख कबहूँ नहिं जावें ॥

छाया ईंधन कोयला, पत्र, पुष्प, फल फूल दल ।
साधत सबके काज मिति, जीवन इनको ई सफल ॥

गोप कहैं सब—कल्पवृक्ष सम तू उपकारी ।
भैया ! जैसे बने मेंटि तू विपति हमारी ॥
आज लगी अति भूख छाक अब तक नहिं आई ।
सुनि वालनिके बचन बिहँसि बोले बलभाई ॥

सत्र आङ्गिरस करहिं द्विज, जाओ मखशाला तुरत ।
करो याचना अन्नकी, तव विनम्र ह्वैकें प्रनत ॥

हरि आयसु सब पाइ गये विप्रनि ढिँग बालक ।
कहें—सुनहु द्विज निकट कृष्ण आये पशुपालक ॥
होहि अन्न कछु देहु खाईं ते भूख बुझावें ।
यज्ञ शेष अरु पाइ ग्वाल सब तुमहिं सरावें ॥

करी न नाहीं नहिं दयो, मौनी सब द्विज बनि गये ।
लौटि सखनि हरितैं कही, नहिं निराश नटवर भये ॥

बोले—अबकें जाउ विप्रपत्निनिके ढिँग तुम ।
अन्न देहिं ते अवसि स्वादतैं खावैं सब हम ॥
सुनि बोले गोपाल—यार ! क्यौं हँसी करावै ।
क्यौं उन कृपननि नारि निकट अब हमें पठावै ॥
नँदनंदन हँसिकें कहे, दूध बैल देवै नहीं ।
लात दुधारहु गायकी, खाइ मनुज लेवे नहीं ?।

चले फेरि सब ग्वाल गये द्विजपत्निनिपाहीं ।
हरिकी सबई बात बिनयतैं तिनिहिं सुनाईं ॥
अति प्रसन्न सुनि भईं धन्य निज जीवन जान्यो ।
आज होहिं हरि दरश सुदिन सबने अति मान्यो ॥
मीठे खट्टे, नमकयुत, कटुक, कसैले, चरपरे ।
अति उज्वल वर थाल सब, षडरस व्यञ्जनतैं भरे ॥

लै व्यञ्जन चलि दई निहारे आगे नटवर ।
छैल चिकनिया बने सजे शोभित अति सुखकर ॥
द्विजपत्निनि लखि हँसे कहे—हे भामिनि ! आओ ।
आईं दरशन हेतु करे दरशन अब जाओ ॥
सुनि अप्रिय अच्युत बचन, बोलीं तुम प्रिय शिरोमनि ।
प्रथम बुलावत खींचिके, दुतकारो पुनि कठिन बनि ॥

पुनि बोले घनश्याम सुमुखि मखशाला जाओ ।
यज्ञ-काज करि सतत चित्त मम चरन लगाओ ॥
हृदय हृदयतैं मिले एकता मनकेमाँहीं ।
अङ्गसङ्ग अनुराग प्रीतिको कारन नाहीं ॥
हरि आयसु सुनि मन तहाँ, धरि तनतैं मखमहँ गईं ।
दरश श्यामके पाइकें, धन्य बिप्र पत्नी भईं ॥

एक जाइ नहिं सकी रोकि निज पतिने लीन्हीं।
करी तैयारी चली बाँधि रसरीतें दीन्हीं॥
दरशनमहँ व्यवधान पर्‌यो अतिशय घबराई।
श्याम रूप हिय धारि, त्यागि तनु स्वर्ग सिधाई॥
मन मनमोहनके निकट, तन मखशालामहँ पर्‌यो।
प्रेम प्रबलताने यहाँ, अति अद्‌भुत कौतुक कर्‌यो॥

इत सब आईं लौटि द्विजनि अति प्रेम दिखायो।
यज्ञ-काज लै सग पूर्ण विधि सहित करायो॥
विप्रनि कोहू हृदय शुद्ध हरिने करि दीन्हों।
सबने पश्चात्ताप कृत्य अपनेपै कीन्हो॥
ये अबलाईं धन्य हैं, हाय! अभागे हम रहे।
आये प्रभु पूजे नहीं, कठिन वचन उलटे कहे॥

करुनासागर कृष्ण कबहुँ तो कृपा करिङ्गे।
मलिन वासना दुःख शोक आसक्ति हरिङ्गे॥
माया मोहित जीव करम मारगमहँ भटकैं।
क्षुद्र स्वर्ग सुख हेतु अनलमहँ सिर नित पटकैं॥
नदनँदन हम अधम अति, अधम उधारन नाथ तुम।
करहु छिमा अपराध प्रभु! तव चरननिकी शरन हम॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें वस्त्रापहरण तथा विप्रपत्नी प्रसाद नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

दै द्विजपत्निनि दरश दयानिधि ब्रज पुनि आये।
बसि वृन्दावन नंदनँदन बहु चरित दिखाये॥
एक दिवस हरि लखे गोप इततें उत जावैं।
जौ तिल चाँवर घीउ सबहिं घर-घरतै लावैं॥
बाबा! का उत्सव करो, प्रभु पूछैं ब्रजराजतैं।
धूमधाम अति मचि रही, होवेगो का आजतैं॥

तब बोले ब्रजराज इन्द्रकी पूजा भैया।
जो बरसावे नीर होहिं तृन खावे गैया॥
जल ही जीवन कह्यो इन्द्र हैं जीवनदाता।
त्रिभुवनपति सर्वेश स्वर्गपति विष्णु विधाता॥
नंद वचन सुठि सरल सुनि, हँसि बोले ब्रजचन्द तब।
जड चेतन चर अचर जग, पिता! कर्मवश भ्रमहिं सब॥

जीव कर्मवश होहि कर्मवश ही मर जावे।
करे शुभाशुभ कर्म दुःख सुख तैसो पावे॥
बँधे कर्ममहँ जीव इन्द्र का करै विचारो।
तैसो तव तनु मिले कर्म जस होहि हमारो॥
कोउ न सुख दुख दै सकै, सबतैं कर्म विशिष्ठ है।
जाकी जातै जीविका, चलै तासु सो इष्ट है॥

विप्र वेदतैं करें जीविका क्षत्रिय महितैं।
वैश्य बनिज कृषि धेनु ब्याजके मिले धनहितैं॥
करिके सेवा शूद्र द्विजनिकी वृत्ति चलावें।
जो स्वधर्ममहँ रहे अंतमहँ सद्‌गति पावें॥

देहि घास, जल, मूल, फल, गोप इष्ट गिरिराज है।
पूजो गिरिवर धेनु द्विज, पूरन सब ही काज है॥

पूरी छुन छुन छनें कचौरी खस्ता सुन्दर।
रबड़ी लच्छेदार खीर केसरिया सुखकर॥
हलुआ मोहनथार जलेबी पेरा मठरी।
टिकिया पूआ बड़े सोंठ पापर अरु पपरी॥

व्यंजन सब सुन्दर बने, दाल, भात, रोटी कढ़ी।
साग रायते विविधि विधि, उड़द मूँग आलू बड़ी॥

व्यंजन सरस बनाइ शैलकूँ भोग लगाओ।
भोजन द्विजनि कराइ प्रेमतें माल उड़ाओ॥
पावें सब परसाद महोत्सव मधुर मनावें।
गिरि परिकम्मा करें गीत गोपी मिलि गावें॥

मेरी तो सम्मति जिही, जिह मख मम मतिमहँ खगे।
सुनि सब बोले गोप तब, कृष्ण कहे सोई करो॥

त्यागि इन्द्र मख गोप करें पूजा गिरिवरकी।
भई विप्र, गिरि, धेनु, यज्ञमहँ सम्मति सबकी॥
लागे छप्पन भोग श्याम गोवरधन बनिकें।
करि करि लम्बे हाथ उड़ाये व्यञ्जन तनिकें॥

खिचरी, पूरी, मिठाई, सटके सट सट साग सब।
देखि देव प्रत्यक्ष गिरि, भयो सबनि विश्वास अब॥

पूजा के ई समय मानसी प्रकटी गंगा।
सुन्दर निर्मल नीर निकट गिरि तरल तरङ्गा॥
गोवरधनकूँ पूजि द्विजनि परसाद पवायो।
परिकम्मा पुनि करी हर्ष हियमहँ अति छायो॥
पायो प्रेम प्रशाद पुनि, पय पी सब बृजमहँ गये।
गिरिवर पूजातैं सकल, प्रमुदित पुरवासी भये॥

इत सुरपति जब सुनी नंद मम भाग न दीयो।
समुझ्यो निज अपमान कोप गोपनिपै कीयो॥
सोचे सुरपति कृष्ण काल्हिको छोरा छोटो।
मानि गोप तिहि बात काज कीयो अति खोटो॥
अच्छा इनके गर्वकूँ, अबई खर्ब कराउँगो।
वर्षा विकट कराइके, ब्रजकूँ आज डुबाउँगो॥

कर्यो इन्द्र अति कोप भयङ्कर मेघ बुलाये।
करिवेवारे प्रलय मेघ सांवर्तक आये॥
बोले तिनतैं शक्र—शीघ्र तुम ब्रजमहँ जाओ।
गोपनिको धन धान धेनु सर्वस्व डुबाओ॥
गर्जत तर्जत घन चले, प्रलय सरिस बरषा करैं।
प्रेरित पवन प्रचन्ड हिम, नर, पशु, पच्छिनिपै परैं॥

थर थर काँपैं गाय हाय सब लोग पुकारें।
ठिठुरत इत उत फिरत कहत हरि हमें उबारें॥
अनत शरन नहिँ लखी शरन सब हरिकी आये।
शरनागतके निकट दीन ह्वै वचन सुनाये॥
भक्तवछल भगवान हे, हरि हम सबके दुख हरो।
कुपित इन्द्रके कोपतैं, प्रणतपाल रच्छा करो॥

सुरपतिकी करतूत समुझि हरि मन मुसुकाये ।
कछु चिन्ता मति करो सबनिकूँ वचन सुनाये ॥
करपै गिरवर धर्‌यो फूल सम ताहि उठायो ।
चक्र सुदर्शन सोखन हित जल शैल त्रिठायो ॥
मैया कर माखन मलै, लकुट लगावैं गोप-गन ।
सात दिवस गिरि कर धर्‌यो, भयो न नैंकहु मलिन मन ॥

प्रलयकालके मेघ शक्ति भर पूरे बरसे ।
नीचे गिरिके गोप गाय सब सुखतैं निवसे ॥
जलतैं खाली भये गये सुरपतिके पाहीं ।
बोले बरषा करी नन्द-ब्रज डूबत नाहीं ॥
मद सब उतर्‌यो इन्द्रको, सुनत चकित सो रहि गयो ।
रोके घन सब ब्रज चलो, गिरिधर गोपनितैं कह्यो ॥

कुशल सबनि लखि गोप अधिक हियमहँ हरषावैं ।
हरि आलिङ्गन करैं प्रेमतैं उर चिपटावैं ॥
पूजन गोपी करैं कृष्णकी कुशल मनावैं ।
सुर-गन सादर सुमन गगनतैं मिलि बरषावैं ॥
आनँद त्रिभुवनमहँ भयो, सुखी सकल सुर नर भये ।
चढ़ि छकरनिपै गोप सब, वृन्दावनकूँ चलि दये ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें गोवर्धनधारण-लीला नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

[पाक्षिक पारायण-दशमदिवस विश्राम]

अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

प्रभु प्रभावतैं परम प्रभावित भये गोप अब।
नंदतनय नहिं श्याम करें शंका मिलि जुलि सब॥
कैसें जाने सात दिवस गोवर्धन धार्‌यो।
कैसे कालिय क्रूर कुंडतें मारि निकार्‌यो॥
जाके सबई काज अति, अद्भुत परम विचित्र हैं।
करें अलौकिक काज नित, मधुमय दिव्य चरित्र हैं॥

दश दिनको नहिं भयो पूतना मारि पछारी।
तृणावर्त अरु शकट काक बक हने मुरारी॥
खल अघ, धेनुक, वत्स विविध वेपनितैं आये।
आइ असुरता करी श्याम यम-सदन पठाये॥
दामोदर बनि यमज तरु, खेंचि गिराये बालने।
सात दिवस अब खेलमहँ, धर्‌यो शैल कर लालने॥

पूछें मिलि सब गोप नंदतैं—को ये गिरिधर।
कहो सत्य ब्रजराज कौनके सुत ये नटवर॥
सुनि बोले ब्रजराज—सत्य मैं बात बताऊँ।
मेरो ई सुत कृष्ण रहस परि तुम्हें सुनाऊँ॥
गर्ग प्रथम मोतैं कही, अवतारी तेरो तनय।
गुन सब नारायन सरिस, ही, श्री, बल, तप, नय विनय॥

करि मोकूँ आदेश गये घर गर्ग महामुनि ।
हौं अति विस्मित भयो पुत्रके ग्रह फल शुभ सुनि ॥
तबतैं जो जिहु करै मोइ होवै नहिँ विस्मय ।
नारायन सुत समुझि सतत विहरौं हौं निर्भय ॥
समाधान सबको भयो, करें प्रशंसा नंदकी ।
जय बोले मिलिकें सकल, नंदनंदन ब्रजचन्द्रकी ॥

ब्रजकी रक्षा करी कृष्णने यश जग छायो ।
लज्जित ह्वैकें इन्द्र स्वर्गतैं प्रभु ढिग आयो ॥
कामधेनु गोलोक त्यागि सेवामहँ आई ।
आइ शक्र अति सकुचि मधुर स्वर विनय सुनाई ॥
कर जोरे शतक्रतु कहे, शुद्ध सत्वमय नाथ तुम ।
प्रभो ! छिमहु अपराध अब, माया मोहित जीव हम ॥

जनक अकमहँ करहिँ तनय नित अगनित अविनय ।
पितु ताडन हू करहिँ तदपि हिय रहहिँ प्रेममय ॥
मेरे गुरु पितु मातु बन्धु तुम सब कछु स्वामी ।
समुझि शक्र मद रहित कहे हरि अन्तरयामी ॥
इन्द्र ! जाहु निज लोककूँ, मम आयसु पालन करो ।
कबहुँ न करियो गर्व अब, मम सिख यह हियमहँ धरो ॥

तब पुनि बोली सुरभि—श्याम तुम लीलाधारी ।
मम सन्ततिकी विपति धारि गिरि हरि तुम टारी ॥
अज अनुमतितैं आज आप अभिषेक करावैं ।
शक्र सुरनिके इन्द्र आप गोविन्द कहावैं ॥
निज पयतैं प्रभु रुख निरखि, कर्यो धेनु अभिषेक पुनि ।
हरषे हरि अभिषेक लखि, इन्द्र सहित सुर सिद्ध मुनि ॥

यों गिरिवर हरि धारि इन्द्र मख भङ्ग करायो।
करि मद मर्दन फेरि क्षमा करि मान बढायो॥
हरि आयसु लै इन्द्र सुरभि निज लोक सिधाये।
कुञ्जबिहारी करत केलि बृन्दावन आये।
जे श्रद्धातैं सुनहिँ नर, जा चरित्रकूँ नेमतैं॥
काम क्रोध नसि जाइँ रिपु, प्रभु पद पावैं प्रेमतैं॥

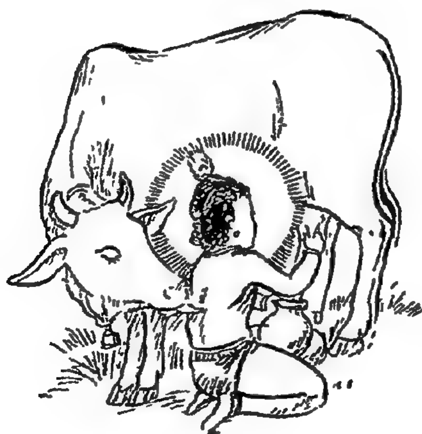
हरि बासर व्रत करें—सबहिँ ब्रजमहँ नर नारी।
निर्जल कछु फल खाइ रहे कछु दूधाधारी॥
एकादशी पुनीत सुदी कातिककी आई।
निराहार ब्रजराज रहे दिन दयो बिताई॥
जानि प्रात उठि चलि दये, स्नान करन यमुना निकट।
धरि पट जलमहँ घुसि गये, जानी नहिँ बेला बिकट॥

दूत पकरि लै गयो तुरत जलपतिके पाहीं।
इत ब्रजमहँ नँदराय लौटिकैं आये नाहीं॥
समाचार सुनि दुखद बरुनके पास गये हरि।
सौंपे श्रीब्रजराज बरुनने बहु पूजा करि॥
पिता सग घनश्याम लै, आये ब्रजमहँ सुखसदन।
सुनि अति वैभव कृष्णको, भयो सबनिको मन मगन॥

गोप विचारैं श्याम हमें बैकुन्ठ दिखावें।
गोता हमहूँ बैठि ब्रह्मसरमाँहिँ लगावैं॥
सबकी इच्छा जानि विष्णु निज लोक दिखायो।
सुखमहँ सबई मग्न भये सब जगत भुलायो॥
ब्रह्मानन्द चखाइ हरि, पुनि बैकुन्ठ दिखाइकें।
भये चकित सब गोपगन, हरि पुर दरशन पाइकें॥

द्विभुज कृष्ण नहिँ देखि भई तिनकी विभ्रम मति ।
लख्यो चतुर्भुज रूप भयो सबकूँ विस्मय अति ॥
ब्रह्मानन्द निमग्न गोप पुनि श्याम निकारे ।
नटवर यमुना निकट निरखि सब भये सुखारे ॥
यौं वैकुन्ठ दिखाइके, विस्मय कीयो दूरि हरि ।
नित नूतन अभिनय करें, छद्म ललित अति वेष धरि ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें इन्द्रसुरभिवरुण-विनय नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

ब्रजबनितनि अनुराग नवलमईं नित नव विकसत ।
गिरधर नटवर नाम सुनत अतिशय हिय हुलसत ॥
प्रथम स्रवन फँसि गये नयन पुनि भये पराये ।
मन अटक्यो लखि रूप जगतके काज भुलाये ॥

नाम श्रवन पुनि दरश करि, चित्त परस हित अड़ि गयो ।
परस पाइ पुनि केलि हित, सुरति भाव जाग्रत भयो ॥

इत गोपिनिको चित्त कृष्णके रूप लुभायो ।
करिबे रास बिलास श्याम उत मन ललचायो ॥
अति सुख दायिनि शरद पूर्णिमाकी निशि आई ।
सुषमा अति रमनीक दशहुँ दिशिमाँहिं सुहाई ॥

मनमोहनने मोहिनी, मायाको आश्रय लयो ।
आप्तकाम परिपूर्णको, मन क्रीड़ाके हित भयो ॥

अति निर्मल नभ भयो नीलिमा गहरी छाई ।
शारदीय शशि बिहँसि चन्द्रिका शुभ छिटकाई ॥
प्राचीदिशिकी ललित लालिमा लागे ऐसे ।
पति बिदेशतै आइ रँग्यो प्यारी मुख जैसे ॥

प्रिया रक्त पटतै निकसि, पूर्णचन्द्र बिकसित भये ।
सूर्यताप संताप दुख, निरखत शशि सब भगि गये ॥

नभकूँ झारि बुहारि रँग्यो नीलमतैं मानों।
मोती दये बिखेर खिले तारागन जानों ॥
श्रीमुख मडल सरिस सुखद शोभायुत निशिपति।
रक्ताञ्चलतैं निकसि करत जगकूँ प्रमुदित अति ॥

प्राचीदिशि कुंकुम रँगी, बर उडुगनपति शुभ्र अति।
मनहुँ प्रिया परिधान सुख, झाँपि हँसत प्रिय प्रानपति ॥

हृदय भरित अनुराग चलत शशि सबकूँ हेरत।
मनहु किरन कर कमल राग चहुँ ओर बिखेरत ॥
फेकी कोमल किरन भयो बृन्दावन रञ्जित।
जपा कुसुमकूँ पाइ फटिक मनि जनु अति हरषित ॥

बृन्दाबन अति मनहरन, आये गोपीजनरमन।
नटनागर सजि बजि तुरत, रास करन यमुना पुलिन ॥

है त्रिभङ्ग मनहरन फेंटतैं बेनु निकारी।
कर कमलनितैं परसि प्रेमतैं पौंछि सम्हारी ॥
पुनि अधरनिपै धरी करी कछु तिरछी प्यारी।
दाबे उँगलिनि छिद्र फूँक पुनि मुखमहँ मारी ॥

स्वर लहरी प्रकटित भईं, विश्व निखिल रव भरि गयो।
मधुर गान काननि पर्‌यो, युवतिनि चित चंचल भयो ॥

मनमोहनमहँ प्रथम चित्त आसक्त सबनिको।
करत प्रतीक्षा पर्‌यो श्रवन रव बंशी धुनिको ॥
ज्यों जलनिधितैं मिलन जाहिँ द्रुतगतितैं सरिता।
अक बकाइ सब चली श्याम ढिँग त्यों ब्रजबनिता ॥

काम काज बिसरे सकल, मन्त्र मुग्ध-सी बनि गईं।
तन मन घर परिवारकी, सुरति त्यागि सब चलि दईं ॥

दूध दुह्योको दुह्यो गायके नीचे पटक्यो ।
रही पालनो खोलि तज्यो ज्योंको त्यो लटक्यो ॥
दही मथत ही छोड़ि चली माखन न निकार्यो
छोड़ि चूल्हिपै दूध चली नीचे न उतार्यो ॥
पति भोजन तजि चली इक, प्रेम चटपटी हिय लगी ।
हलुआ घोटति रही इक, छोड़ि कढ़ाईमहँ भगी ॥

कछुक अङ्क बैठाइ पूतकूँ दूध पिआवें ।
कछुक प्रानपति हेतु फूलकी सेज बिछावें ॥
कछु भोजन करवाइ सबनिके बासन माजें ।
कछु उबटन करि न्हाइ नेत्रमहँ अजन आजें ॥
कछु कुंकुम चंदन घिसति, कछु तनमाँहिँ लगावतीं ।
कछुक केश काढ़ति रही, कछु बेंदी चिपकावतीं ॥

कछु पट पहिनति रहीं कछुक आभूषन धारति ।
कछु दर्पनमहँ देखि माँग सिंदूर सम्हारति ॥
जो जो कारज करति रहीं त्यागो सो तिनने ।
चली बेनु सुनि काज अधूरे छोड़े उनने ॥
बरजी पति पितु बन्धुने, रोकीं बहु परि नहिं रुकीं ।
कही बहुत परि ते नही, लोक लाज सम्मुख झुकीं ॥

कछुक रहीं घरमाँहिँ गमनकी करीं तयारी ।
किन्तु चलि नहिँ सकीं पिता पति बन्धु निवारी ॥
करिबे हठ जब लगी दयो बाहरतैं तारो ।
भीतर सोचें बिबस नाथ ! बश नाहिँ हमारो ॥
कृष्ण भावनामहँ सकल, तब तन्मय ते है गईं ।
नयन मूँदि मन हरनके, मगन ध्यानमहँ सब भईं ॥

कृष्ण-विरह अति दुसह वेदना भई तीव्र जब।
सकल अशुभ मिटि गये भावमहँ मगन भईं सब॥
भावालिगन करत मिटे शुभ बन्धन टूटे।
त्रिगुन देह तजि दई जगतके बन्धन खूटे॥
दिव्य देहतैं तुरत ई, कृष्ण संग संगम कर्यो।
भयहारी भगवाननें, भवबन्धन तिनिको हर्यो॥

कहे परीक्षित—प्रभो! कान्ततें मानति हरिकूँ।
ब्रह्म-भाव नहिं भयो मिली च्यौं शुभ गति तिनिकूँ॥
डपटि कहैं शुक—भूप भूलि का बात गये तुम।
भई मुक्ति शिशुपाल बताई बात प्रथम हम॥
बैर भाव करि तरि गयो, कर्यो कृष्णमहँ प्रेम नहिं।
सदा बसत हिय श्यामघन, ते गोपी क्यौ नहिं तरहिं॥

काम क्रोध भय लोभ नेह सौहार्द भावतैं।
कैसे हू हरि भजो शुद्ध व अशुद्ध भावतैं॥
जे तन्मय है जायँ तरहिं भवसागर ते नर।
जो चाहे सो करहिं सिद्ध दाता वे नटवर॥
राजन्! हरिकी दयातैं, संशय सब मिटि जाइगो।
ककरी चाकूपै गिरे, ककरी ई कटि जाइगी॥

नृप बोले —गुरुदेव! रही अब शंक नाहीं।
हरि चरित्र सो कहे गईं गोपी प्रभु पाहीं॥
शुक बोले—ब्रजबाल गईं ब्रजवल्लभ ढिंग जब।
है ऊपरतैं निठुर कपटतैं बोले हरि तब॥
आओ, बैठो, कुशल सब, कर्यो कष्ट किहि कामतैं।
राति अँधेरी बन विकट, क्यौं आईं निज धामतैं॥

अनल अनिल जल जनित कष्ट कछु बनमहँ आयो ?
क्यों निशि बेला सरित पुलिनमहँ चित्त चलायो ?
शीतल मंद सुगंध पवन पल्लव बन विकसित ।
अथवा सुषमा शारदीय अवलोकनके हित ॥
आईं अथवा नेहवश, प्रेम करहिं मोमें सबहिँ ।
पातिव्रत पालन करहु, जाओ निज निज घर अबहिँ ॥

सुनत श्यामके कठिन वचन ब्रजवनिता रोईं ।
भयो हृदय दुख दुसह सबनि तन मन बुधि खोईं ॥
नयननि निकसत नीर कालिमा काजरकी सँग ।
ढरकि हृदयपर गिरत मिलत कुच कुंकुमके रँग ॥
गंगा यमुनाके सरिस, उमड़त हिय मुख मलिन अति ।
बने भले ही कठिन हरि, हमरी तो वे एक गति ॥

पुनि कछु धीरज धारि पोंछि आँसू बोली सब ।
प्रेम पाशमहँ फाँसि निठुर अति कहहु वचन अब ॥
जाओ जाओ बार बार जिह बात कही है ।
जाइँ कहाँ सब त्यागि शरन तव चरन गही है ॥
शरनागतको त्यागिवो, दुसहपाप बेदनि कह्यो ।
तव चरननिमहँ आइ हम, धरम करम सब कछु लह्यो ॥

सुत पति सेवा करन दयो उपदेश हमें तुम ।
परि समुझे सर्वस्व प्रानपति तुमकूँ सब हम ॥
प्रियता जगमहँ होहि सबनिमहँ तुमरे कारन ।
कैसे हम करि सकें आपको शिक्षा धारन ॥
कुशल शास्त्रविद् सकल जन, कराहिँ प्रेम तुम प्रेष्ठ महँ ।
का पति सुत जग प्रेमतैं, होवै यदि रति श्रेष्ठमहँ ॥

कमलनयन ! अब कठिन हृदय बनि मत ठुकराओ।
फूली आशा लता ताहि नहिं नाथ ! जराओ ॥
जाहिं कहाँ का करें चित्त नहिं बशमहं प्यारे।
कर, पद अव गति हीन अङ्ग सब भये हमारे ॥
अरे निर्दयी ! प्रथम तो, जाल प्रेमको डारिकें।
अब फँसाइ व्याकुल करत, क्यौं नहिं डारै मारिकें ॥

मंद मंद मुसकाय हृदयमहँ बान चुभोयो।
करी प्रज्वलित आगि कामकी सरवसु खोयो ॥
प्यासी बनमहँ फिरहिं दया हिरदेमहँ लाओ।
अधरामृत अति सुखद रमन ! भरि पेट पिआओ ॥
बधिक ! बिरह बिष बानतैं, नहि हम सब मरि जाइँगीं।
दिव्य देहतैं ध्यान धरि, चरन शरन तव पाइँगीं ॥

जा दिनतैं अति मृदुल पदम पद हमने परसे।
ता दिनतैं अनुराग हृदय सर सरसिज सरसे ॥
चरनकमल रज चहहिं किंकरी करि अपनाओ।
दीनबन्धु दुख दलन दया करि हृदय लगाओ ॥
बाहुकंठको हार करि, कर सरोज सिरपै धरो।
बक्षःस्थल पद कमल धरि, हृदय ताप गिरधर हरो ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें रासोपक्रम नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

[१८]

व्रजबनितनिकी बिनय बिहारी सुनि हरषाये।
प्रेम अलौकिक जानि नयन हरिके भरि आये॥
योगेश्वर मुसकाय कह्यो हौं रमण करुङ्गो।
चिर दिनको संताप सबनिको आज हरुङ्गो॥

यों कहि गोपिनि मध्यमहँ, उडुगन सम शोभित भये।
श्याम परसतैं सबनिके, चन्द्रबदन बिकसित भये॥

बाहु-पाशमहँ जकरि फिरैं बन रतिपति सम हरि।
ज्यों हरिनिनि सँग हरिन करिनि सँग मदमातो करि॥
कृष्ण कीरतन करतिं कंठ कल सब मिलि गावैं।
नटवर वेनु बजाय तालमहँ ताल मिलावैं॥

बन बन बिचरत सखिनि सँग, आये गिरधर पुलिनमहँ।
यमुना तट शीतल सुखद, सरस बालुका रम्य जहँ॥

चंचल तरल तरंग संग शीतल मलयानिल।
कुसुम कुमुदिनी गंध पवन सँग खेलै हिलमिल॥
तहँ रासेश्वर आइ रमण रमणिनि सँग कीन्हों।
काम कलातैं सबनि अलौकिक सुख अति दीन्हों॥

तनु पुलकित हुलसित हृदय, हँसहिं हाथ फैलाइकैं।
मिलहिं परस्पर प्रेमतै, भरमामें चौकाइकैं॥

कबहूँ बिनवैं दीन होहिं पुनि कबहूँ अकरैं।
हिय मुख कर कटि केश करनितैं पुनि पुनि पकरैं॥
करि करि क्रीडा कलित प्रेम रसमाँहिं भिगोईं।
कुसुम कली सम सकल सरसतामांहि डुबोईं॥
जगपति परवश-से भये, करीं तृप्त अति सुख दयो।
पाइ मान अति श्यामतैं, मान सबनि हियमहँ भयो॥

जिहि हियमहँ मनहरन मान तहँ रिपु घुसि आयो।
समुझि गये घनश्याम दृष्य अति दुखद दिखायो॥
करन कृपा मदहरन रमनतैं विरत भये तब।
अन्तर्धान सुजान भये बिलखैं गोपी सब॥
पति बिनु नारी बिकल ज्यौं, हथिनी ज्यौं बिनु यूथपति।
त्यौं व्याकुल गोपी भईं, निरखि निकुञ्ज न प्रानपति॥

है चिन्तातुर करहिँ यादि हरिके कामनिकी।
मधुर मधुर मुसकान चलन चितवन सुहँसनिकी॥
लीला मधुर बिलास यादि करि करिकैं रोवें।
है तन्मय उन्मत्त सरिस तरु सुधि बुधि खोवें॥
उच्च स्वरतैं हरि गुननि, गावैं रोवें सिर धुनैं।
खग, मृग गिरि तमु लतनितैं, पूछैं हरि कोउ न सुनैं॥

वृक्षनिके लै नाम कहे—हे पीपर! पाकर।
हे कदम्ब! हे बकुल! नीम, वट, चंपक गूलर॥
हे रसाल! रसराज श्याम इत तो नहिँ आये।
चितवन जाल बिछाय हमारे चित्त चुराये॥
समुझि स्वारथी नरनिकूँ, सब मिलि तुलसी ढिँग गईं।
करि अतिशय अनुनय विनय, प्रेष्ठ पतो पूछति भईं॥

हे वृन्दे ! हे तुलसि ! श्यामको पतो बताओ।
कहाँ छिपाये श्याम बहिन टुक तनिक दिखाओ॥
हतभागिनि हम भईं त्यागि हम हरिने दीन्हीं।
रमन संग श्रीप्रिया गईं तुमने का चीन्हीं॥

सौति समुझि आगे बढ़ी, पतो सबनि पूछन लगीं।
ललित लता पुष्पित लखीं, समुझीं सब सजनी सगीं॥

हे मालति ! तुम सदा बसो श्रीजी केशनिमहँ।
स्वर्ण मालती रङ्ग बसै प्यारी अंगनिमहँ॥
माधव लये छिपाय माधवी कहाँ बताओ।
अरी, मल्लिके! जाति! यूथिके ! श्याम दिखाओ॥

प्रेम परस बिनु होहि नहिं, मन प्रमोद अरु पुलक अँग।
श्याम अवशि करतै परसि, निकसे इततैं प्रिया सँग॥

हे धरनी ! तू धन्य पाद प्रभुके धारति नित।
लिये लाड़िली संग लाल गिरधर निरखे इत॥
हे मृगवधु वर नयन नेहमहँ भीजे तुमरे।
बहिना ! देउ बताइ गये इत प्रियतम हमरे॥

राधा-कन्धा कर धरे, क्रीडा कमल घुमावते।
निरखे नँदनन्दन नयन, खग मृग कुल सरसावते॥

शौनक पूछें—सूत ! कौन राधा ये प्यारी।
सूत कहैं—मुनि ! शक्ति स्रोत सुख भरिबेवारी॥
श्रीवृषभानु कुमारि कीर्ति पुत्री सुकुमारी।
बरसानेकी लली किशोरी भोरी भारी॥

गोपी कान्ता राधिका, प्रिया, प्रेयसी, कामिनी।
नित्य किशोरी लाड़िली, मनमोहनि मनभावनी॥

दिव्य देहधरि धरनि धामपै राधा आई।
निज परिकर पुर लाइ अवनिकूँ दई बड़ाई॥
धनि धनि श्रीवृषभानु कीर्ति जननी हू धनि धनि।
जिनकी दुहिता बनी राधिका विहरैं भवननि॥
यह अवनी पावन बनी, राधा पदरज परसिकें।
जिह रज सुर गन इन्द्र अज, शिव सिर धारें हरषिकें॥

राधा रसकी खानि सरसता सुखकी बेली।
नन्दनँदन मुख चन्द्र चकोरी नित्य नवेली॥
नित नव नव रचि रास रसिक हिय रस बरसावे।
केलिकलामहँ कुशल अलौकिक सुख सरसावे॥
गोरी भोरी सुन्दरी, रामा सुषमा श्यामकी।
सती शिरोमनि स्वामिनी, श्रीवृन्दावन धामकी॥

प्यारी प्रभुकी परम स्वामिनी सुखकी सरिता।
श्याम सिन्धु प्रति बहति भाव भावित रसभरिता॥
लै तिनिकूँ हरि छिपे लतनितैं पूछति नारी।
निरखे इत कहुँ कृष्ण कन्हैया कुञ्जविहारी॥
नारी तुमहू नारि हम, निष्ठुर नरने ठगि लईं।
चोर चोरिके चित चल्यो, गयो बिना चितके भईं॥

अरी, बेलि सुख केलि करत निरखे इत गिरिधर।
मंद मंद मुसकात मदन मोहन मद मन हर॥
अवसि तुमहिं पद परसि प्रिया सँग इतहि सिधाये।
तोरे तुमतैं सुमन कामिनी केश सजाये॥
नख क्षततैं अनुराग अति, उमडि रह्यो तुम अँगनितैं।
पायो आलिङ्गन अवसि, तुम सबने प्रिय भुजनितैं॥

ऐसे कहि कहि बैंन नैनतैं नीर बहावे।
कबहूँ करै प्रलाप कबहुँ रोवे पछतावे॥
करै कृष्णको ध्यान पुकारैं नाम निरन्तर।
नाम ध्यानतैं भईं गोपिका तन्मय सत्वर॥

कृष्ण सरिस क्रीड़ा करे, बनी पूतना अपर हरि।
ज्योंको त्यों अभिनय करें, नयन मूंदि पयपान करि॥

एक बनि गई शकट कृष्ण बनि अपर गिरावै।
तृनावर्त बनि हरहि अपर हरि बन हरि जावै॥
बनि वत्सासुर एक कृष्ण बछरनि बिडुकावै।
कृष्ण बनी तिहि मारि परम पद ताहि पठावै॥

बनि बनवारी ब्रजबधू, वेनु बजावे बननिमहँ।
कछुक गोप गैयाँ बनीं, सुनि धुनि आवें रमन जहँ॥

बनि कालिय फुफकार एक गोपी जब मारै।
बनि नँदनंदन अपर नाथिकैं ताहि निकारै॥
एक कृष्ण बनि गोवर्धनकूँ धारै बलतैं।
बनि यशुमति हरि बनी ताहि बाँधे ऊखलतैं॥

देह गेहको सुधि न कछु, भ्रमति प्रेमरसमहँ पगीं।
तन्मय ह्वैकैं अनुकरन, नटवरको करिवे लगीं॥

निरखे प्रभुके चरन चिह्न अवनीपै उभरित।
वज्राङ्कुश, ध्वज, कमल मवादिक चिह्ननि चिह्नित॥
बिच बिच प्यारी चरन निरखि अतिशय अकुलावतिं।
करें सौतिया डाह प्रियाको भाग्य सराहतिं॥

है अनुपम अनुराग अति, राधाको ही कान्तमहँ।
करहिं भ्रमर सम पान हरि, अधरामृत एकान्तमहँ॥



श्री राधाजी

करत विविध अनुमान बढी कछु आगे बाला।
एकाकी पद चिह्न निरखि बोली इहँ लाला॥
अवसि यान वे वने राधिका कंन्ध चढ़ाई।
यहाँ तोरिकैं फूल श्यामने प्रिया सजाई॥

फूलीं फूली लतनितैं. उचकि सुमन तोरे अवसि।
एड़ी विनु पंजे वने, पुनि इततैं आये निकसि॥

अरी निहारो अली! वनी वैठक दोउनिकी।
प्रिया अंकमें धारि गुँथी है वैंनी तिनिकी॥
मोती सुमन पुरोइ प्रियाकी माँग सँवारी।
अवसि यहाँ तिहि संग करी हैं क्रीड़ा प्यारी॥

अवसि यहाँ हरि वश भये, अवसि व्यथा दोउनि बढ़ी।
श्याम दिखाई दीनता, अवसि सखी सिरपै चढ़ी॥

अरी, रमनने रमन कर्यो रमनी संग तरुतर।
अत्तो पत्तो मिल्यो श्याम श्यामाको गुरुतर॥
धन्य लाड़िली भाग करे वशमहँ वनवारी।
मनोकामना पूर्ण भई नहिं वीर हमारी॥

कृष्णान्वेषण कातरा, इत रमनी बन बन फिरहिं।
उत प्रियतम सँग राधिका, कामकेलि कौतुक करहिं॥

उनके हू मन मान बढ़्यो सोचें हौं सरवस।
अखिल भुवनपति श्याम करे अब मैंने निजवश॥
जहाँ मान तहँ वास करें कैसे गिरधारी।
परवश तब घनश्याम लखे तब बोली प्यारी॥

पैदर अब नहिं चलि सकौं, कितव कहाँ लै जात हैं!
पग चाँपौ घोड़ा बनो, प्यारे! पाँइ पिरात हैं॥

तब हँसि बोले श्याम—चढौ कन्धापै प्यारी।
सुनि अति हरषित भई चढ़नकी करी तयारी॥
त्यों ही अन्तर्धान भये हरि वे पछितावें।
इत उत खोजहिं फिरहिं डरहिं रोवहिं बिललावें॥

नाथ! रमन! प्रियतम परम! जीवन धन! अशरनशरन!
देहु दरश अब दुखहरन, विश्वभरन! भवभयहरन!।

हाय! कहाँ तजि गये रमन! मुख कमल दिखाओ।
भयो दर्प मम दलन दयानिधि आओ आओ॥
भ्रमरी भूखी फिरहि कमल! मधु अधर पिआओ।
मरत चातकी प्यास श्यामघन रस बरसाओ॥

यों प्यारी प्रिय बिरहमहँ, कुररी सम रोवति फिरति।
सम्मुख निरखति चर अचर, पूछति पति बिलखति गिरति॥

करि करि सुमिरन सग श्यामको रोवति राधा।
बन बन बिहरत बिकल बिरहकी बाढ़ी ब्याधा॥
दीखि दशमी दशा दुखी दरसन बिनु प्यारी।
ब्याकुल बिलखति बिरहमाहि तनु दशा बिसारी॥

इत प्यारी मूर्छित परीं, उत आईं ढूढ़त सखीं।
अति अचेत आकुल अधिक, राधाजी सबने लखीं॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें श्रीकृष्ण अन्तर्धान नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

अथ एकोनविंशतितमोऽध्यायः

[१९]

दोहा—देखि दशा कीरति सुता—श्री सबई पछिताई।
निज दुख बिसर्यो सकल मिलि, बहुविधि धीर बधाई॥
छप्पय—गोरी बैठीं घेरि प्रियाकूँ सब समुझावें।
गोदीमाँहिं लिटाइ कमल दल व्यजन डुलावें॥
कछुक चेतनता भई रसिककी बात चलाई।
अपुबीती सब बात दुखित ह्वै प्रिया बताई॥
एक प्रान मन मिलि सकल, मान रहित अति दीन सब।
गावत गुन गोविन्दके, भईं ध्यानमहँ लीन सब॥

सुधि बुधि तजि घर द्वार बारकी कृष्ण पुकारे।
उत्कंठित अति भईं करुन स्वर नाम उचारे॥
रूप सुमिरि घनश्याम हृदय पिघिले भरि आवै।
देह कँपकँपी उठे चित्त चंचल ह्वै जावै॥
करत प्रतीक्षा पुलिनमहँ, मिलि जुलि गावें गीतिकूँ।
साधनसिद्धा सखी सब, प्रकट करें रस रीतिकूँ॥

गावें गोपी गीत जयति जय व्रजवनचन्दन।
व्रजजीवन सरवस्व सुखद नटवर नँदनन्दन॥
कमल बदन हम जोहि मधुकरी जीवन धारें।
तिनहिं अदरशन वायु बिना वल्लभ क्यों मारें॥
प्राणेश्वर तव दरश बिनु, प्रानहीन हम भईं सब।
खोजि थकीं दश दिशि दयित, देहु दयानिधि दरश अब॥

हमरे तन, मन, प्रान, कर्म सब तुम हित प्रियतम ।
तव प्रसन्नता हेतु करहिं धारन जीवन हम ॥
जिन नयननि तव रूप लख्यो पुनि और न भावैं ।
सुने श्रवन तव बचन अन्य पटतर नहि आवैं ॥
नस्यो प्रियतमा प्रेयसी, को मद अब दासी भईं ।
आओ दरशन देउ अब, वन वन ढूँढ़त थकि गईं ॥

बनितनि बन्धन करन बाँधकको बेष बनायो ।
सुन्दर कोमल मृदुल रूपको जाल बिछायो ॥
मोहकता कण फेंकि मधुर स्वर बेनु बजावे ।
गाइ सुखद सगीत मृगिनि सम नारि फँसावे ॥
भृकुटि धनुष बिष बुझे सर, सैन नैन सरसाइके ।
तकि मारें घायल करें, निरखें सतत सिहाइके ॥

कायर कपटी कुटिल कामिनीघातक कारे ।
तीखे बान कटाक्ष ताकि अबलनिमहँ मारे ॥
घायल सिसकति फिरहिं बान तनतैं न निकारें ।
छलिया छिपिकें हँसत न आओ सतत पुकारें ॥
दरश सुधा हित दयित हम, दुःख दुसह दारुन सहे ।
बिना मोलकी किंकरी, कृष्ण कृष्ण कबतैं कहे ॥

बध करनो ही हतो हमें क्यौं प्रथम बचायो ।
क्यौं असुरनिकूँ मारि सबनिकौ दुःख छुड़ायो ॥
कुपित इन्द्रने उपल ,प्रलयके घन बरसाये ।
क्यौ गोबर्धन धारि नाथ हम सकल बचाये ॥
क्यौं दावानल पान करि, कालियदहपै दुख हर्यो ।
क्यौ अजगरके मुख घुसे, क्यौं वत्सासुर बध कर्यो ॥

बार बार क्यौ विपति उदधितैं नाथ बचाईं ।
क्यौ नटवर कर पकरि रासमहँ विहँसि नचाईं ॥
क्यौं कुकुम मुख मल्यो प्रेमको खेला खेल्यो ।
क्यौं गोदी सिर धारि अमृत मुखमाँहिं उड़ेल्यो ॥
क्यौ सरसायो नेह अति, ढीठ बनाई क्यौं हमें ।
अब दरशन बिनु देहु दुख, लाज न लागत क्यौं तुमें ॥

नहिं नभमहँ हम कहें सुनो तुम सब कुछ स्वामी ।
यशुमतिसुत ही नहीं आय तो अन्तरयामी ॥
अबला हम अति दुखित आप चाहे मत मानो ।
अधिक कहा हम कहें आप घट घटकी जानो ॥
जानि हमारो हृदय दुःख-दै दरशन जग यश लहो ।
जड़ चेतन जग जीव जे, तुम सबके हियमहँ रहो ॥

कृष्ण ! कृतारथ करहु कृपा कीजे कछु हमपै ।
धरहु दया करि कान्त काम पूरक कर सिरपै ॥
है हमरो हिय कठिन काम कटकहू जामें ।
तव अति कोमल चरन कठिनकूँ मृदुल बनामें ॥
धरहु चरन हियपै हुलसि, हरहु काम पीड़ा सकल ।
सुने बचन जबतैं सरस, मधुर भई तबतैं विकल ॥

प्रिया पिपासित फिरहिँ मधुर कछु पेय पियाओ ।
अधरामृत मुख भरो निठुर कछु पुण्य कमाओ ॥
प्याओ प्यारे परम स्वादयुत मीठो मीठो ।
दुखहर अतिशय सुखद सौति वंशीको जूठो ॥
कान कान्हकी कथा सुनि, होहिँ कृतारथ रस लहहिँ ।
बड़ भागी ते जगत नर, कथा तुमारी जे कहहिँ ॥

धूरि धूसरित नील कुटिल कच कारे कारे।
मुखपै बिथुरे मधुर लगैं मनकूँ अति प्यारे॥
झोटा खात बुलाक मोरको मुकुट मनोहर।
ऐसो बेष बनाइ जाउ जब बन तुम गिरिधर॥

तब पल पल युग युग सरिस, बीतत बिनु देखे तुम्हें।
अब निशिमहँ बन छाँड़ि तुम, छिपे छबीले छलि हमें॥

आओ आओ श्याम हृदयकी तपन बुझाओ।
चरन कमल हिय धरो शोक सताप नसाओ॥
यो कहि रोईं फूटि फूटिकें गोपी सस्वर।
रहि न सके तब श्याम भये प्रकटित तहँ सत्वर॥

मथन मनोहर बेषतैं, मन्मथके मनकूँ करत।
प्रकटे प्रभु तिनि मध्यमहँ, शोक मोह हियको हरत॥

मोर मुकुट सिर धारि गरे बैजन्ती माला।
लखे शरद ब्रजचन्द्र भईं प्रमुदित ब्रजबाला॥
करें निछावर प्रान सिहावें सब तृन तोरें।
प्रेम न अंग समाय उठें हियमाँहिँ हिलोरें॥

खावें पीवें युगल कर, रूपासव नयननि भरत।
भूखी प्यासी प्रेमकी, आलिंगन चुम्बन करत॥

कोई हरि कर धारि कपोलनि परम सिहावें।
कोई पुनि पुनि पकरि प्रेमतै हिये लगावें॥
कोई चर्वित पान कान्हको लेहिं चबावें।
कोई हरिपद हृदय धारि संताप मिटावें॥

भ्रुकुटि कमान कटाक्ष सर, मारें काटैं द्विज अधर।
बीधें बधिकिनिके सरिस, बाँधत करतैं पकरि कर॥

कोई हरि मुख कमल माधुरी नयननि भरि भरि।
होहिं तृप्त नहिं पान प्रेमतैं पुनि पुनि करि करि ॥
नयन रन्ध्रतैं मधुर मूर्ति कोई हिय लावें।
करें मानसिक परस परम सुख मनतैं पावें ॥

साधक सद्गुरु पाइकें, आनन्दित अति होत ज्यों।
दरशन करि घनश्यामके, गोपी प्रमुदित भईं त्यों ॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें रासेश्वर पुनर्दर्शन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ विंशतितमोऽध्यायः

[२०]

लै सब सखियनि संग श्याम सरिता तट आये।
कुसुम कुन्द मन्दार कुमुदिनी लखि हरषाये॥
कालिन्दी निज करनि बिछाई बालु सुकोमल।
आसन हित पट प्रिया अंगको डार्‌यो तिहिँ थल॥

तहँ बैठे राधारमन, व्रजबनितनिके बीचमहँ।
सने पदुम पद सखिनिकी, कुच कुंकुमकी कीचमहँ॥

पूछें करिके व्यंग श्याम! इक बात बताओ।
तीनि भाँतिके पुरुष साधुको शक मिटाओ॥
एक प्रेम लखि करहिँ प्रेम दूसर बिनु प्रेमहु।
करें तीसरे नहीं उभय पच्छनि तिनि नेमहु॥

इनमें कौन निकृष्ट हैं, को मध्यम को श्रेष्ठतम।
नीति निपुण तुम धरमवित, तातें पूछें तुमहिँ हम॥

बोले सुनिके श्याम—सुनहु सखि! सत्य बताऊँ।
नीति धरमको मरम यथावत तुमहिँ सुनाऊँ॥
करें स्वार्थ हिय धारि प्रेम ते नर व्यापारी।
नहीं तहाँ सौहार्द प्रेम है वह व्यवहारी॥

करें प्रेम निरपेच्छ जे, ते कृपालु पितु मातु हैं।
तहाँ धर्म कैतव रहित, बन्धु सुहृदते तात हैं॥

प्रेमहीन नर चाहि श्रेष्ठ कछु अवर सुरसी ।
आत्मराम अरु पूर्णकाम सुख चहत हुलसी ॥
हौं इन सबतैं पृथक प्रेष्ठ पति सुहृद कारुनिक ।
प्रेम वृद्धिके हेतु कर्यो मैंने सब नाटक ॥

अति सुन्दर यह रहस्य, कहूँ आई सुन गोरिके ।
मन हिय पति, सुत, घर, कुटुम, तजि आईं तुम मोरिके ॥

जन्म जन्म हौं रहौं सुन्दरी ऋनी तिहारो ।
शीत-घाम बनि गयो प्रेमतैं मोकूँ प्यारो ॥
करि अर्पन सर्वस्व मोहि सुख अतिशय दीयो ।
तजिकैं सब सुख तबै संग तुम मेरो कीयो ॥

वचन श्यामके सरस सुनि, दुःख शोक सबके गये ।
निज करतैं शृंगार हरि, श्रीजीको करिबे लगे ॥

परसि परस्पर प्रेम पुलक अँग अंगनि होवैं ।
लखि प्यारी हरि रूप देहकी सुधि बुधि खोवैं ॥
निज कर केश सम्हारि प्रियाकी बाँधी बैनी ।
भाल तिलक चित चिबुक अधर रँग रँगी सुनैनी ॥

अंजन नयननिन्हँ दयो, फूलनिके गजरा नये ।
पहिराये उर कटि करनि, शीश कुसुममहँ दये ॥

कर पद नख रँग रँगे महावर चरन लगाये ।
महँदी दिव्य लगाइ अरुन पद अरुन बनाये ॥
भूषन वसन सम्हारि इतर अँग अंग लगायो ।
भाल हिय केशर बीच विहँसि आदर्श दिखायो ॥

नव तरंग छिन छिन उठैं, मन देखतिके नाहिं भरैं ।
रूपामृतको पान निति, दरपनमहँ दोउ करैं ॥

दोऊ रसमहँ पगे प्रेमकी बँधे डोरतैं ।
करें हियेमहँ ध्यान निहारें नैन कोरतैं ॥
झुकि झुकि चूमत बदन विरह संताप मिटावैं ।
ऊपर गिरि गिरि परत परसिकें प्रेम बढ़ावैं ॥

अरसत परसत परस्पर, बहत तरगनिमहँ उभय ।
पीवत ज्यों ज्यों नेह रस, त्यों त्यों छूटत सकुच भय ॥

श्यामा श्याम सजाइ रास मंडलमहँ लाये ।
जै निरखीं तहँ नारि श्याम तै रूप बनाये ॥
द्वै गोपिनिके बीच बीच हरि सोहत कैसे ।
स्वर्ण मणिनिके मध्य नीलमणि दमकत जैसे ॥

गलबैयाँ डारें चपल, नटवर बेष बनाइकें ।
ता ता थेई कहि हँसत, नाचत ताल मिलाइकें ॥

ताता थेई करें फिरें हियमहँ हरषावें ।
होहि परस्पर परस फुरहरी पुनि पुनि आवें ॥
उरझि हारमहँ हार सरसता अधिक बढ़ावें ।
मिले चन्द्रिका मोरमुकुटमहँ लट सटि जावें ॥

चमकति चपला सम सखी, अगनित घन सम श्याम छबि ।
अनुपम रास विलासकी, उपमा को करि सके कबि ॥

ब्रज-युवतिनिके कठ डारि कर नृत्यत नटवर ।
रुनुझुनु नूपुर बजत झनक चुरियनिकी मनहर ॥
हिलत छीन कटि केश लोल लोचन अति चंचल ।
पीताम्बर सँग मिलत हिलत युवतिनिके अंचल ॥

पग पटकत कुण्डल हिलत, मुख मटकत लचकत कमर ।
हिलत हार मुख मुख मिलत, करत गान इत उन भ्रमर ॥

क्रीड़ा कमलाकान्त करें कल बेनु बजावें।
रमनिनि राधारमन रमन करि रहसि रिझावें॥
पाइ बिहारी अंग संग विहरें व्रजवाला।
अस्त व्यस्त पट केश भये खिसकीं गलमाला॥
पाइ प्रेम प्रियको परम, अति प्रमुदित प्रमदा भई।
आलिङ्गनतै शिथिल अँग, मदमाती-सी बनिगई॥

पुनि पुनि परसत अधर चुवावत रस बरसावत।
सहसा चुटकी भरत करत सी सी हरषावत॥
दंतक्षत करि हँसत हियेपै नखक्षत करिकैं।
पान प्रमादी देहिँ मुखनिमहँ रति रस भरिकैं॥
करें कामिनिनिपै कृपा, स्वेद-बिन्दु पौंछें करनि।
सुधा मधुर मुसकानतैं, लखि मेंटत जियकी जरनि॥

ह्वैकें गोपी थकित श्यामके अक विराजें।
ललना ललित दुकूल पीत पट मिलि अति भ्राजें॥
सुहरावें तिनि अंग पौंछें मुख पुनि पुनि जोहें।
निरखि चकोरिनि चन्द्र द्रवें त्यों नटवर सोहें॥
भरत न चित चितचोरको, चितवत अपलक अलीगन।
गोपी मुख पंकज निरखि, भयो श्याम अलि मत्त मन॥

चले श्याम जल केलि करन बनि गायक मधुकर।
करत गान सँग चलत कँपकँपी उठति सखिनि उर॥
वायु डुलावत व्यजन सुशीतल मंद सुगंधित।
कृष्ण कंठमहँ डारि भुजा प्रमदा अति प्रमुदित॥
करनिनि सँग जल केलि ज्यों, करै करी अति हिय हरषि।
त्यों सखियनि सँग श्याम पुनि, करें खेल जलमहँ प्रविशि॥

त्रिविध भाँति जलकेलि करी हरि बाहर आये।
पुनि पट पहिरे प्रियनि सग बन उपबन धाये॥
भद्र, लौह, श्री, ताल, बकुल, भाण्डीर, महाबन।
खदिर, कुसुद अरु काम्य बारहों श्रीवृन्दाबन॥
बारह बन उपबन बहुत, केलि, केतकी, रास थल।
शेषशायि बन केमद्रुम, सुललित, उत्सुक बन बिमल॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें महा रासलीला नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ एकविंशतितमोऽध्यायः

[२१]

धन्य धन्य ब्रज धाम जहाँ पावन बन उपवन।
वृन्दावन अति धन्य धन्य सब सखा सखी-गन ॥
नंद यशोदा धन्य धन्य हैं वे ब्रजवासी।
जिन सँग हरि नित करें शयन वन भोजन हाँसी ॥

वृन्दावन ब्रजधाम नित, ब्रजलीला परिहास नित।
गो गोपी गोलोक नित, परिकर रास विलास नित ॥

होवै गोपीभाव रासके दरसन पावैं।
अभिमानी नर नारि नहीं तहँ फटकन पावें ॥
नारद गोपी बने बने गोपी त्रिपुरारी।
अरजुन नरतहँ बने अर्जुनी गोपी प्यारी ॥

रास रहस घनश्यामतैं, अरजुनने पूछ्यो जबहिं।
रस सरमहँ मज्जन कर्यो, पुरुषवेष बदल्यो तबहिं ॥

सरतैं निकसें अंग अंग महँ यौवन छायो।
तनुको सुन्दर वर्ण भयो मनु कनक तपायो ॥
बिछुआ नूपुर पैर चुरी कर झनझन बाजे।
बनी रँगीली सखी कोटि रति द्युति लखि लाजें ॥

त्रिपुरसुन्दरीने कृपा, करी कामिनी तनु भयो।
जाते श्रीरासेश्वरी, राधाजी दरशन दयो ॥

हरि सँग रास बिलास कर्‌यो पुनि रस सर न्हाये ।
तुरत अर्जुनी रूप तज्यो प्रभु ढिँग पुनि आये ॥
यों हरि कीन्हीं कृपा पार्थकूँ रास दिखायो ।
नारद हू बनि सखी मनोवाञ्छित फल पायो ॥

समुझि सकैं नहिँ नीच नर, रास रहस अति गूढ़ हैं ।
हरिलीला प्राकृत कहत, ते नर पापी मूढ़ हैं ॥

सुनी रासकी कथा परीक्षित शंका कीन्हीं ।
गुरुवर ! हरि करि रास नरनि का शिक्षा दीन्हीं ॥
परनारी सस्पर्श पाप सब शास्त्र बतावें ।
थापन करिबे धर्म अवनिपै अच्युत आवें ॥

क्यौं अधर्म कारज कर्‌यो, रक्षक ह्वैकें धर्मके ।
परनारिनितें रति करी, साक्षी ह्वैके कर्मके ॥

हँसिबोले शुकदेव—कृष्णकूँ पाप न परसे ।
रवि रस सबतें लेहि शुद्ध करि सब थल बरसे ॥
नालो गंगा मिलत नाम गुन अपनो खोवै ।
चाहें जो कछु परे अग्निमहँ स्वाहा होवै ॥

सब कछु समरथ करि सकें, विधि निषेध तिनिकूँ नहीं ।
अनल अशुचि नित प्रति भखत, खाय मलिन होवै कहीं ॥

समरथको प्रतिकूल आचरन करिहैं प्रानी ।
पावैं दुख इहलोक होहि परलोकहु हानी ॥
कियो शम्भु विषपान हलाहल हमहूँ करिहैं ।
सोचि करें अनुकरन मौतिके बिनु ते मरिहैं ॥

बेद शास्त्र गुरु वाक्यकूँ, धर्म समुझिके जे करहिँ ।
सुखी होहिं बिपरीत करि, दुख पावैं नरकनि परहिं ॥

है सब दुखको मूल अहंता ममता जगमहँ।
मैं मेरीमहँ फँस्यो जीव भटकै भव-मगमहँ॥
बुद्धि न होवै लिप्त अहता जाकूँ नाहीं।
चाहें सो वह करै बँधे नहिं बन्धन माहीं॥

अर्थ अनर्थ न विज्ञकूँ, करै अशुभ वा शुभ करम।
अहंकारतें होत है, यह अधर्म यह है धरम॥

करिकें शुभ अरु अशुभ कर्म फल भोगहिं मानी।
अनल गग रवि सरिस रहै निरमल नित ज्ञानी॥
ज्ञानी हू जग रहै कमल दल जलमहँ जैसे।
तब हरि सर्व समर्थ बँधे बन्धनमहँ कैसे॥

सबके साक्षी सर्वगत, अखिल जगतपति अज अमल।
तिनकूँ पर अरु अपर का, घट घट वासी विभु विमल॥

जगहै दुख की खानि दुखी सब जगके प्रानी।
पावें दुख अरु मृत्यु जरा ज्ञानी अज्ञानी॥
अज्ञानी जग सत्य समुझि बन्धन बँधि जावें।
ज्ञानी समुझें सत्य कृष्णलीला-सुख पावे॥

अज अच्युत हू अवनिपै, मानुष तनुतै अवतरें।
करन अनुग्रह सबनिपै, श्याम सरस लीला करें॥

जीव जगत अरु ब्रह्म बात कछु लगति अलौंनी।
तातें क्रीड़ा करहिं कृष्ण अति सरस सलौंनी॥
गोपी अरु श्रीकृष्ण मिलन सुनि हिय सरसावै।
सुनिकें प्रेम प्रसंग देह पुलकित ह्वै जावै॥

जो साँवरकी झीलमे, कैसे हू परिजाइगो।
तो फिर अपनो रूप तजि, तुरत नौंन बनि जाइगो॥

चिदानन्द घनश्याम देह प्राकृत नहिं तिनकी ।
गोपी शक्ति अनत दिव्य चिन्मय हैं उनकी ॥
शक्तिमानतैं शक्ति विलग होवै नहिं ऐसे ।
ज्यौं श्रीशिवतैं शिवा विष्णुतैं कमला जैसे ॥

अपनेतैं अपनो मिलै, कितनो सरस प्रसग है ।
मनमोहनतै मन मिल्यो, पुनि नहिँ दूसर अंग है ॥

ऊँच नीच निज अङ्ग हाथ सबहीकूँ परसै ।
पावै प्रियको परस हृदय तन मन अति सरसै ॥
विषयनिमहँ फँसि जीव दुखी तिनितैं ह्वै जावें ।
दिव्य देहतैं होहिं दिव्य सुख सब नहिं पावें ॥

जब तक प्राकृत भावना, तब तक होवै रास नहिं ।
दिव्य देह होवै जबहिं, गोपी बनि नाचै तबहिं ॥

दिव्य देहतैं रास रच्यो गोपी प्रभुके सँग ।
पति शैयापै परे रहे प्राकृत तिनके अँग ॥
तातैं निंदा नहीं करी काहूने उनकी ।
समुझि सके को दिव्य रहसमय लीला तिनकी ॥

हरिके रासविलासमहँ, दोषारोपन जे करैं ।
कहे जाहि व्यभिचार जे, ते पापी नरकनि परैं ॥

यों वृन्दावनमाहिँ रास अति रसमय कीयो ।
धरि नर वपु अति सुघर परम सुख गोपिनि दीयो ॥
रसकी सरिता सुखद श्यामने सतत बहाई ।
लीला जो गोलोक होहि सो अवनि दिखाई ॥

करि करि क्रीड़ा कामकी, करीं कृतारथ कामिनीं ।
होहिं सुमिरि सब सुखी नर, लीला अति मनभाविनीं ॥

निज निज घर पुनि प्रात होत आईं व्रजनारीं।
यों नित क्रीड़ा करे कृष्ण प्यारी सुखकारीं॥
जो नर श्रद्धा सहित रास लीलाकूँ गावैं।
पढ़ैं सुनैं सुख लहैं अन्तमहँ प्रभु पद पावें॥

बार बार जे प्रेमतैं, गद्य पद्य महँ गायँगे।
तिनके हियके रोग सब, काम क्रोध नसि जायँगे॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें रासपंचाध्यायी नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण—इक्कीसवें दिनका विश्राम]



अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः

[२२]

अब आगेकी कथा अम्बिकाबनकी मुनिवर।
सुनो कर्यो जो खेल तहाँ नँदनन्दन नटवर ॥
एक समयकी बात अम्बिका शिव पूजन हित।
गये गोप लै सकट करी पूजा तहँ विधिवत ॥
तट सरस्वतीके बसे, करि केवल जलपान सब।
आयो अजगर दैवबश, सोये सुखतैं नन्द जब ॥

अहि पग पकर्यो नद उठे चिल्लाये आओ।
शरणागत प्रतिपाल कृष्ण मम बिपति मिटाओ ॥
सुनि सब आये गोप सर्पकूँ बहु बिधि मारें।
परि नहिं छोड़े पैर कृष्णकूँ नन्द पुकारें ॥
नँदनन्दन आये तुरत, अहि सिरपै पग धरि दयो।
पाइ परस पग सर्प तनु, तजि विद्याधर ह्वै गयो ॥

प्रभु पूछें—तुम कौन योनि क्यों अजगर पाई।
सुनि बोल्यो अहि—कहूँ कथा निज सुनहु कन्हाई ॥
हौं बिद्याधर प्रथम सुदर्शन सुन्दर सबतैं।
सुन्दरता विख्यात भई मद बाढ़्यो तबतैं ॥
लखि कुरूप मुनि हँसि पर्यो, मदबश भूल्यो धर्मकूँ।
सुख दुख दूसर देहिँ नहिँ, सब भोगें कृत कर्मकूँ ॥

लखि अशिष्टता मुनिनि शाप दीयो होओ अहि।
सुनत भयो मद चूर ऋषिनिके पर्‌यो परन गहि॥
ह्वै प्रसन्न मुनि कही-नन्दनन्दन उद्धारें।
अब कृतार्थं हौं भयो नेहतैं नाथ निहारें॥

करि विनती आयसु लई, गयो सुदर्शन लोक निज।
व्रजमहँ आये गोप सब, कथा अन्य अब सुनहु द्विज॥

एक दिवस बल सहित श्याम सखियनि सँग बनमहँ।
विहरत इत उत नेह नीर उमड़त अति मनमहँ॥
मधुर राग स्वर ताल ललित लययुत हरि गावें।
विश्व विमोहन गान गाइ गोपिनि हरषावें॥

मन्त्र मुग्ध सम सब सखीं, भई न सुधि तन पट कहाँ।
तबई अनुचर धनदको, शङ्खचूड आयौ तहाँ॥

कामी हियमहँ काम बान नारिनि लखि लाग्यो।
लई सुन्दरी पकरि दुष्ट उत्तर दिशि भाग्यो॥
गोपी करति विलाप भगे बल हरि पीछे जब।
छोड़ि भग्यो हरि कर्‌यो शीश धड़तैं न्यारो तब॥

सिरचूडामणि लाइकें, बलदाऊकूँ दै दई।
शंखचूड उद्धारकी, कथा समापत ह्वै गई॥

शौनक पूछें—सूत ! कहो कैसें गोपी-गन।
बिनु हरि दरशन रहे जाइँ जब गोचारन वन॥
सूत कहे—लै धेनु वेनुधर वन जब जावें।
तब सब गोपी गीत कृष्णके हिलि मिलि गावें॥

युगल गीत गावें सुनें, हरि लीला चिन्तन करें।
तनु पुलकित मन मोदयुत, नेह नीर नयननि भरें॥

प्रथम गीत

गिरधर मुरली मधुर बजावै ।
कर कपोल धरि राग अलापत, बाँकी भृकुटि नचावैं ॥१॥
मुख फूँकत मुरली को पुनि पुनि छेदनि अँगुरि फिरावैं ।
सुनत मधुर स्वर सुर ललनागन, सुमन सरनि विँथि जावैं ॥२॥
खिसकति नीवी सुमन झरत कच, खुलि इत उत फहरावैं ।
लज्जा बश विसमित सी ह्वै के, तनु सुधि बुधि बिसरावैं ॥३॥
कोकिल कंठी सुमिरि सुमिरि हरि, नयननि नीर बहावैं ।
धन्य धन्य ब्रजकी वे वनिता, नित गोविँद गुन गावैं ॥४॥

द्वितीय गीत

मोहन मुरली मधु बरसावति ।
मत्त करति महिलनिके मनकूँ, कुलकी कानि नसावति ॥१॥
अचर सचर अरु सचर अचर करि, विधिकी रेख मिटावति ।
सुनि ब्रज वनिता यमुना सरिता, गति मति सब बिसरावति ॥२॥
दशन दाबि तृन हरिन वधूटी, सुनि धुनि दौरी आवति ।
धेनु छोरि तृन वेनु श्रवन करि, श्रवननि शकि उठावति ॥३॥
चित्र लिखित सब इकटक ठाढ़ीं, पलकनि नाहिं हिलावति ।
लाज काज घरके छुड़वावति, हठि बन बेनु बुलावति ॥४॥

तृतीय गीत

आली हम अबला हतभागिनि ।--
बोलि न सकैं श्यामतैं मुँहभरि, करि न सकैं पा लागनि ॥१॥
जब हरिरूप निहारति इकटक, अँखियाँ जल भरि बैरिनि ।
विघन करत निरखन नहिं देवैं, झाँपैं आँसू नैननि ॥२॥

इत उत निरखि परसि पग डरपैं, सासु जिठानी ननदनि।
दीखें बूढ़े, बड़े, दूरितै, हठि हम ढाँकें वदननि ॥३॥
हम समान यमुना हू अबला, चूमन चाहे चरननि।
किन्तु न चूमि सके बनि निश्चल, रोकति तुरत तरंगनि ॥४॥

चतुर्थ गीत

जो हम ब्रजकी रज बनि जातीं।
तो निशंक ह्वै आली हरिके अगनिमहँ लिपटातीं ॥१॥
प्रिय पद परसि पुलकि सग धावति तनिक न लोक लजातीं।
अलक पलक अरु झलक कपोलनि की द्युति अधिक बढ़ातीं ॥२॥
जो घन बरसत पक होहि पग प्यारेके सटि जातीं।
लोक बेद कुल-कानि न मानति, द्वारेपै जमि जातीं ॥३॥
देखत देखत सबके निर्भय, श्याम परस सुख पातीं।
घूंघट पटकी ओट न निरखति, नैननमे भरि जातीं ॥४॥

पंचम गीत

यशुमति ! मुरली हरि कहँ पाई।
कौनें कान छेदिके जाकूँ नककनछिदी बनाई ॥१॥
कौनें मलि मलि चिकनी कीन्हीं कौनें सौति पढ़ाई।
कौनें दई श्यामके करमहँ मोहनकूँ क्यौं भाई ॥२॥
जादू टोना जिह कहँ सीखी, कोनें कला सिखाई।
जाके मुखपै मुखकूँ धरिकें गावत गीत कन्हाई ॥३॥
बाजे तजे मुरज वीणा वर लकरी क्यों अपनाई।
मैया ! तेरे सुतकी मुरली ब्रज-बनितनि दुखदाई ॥४॥

षष्ठ गीत

बनतेँ आवत श्रीगिरधारी ।
सबहिं श्रवन दै सुनहु सहेली, बजी बाँसुरी प्यारी ॥१॥
धेनु खुरनि की धूरि उडति नभ, कोलाहल अति भारी ।
गावत गीत ग्वाल सब मिलिकैं, नाचत बीच बिहारी ॥२॥
मलिन मुखी हम निशि समनारी, बिनु हरि सदा दुखारी ।
कृष्णचन्द्र ब्रज-चन्द्र खिलें नभ, तब हम चन्द्र उजारी ॥३॥
मिटै ताप संताप तबहिँ जब, दृष्टि परैं बनवारी ।
चलो चलें चित चोर बिलोकें, ठाढ़े कृष्ण मुरारी ॥४॥

सप्तम गीत

अब तो सखि सताप बिसारो ।
मद मंद मुसकात मदन सम, सम्मुख श्याम निहारो ॥१॥
अरुन नयन मदमाते मनहर, मोर मुकुट सिर प्यारो ।
कोमल लोल कपोलनि ऊपर, कुंडल करत उजारो ॥२॥
शशि सम शीतल सुखद श्याम मुख, जीवन प्रान हमारो ।
रस बरसावत सैंन चलावत, गावत नंद दुलारो ॥३॥
खोलो नयन बिकलता त्यागो, मनमहँ धीरज धारो ।
आइ गये बनतेँ अब तो हरि, तन मन तिनिपै वारो ॥४॥

उल्लाला—ब्रज बनिता बिरहिनि बनी, मन मन मोहन महँ फँस्यो ।
सब मिलि हरि सुमिरन करति, नेह बान हियमहँ धँस्यो ॥

सोरठा—निशि दिन लीला गान, यह अहार तिनिको सतत ।
करें रूप रस पान, हरि चिन्तन महँ नित निरत ॥

हरिलीला आहार पान करि काल बितावें।
सब कछु कारज करें किन्तु नहिँ कृष्ण भुलावें॥
पाले यम अरु नियम बैठि आसन सब साधें।
करिके प्राणायाम धारणा धरि आराधें॥
करि प्रभु प्रत्याहार पुनि, ध्यान समाधि लगाइकेँ।
सदुपयोग पल पल करहिँ, हरिलीला नित गाइकेँ॥

एक दिवसकी बात अरिष्टासुर ब्रज आयौ।
रूप छिपायौ दैत्य बैलको वेष बनायौ॥
खुरतैं खोदत मही रम्हावै सींग चलावै।
बार-बार मल-मूत्र करै खल खेल दिखावै॥
गिरत गर्भ गैयानिके, वृषभ शब्द भीषन करत।
सकल गोप गोपी डरत, खल हरिकूँ खोजत फिरत॥

आवत लख्यो अरिष्ट दुष्ट श्रीहरि ललकार्‌यो।
भयो कुपित अति असुर श्यामने थप्पड़ मार्‌यो॥
सींग उखारे पकरि भयो निरबल डकरायौ।
मुखतै उगिलै रक्त वृषभ प्रभु मारि गिरायौ॥
असुर मारि ब्रजमइँ गये, साधु साधु सबई कहैं।
कृष्ण बाहु पालित सकल, ब्रजवासी निर्भय रहैं॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें अजगर शंखचूड़ अरिष्टोद्धार नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

[२३]

अब मथुराकी बात कंसकी सुनहु महामुनि।
भोजराज अति दुखित भयो वृषभासुर वध सुनि॥
मंत्र हेतु सब सचिव सभामे कंस बुलाये।
तबई कीर्तन करत देवऋषि नारद आये॥

नारदजीने पोल सब, दई खोलि बसुदेवकी।
रोहिनि सुत बलदेव हैं, जने कृष्ण सुत देवकी॥

सुनि अति कोप्यो कंस तीक्ष्ण करबाल निकारी।
काटूँ सिर बसुदेव छलीको बात बिचारी॥
नारद रोक्यो तऊ कैदि पतिनी सँग कीये।
शल तोशल चाणूर टेरि सब मंत्री लीये॥

कहै कंस—सब सभासद, सुनहु आज नारद कहत।
मम रिपु बृन्दावन बसत, राम कृष्ण बसुदेव-सुत॥

धनुरयाग इक करौ भूतपतिकूँ आराधौ।
जैसे मम रिपु मरें काज मिलि जुलि सब साधौ॥
द्वंद युद्ध नर करहिं बिकट दंगल करवाओ।
करौ निमंत्रित सबनि राम अरु श्याम बुलाओ॥

दोऊ भैया अति बली, बल तिनिके तनमहँ अमित।
गाय चरावें पय पियें, माखन मिश्री खायँ नित॥

दंगल सुनिकें राम कृष्ण गोपनि सँग आवें।
तिनि जे मारें मल्ल पारितोषिक ते पावें॥
पुनि हस्तिपतैं कहै—पुरानो तू मम साथी।
मत्त कुवलयापीड़ द्वारपै रखियो हाथी॥

आवें दोऊ बन्धु जब, तब हाथी दौड़ाइकें।
दीजो दोउनिकूँ कुचिल, अंकुश मारि रिस्याइकें॥

यों सबकूँ समुझाइ कंस अक्रूर बुलाये।
करिकें बहु सम्मान प्रेमतें पास बिठाये॥
कहै—मित्र! तुम सदा रहे हमरे हितकारी।
अति हो सज्जन नहीं प्रशंसा करूँ तुम्हारी॥

आज काज गुरुतर परम, वृन्दावनमहँ जाइकें।
राम कृष्ण वसुदेव-सुत, लावो तिनहिँ लिवाइकें॥

भयो देवकी ब्याह भई तब नभतैं बानी।
जाको अष्टम पुत्र हनें तोकूँ अज्ञानी॥
निरखि देवकी वध करिवे उद्यत मोकूँ जब।
हाथ पकरिकें रोकि कही वसुदेव बात तब॥

सौंपि देहुँ वध मत करो, तनय देवकीके सबहिं।
किन्तु सात दै छल कर्यो, कहि नारद गमने अबहि॥

राम कृष्ण मरवाइ फेरि वसुदेवहि मारूँ।
उग्रसेनकूँ मारि राज्यतें अरिनि निकारूँ॥
सुनि बोले अक्रूर—नृपति! खाओ मत तुम भय।
होनी ह्वैके रहै यही वेदनिको निश्चय॥

पुरुषारथ कर्तव्य है, फल प्रारब्ध अधीन हैं।
सिद्धि, असिद्धि समान जे, लखें नहीं ते दीन हैं॥

झिड़कि कहे पुनि कंस—मोहि उपदेश न दीजे ।
कहूँ करन जो काज ताहि सत्वर अब कीजे ॥
सुनि बोले अक्रूर—धर्मकी बात बताई ।
होनी अति बलवान आपके मन नहिँ भाई ॥
आयसु सिर धरि भूपवर, काल्हि नद-ब्रज जाउँगो ।
रथ चढाइ गोपनि सहित, राम कृष्णकूँ लाउँगो ॥

सुनि प्रसन्न ह्वै कंस गयो भीतर महलनिके ।
इत केशी बनि अश्व गयो ढिँग ब्रजबासिनिके ॥
असुर समुझि सब लोग डरैं भागें इत उतकूँ ।
हिनहिनात खल फिरत निहारत नंदनँदनकूँ ॥
दुष्टदलन लखि दैत्यकूँ, सिंहनाद भीषन कर्यो ।
सम्मुख खल मुख फारिकैं, झपट्यो नहिँ मनमहँ डर्यो ॥

पिछले पकरे पैर दैत्यकूँ श्याम घुमायौ ।
सौ धनु फैंक्यो दूरि गिर्यो सुररिपु घबरायौ ॥
पुनि उठि काटन हेतु फारि मुख हरि ढिंग आयौ ।
मुँहमहँ डार्यो हाथ दैत्य हय मारि गिरायौ ॥
ब्रजबासी प्रमुदित भये, बरसावैं सुरगन सुमन ।
वृन्दाबनमहँ देवऋषि, पहुँचे गावत कृष्ण गुन ॥

करि इस्तुति बहु भाँति कहे—प्रभु ! नरवपु धार्यो ।
सुररिपु मारे अमित अबहिं खल केशी मार्यो ॥
परसों मथुरा जाइ केश गहि कंस पछारैं ।
नरकासुर, मुर, पवन, शङ्ख असुरनि पुनि मारें ॥
ब्याह करें सोलहसहस, सुखमय लीला करिङ्गे ।
कल्पवृक्षकूँ स्वर्गतैं, प्रिया हेतु हरि हरिङ्गे ॥

धर्मराजके राजसूयकूँ पूर्ण करावैं।
बूआसुत शिशुपाल दुष्टकूँ मारि गिरावैं॥
पार्थ सारथी बनें अस्त्र लैंगे नहिं करमहँ।
काल रूपतैं करैं प्रलय कुरुक्षेत्र समरमहँ॥

सर्वेश्वर सबके सुहृद, परमानंद स्वरूप प्रभु।
यदुकुल-भूषन भुवनपति, विश्वम्भर विश्वेश विभु॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें कंसचिंता केशीउद्धार नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

[२४]

करिकें नारद विनय विहँसि बैकुण्ठ सिधाये ।
इत गैयनि लै ग्वाल संग बन गिरिधर आये ॥
भेड़-चोरको खेल भयो व्योमासुर आयो ।
ग्वाल बालको बेष असुरने सुघर बनायो ॥
कछु भेड़ बालक बने, चले ग्वाल कछु चोर बनि ।
चोरनिमहँ मिलि व्योमहू, गुहा छिपावै खल सबनि ॥

ढापि गुहा मुख देहि शिलातैं सुर संतापी ।
भक्तबछल भगवान् जानि सब पकर्यो पापी ॥
बृक सम दयो दबोचि सिंह सम गर्जन कीन्हीं ।
बलिके पशु सम मारि मुक्ति सुररिपुकूँ दीन्हीं ॥
ग्वाल निकारे गुहाते, व्योमासुरकूँ मारिकें ।
आये ब्रज मिलि सखनि सँग, बनतैं गाय चराइकें ॥

इत यादव अक्रूर कंस आयसु सिर धरिकें ।
अपर दिवस ब्रज चले हरषि हरि सुमिरन करिकें ॥
मगमहँ सोचत जात आज हौ हरि ढिंग जाऊँ ।
करि हरि-दरशन मनुज देहको शुभ फल पाऊँ ॥
परूँ पगनिमहँ प्रभु झपटि, मोकूं हिये लगाइँगे ।
जनम - जनमके सकल अघ, श्याम परसि कटि जाइँगे ॥

जिन चरननिकूं सतत योगिजन हियमहँ ध्यावें।
जिनकूं कमला सदा हियेतैं हरषि लगावें॥
कमल सरिस जे चरन अजादिक द्वारा वन्दित।
सबके आश्रय पाइ होहिं प्रानी अति प्रमुदित॥

तिनि चरननिमहँ जाइकें, दण्ड सरिस हौं परुङ्गो।
यों जगजीवन सफल अब, नदगाँवमहँ करुङ्गो॥

सहसा रथतैं उतरि अश्रुजल पाद्य चढाऊँ।
हियलगाइ हरि लेहिं लिपटि चरननिमहँ जाऊँ॥
जानि शत्रुको दूत अनादर करहिं न गिरिधर।
जानत सबके भाव सर्वगत हरि विश्वम्भर॥

मधुर मधुर मुसकाय मम, रामकृष्ण कर गहिङ्गे।
कोकिल कूजित कंटतैं, काका काका कहिङ्गे॥

हरि हित सरवसु तजहिं भक्तवर तेई त्यागी।
अपनावे अखिलेश जाइ सो जग बड़भागी॥
घरके भीतर पकरि तात कहि हरि लै जावें।
करि सबविधि सत्कार प्रेमतैं पास बिठावें॥

जाति कुशल पूछहिं जबहिं, तब कछु नाहिं छिपाऊँगो।
दुष्ट कंस व्यवहार सब, सर्वेश्वरहिं बताऊँगो॥

यों बहुविधि अक्रूर मनोरथ करत जात मग।
निरखे उभरे अवनि माँहिं श्रीनँदनन्दन पग॥
वज्र, कमल, यव आदि दिव्य चिह्ननितें चिह्नित।
समुझी जीवनमूरि भये अतिशय आनन्दित॥

निरखत प्रभु पदरज मुदित, तुरत कूदि रथतैं परे।
तनु पुलकित गदगद हृदय, नयन नेह जलतैं भरे॥

पायो श्रीअक्रूर जगतमहँ नर जीवन फल।
करि करि हरिकी यादि नेहमहँ अतिशय बिह्वल ॥
पल-पल छिन-छिन समय सुमिरि श्रीश्याम बितायो।
जग जीवनको लाभ संतजन जिही बतायो ॥

चरन-चिह्न प्रभुके परशि, मदमातेसे ह्वै गये।
कछु सचेत ह्वै हाँकि रथ, नन्दगाँवकूँ चलि दये ॥

गोशालामहँ पहुँचि राम अरु श्याम निहारे।
नीलपीत पट पहिन खड़े गोरे अरु कारे ॥
काननि कुंडल कलित ललित वनमाला मनहर।
दोऊ अतिईं सुघर सुखद शोभित अति सुन्दर ॥

गाय दुहावन हित खरे, जनु सिँगार द्वै तनु धरे।
करि दर्शन अक्रूरजी, दड सरिस महिपै परे ॥

माधव माधव लखे दौरि सत्वर ढिँग आये।
हरि बलपूर्वक पकरि प्रेमतै हिये लगाये ॥
पुनि भेंटे बलराम कामतजि घरपै लाये।
करि बिधिवत् सत्कार स्वादु भोजन करवाये ॥

नन्दराय भेंटे ललकि, पुनि पूछी सबकी कुशल।
गये नन्द ब्यालू करन, बात करें घनश्याम बल ॥

श्रीहरि पूछें—तात, कहो ब्रज कैसे आये।
समाचार अक्रूर आदितैं सबहि सुनाये ॥
कृष्णचन्द्र मम काल दुष्ट यह सबकछु जानें।
कस क्रूरता करै यादवनि बैरी मानें ॥

नारदतै तव जन्मकी, सुनत क्रोधमहँ भरि गयो।
भैया भाभीकी तबहिं, हत्या हित उद्यत भयो ॥

नारद रोक्यो युक्ति यज्ञकी ताहि बताई।
भेज्यो लैवे मोइ दुष्टकी मति बौराई॥
कपट-यज्ञ करि चहै मारिवो तुमकूँ स्वामी।
बोले हरि—अब मरे ममा रोवें सब मामी॥

पुनि बोले नँदरायतै, बाबा! मथुरा जायँगे।
चरख चढ़ें दङ्गल लखें, गुलगप्पा हू खायँगे॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें व्योमोद्धार अक्रूरागमन नामक चौवीसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः

[२५]

सुनि गोपनि सँग नन्द गमनकी करत तयारी ।
इत रासेश्वर गये कुंज जहँ राधा प्यारी ॥
कीयो बहु विधि प्यार हरष राधा नहिं मनमहँ ।
सुमिरि सुमिरि प्रिय विरह दाह होवै सब तनमहँ ॥
समुझावें बहुविधि सदय, ह्वै हरि हृदय लगाइके ।
अश्रु पौछि निज करनितैं, पुनि पुनि धीर बँधाइकें ॥

बिलखति राधा कहति—प्रानपति ! यदि तुम जाओ ।
तो नहिं जीवत मोइ फेरि बरसाने पाओ ॥
निशा चन्द्र बिनु नदी नीर बिनु सोह न जैसें ।
देह प्रान बिनु मृतक बनै तुम बिनु हौं तैसें ॥
मछली जल बिनु नहिं जिये, पिये चातकी स्वाति जल ।
त्यों तुमरे बिनु प्रानपति, होहि हृदय अतिई बिकल ॥

हरि समुझाई प्रिया कुञ्जतैं आये घरमहँ ।
जावें मथुरा श्याम बात फैली सब ब्रजमहँ ॥
गोपी सुनि सब दुखित भई हिय अति अकुलायो ।
करि करि हरिकी यादि सबनिको मुख मुरझायो ॥
विधिकूँ कोसें कुपित ह्वै, नन्दभवन ढिँग आइकें ।
मिलि विलाप सबई करें, नयननि नीर बहाइकें ॥

कहैं—विधाता परम अज्ञ तू बालक सम है।
सुन्दर श्याम सरूप दिखायो हमें प्रथम है॥
भई तृप्ति नहिं तऊ छीनिवे अब तू आयौ।
काम क्रूर अति करै नाम अक्रूर धरायौ॥

भये गोप वैरी सकल, जावें हम किहिके निकट।
परम क्रूर अक्रूर हैं, नन्दनँदन निर्दय निपट॥

रथपै बैठत श्याम निरखि हमकूँ मुख मोरें।
लावें छकरा गोप बैल तिनिमें ते जोरें॥
जाहिं कहाँ का करें निवारें हरिकूँ कैसें।
करें लाज तजि वही रहे माधव व्रज जैसे॥

रथ-पथमहँ लोटो सकल, सत्याग्रह सबमिलि करौ।
जान न पावैं नँदनँदन, लोक लाज चूल्हे परौ॥

कैसें अबला नारि निवारैं हरिकूँ बलतैं।
नहिं दीखेंगे श्याम हाय! अब ब्रजमहँ कलतैं॥
अब न मंद मुसकानयुक्त मुख मनमोहनको।
दीखैगो नहिं मिटै ताप संतापित तनको॥

निशा बिताईं श्याम सँग, निभृत निकुञ्जनिमहँ सरस।
मिलैं न रास बिलासमहँ, अब आलिङ्गन हरि-दरश॥

उड़गन तेज मलीन निरखि पुनि भये उदित रवि।
व्रज बनितनिको बिरह दुसह अति बरनैं को कवि॥
राम श्याम रथ चढ़े यशोदा रोवति आई।
रथके चारिहुँ ओर फिरै शिशु बिनु जिमि गाई॥

कुररी सम रोवति सकल, राम! श्याम! सब मिलि कहति।
डकरावति हा-हा करति, अश्रुधार सबके बहति॥

इत नन्दादिक गोप सकल मिलि द्वारें आये।
पाग दुपट्टा पहिन स्वय सजि बैल सजाये॥
हाँक्यो रथ अक्रूर घंटिका चहुँदिशि बाजैं।
रथके पीछे दुखित गोपिका रोवति भाजैं॥
मूर्छित ह्वै गोपीं गिरीं, रथ अति आगे बढ़ि गयो।
दीखी ध्वज रज फेरि सब, आँखिनितैं ओझल भयो॥

भई निराशा लौटि सखी निज निज घर आई।
इत रथ आगे बढ़्यो दई रबिसुता दिखाई॥
रवि सिर ऊपर निरखि न्हाइबे रथ ठहरायो।
राम श्याम पय पान कर्यो अक्रूर जतायो॥
बैठो रथपै आइ तुम, न्हाइ करूँ सन्ध्या अबहिं।
यों कहि जल बुड़की दई, लख्यो दृष्य जलमहँ तबहिं॥

श्रीअनन्त फण सहस मुकुट मणिमय सिर सोहैं।
गोदीमहँ घनश्याम विराजें जन मन मोहैं॥
कर,कपोल,कटि,कुटिलकेश सब अँग अतिमनहर।
कंकण, कुंडल कलित करधनीं आभूषणधर॥
लखि अद्भुत इस्तुति करी, दरशनतैं प्रमुदित परम।
बोले—हरि! अपवर्गपति, काम अर्थ तुमहीं धरम॥

अक्रूर-स्तुति

जय राम हरे जय कृष्ण हरे। तुमने ही जड़ चैतन्य करे॥
माया तुमरी है अति अपार, पावैं कैसे ये जीव पार।
हैं नित्य निरञ्जन निराधार, तव युगल चरनमहँ नमस्कार।
अघ नाम जपततैं सकल जरे॥१॥ जय राम हरे०

सब रूपनितैं तुमकूँ ध्यावैं, सब नामनितैं तुमकूँ गावैं ।
सबके चरननिमें सिर नावैं । तेअंवसि धाम तुमरो पावैं ।
अगनित पामर खल जीव तरे ॥२॥ जय राम हरे०

हैं शक्ति शाक्त भक्तनिके हित, वैष्णव ध्यावें श्रीविष्णु अमित ।
गनपति रवि शिव हैं आपु अजित, सिर तव चरननिमें नाथ नमित ॥
अवतार जगतहित अमित धरे ॥३॥ जय राम हरे०

जड़ जीव भ्रमें तममें फँसिकें, बन्धन स्वीकारें हँसि हँसिकें ।
पकर्यो हौं मायाने कसिकें, बिगर्यो विषयनिके बिच बसिकें ॥
दै दरशन सब अघ देव हरे ॥४॥ जय राम हरे०

जय जय यदुनन्दन हृषीकेश, जय जय करुनानिधि प्रभु व्रजेश ।
जय जय गोपीश्वर राधिकेश, जय वासुदेव प्रद्युम्न शेष ॥
हम सेवक प्रभुके पगनि परे ॥५॥ जय राम हरे०

छप्पय—यों जमुनाजल माँहिं करी अक्रूर विनय हरि ।
प्रभु अन्तरहित भये छिपे, नट ज्यों अभिनय करि ॥
जब नहिं निरखे श्याम उछरि जल ऊपर आये ।
चहुँ दिशि ह्वै कें चकित लखें कित कृष्ण बिलाये ॥
शेष करम करि पट बदलि, यमुनातट ठाढ़े भये ।
पट निचोरि जलपात्र भरि, सूत्रे रथपै चढ़ि दये ॥

'दरशनतैं अति चकित तुरत रथके ढिँग आये ।
पुनि मथुराकी ओर बैठि रथ अश्व चलाये ॥
पहिलेतैं ही गोप बागमहँ डेरा डारे ।
करत प्रतीक्षा राम श्याम लखि भये सुखारे ॥
हरि हँसि बोले—चचाजी ! रथलै मथुरा जाउ तुम ।
कबहूँ चाची हाथके, माल उड़ावें आइ हम ॥

समुझि गये अक्रूर श्याम अबहीं नहिं जावें ।
मारि कंसकू बन्धु सहित मेरे घर आवें ॥
रथलै पहुँचे कंस निकट सब वृत्त सुनायो ।
राम श्याम आगमन सुनत खल अति हरषायो ॥
घर पहुँचे अक्रूर इत, उत हरि अति उत्सुक भये ।
ग्वाल बाल बल सहित लै, मथुरा निरखन चलि दये ॥

देखी मथुरापुरी सजी नव बधू सरिस अति ।
घर घर वन्दनवार पताका ध्वज शुभ सोहति ॥
परम रम्य उद्यान मनोहर घर पथ मन्दिर ।
परिखा चहुँदिशि खुदी सुभ्र गोपुर अति सुन्दर ॥
विद्रुम, मोती, नील, मणि, वेदिनिमहँ जगमग करत ।
शुक पिक पारावत मधुर, करि कलरव इतउत फिरत ॥

शुभागमन वसुदेव सुतनिको सुनि सब नारीं ।
तनकी सुधि बुधि भूलि चलीं जनु चन्द्र उजारीं ॥
असन बसन परिधान न्हान अंजन तजि भागीं ।
चितवनि लीला सहित श्याम शोभा अनुरागीं ॥
अटा अटारिनिपै चढ़ीं, रूपसुधा नयननि भरहिं ।
मूँदि नयन हियभावतैं, पुनि पुनि आलिङ्गन करहिं ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें मथुरागमन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त

अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः

[२६]

मथुरामहँ हरिरूप सुधाको स्रोत बहायो।
तबई लैकैं धुवे बसन धोबीतहँ आयो॥
रँगे रँगाये धुवे सुघर, पट लखि बोले हरि।
देहु चौधरी नील पीत पट हमहिं कृपाकरि॥
रङ्गकार उद्धत रजक, बोल्यो आँखिनि लाल करि।
क्यौं छोरा बौरे भये, अबहिं लेइगे चर पकरि॥

बनचारी तुम ग्वाल कबहुँ देखे अस अम्बर।
जाउ चराओ गाय लपेटो कारो कम्बर॥
सुनि धोबीकी बात श्याम तकि मुक्का मार्‌यो।
धड़तैं सिर करि पृथक बीच चौराहे डार्‌यो॥
भगदड़ धोबिनिमहँ मची, डारि वस्त्र सबई भगे।
रामश्याम गोपनि सहित, चुनि चुनि पट पहिनन लगे॥

ढीले ढाले पहिन वस्त्र हरि आगे आये।
वायक निरखे श्याम आइ मृदुबचन सुनाये॥
काटि छाँटिकैं प्रभो! बेष हौं सुघर बनाऊँ।
करिकैं कछु कैंकर्य मनुज-जीवन फल पाऊँ॥
मानी यदुबरने विनय, वायक पट अनुपम किये।
सजे सजाये करिकलभ, सम हरि बल शोभित भये॥

अति प्रसन्न हरि भये कृपा बायकपै कीन्हीं।
लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, भक्ति अनपायिनि दीन्हीं॥
लौकिक सुख परलोक मोक्ष फल दोऊ पाये।
बायक भयो कृतार्थ लौटि प्रभु पुनि पथ आये॥

ग्वाल बाल बलदेव सँग, हँसत जात मोहनमदन।
आगे माला-हार युत, निरख्यो मालीको सदन॥

करन कृतारथ चले सुदामा माली घर हरि।
हड़बड़ाइ सो उठ्यो दंडवत करी भूमि परि॥
बिधिवत पूजा करी बिबिध बिधि बिनती कीन्हीं।
सबकूँ चन्दन, फूल पान अरु माला दीन्हीं॥

मालीकी माला गरे, धारें यों राधारमन।
इन्द्र धनुष धारन किये, शोभित मानहुँ सजल घन॥

पूजातें प्रभु तुष्ट कहे—बर माली! माँगो।
नहिं अदेय कछु मोइ व्यर्थ लज्जा भय त्यागो॥
माँगी माली भक्ति भक्त भगवन्त चरनमहँ।
जीव मात्रपै दया रहूँ नित नाथ शरनमहँ॥

इच्छितवर, बल, आयु, यश, श्री, लौकिक सुख हू दये।
यौं मालीपै कृपा करि, पुनि हरि आगे बढ़ि गये॥

आगे निरखी श्याम कूबरी युवती नारी।
करमहँ चन्दन-पात्र लिये मनहर मुख बारी॥
रंग रँगीले रसिक शिरोमनि बोले—भामिनि।
चन्दन लैकें जाहु कहाँ सुमुखी गज गामिनि॥

हमें देहु चन्दन सुखद, गंध युक्त शीतल सरस।
बोली दासी कंसकी, धन्य पाउँ हौं प्रभु परस॥

चन्दनवारी सहित लेउ यदुनन्दन चंदन।
अर्पित अच्युत! करूँ तुम्हे सरवस तन मन धन॥
प्यारे! तुमकूँ पाइ जगततैं हौ मुख मोरूँ।
लोक-लाज कुल-लाज जगतके बन्धन तोरूँ॥

सैरन्ध्री चन्दन दयो, अनि आनन्दित ह्वै गई।
पगपै पग धरि चुबुक धरि, झटकी अति सीधी भई॥

टेढ़ी सीधी भई सुन्दरी अति सुकुमारी।
मधुर मधुर मुसकात निहारे रासविहारी॥
पल्लो पकर्यो कहे—नाथ! मेरे घर आओ।
मदन तापतैं तपित रमन तन ताप मिटाओ॥

तासु बिनय बल ग्वाल सुनि, हँसे श्यामहू हँसि गये।
हौं आऊँगो फिरि अवसि, यों कहि आगे चलि दये॥

पिय वियोगतैं दुखित भई कुब्जा अति मनमहँ।
गयो काम-ज्वर व्याप्त होहि पीड़ा सब तनमहँ॥
मूर्छित ह्वै कें परी पलँगपै करवट बदलति।
करि करि हरिकी यादि आह भरि भरिकें सिसकति॥

इत नर नारिनिके नयन, सफल करत प्रभु पथ चलत।
बनिज सुमन चदन इतर, तैं हरिको स्वागत करत॥

पुरबासिनितैं पूछि यज्ञशाला हरि आये।
देख्यो बलके सहित धनुष प्रभु परम सिहाये॥
रक्षक रोकत रहे श्यामने धनुष उठायौ।
करि ज्यों तोरै ऊख तोरि त्यों तुरत गिरायौ॥

धनुष भङ्गको घोर रव, दशहुँ दिशनिमहँ भरि गयो।
अन्तःपुरमहँ कंस सुनि, रिपु भयतैं व्याकुल भयो॥

आये सैनिक भृत्य श्याम बलरामहिँ पकरन ।
मारो काटो पकरि लेहु चिल्लावें खल गन ॥
राम श्यामने लखे शस्त्र लै सैनिक आवत ।
दोऊ भाई धनुष खंड लै चले भगावत ॥
सबकूँ मारि भगाइकैं, निज डेरापै आइकैं ।
सोये सुखतैं सखनि सँग, खीर सुहारी खाइकें ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें रजकोद्धार कुब्जानुग्रह नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः

[२७]

कंस धनुषको भंग पराजय सेनाकी सुनि ।
भयो दुखित दुःस्वप्न निहारे डरपै पुनि पुनि ॥
जागत देखै वृक्ष सुनहरे निज शिर धड़-बिनु ।
निशिमहँ निरखै स्वप्न दिगम्बर तैल मले तनु ॥

केश, कपास, कुलाल, कुश, काक, कंक, कपि, कृष्ण-पट ।
नकटी, बिधवा, मृतक नर, रुण्डमाल, यमभट, विकट ॥

सुनत कंस धनुभंग निशा निद्रा नहिं आयी ।
प्रातकाल उठि रंगभूमि खलने सजवायी ॥
गाजे बाजे सहित मल्लशालामहँ आयौ ।
गोपनिकूँ पुनि भेंट सहित सम्मुख बुलवायौ ॥

कहै नंदतैं—सुत कहाँ, राम श्याम जो सुहढ़ अँग ।
नंदराय बोले—प्रभो ! आवत हौंगे सखनि सँग ॥

राम श्याम वध हेतु प्रथम अम्बष्ठ सिखायौ ।
रंगभूमिके द्वार कुवलयापीड़ पठायौ ॥
इत सजि वजि बल श्याम द्वारपै गज ढिंग आये ।
हाथी तुरत हटाउ वचन हस्तिपहिं सुनाये ॥

सुनत कुपित हस्तिप भयो, रौंद्यौ क्रूरि हरिपै तुरत ।
गज प्रहार पुनि पुनि करत, हँसत श्याम इत उत फिरत ॥

दामोदरने दुष्ट देखिके दाव दबोच्यो।
किचकिचाय सिर चढ़े शत्रु हित मनमहँ सोच्यो॥
लीये दाँत उखारि दयो इक बल इक धार्यो।
हस्तिप हाथी सहित दाँततैं ही हरि मार्यो॥
छोड़ि मृतक गज सभामहँ, प्रविशे नहिँ देरी करी।
रही भावना जासु जस, तस ताकूँ दीखे हरी॥

मल्लनि निरखे बज्र कामिनी काम बिचारैं।
नर निरखे नररत्न गोप निज स्वजन निहारैं॥
शासक खलनृप लखें जनक जननी निजशिशु सम।
जनसाधारन लखें भयंकर कंस मनहुँ यम॥
इष्टदेव यादव मनहिं, परम तत्व योगी लखहिं।
वस्तु एक परि भावतै, भली बुरी प्रानी कहहिं॥

उत्सवमहँ हरि फिरत माधुरी सुधा पिआवत।
इतउत चितवत चलत चोर जनु चित्त चुरावत॥
कहे परस्पर नारि—कुमर ये अति बलशाली।
कृष्ण देवकी-तनय रोहिनी-सुत बल आली॥
मारे इनि अगनित असुर, तेज ओज सह बल निलय।
रक्षित यदुकुल होहि अब, पावै यश गौरव बिजय॥

राम श्यामकूँ निरखि नारि नर भये सुखारे।
कंसमल्ल चाणूर गरबतैं बचन उचारे॥
मल्ल युद्धमहँ निपुण सुने तुम दोऊ भैया।
ग्वालबालसँग लड़त चरावत बनबन गैया॥
करे चकित नरनारि सब, रंगभूमिमहँ आइकें।
आओ नृपको प्रिय करें, द्वै द्वै हाथ दिखाइकें॥

सुनि बोले बल-अनुज—बाल हम तुम बलसागर।
मल्लयुद्ध तब होहि जोड़ जब होहि बराबर॥
कहै विहँसि चाणूर—बली तो बलतैं होवें।
जो न होहि बलवान बड़प्पन अपनो खोवें॥
नहिं शिशु तुममें बल अमित, आओ हम तुमतैं भिड़ैं।
हमरो तुमरो जोड़ है, मुष्टिक हलधरतैं लड़ैं॥

हँसि बोले भगवान—नहीं मानो तो आओ।
तुम अति नामी मल्ल मल्लपन आजु दिखाओ॥
यों कहि कछनी काछि अखाड़ेमहँ आये हरि।
शोभित बल सँग मनहुँ बीररस द्वै द्वै तनु धरि॥
तालठोकि दोऊ बली, लड़िवेकूँ उद्यत भये।
कृष्ण लड़ैं चाणूरतैं, बल मुष्टिकतैं भिड़ि गये॥

चटचट होवै शब्द उठावैं पकरि घुमावैं।
सटकैं इतउत झपटि लपटिकैं पटकि गिरावै॥
मारैं उरमहँ चोट ढकेलै पुनि पुनि पकरैं।
चित्तपट्ट ह्वै जायँ तुरत इततैं उत निकरैं॥
कहँ मुष्टिक चाणूर खल, कहँ हलधर हरि अमित बल।
करहिं लोकवत काज सब, थापैं जगमहँ यश विमल॥

एक एककूँ पकरि पटकिकैं पेच चलावैं।
कोई मुक्का मारि पकरिके टाँग गिरावैं॥
पाँइनि अंटाडारि करनितैं कंधनि कसिकैं।
पुनि पुनि ठोकैं ताल निहारैं दोऊ हँसिकैं॥
होहिं चटाचट पटापट, चित्त पट्ट ह्वैकैं गिरैं।
कबहूँ निकसैं दावतैं, पुनि दोऊ पकरैं लरैं॥

मुष्टिक अरु चाणूर बज्रसम कठिन भयंकर।
अति सुन्दर सुकुमार सरस सुखकर बल नटवर ॥
स्वेदयुक्त मुख निरखि नारि मनमहँ घबरावें।
बहुबिधि करें बिलाप कसकूँ कुटिल बतावें ॥
बाँकी झाँकी श्याम बल, की करिकें होवें मगन।
ब्रजबनितनिके भाग्यकूँ, सब सराहिं बोलें बचन ॥

वृन्दावनकी धन्य भूमिजहँ बिहरें ब्रजपति।
ब्रजबनिता अति धन्य धन्य उनकी रति मति गति ॥
असन बसन गृहकाज करतिजे नहिं बिसरहिं हरि।
सदा रिझावें ब्रजबल्लभकूँ प्रिय कारज करि ॥
बड़भागिनि ये गूजरी, जिनको प्रभुमहँ फँस्यो चित।
मधुर मधुर मुसकानमय, मुख माधवको लखहिं नित ॥

हाय ! क्रूर चाणूर न कछु अनरथ करि डारै।
दुष्ट न कहूँ कुठौर चोट माधवके मारै ॥
बनितनिकूँ लखि बिकल शत्रु बध निश्चय कीयो।
तबई रिपुने उछरि श्याम हिय मुक्का दीयो।
हँसि हरिने पकरीं भुजा, गोफिनि सम चक्कर दये।
प्राणहीन ह्वैकें गिर्यो, नर नारी हर्षित भये ॥

बल मुष्टिककूँ मारि अखाड़ेमें ठाढ़े जब।
करिकें अतिई कोप कूट लड़िबे आयो तब ॥
इत शल तोशल लड़न श्यामके सम्मुख आये।
तीनिहुँ ही मरि गये परमपद सबने पाये ॥
मुष्टिक अरु चाणूर शल, तोशल कूट मरे जबहिं।
लै लै अपने प्राण सब, शेष मल्ल भागे तबहिं ॥

ग्वाल बाल लै संग श्याम बल नाचत डोलैं।
एक कंसकूँ छोड़ि शेष सब जय जय बोलैं॥
कुपित कंसह्वै गयो, कहै—इन गोपनि मारौ।
राम कृष्णकूँ पकरि नगरतैं तुरत निकारौ॥

समुझि गयो ये परस्पर, मिले जुले सब लोग हैं।
नंद गोप बसुदेव अरु, उग्रसेन बध योग हैं॥

बक बक मामा करत तुरत हरि उछरे ऊपर।
लीन्हीं चोटी पकरि धम्मतै कूदे नटवर॥
मामा नीचे गिर्यो भानजो ऊपर आयो।
प्रभु तन परसत तुरत परमपद मामा पायो॥

खान पान नित यानमहँ, चलत फिरत सुमिरत हरिहिँ।
सुमिरन सतत प्रभावतैं, मिल्यो त्यागि तनु सो विभुहिँ॥

इति श्रीभागवतचरितके पञ्चमाहमें कुबल मल्ल कंसोद्धार नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त।



अथ अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

[२८]

कंस अनुज पुनि आठ लड़े बल मारि गिराये ।
मामी रोवत लखीं वचन हरि मधुर सुनाये ॥
पुनि पितु माता निकट आइकें काटे बन्धन ।
शिशु सम गोदी बैठि करे करुणामय क्रन्दन ॥

कहे—अभागे हम रहे, निरख्यो नहिँ पितु मातु सुख ।
हमरे पीछे दिवस निशि, सहे आपने दुसह दुख ॥

गर्भ प्रसवमहँ सहति मातु दुख नित पालनमहँ ।
कौन उरिन ह्वै सकै मातु पितुतैं सुत जगमहँ ॥
बालक विहरति फिरहिँ किलकिकैं हिय सरसावें ।
क्रीड़ा जननी जनक लखें अतिशय सुख पावें ॥

क्रूर कंसकी कुटिलता, वश हम तुम दुख सब सहे ।
नहीं दयो सुख नहिं लह्यो, भयवश छिपि बन बन रहे ॥

मायापतिकी सुनी मधुर ममतामय बानी ।
भूलि गयो सब ग्यान मोह ममता लपटानी ॥
बार बार हिय लाइ करें अनुभव अति सुत सुख ।
गोदीमहँ बैठाय श्याम बलको चूमें मुख ॥

मातु पिता परितोष करि, उग्रसेनके ढिँग गये ।
सिंहासन आसीन करि, पुनि सबके नृप करि दये ॥

कंसादिकके मृतक करम विधिवत करवाये।
पुनि परदेशनि गये बन्धु बान्धव बुलवाये॥
असन, बसन, धन, रतन, भवन सब हीकूँ दीन्हे।
करि सब विधि सत्कार तुष्ट यादव सब कीन्हे॥

राम श्यामको सदय मुख, लखि सब आनन्दित भये।
पीकें प्रभु मुख माधुरी, वृद्ध युवक सम बनि गये॥

आये दोऊ बन्धु नन्द ढिंग अति सकुचावत।
बोले गदगद् गिरा नयनतैं नीर बहावत॥
मातु यशोदा सहित करी अति ममता तुमने।
उरिन ह्वै सकें नहीं प्रेम पायो जो हमने॥

मैया रोवति होइगी, गैया जैसे बत्स बिनु।
बास मधुपुरीमहँ करें, आयसु दैं तो कछुक दिन॥

अकबकाइकें नंद कहैं—का कहत कन्हाई।
तू न जाय तो मरै विरहमहँ तेरी माई॥
अरे, निठुर मत बनें लाल तोकूँ समुझाऊँ।
एक कहै या लाख तोइ तजि नहिं घर जाऊँ॥

कपटी मथुरामहँ भयो, मुख मीठो हियमहँ छुरी।
अरे, सोचि तेरे बिना, होहि दशा ब्रजकी बुरी॥

मुदित होहिं बसुदेव प्रेमकी सीमा जानी।
रुदन करत घनश्याम नंदकी सुनि सुनि बानी॥
नंद कर्यो हठ बहुत श्यामने एक न मानी।
गोप सहित अति दुखित गमनकी मनमहँ ठानी॥

गोपनिकूँ सम्मानयुत, पट आभूषन बहु दये।
प्रेमाकुल दोऊ भये, दोऊ हियतें सटि गये॥

रोवत रोवत चले नन्द गोकुलमहँ आये।
रामश्याम नहि लखे गोप गोपी घबराये॥
यशुमति सुनि सब बात, बहुत रोई बिललाई।
हाय! कहाँ रहि गये कुँवर बलराम कन्हाई॥

नन्दगाँवके नारि नर, व्याकुल ह्वै रोवत फिरें।
डकरावें हा हा करें, मूर्छित ह्वै ह्वै के गिरें॥

इत वियोगतैं दुखित श्याम बल महलनि आये।
ह्वै प्रसन्न बसुदेव विविध मंगल करवाये॥
कनक, धेनु, धन, रत्न, दान भूदेवनि दीन्हे।
द्विजनि उचित उपनयन गर्ग आदिक मुनि कीन्हे॥

ब्रह्मचर्य व्रत धारिकें, गायत्री दीक्षा लई।
करन बास गुरुकुल चले, अनुमति सबई ने दई॥

मुनि सान्दीपनि सौम्य सरल सुठि काशी बासी।
रहे अवन्तीपुरी तपस्वी विषय उदासी॥
तिनि ढिँग पढ़िवे गये कौन समुझै हरिकी गति।
सब विद्यनिके धाम श्याम बलराम जगत् पति॥

भई सिद्ध विद्या सकल, भाग्य आज मुनिके जगे।
जगदीश्वर हू शिष्य बनि, जिनके घर रहिवे लगे॥

गुरुसेवा आदर्श दिखावें करिकें करनी।
सुश्रूषा नितकरें त्यागि भगवत्ता अपनी॥
समिधा, कुश, फल, फूल, मूल, घट जलको लावैं।
अति लघु सेवा करैं, अधिक हिय माँहिं सिहावैं॥

जाहिं सुदामा संगमहँ, ईंधन लावें तोरिकें।
ब्रह्मचर्यव्रततें रहैं, विषयनितैं मुख मोरिकें॥

गुरुप्रसादतैं वेदशास्त्र सुनतहिँ जाने प्रभु।
चौंसठ कला प्रवीन भये चौंसठ दिनमहँ विभु॥
गीत[१], वाद्य[२] अरुनृत्य[३] नाम्य[४] चित्रनि को लिखिवो[५]।
पत्रावलि सिरतिलक[६] धान कुसुमनि[७] को रचिवो॥

फूल सेज[८] पट दशन[९] रँग, मणिमय मही[१०] बनावनों।
शयन[११] रचन अरु जल[१२] तरँगचित्र विचित्र[१३] दिखावनों॥

हार[१४] केश[१५] नैपथ्य[१६] कर्ण पत्रादिक[१७] रचिवो।
गन्धयुक्त[१८] आभूषन[१९] सबकूँ विस्मित[२०] करिबो॥
धारेरूप[२१] अनेक हस्त लाघव[२२] वर भोजन[२३]।
आसवादि[२४] निर्मान सीमनो[२५] डोरा खेलन[२६]॥

वींणाडमरू[२७] बजावन—ज्ञानपहेली[२८] प्रतिकृती[२९]।
अक्षोपत्तो[३०] बाँचिवो[३१] नाटकादिमहँ[३२]—वर गती॥

काव्य[३३] समस्यापूर्ति पट्टिका वेत्र[३४] सुदीक्षा।
तर्ककर्म[३५] लक्षणहु[३६] ज्ञानगृह[३७]—रत्नपरीक्षा[३८]॥
धातुरसायन[३९] ज्ञान रंगमणि[४०] खानिज्ञानवर[४१]।
तरुविद्या[४२] खगयुद्ध[४३] जानिवो शुकनिककोस्वर[४४]॥

उत्सादन[४५] कचमारजन[४६] मूँठी वस्तु[४७] बतावनो।
भाषा[४८] देशी विदेशी[४९] ज्ञान विमान[५०] बनावनो॥

प्रतिमा[५१] लोचनमणिभेदन[५२] परचित्त-बतावन[५३]।
परमन कविता[५४] ज्ञान-छन्द[५५] ना मिन[५६] जानन॥
छलितयोग[५७] पटगोनन[५८] जूआ[५९]—क्रीडा कर्षन[६०]।
बालक[६१] क्रीडा ज्ञान शेष त्रय विद्या दर्शन॥

वैजयिकी[६२] वैनायकी[६३] वैतालिकी[६४] प्रसिद्धि हैं।
चौंसठ हू ये सब कला, स्वयं श्यामकूँ सिद्धि हैं॥

करि गुरुकुलमहँ वास पढ़ीं बिधिवत बिद्या सब।
दोऊ गुरुतैं कहैं—दच्छिणा देहिं कहा अब॥
अद्भुत महिमा निरखि बिचारें मनमहँ गुरुवर।
माँगू इनतैं कहा करन सम्मति आये घर॥
गुरु पत्नी बोली—बिभो ! मेरी यह इच्छा प्रबल।
लावैं सुतहिं समुद्रतैं, डूब्यो प्रथम प्रभास थल॥
दोऊ रथ चढ़ि चले नीरनिधिके ढिंग आये।
गुरु-सुत देहु समुद्र रोषतैं बचन सुनाये॥
दीयो असुर बताइ पञ्चजन सो हरि मार्‌यो।
गुरु-सुत तहँ नहिँ मिल्यो पञ्चजनशंख निकार्‌यो॥
संयमनी यमकी पुरी, महँ दोऊ भाई गये।
रामकृष्णकूँ निरखि यम, अति ही आनन्दित भये॥
करि पूजा यम कहे-नाथ ! तुम अन्तरयामी।
कीयो दास कृतार्थ करें कछु आयसु स्वामी॥
हरि बोले—गुरु-तनय यहाँ आयौ तिहि लाओ।
है बिशेष यह नियम नहीं अब देर लगाओ॥
यमने दीयो तुरत शिशु, राम श्याम गुरुकूँ दयौ।
पाइ मृतक सुत सुख अधिक, गुरु गुरुआनीकूँ भयौ॥
आये मथुरा पुरी सुनत सबई उठि धाये।
राम श्यामके दरश पाइ सब अति हरषाये॥
द्वै पूरन शशि सरिस सबनिकूँ सुख सरसावैं।
मथुरामहँ नित बसैं, प्रेमको श्रोत बहावैं॥
यहाँ छोड़ि कछु कालकूँ, श्रीमथुराजी की कथा।
हृदय थामि सोचो तनिक, विरहमाँहि ब्रजकी व्यथा॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें ब्रजराजविदा गुरुकुलवास मृत गुरुपुत्रानयन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त

[मासिक पारायण—बाईसवें दिवस विश्राम]

अथ–ऐकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः

[२६]

हलधर गिरिधर बिना लगै ब्रज सूनो सूनो।
लखि मैयाकी व्यथा बढ़ै सबको दुख दूनों॥
खोई खोई रहै यशोदा कछु नहिँ सूझै।
देखे आवत पथिक बात बत्सनिकी बूझै॥

बार बार मैया कहै, बुढ़ियापै किरपा करो।
अरे दिखाओ सुतनि मुख, होवैं मेरो हिय हरो॥

कोई करुना करो मोइ मथुरा पहुँचाओ।
कौन गली महँ बसत श्याम बल पतो बताओ॥
नित माखन दै आउँ चूमिकें मुख फिरि आऊँ।
इनकी मैया लगूँ भूलिकें नाहिँ बताऊँ॥

लुकि छिपिके कबहूँ मिलूँ, नैंन न नीर बहाउँगी।
कनुआ बलुआ हाय सुत, कहिकें नहिँ डकराउँगी॥

यौं पगली सी फिरै मातु ब्रजमहँ इततें उत।
ग्वालबाल अति दुखित जाइँ बनकूँ रोवत नित॥
जहँ जहँ क्रीड़ा करीं कृष्णने अति सुखकारी।
करि करि तिनकी यादि करे मनमहँ दुख भारी॥

अब कब निरखें श्याम मुख, बिलपि बिलपि पुनि पुनि कहे।
हरि सँग हँसिबो खेलिबो, सुमिर सुमिर रोवत रहे॥

बन, उपबन, द्रुम, सुमन सरित, सरवर लखि रोवें ।
लीलनिकी करि सुरति देहकी सुधि बुधि खोवें ॥
गाँव गाँव थल कुंड लखें लीला सुधि आवे ।
कृष्ण कृष्ण कहि गिरें दुःखको पार न पावें ॥

जब गोपनिकी जिह दशा, तो गोपिनिकी का कहें ।
जे प्रियतमके प्रेममहँ, निशि बासर डूबी रहें ॥

निशि निशि गोपी फिरति गये कहँ कृष्ण कन्हाई ।
तिनिकूँ तजिकें नींद कृष्णके संग सिधाई ॥
विरह रोग अति दुसह सबनिके हियमहँ लाग्यो ।
रोवत ही नित रहें, शयन भोजन जल त्याग्यो ॥

पछितावें सुमिरन करें, रास विलास मनाइबो ।
दान, मान, होरी, हँसी, सग नाचिबो गाइबो ॥

वे ही शरद, बसंत, शिशिर, पावस, ग्रीषम दिन ।
वे ही भू जल, अनिल, अनल, नभ, ग्रह, तारागन ॥
किन्तु कृष्ण बिनु लगें दुखद नीरस सूने अति ।
ब्रजवनिता निशिदिवस बितावति हरिकूँ सोचति ॥

सावन झूला झूलिबो, फागुन होरी रँग भरीं ।
रोवति लीला सुमिरि नित, शारद निशिनिमहँ जो करीं ॥

इत ब्रज-वनिता विरह बारिमहँ डूबति उतरति ।
उत यदुपति करियदि सखिनिकी होत दुखित अति ॥
परम सुहृद निज सखा सचिव उद्धव ढिँग आये ।
निरखि परम एकान्त रहसमय बचन सुनाये ॥

सखे ! करो इक काज तुम, वृन्दाबनमहँ जाइके ।
करो सुखी सब सखिनिकूँ, शुभ सन्देश सुनाइके ॥

स्वामीको सन्देश सुन्यो सिर उद्धव धार्यो।
नद गाँवकूँ जाउँ सोचि रथ सुघर निकार्यो ॥
पाग दुपट्टा पहिन चले रथ चढ़ि ब्रज ऊधो।
वृक्ष लतनितैं घिर्यो निहार्यो दगरो सूधो ॥
सरस भूमि ब्रजरज मृदुल, सघन कुंज बन विटप वर।
बरसावत द्रुम सुमन शुभ, गुंजत बर मधुकर निकर ॥

धेनु खुरनिकी धूरि उड़ति रस सो बरसावति।
ढाँकति रथकूँ मनहुँ श्याम अनुराग दिखावति ॥
ऐंन भारतैं नमित धेनु इततें उत जावें।
गैयनिके हित साँड़ लड़ें पुनि पुनि डकरावें ॥
ग्वालबाल बछरा लिये, बाँधत गोपी दुहति पय।
कृष्ण विरहमहँ व्यथित सब, दीखत ब्रज अति दुःखमय ॥

गोपी बैठीं लखीं नयनतें नीर बहावति।
राम श्यामके चारु चरित तन्मय ह्वै गावति ॥
अतिथि, अग्नि, रवि, धेनु, विप्र, सुर पितरनि पूजत।
को आवै को जाइ भावमहँ तिनहिं न सूझत ॥
उद्धव निरखत जात सब, अति प्रभाव तिनिपै पर्यो।
नन्द पौरि ढिंग आइकें, हौले रथ ठाढो कर्यो ॥

रथको सुनिकें शब्द नन्द ह्वैके आनन्दित।
आइ गये बलश्याम बढ़े आगे मन सोचत ॥
उद्धवजी जब लखे प्रेमतैं हियें लगाये।
पुनि पुनि सिरकूँ सूँघि विकल ह्वै अश्रु बहाये ॥
मानों आयो श्यामही, सुतसमान आदर कर्यो।
पाद्य अरघ मधुपरक दै, दिव्य अन्न आगे धर्यो ॥

वर भोजन करवाइ बिछाई सुन्दर शैया।
दोऊ बैठे पास नद अरु जशुमति मैया॥
कुशल प्रश्न करि कहे—कृष्ण ब्रज क्यौं नहिं आयो।
परदेशी बनिगयो स्वजन घरबार भुलायो॥
लीलनिकीं सबई सुरति, ब्रजरज कन कन महँ निहित।
निरखत नित प्रति ही रहत, मथुरा पथ ह्वै के चकित॥

निरखें जा जा ठौर यादि लीला है आवति।
चित्त कृष्णमय होहि आँखि नित नीर बहावति॥
बोले उद्धव—धन्य धन्य दम्पति बड़भागी।
कृष्ण प्रेममहँ छके रहो अतिशय अनुरागी॥
घट घट व्यापी भुवनपति, देवें दरशन आइ हरि।
वासुदेव ब्रजचन्द्र प्रभु, प्रकटे नटवर रूप धरि॥

बाबा धारौ धीर वेगि सुधि यदुपति लैंगे।
करें प्रतिज्ञा सत्य दयानिधि दर्शन दैंगे॥
को तिनिके हैं पिता सुहृद सुत माता भ्राता।
अखिल विश्वके बीज बिनोदी सब जगत्राता॥
सुख साधुनिकूँ दैन हित, सरस सुखद क्रीड़ा करैं।
देव, मनुज, पशु, पच्छि अज, बिबिध रूप नटवर धरैं॥

उद्धव बैठे चुप्प व्यंग सुनि हिय भरि आयौ।
मधु लोलुप इक भ्रमर सहजही तहँ उड़ि आयौ॥
करि उद्धवकूँ लक्ष्य प्रेमको पाठ पढ़ायौ।
ताहि मानि हरिदूत कोप अरु मान दिखायौ॥
गुन गुन करि आयो भ्रमर, कहति कुपति पद पकर मत।
तू मधुकर माधव सरिस, मधु-लोलुप स्वारथ-निरत॥

जिनि कुंजनि सुख दयो न ते अब तनिक सुहातीं ।
अधरामृतकूं प्याइ बनाईं हम मदमातीं ॥
गये त्यागि मधुपुरी न अब ब्रजवास सुहावै ।
तू हू करि मधुपान, त्यागि सुमननिकूं जावै ॥
स्वामी सेवक एक से, चोर चोर भाई सगे ।
निज घर जा, हम अति व्यथित, हरि कटाक्ष सर हिय लगे ॥

करत करत यों बात रात बीती सब जागत ।
अरुनोदय है गयो गोपिका दीप जरावत ॥
मथिवे लागीं दही वलय कंकन धुनि करहीं ।
कुंकुम मंडित गंडचन्द्र विद्युति द्युति हरहीं ॥
चारु चरित चित चोरको, कल कंठनितैं गाइकें ।
दशहुँ दिशनिकूँ भरति मनु, अनुपम भाव जनाइकें ॥

दिनकर निजकर किरन प्रसारत उदित भये जब ।
नन्द पौरिपै लख्यो कनकमय गोपिनि रथ तब ॥
ह्वैकें विस्मित कहें परस्पर—को रथ लायौ ।
का श्वफलक-सुत फेरि मधुपुरीतैं ब्रज आयो ॥
करति तरकना परस्पर, उपमा दै दैकें सबहिं ।
नित्य कर्मतैं निवटिकें, आये उद्धवजी तबहिं ॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें ब्रजउद्धव गमन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः

[३०]

निरखे उद्धव कमलनयन पीताम्बर धारी।
कमल कुसुम बनमाल अलक बर चितवन प्यारी ॥
समुझीं कछु सदेस श्यामको लैके आयौ।
मातु पिता सतोष हेतु घनश्याम पठायौ ॥
करि आदर एकान्तमहँ, उत्कठित ह्वै लै गईं।
समाचार सब श्यामके, सहमि सकुचि पूछति भईं ॥

प्यारेको सन्देश कहन ब्रज आप पधारे।
हो कारेके सखा रगके तुमहू कारे ॥
समुझति हीं हम सदाप्रेम घनश्याम करिङ्गे।
छाया तनमन प्राण सरिस नित संग रहिङ्गे ॥
फल हित खग, मधु हित भ्रमर, विटप सुमन सँग प्यार है।
निकसे कपटी कुटिल हरि, स्वारथको संसार है ॥

धरि चरननिपै शीश विनय अति भ्रमर दिखावै।
बार बार हरि चरित मधुर अति गाइ सुनावै ॥
क्रूर कृष्णकी कथा कामिनी नाहिं सुनै गीं।
नकटी को तिहि बधिक निकट हरि जाहि बनै गीं ॥
खाइ छेद पत्तल करै, वामन बनि बलि नृप ठग्यो।
करें कहा परवश भईं, कठिन कुटिलमहँ मन लग्यो ॥

चाहे भूल्यो तऊ यादि आवें श्रीहरि नित।
करै नित्य मन मत्त मनन माधवकी मूरत॥
सोचें अवगुन सतत किन्तु चित तिनि गुन जानें।
कान्ह कथा नहिँ सुने कान परि सीख न मानें॥

फँसी वधिकके जालमहँ, घरकी रही न घाटकी।
परि न दुवारा चढ़ि सकै, चूल्हे हँडी- काठकी॥

अच्छा, मधुकर! फेरि पठायो प्रियतम तुमकूँ।
प्यारेको सदेश सुनाओ अब तुम हमकूँ॥
कैसे हरितैं मिलैं भ्रमर बर युक्ति बताओ।
उन उर पद्मा बसति सौतितैं पिंड छुड़ाओ॥

कुशल कहो कंसारिकी, करत कबहुँ ब्रजकी सुरति।
कब दासिनिपै दया करि, दरशन दैंगे प्रनतपति॥

भूलि गये घनश्याम हमें प्यारे बनवारी।
करत हमारी यादि कबहुँ का कुंजविहारी॥
उद्धव लखि अस नेह कहें—तुम अति बड़भागी।
श्याम चरनमहँ सुरति सबनिकी निशिदिन लागी॥

जप, तप, मख, व्रत, धर्मको, यह ही अंतिम फल कह्यो।
सार भक्ति भगवन्तकी, सो फल तुम सहजहिँ लह्यो॥

कर्‌यो कठिनतम काज त्यागि सब हरि अपनाये।
कृष्ण प्रेम हित देव द्रव्य पति स्वजन भुलाये॥
संसारी सुख तजे प्रीति प्रभुचरन लगायी।
प्रीति रीति करि प्रकट दीनपै दया दिखायी॥

विनय करहुँ कर जोरिकें, हौं प्रभु-पद अनुरक्त हूँ।
अनुचर सेवक सचिव प्रिय, किंकर अति लघु भक्त हूँ॥

जा अयोग्यके हाथ श्याम सन्देश पठायौ।
ज्ञान मानमहँ भर्‌यो दौरिकें हौं व्रज आयौ॥
कृष्ण भक्ति ही सार दशा तुमरीतैं जानी।
निरखि अलौकिक भक्ति भयो मेरो हिय पानी॥

पढौ प्रेम पाती स्वयं, पठयो जो सन्देश हरि।
गोपी बोलीं—आपही, हमहिं सुनावैं कृपा करि॥

करिकैं शिष्टाचार सखिनिकै आये आगे।
प्यारेको सन्देश पढ़न पुनि उद्धव लागे॥
हौं सर्वात्मा रहौं सकल प्रानिनिके घटमहँ।
सब बस्तुनिमहँ भूत सूत ज्यौं व्याप्यो पटमहँ॥

स्वप्न सरिस जगके विषय, मिटै मोह भ्रम ज्ञानतैं।
रजत सीप अहि रज्जुमहँ, दीखे तम अज्ञानतैं॥

सब साधनको श्रेष्ठ साध्य हौ ही जा जगमहँ।
मैं अरु तुम सब एक भेद नहिँ तुममें हममहँ॥
प्रेम बृद्धिके हेतु भयो हौं तुमतें न्यारो।
ज्यों परोक्षमहँ प्रेष्ठ लगे प्राननितैं प्यारो॥

जितनो पाइ बियोगकूँ, सतत चित्त प्रियमहँ रहै।
उतनो नहिँ संयोग सुख, महँ मन तन्मयता लहै॥

प्रियको सुनि सन्देश भईं सब हरषित नारी।
प्रेम प्रकट अति करैं श्याम सुधि लई हमारी॥
पूछति पुनि पुनि कुशल—कहो उद्धव! हरि सुखतैं।
उन बिनु ब्रजमहँ कटत हमारे दिन सब दुखतैं॥

वृन्दाबनमहँ शरदकी, निशा बिताई रासमहँ।
यादि करत हरि प्रियनि सँग, कबहुँ हास परिहासमहँ॥

कहो कबहुँ घनश्याम आइ ब्रजपै बरसैंगे।
नेह नीरतैं कबहुँ हमारे हिय सरसैंगे॥
कब कोमल अति मृदुल कमल करतें परसैंगे।
आये ब्रज ब्रजनाथ सुनत कब सब हरसैंगे॥
नन्दनँदन अतिशय कठिन, निर्मोही निष्ठुर निपट।
किन्तु करें का फँस्यो मन, प्रेम फन्द अति ही विकट॥

आशामहँ अति दुःख निराशा सुखकी जननी।
जानि बूझिकें बिगरि गई भोरी मति अपनी॥
जिन प्रभु पायो परस सरस कैसे नहिँ भजिहैं।
कृष्ण कथा जिन श्रवन सुनी ते कैसे तजिहैं॥
कमला अति ही चंचला, किन्तु परम प्रिय पाइकें।
होहि न पल भरकूँ पृथक, श्याम सिन्धुमहँ आइकें॥

कालिन्दीको सलिल श्याम सुधि सतत दिवावै।
गिरि गोवर्धन लखत हियो हमरो भरि आवै॥
श्याम ललित गति हँसी सुखद लीला शुभ चितवन।
यादि दिवावैं धेनु, वेनु-रव, गिरि, वन, उपवन॥
करि करि सुमिरन श्यामको, करन लगीं गोपी रुदन।
हाय! नाथ, अशरन शरन, हा! दुख-भंजन नँदनँदन॥

उमड्यो सागर बिरह बह्यो ब्रज सबरो जावै।
तुम बिनु राधारमन कौन अब आइ बचावै॥
हे मनमोहन! रमन! वेनु पुनि मधुर बजाओ।
अधरामृत भरि पेट आइ घनश्याम पिआओ॥
ब्रजवनितनिके बिरहकूँ, लखि ऊधो व्याकुल भये।
कृष्णकथाके लालची, कछु दिन ब्रजमहँ बसि गये॥

नित कालिन्दी कूल कँदमकी छाँह सिधारे ।
हार-लीला थल कुञ्ज, कन्दरा, नदी, निहारे ॥
लखि गोपिनिकी दशा कहैं ऊधौ ह्वै प्रमुदित ।
अहो ! धन्य ब्रज बधू इन्द्र अज हर पद वन्दित ॥

इनहीं को जीवन सफल, डूबे हम अभिमानमहँ ।
बीतत इनको सब समय, हरि सुमिरन गुन गानमहँ ॥

कहाँ अलख अखिलेश कहाँ ये ब्रजकी नारीं ।
करि हरि पद अनुराग भईं सब जगतैं न्यारीं ॥
जुग जुग जोगी करें जोग नहिं हरि पद पावें ।
तिनहिं गँवारिनि गोप बधू नित हिय चिपटावें ॥

जो प्रसाद पायो नहीं, कमला, अज, सुर-सुन्दरीं ।
ताकूँ नित सेवति रहति, ब्रजकी भोरी नागरीं ॥

मोइ मिलै ब्रज वास बनूँ चाहे तृन पाथर ।
ब्रज-वनितनि पद धूरि परै उड़ि उड़ि मम ऊपर ॥
जिनि चरननि अज शंभु योगिजन नित प्रति ध्यावें ।
तिनकूँ ये हिय धारि नारि तनु ताप मिटावें ॥

जिनको जगमहँ भर्‌यो यश, तिनकी का इस्तुति करूँ ।
केवल उनकी चरन रज, महँ पुनि पुनि निज सिर धरूँ ॥

यों उद्धव कछु दिवस रहे ब्रज अति सुख पायौ ।
कहूँ सँदेशो जाइ श्यामतैं सबनि सुनायौ ॥
सुनि उद्धवको गमन नयन सबके भरि आये ।
ऊधो हू चलि दये लौटि वे ई दिन आये ॥

कहि न सकें कछु मलिन मुख, फटत हियो हाहा करहिं ।
सिर धुनि धुनि रोवत फिरहिं, भेंट लाइ रथमहँ धरहिं ॥

राम श्यामकूँ सबनि सँदेशो निज निज दीन्हों।
ऊधो रथपै चढ़े सबनिको आदर कीन्हों।
ब्रजवासी मिलि कहे—हमें अब जिह ही भावै।
कृष्ण-चरन मन रमे नाम रसना नित गावै॥

तन हरि सेवामहँ निरत, सतसंगतिमहँ होइ मति।
जहँ जहँ जनमें करम वश, होहि तहाँ हरिचरन रति॥

सबको सुनि संदेश चलायो उद्धव रथ तब।
व्याकुल ह्वैके गिरे नारि नर भये विकल सब॥
उद्धव रथकूँ लिये फेरि मथुरामहँ आये।
ब्रजवासिनिके वृत्त श्यामकूँ सकल सुनाये॥

कुंकुम कज्जलतें सनी, प्यारीकी चूनरि दई।
लखि रोये राधारमन, हिय लगाइ सिर धरि लई॥

बिलखि कहे यदुनाथ—न ऊधो! ब्रज बिसरत है।
गैयाँ गोपी ग्वाल यादि करि हिय दहलतु है॥
कहँ वे कुञ्जकुटीर कहाँ ये पाथरके घर।
कहँ क्रीड़ा कमनीय कहाँ ये चिन्ता दुस्तर॥

कहाँ रास-रस अति सुखद, माखन मिसिरी खाइबो।
कहाँ चरावन धेनु बन, ग्वाल बाल सँग जाइबो॥

इति श्रीभागवत चरितके पञ्चमाहमें भ्रमरगीत नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त।

अथ-एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः

(३१)

करि करि ब्रजकी यादि श्यामने दुख अति पायो ।
उद्धवने बहुभाँति युक्ति करि धीर बँधायो ॥
कुबजाकूँ जो दयो प्रथम बर सो सुधि आई ।
ताकूँ पूरन करन गये तिहिं भवन-कन्हाई ॥
दासीके घर जगतपति, गये प्रकट प्रन निज कर्‌यो ।
जोहति छिन छिन बाट जो, हृदय ताप ताको हर्‌यो ॥

निरखि प्रानप्रिय भवन तुरत दासी उठि धाई ।
कंकन युत कर कमल पकरि हरि निकट बिठाई ॥
पाइ मृदुल प्रभु चरन कमल मन माहिँ सिहाई ।
सूँघि हिये बिच धारि नारि तन तपन बुझाई ॥
हाय ! पाइ प्रभु विषय-सुख, माँग्यो दासी तुच्छ अति ।
करि कृतार्थ उद्धव सहित, आये घर पुनि जगतपति ॥

इक दिन प्रभु अक्रूर भवन बल सहित पधारे ।
श्वफलक-सुत अति मुदित नयन जल चरन पखारे ॥
चरनोदक सिर धारि करी पूजा सुख पायौ ।
अंक धारि पद कमल पुलक तनु भाग सराह्यौ ॥
सिर नवाय अति बिनययुत, बार बार इस्तुति करी ।
करुणाकर कीन्हीं कृपा, यदुकुलकी विपदा हरी ॥

विनय बचन सुनि श्याम कहे —चाचा ! तुम गुरुवर ।
कुन्ती बूआ दुखी तुरत जावेँ हथिनापुर ॥
नेत्रहीन धृतराष्ट्र खलनि मिलि बशमहँ कीन्हे ।
पितृहीन असहाय पाडुपुत्रनि दुख दीन्हे ॥
कछु दिन बसि सब मरम लै, आवैं तब कछु करिङ्गे ।
समुझि बलाबल बुआको, सुतनि सहित दुख हरिङ्गे ॥

हथिनापुर अक्रूर चले हरि आयसु सिर धरि ।
पहुँचत कुन्ती मिली गहकि नयननिमहँ जल भरि ॥
करि बिपतनिकी यादि बन्धु ढिँग भई दुखारी ।
पुनि पुनि पूछति तात श्याम सुधि लई हमारी ॥
हे यदुनन्दन अखिलपति, शरणागत वत्सल-विभो ।
सहति सुतनि सँग दुख दुसह, आइ उबारो हे प्रभो ॥

विदुर सहित अक्रूर पृथाकूं धीर बँधायौ ।
सुतनि प्रभाव सुनाइ समयको फेर बतायौ ॥
यों बहु विधि समुझाइ चले मथुरा सुफलक-सुत ।
अथ अम्बिका-तनय निकट पहुँचे सनेहयुत ॥
जाइ धरमयुत बचन बर, सब सचिवनि सम्मुख कहे ।
कठिन बचन हितकर समुझि, अंधराजने सब सहे ॥

निरमय ह्वै अक्रूर अधकूँ डाँट बताई ।
पाडु भूमिपति रहे तुम्हारे छोटे भाई ॥
तिनिके पुत्रनि संग करैं तव तनय लड़ाई ।
कौरव पाडव द्वेष बढ़े नहिँ होहि भलाई ॥
परपीड़ा है पापको, आप घड़ा नित नित भरो ।
तुमहु मोहवश सुतनिको, देहु साथ अधरम करो ॥

भये दुखित धृतराष्ट्र कहे—हे दानपते ! सुनि ।
करता कारन काल कृष्णकूँ कहे सकल मुनि ॥
नाचूँ ह्वैके अवश नाच जो श्याम नचावें ।
अधरम अथवा धरम करूँ सब वे करवावें ॥

अंध-ज्ञान अक्रूर सुनि, मथुरा लौटे सब कही ।
हरन भार भू हरि गदा, असुर विनासिनि कर गही ॥

इति श्रीभागतचरितके पञ्चमाहमें कुब्जाप्रसाद कुन्तीसान्त्वना नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।

[पाक्षिक पारायण—ग्यारहवें दिनका विश्राम]

[इति पञ्चमाह]



अथ षष्ठाह

अथ प्रथमोऽध्यायः

[१]

हे यदुकुलके तिलक शूर-सुत-तनय मुरारी।
हे मधुभोजदशार्हशूरकुलके हितकारी॥
हे हरि लोकातीत भगोड़े यवन-सँहारी।
हे माधव रणछोर असुरनाशक कँसारी॥
कहीं करीं लीला ललित, कछु ब्रज मथुरामें यथा।
अब तव चरननि बन्दिके, कहूँ द्वारकाकी कथा॥

निज चरननितैं करे कृतारथ ब्रजके सब थल।
मथुराकूँ चलि दये संग लै संकरषन बल॥
करन द्वारका धन्य विचारैं अन्तरयामी।
मामाकूँ दै मुक्ति करीं विधवा सब मामी॥
ज्यों निमित्त मामीं करीं, जरासन्ध आयौ यथा।
ज्यों भागे रन छोड़िके, सुनहु छटे दिनकी कथा॥

जरासन्धकी सुता अस्ति अरु प्राप्ति सयानी।
परम सुन्दरी सुघर कंसकी दोऊ रानी॥
कंस मरत ससुराल त्यागि पितु घर अपनायौ।
जरासंधतैं सकल कंसको वृत्त बतायौ॥
सुनत कुपित अति खल भयो, भारी सेन सजाइकैं।
आयो यदुकुल नाश हित, अति बलवश गरजाइकैं॥

घेरी मथुरापुरी सकल यादव घबराये।
राम श्यामके दिव्य अस्त्र रथ सुमिरत आये॥
चले साजि रन साज समरकूँ दोऊ भाई।
जरासन्ध बल लडे भयकर भई लड़ाई॥
इत हरि अतिशय छल कर्‌यो, रिपु सेनामहँ आइकें।
मागध बल आधो कर्‌यो, डिम्भक हस मराइकें॥

मनुजचरित हरि करत लड़त बल विपुल दिखावत।
सिंह पकरि जिमि हरिन छोड़ि पुनि खेल खिलावत॥
चतुरगिनि रिपु सैन्य मारि यम-सदन पठाई।
कर्‌यो शत्रु संहार रक्तकी नदी वहाई॥
भयो पराजित मगधपति, रथ टूट्‌यो सेना मरी।
लगे शत्रु वध बल करन, तव तिनितैं बोले हरी॥

छोड़ो भैया! जाइ घेरि लावै असुरनिकूँ।
विनु प्रयास परलोक पठावें सब पापिनिकूँ॥
सुनि बल छोड़्‌यो चल्यो करन तप नृपति निवार्‌यो।
आयो सत्रह बार सैन सजि पुनि पुनि हार्‌यो॥
पुनि तप करि हर-वर लह्यो, द्विजनि विजय आशिष दई।
कालयवन मथुरा तबहिँ, घेरी हरि चिन्ता भई॥

सोचैं माया मनुज-यवन जीत्यो नहिँ जावै।
जरासन्ध हू आज कालिमें पुनि चढ़ि आवै॥
हर वरतैं खल बढ्यो घेरि सब बन्धुनि मारै।
कालयवन सुन-गर्ग यादवनितैं नहिँ हारै॥
तातैं तजि पुर द्वारका, महँ दृढ़ दुर्ग बनाइँगे।
भागि चले रन छोड़िकैं, तो रनछोड़ कहाइँगे॥

बलदाऊतैं पूछि उदधिमहँ पुरी बनाई।
द्वादश योजन दुर्ग नीर निधि ताकी खाई॥
दई सुधर्मा सभा इन्द्रने अति सुखदाई।
करी समर्पित सिद्धि सुरनि जो हरितैं पाई॥

सुर-शिल्पी नगरी रची, शोभा मूर्तिमती जहाँ।
पहुँचाये हरि योग बल, तैं यादव सबई तहाँ॥

सबनि द्वारका भेजि भगे भगवान भगोड़े।
मथुराके घर द्वार सभा सरवर सब छोड़े॥
कमल कुसुम गलमाल निरायुध भागे नटवर।
कालयवन पहिचानि भग्यो पीछे बिनु धनुसर॥

कहै—अरे यादव अधम, कायर सम भागै कहाँ।
चलि पीछो तेरो करूँ, भगिकैं तू जावै जहाँ॥

करत अनसुनी श्याम भगत मुरि पीछे निरखत।
पग पगपै जनु गहे यवन छिन छिनमहँ समुभत॥
घुसे गुफामहँ श्याम निहार्यो तहँ नर सोवत।
निज पट ताहि उढ़ाइ दुबकि रिपुको पथ जोहत॥

कालयवन रिसमहँ भर्यो, पदप्रहार तिहिपै कर्यो।
तिहि उठि निरख्यो यवन जब, दृष्टि परत ही सो मर्यो॥

वे नरवर मुचुकुन्द धेनु द्विज सुर हितकारी।
असुरनि सतयुग प्रथम माँहि सुर सेन सँहारी॥
गये लडन भूपाल गये जब देव शरनमहँ।
मारि भगाये असुर भये विजयी सुर रनमहँ॥

देवनि वर माँगन कह्यो, माँगी निद्रा भूप-वर।
करै विघन मम नींदमहँ, सो तत्छिन मरि जाय नर॥

एवमस्तु कहि सुरनि समरथन नृपको कीन्हों।
अमित भूपकूँ गाढ नींदको मिलि बर दीन्हों॥
सोये तबतैं गुफामाँहि बहु बरष बिताये।
कालयवनको अन्त करावन हरि तहँ आये॥
भस्म यवन जब ह्वै गयो, तब दरशन नटवर दयो।
लखि अति सुन्दर सुघर नर, भूपति अति बिस्मित भयो॥

पूछत बिनयावनत नृपति डरपत अति बोलत।
प्रभु! अति कोमल चरन कठिन महिपै क्यों डोलत॥
हो त्रिदेवमहँ एक अपर सुर अथवा स्वामी।
अथवा अज अखिलेश अमरपति अन्तरयामी॥
हौ मान्धाता नृपतनय, मोइ कहे मुचुकुन्द सब।
सुर बर लहि सोवत रह्यो, देवें परिचय आप अब॥

कहे बिहँसि बल-बन्धु—नाम निज कहा बताऊँ।
जनम करम गुन अखिल कहाँ तक तुम्हें गिनाऊँ॥
सुनि बिनय जब करी जनम महिपै तब लीयो।
कंसादिक जे असुर नाश तिनि सबको कीयो॥
वासुदेव मोकूँ कहें, कृपा करन आयो यहाँ।
जहाँ रहैं मम भक्तगन, दौरि तुरत पहुँचूँ तहाँ॥

सुमिरि गरगके बचन यादि मुचुकुन्दहिँ आई।
लपटे चरननि दौरि बिनय धरि धीर-सुनाई॥
हे माया पति! ईश! मोह बश तुमहिं न जाने।
भरि मदमहँ अखिलेश नृपति अपनेकूँ माने॥
का इनकूँ माँगूँ प्रभो,! छिन भंगुर ये बिषय सुख।
तव चरननिमहँ होहि मति, है यह जगमहँ परम सुख॥

मुचुकुन्द-स्तुति

हे ईश ! तुम्हारी मायामें, मैं मोहित ह्वैके भटक रह्यो।
सुखकी आशातें या जगमे, स्वामिन् ! मैंने अति दुःख सह्यो ॥
पायो नर तनुहू अति दुरलभ, पर विषय-भोगमें नष्ट कर्यो।
नहिँ नाम जप्यो तव कथा सुनी, नहिँ नटवर ! तुमरो ध्यान धर्यो ॥
मैं मानी हूँ सम्मानी हूँ, हूँ धनी यशस्वी गुणखानी।
योगी साधक हूँ तेजस्वी, हूँ बड़भागी ज्ञानी ध्यानी ॥
अभिमान बढ़्यो विश्वास घट्यो, विकराल काल सम्मुख आयौ।
संकल्प सकल मनके मनमे, अहि मूषकवत् तानें खायौ ॥
सत्संग मिलै तब मान मिटै, तब चरननिमें चित लगि जावै।
मिट जाय मरन अरु जनम चक्र, भवबन्धनको भय भगि जावै ॥
पीड़ित हूँ अति ही दुःखित हूँ, है चिन्ता इन छै शत्रुनिकी।
धन वैभवकी वांछा न प्रभो ! चाहूँ सेवा पदपद्मनिकी ॥
सब छोड़ि छाड़ि जगकी आशा, आयो आश्रय अच्युत दीजै।
भय शोक मृत्युतें रहित चरन, तव गही शरन रक्षा कीजै ॥

सोरठा—सुनि इस्तुति घनश्याम, सदय भूपपै ह्वै गये।
प्रभुजी पूरन काम, दई भक्ति मुचुकुन्दकूँ ॥

छप्पय—दयो भक्ति वरदान गुहातैं निकसे यदुवर।
देखे नृप मुचुकुन्द कलियुगी लघु पशु, तरु, नर ॥
बदरीवन तप करन गये तहँ मुनि व्रत साधें।
संयम श्रद्धा सहित श्यामकूँ नित आराधें ॥
इत मथुरा आये मदन—मोहन सेना यवनकी।
लूटि पाटि बाँधी तुरत, पुटरीं सब धन रतनकी ॥

खच्चर बैलनि लादि द्वारका धन पहुँचावत।
तब ई निरख्यो जरासन्ध सेना सँग आवत॥
राम श्याम लखि सेन बाँधिके मुट्ठी भागे।
जरासन्धके सकल वीरवर पीछे लागे॥

भगत भगत दोऊ थके, चढ़े प्रवर्षणपै उछरि।
घेर्यो गिरि चहुँ ओरतैं, जावैं नहिं अब ये उतरि॥

पर्वत लीयो घेरि आगि चहुँ ओर लगाई।
जरिजावें मम शत्रु जरासँध मनहिँ सिहाई॥
कूदे दोऊ बन्धु न भय कछु मनमहँ मान्यो।
कब गिरितैं गिरि गये न काहूने कछु जान्यो॥

जरासन्ध निजपुर गयो, शत्रु मरे हिय मानिकैं।
इत सुखतैं यदुवर रहे, पुरी द्वारका आनिकैं॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें जरासन्धाक्रमण कालयवनोद्धार द्वारावती निर्माण नामक प्रथम अध्याय समाप्त।



अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

पूछें शौनक—मुन ! द्वारका वृत्त बताओ।
कै हरि किये विवाह भये कै पुत्र सुनाओ॥
हँसिकें बोले सूत—कहाँ तक ब्याह गिनाऊँ।
मुख्य भये जो आठ प्रथमकूँ प्रथम सुनाऊँ॥

नृप विदर्भपति भीष्मके, पाँच पुत्र रुक्मी बडो।
बहिन रुक्मिनी अंश श्री, जाके हित हरितैं लड्यो॥

नारदादि मुनि आइ कृष्णकी करी बड़ाई।
सुनत रुक्मिनी हृदयमाँहिँ हरि मूर्ति समाई॥
इत हरि निश्चय कर्यो रुक्मिनीकूँ अपनाऊँ।
करिकें विविध उपाय प्रियाकूँ घर लै आऊँ॥

मातु पिता सहमत सबहिं, हरि बरतैं जग होहि यश।
रुक्मीने शिशुपाल सँग, करी सगाई द्वेष वश॥

सुनत रुक्मिनी भई दुखित अतिशय घबराई।
बुलवाये वर विप्र वृद्ध निज विपति सुनाई॥
प्रेम पत्रिका लिखी विप्रके करमहँ दीन्हीं।
परि चरननिमें विनय विप्रतैं बहु विधि कीन्हीं॥

चले द्वारका द्विज तुरत, प्रभु पथको सब श्रम हर्यो।
निरखि विप्रकूँ मुदित मन, है हरिने स्वागत कर्यो॥

करि पूजा पकवान प्रेमतैं बिबिध खवाये।
पुनि शैया अति सुखद बिछाई बिप्र सुवाये॥
लगे पलोटन चरन कुशल पूछत प्रभु पुनि पुनि।
बैदर्भीकी कथा भये प्रमुदित यदुबर सुनि॥
पीरी पाती निरखिकें, अति प्रसन्न मनमहँ भये।
बृद्ध बिप्र बाँचन लगे, प्रेम मगन हरि ह्वै गये॥

लिखै रुक्मिनी—दयित! भयो मम मन मतवारो।
सुनि गुन अनुपम रूप लिख्या हिय चित्र तिहारो॥
हे हरि! अशरन शरन आइ दासी अपनाओ।
खल शृगाल शिशुपाल हरे नरसिंह छुड़ाओ॥
यदि आवें नहिं आप तो, बिष खाऊँ मरि जाउँगी।
तुम बिनु चाहे मदन हू, आवे नहिं अपनाउँगी॥

कमलनयन! सजि सेन तुरत कुंडिनपुर आओ।
रिपुसिरपै धरि चरन मोहिं माधव! ले जाओ॥
जाउँ ब्याहके प्रथम दिवस देवी पूजन हित।
लैकें भागें मोहि नहीं क्षत्रियकूँ अनुचित॥
दीनबन्धु दुखहरन यदि, दया न दासीपै करहिं।
तो तब तक जनमूँ मरूँ, जब तक नहिं यदुबर बरहिं॥

सुन्यो प्रियाको पत्र नयन हरिके भरि आये।
प्रेम बिबश ह्वै गये बिप्रकूँ बचन सुनाये॥
द्विजवर! मोकूँ प्रिया रुक्मिनी अतिशय भावै।
करि करि वाकी यादि रैनिमहँ नींद न आवै॥
चलो, चलें कुंडिनपुरी, अब द्वै दिन ही रहि गये।
सजि रथ द्विजकूँ सगलै, बहू हरन हरि चलि दये॥

हरि कुंडिनपुर पहुँचि रहे पुरकी अमराई।
इत अति विषद बरात चेदि राजाकी आई॥
जनमासो नृप दयो बराती अति हरषाये।
उत बल सुनि हरि गमन सेन सजि तिनि ढिँग आये॥
सकुचाये हरि बल हँसे, कछु, मीठी चुटकी लई।
कहन वृत्त निज विप्रकूँ, हरि चुपके आयसु दई॥

हरि आयसु सिर धारि गये द्विज अन्तःपुरमहँ।
द्विज मुख विकसित निरखि भयो सुख कन्या उरमहँ॥
कह्यो सकल संवाद कुमारी सुनि हरषाई।
द्विजकी रिनिया बनी अश्रु माला पहिनाई॥
सुन्यो आगमन कृष्ण बल, को नृप सुनि विस्मित भये।
अतिथि समुझि भीष्मक नृपति, सादर निज गृह लै गये॥

करि हरि बल आतिथ्य सकल सैनिक ठहराये।
आये पुर यदुचन्द्र सुनत नारी नर धाये॥
हरिको अनुपम रूप लखें पुनि पुनि न अघावें।
कन्याके वर योग्य श्यामकूँ सबहिं बतावें॥
मची धूम हरिरूपकी, हाट बाट कूचे गली।
तबहिं रुक्मिनी सखिनि सँग, गौरी पूजन हित चली॥

पैदल मुनि व्रत धारि चलति शकित सकुचावति।
नूपुर कंकन कड़े छड़े चूड़ी झनकावति॥
घरतैं मन्दिर तलक बाढ़ सम सैनिक लागे।
शूरवीर लै शस्त्र चलें कछु पीछे आगे॥
गौरी मन्दिर पहुँचिके, प्रेम सहित पूजन कर्यो।
धूप दीप उपहार सब, देवीके सम्मुख धर्यो॥

करि पूजा परसाद धारि सिर बिनती कीन्हीं।
होवें पति मम कृष्ण सुआशिष देवी दीन्हीं॥
गौरी गृहतैं निकसि निहारैं हरिकूँ इत उत।
शोभा बरनि न जाय मनहुँ सुन्दरता बिहरत॥
रूप शील, वय, विनय, लखि, सचर अचर सम सब भये।
कामी नृप बाहन चढ़े, सुन्दरता लखि गिरि गये॥

गरुड़ध्वज रथ निरखि बढ़ी उतहीकूँ बाला।
आवत देखे कुँवरि हाँकि रथ लाये लाला॥
कीयो ऊँचो हाथ पकरिकें रथ बैठाई।
पायो पतिको परस फुरहुरी अँग अँग आई॥
आवै निर्भय भाग लै, सिंह सृगालनि मध्य ज्यों।
देखत देखत नृपतिके, भगे भाग लै श्याम त्यों॥

तब अति हल्ला मच्यो नृपति सब लड़िवे आये।
यादव बीरनि सबहि भूप खल मारि भगाये॥
जनमासेमहँ आइ सबनि शिशुपाल मनायो।
करि कारो मुख भागि रैंनिमहँ निज घर आयो॥
इत रुक्मी है क्रुद्ध अति, करी प्रतिज्ञा हौ लरूँ।
हरि बध करि बिनु बहिन लै, नगरीमहँ नहिं पग धरूँ॥

व्यर्थ प्रतिज्ञा करी चल्यो सेना सजि मानी।
ललकारे घनश्याम बीरता बड़ी बखानी॥
भये खड़े भगवान बान तकि तकिकें मारे।
कुडिनपुरके बीर भगे बोले—हम हारे॥
रुक्मी ह्वैकें बिरथ लै, कर करवाल चल्यो लड़न।
तबहीं रथतैं उतरि हरि, लगे खड्ग लै बध करन॥

निरखि बन्धुवध परी रुक्मिनी हरिचरननिमें।
डरपि कहे मम बन्धु बधें नहिं नाथ! शरनमें॥
मानि प्रियाके बचन न रुक्मी फिरि हरि मार्‌यो।
करि कुरूप कच कतरि बाँधि रथ पीछें डार्‌यो॥
आइ छुड़ायो रामने, डाँटे हरि अनुचित कह्यो।
गयो न पुर पुनि भोजकट, पुर बसाइ रुक्मी रह्यो॥

भीष्मक दुहिता जीति द्वारकामहँ हरि आये।
बहू आगमन सुनत नगरमहँ बजत बधाये॥
लोग लुगाइनि पुरी और नव बधू सजाई।
कीयो विधिवत् ब्याह रुक्मिनी सँग यदुराई॥
पाग दुपट्टा सिरोपा, पहिन पहिन यादव सजें।
नारी गावें गीत मिलि, मधुर मधुर बाजे बजें॥

सुन्दर मडप सज्यो बधू अरु बर बैठाये।
गणपति ग्रह अरु मातृकादि पूजन करवाये॥
भाँमर फिर कर गह्यो खीलको हवन करायो।
नेग जोग सब करे माँग सिन्दूर भरायो॥
करिकें पलँगाचार पुनि, कर्म चतुर्थी हू कियो।
यों श्रीरुक्मिनि सगमहँ, ब्याह श्यामको ह्वै गयो॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें रुक्मिणी विवाह नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।



अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

सुखी भये सब स्वजन निरखि अति अनुपम जोरी ।
मातु मनावें होहिं कृष्णके छोरा छोरी ॥
जनैं पुत्र नित भिन्न कहे सुनि सकुचे बाला ।
कृपा कपर्दी करी जन्यो बैदर्भी लाला ॥
कामदेव जो प्रथम ही, शम्भुकोपतें जरि गयो ।
सोई बनि प्रद्युम्न पुनि, प्रथम पुत्र हरिको भयो ॥

शम्बर तिहि रिपु समुझि सूतिकाघरमहँ आयो ।
शिशुकूँ करिकैं कपट धाइ बनि घरतैं लायो ॥
फेंक्यो सागर बत्स मत्स्यने निगल्यो जीवित ।
मछुआ ताहि फँसाइ लै गये शबरके हित ॥
निवसति रति शम्बर महल, मत्स्य उदरमहँ मिल्यो पति ।
नारद मुनि परिचय दयो, पालति पति ह्वै मुदित अति ॥

प्रथम कृष्णको ब्याह पुत्र उतपत्ति सुनाई ।
मणि स्यमन्तकी कथा सुनो अब अति सुखदाई ॥
सतभामा अरु जाम्बवती जिह कारन पाई ।
हरिनें लीला लोभ मोहकी दुखद दिखाई ॥
सत्राजित यादव परम, सूर्य भक्त लोभी सरल ।
ह्वै प्रसन्न ताकूँ दई, सूर्य स्यमंतक मणि अमल ॥

सत्राजित मणि पहिन द्वारकामहँ जब आयौ।
समुझि सूर्य्य नर भगे कृष्ण सब भेद बतायौ॥
आठ भार नित कनक देहि दुख शोक नशावै।
हरि सोचें मणि दिव्य राज - महलनिमें आवै॥

माँगी हरि परि नहिं दई, सत्राजित लोभी परम।
लोभ मोहमहँ फँसि पुरुष, खोवै सब गुण निज धरम॥

सत्राजित लघु बन्धु प्रान सम प्रिय प्रसेन वर।
धारि कंठ मणि चल्यो करन मृगया लै धनु सर॥
वनमहँ पहुँच्यो आइ सिंहने हय सँग मार्‌यो।
लै मणि भाग्यो सिंह रीछने ताहि पछार्‌यो॥

जाम्बवान मणि ग्रहन करि, घुस्यो गुफामहँ मुदित मन।
जब प्रसेन आयो नहीं, सत्राजित लाग्यो कहन॥

हरि माँगी मणि नहीं दई माई मम मार्‌यो।
घर घर फैली बात श्याम मनमाँहिं बिचार्‌यो॥
मिथ्या लग्यो कलङ्क करूँ हौ मार्जन अबहीं।
सग लिये बहु लोग चले मणि खोजन तबहीं॥

हय प्रसेन निरख्यो मृतक, पुनि खोजत आगे गये।
मर्‌यो मिंह लखि पुनि गुहा, देखि रीछकी घुसि गये॥

अट्ठाइस दिन लड़्यो रीछ परि हरि नहिं हारे।
निज स्वामी रघुनाथ समुझि पुनि पैर पखारे॥
कन्या दई विवाहि जाम्बवति लै हरि निकसे।
बारह दिन लखि बाट श्यामके साथी खिसके॥

दुखित द्वारकामहँ सकल, मिलि दुर्गा पूजन करहिं।
जोहत प्रभुकी बाट नित, सत्राजितकूँ सब शपहिं॥

जाम्बवती सग श्याम निरखि सब लोग सिहाये।
पुरवासी यों मुदित मृतक ज्यों घर फिरि आये॥
मणिको सुनि सब वृत्त भयो दुःखित सत्राजित।
हरि मणि सादर दई लई ताने ह्वै लज्जित॥

सोचत सत्राजित सतत, यह अपयश कैसे सहूँ।
होहि तोष यदि मणि सहित, सतभामा हरिकूँ दऊँ॥

शतधन्वा सँग करी सगाई सतभामाकी।
तऊ कृष्णकूँ दई न चिन्ता कीन्ही ताकी॥
तीन ब्याह करि गये बन्धु देखन हथिनापुर।
कुन्ती पाडव जरे सुनत पहुँचे तहँ सत्वर॥

जानत सब घनश्याम परि, लोक दिखावो करत हैं।
नर क्रीडा करि सबनिके, चचल चितकूँ हरत हैं॥

हथिनापुर बल संग पहुँचि दुख बहुत मनायौ।
भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर सबनि प्रति नेह जनायौ॥
गान्धारी धृतराष्ट्र नयनतैं नीर बहावैं।
बासुदेव ढिँग बैठि तिनहिँ प्रिय कहि समुझावैं॥

पूछत सबतैं अज्ञवत्, कैसे पाडव जरि गये।
लोकोचित व्यवहार हित, वहाँ कछुक दिन रहि गये॥

शतधन्वा इतं दुखित श्यामकी करत बुराई।
कृष्ण। बड़े उद्दण्ड सबनिकी हरत लुगाई॥
कृतबर्मा अक्रूर कहे अपमान हमारो।
है शत्राजित दुष्ट अधमकूँ सोवत मारो॥

सुनि शतधन्वा चालि दयो, ह्वैके दोउनितैं बिदा।
बजै पराई फूकतैं, शंख और मूरख सदा॥

नहीं द्वारका श्याम सोचि खल घरमहँ आयौ ।
सत्राजित सुख सहित सदनमहँ सोवत पायौ ॥
सिर धड़तैं करि पृथक भग्यो मणि लैकें पापी ।
सतभामा अति दुखित चित्त चिन्ता बहु व्यापी ॥
मृतक देह धरि तैलमहँ, रथ चढ़ि हथिनापुर गई ।
सकल बात अति दुखित है, रोइ रोइ हरितैं कहीं ॥

ऊपरतैं करि शोक द्वारका यदुवर आये ।
शतधन्वा अति डर्यो तुरत अक्रूर बुलाये ॥
हरितैं रक्षा करो दीन है बोल्यो उनतैं ।
सुनि बोले अक्रूर बैरको साधे तिनतै ॥
खल बोल्यो घबराइकें, अच्छा, मणिकूँ तो धरो ।
हौ भागूँ पुर छोड़ि तुम, सुखतैं मत्रीपन करो ॥

यों कहि चुपके भग्यो वणिक लोभी खल कामी ।
हय ताको अति वेगवान् शतयोजनगामी ॥
हरि बल सँग रथ चढ़े दुष्टको पीछो कीन्हों ।
भगि मिथिला तक गयो चक्रतैं बध करि दीन्हों ॥
मिली न मणि बल ढिँग गये, कपट समुझि बल रिस भये ।
जाइ बसे मिथिलापुरी, श्याम द्वारकाकूँ गये ॥

आइ ससुरको श्राद्ध कर्यो बहु विप्र जिमाये ।
मणि खल कहँ धरि गयो कछुक हरि घर खुजवाये ॥
कृतवर्मा अक्रूर द्वारकातैं सुन भागे ।
काशीमहँ अक्रूर नित्य मख करिवे लागे ॥
देहि कनकको दान बहु, कहे दानपति सकल मुनि ।
बुलवाये घनश्याम जब, गये द्वारका तुरत पुनि ॥

हरि कीयो सत्कार प्रेमतैं पास बिठाये।
कुशल प्रश्न करि सकल द्वारका वृत्त बताये॥
मन्द मन्द मुसकाय पकरि कर करतैं लीन्हों।
अति ही नेह जताय अपनपो प्रकटित कीन्हों॥

बोले—चाचाजी! बड़े, वैभवशाली मख करें।
तुमही पै मणि स्यमंतक, आपसमहँ हम सब लरें॥

बन्धु करें सन्देह लड़ें सब रानी घरमहँ।
तुम मणि देहु दिखाय रहे तुमरे ही करमहँ॥
हरि आयसु अक्रूर मानि मणि सबहिं दिखाई॥
सबकी शंका मिटी शान्त सब भई लडाई॥

मणि दीन्हीं अक्रूरकूँ, सोनौं सब घर घर बटत।
सुखतै सब यादव रहत, कृष्ण कृष्ण सबई रटत॥

हेर्यो चन्दा चौथ भाद्रपदको श्रीयदुवर।
तातैं लग्यो कलङ्क सह्यो सब अपयश श्रीवर॥
जो स्यमन्त आख्यान प्रेमतैं सुनें सुनावें।
चौथचन्द्रको दोष मिटै सब शोक नसावें॥

अपयश अपकीरति बड़ी, दुखदायी अति कष्टप्रद।
मिलै शान्त जा कथातैं, अन्त पाहिँ नर परमपद॥

इत श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें प्रद्युम्नजन्म स्यमन्तकोपाख्यान नामक तीसरा अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण-तेईसवें दिनका विश्राम]

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(४)

कालिन्दी संग व्याह कर्यो जैसे श्रीनटवर।
सुनो, ताहि अब कहूँ व्याह चौथो अति सुखकर॥
इन्द्रप्रस्थ हरि गये भये सब पाँडव राजा।
यदुनन्दनकूँ निरखि भयो सब सुखी समाजा॥

इक दिन यमुना तट गये, मृगया हित कन्या जहाँ।
रवितनया हरि वरन हित, करति घोर अति तप तहाँ॥

कृष्णचन्द्र सर्वज्ञ जानि ताकी अभिलाषा।
अर्जुनतैं बुलवाय पूर्ण कीन्हीं तिहि आशा॥
रथमहँ संग विठाय युधिष्ठिरके ढिंग आये।
कालिन्दी रविसुता निरखि सब जन हरषाये॥

आइ द्वारकामहँ वरी, भये व्याह यों चार अब।
छुटे पाँचवें व्याहको, मुनि वरणों! वृत्तान्त सब॥

देश अवन्ति प्रसिद्ध भूप जयसेन वहाँके।
परम रम्य वन, नगर, शैल, सर, दुर्ग तहाँके॥
हरि फूआको व्याह भयो जयसेन नृपतितैं।
विन्द और अनुविन्द भये द्वै खल सुत तिनितैं॥

सुता मित्रविन्दा हती, सो हरिमनपै चढ़ि गई।
किन्तु सुयोधन मानि सिख, भाइनि नाहीं करि दई॥

गये स्वयम्बरमाँहि डर्यो सुनिकैं दुरजोधन।
कन्या लै हरि भगे लखैं विस्मित ह्वै नृप जन॥
विधिवत कर्यो विवाह भई वो पंचम रानी।
ज्यों भद्रा सँग ब्याह भयो सो कहूँ कहानी॥

भद्रा फूआकी सुता, केकय नृप-तनया सुघर।
भाइनि दीन्हीं मुदित मन, स्वीकारी तब गदाधर॥

भयो सातवों ब्याह श्यामको सत्या संगमहँ।
कोशलेशकी सुता सुन्दरी सुविदित जगमहँ॥
नृप प्रन कीयो सात बैल जो नाथे भूपति।
ताकूँ कन्या देहुँ सुनत तहँ पहुँचे श्रीपति॥

प्रन सुनि उतरे फेंट कसि, सात रूप हरि धरि लये।
हँसत हँसत नाथे वृषभ, निरखि मुदित सब जन भये॥

ह्वै प्रसन्न नृप कर्यो ब्याह सत्याको हरि सँग।
पति परमेश्वर पाइ समाई नहिं फूली अँग॥
दीयो बहुत दहेज द्वारका चले भुवनपति।
पथमहँ नृप बहु मिले, करी जिन वृषभनि दुरगति॥

भेड़निकूँ ज्यों भेड़िया, छिनमहँ देइ भगाइ के।
नृपति भगाये पार्थ त्यों, दिव्य बान बरसाइकैं॥

आये सत्या सग द्वारका यदुनन्दन पुनि।
मद्र देशमहँ गये लक्ष्मणा नृप कन्या सुनि॥
भयो स्वयम्बर भूप देश देशनिके आये।
अनुपम कन्या निरखि नृपति गन सब ललचाये॥

रंगभूमि आई लली, जयमाला कर धारि जब।
रथमहँ पकरि बिठाइ हरि, भगे निहारे भूप सब॥

मद्राधिप नृप बृहत्सेन पुनि धन लै धाये।
कर्यो लक्ष्मणा व्याह श्याम सँग मन हरषाये॥
यों पटरानी आठ व्याहको वृत्त कह्यो सब।
जैसे सोलह सहस वरीं सो कथा कहूँ अब॥

भौमासुर नृप अति प्रबल, डरपे सुर नर दैत्य सब।
स्वर्ग, भूमि पातालमहँ, करत फिरत उत्पात नब॥

वरुनदेवकूँ जीति छत्र अरु चँवर उडाये।
स्वर्गलोकमहँ गयो अदिति कुडल अपनाये॥
मेरु शिखरतैं मणि पर्वत अपने घर लायौ।
जहँ जहँ निरखे रत्न छीनिके खल लै आयौ॥

सुर सुरपति अति है दुखित, द्वार दयानिधिके गये।
कहे सकल खलके चरित, सुनत श्याम सकुचित भये॥

बोले सब सुनि श्याम—बात सुरपति सब जानी।
भौमासुर है गयो दुष्ट अतिशय अभिमानी॥
अदिति मातुढिँग जाइ सुखद सन्देश सुनावें।
लैकें कुंडल शीघ्र स्वर्गमहँ हमहूँ आवें॥

पाइ वचन घनश्यामतैं, सुरपति निजपुर चलि दये।
सतभामा सँग गरुड चढि, नरकासुर-पुर हरि गये॥

गिरि, शर, जल, अरु अनिल, अनल परकोटापुरके।
दश सहस्र अति घोर पाश घेरें फिरि मुरके॥
श्याम गदा, शर, चक्र सुदर्शनतैं काटे सब।
पुरपालक मुर असुर देखि लड़िवे आयो तब॥

भये मुरारी मारिं मुर—हरि सिर काटैं चक्रतैं।
शोभित धड़ पर्वत सरिस, कटे शिखर जनु शक्रतैं॥

सुनिके मुरको मरन असुर गन अति घबड़ाये।
ताम्र आदि सुत सात पीठ सँग नरक पठाये॥
ते जब सब मरि गये स्वयं भौमासुर आयो।
लड़्यो प्रान पन सहित श्याम बल पार न पायो॥
चक्र सुदर्शनतैं नरक—को सिर काट्यो श्रीहरी।
सुनत मरन सुत आइ भू, भेंट लाइ इस्तुति करी॥

भू-विनय

पद

अखिलपति ! अबला अति अकुलावै।
शङ्खचक्रधारी वनमाली, चरन कमल सिर नावै॥१॥ अखिलपति०

कमलनयन कमलानन कारक, नाभि कमल उपजावै।
कमलमाल पद कमल सरिस प्रभु, वेद विदित गुन गावै॥२॥ अखिल०

त्रिगुन त्रिदेव त्रिवेद त्रिलोकी त्रिभुवन सृष्टि रचावै।
सबतें अलग व्याप्त सबहीमें, पार न कोई पावै॥३॥ अखिल०

पुरुष प्रधान, काल, मन, इन्द्रिय तुम बिनु कछु न लखावै।
जगत चराचर भ्रमवश तुममें दीखै नहीं नशावै॥४॥ अखिल०

शरणागतके सब भ्रम भागें, माया नहिं भरमावै।
यह भगदत्त शरण तुमरीमे, परि पग बिनय सुनावै॥५॥ अखिल०

दोहा—सुनि बिनती यदुवर तबहिं, धरनीकूँ दै धीर।
कृपा करी भगदत्तपै, बोले गिरा गँभीर॥

सोरठा—अवनि ! त्यागि भय, शोक, होहि पौत्र तव भूपवर।
नरक जाय सुरलोक, होहि अभय भगदत्त अब॥

छप्पय—अभय दान हरि दयो नरक सुत नृपति बनायो।
अवनि पुत्र भगदत्त प्रभुहिं निज पुर लै आयो॥
निरखीं सोरह सहस्र बन्दिनी कन्या पुरमहँ।
होवें पति घनश्याम भई,इच्छा तिनि उरमहँ॥
जानि सत्य संकल्प हरि, पठइ द्वारका सब दईं।
मनवाँछित ते पाइ वर, अधिक मुदित मनमहँ भईं॥

दैवे कुंडल अदिति स्वर्गमहँ गये मुरारी।
पाइ श्यामको दरश मातु मन भई सुखारी॥
सतभामाकूँ पूजि शचीने आदर कीन्हों।
किन्तु मानवी मानि देवद्रुम सुमन न दीन्हों॥
समुझि घोर अपमान निज, लै हरि सँग उपवन गईं।
कल्पवृक्ष लखि लैन हित, प्रेम सहित तहँ अड़ि गईं॥

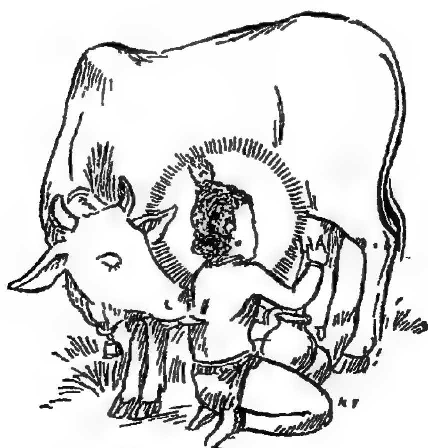
वृक्ष उखार्‌यो श्याम गरुडकी पीठि धर्‌यो जब।
रक्षक रोवत गये इन्द्रतें वृत्त कह्यो सब॥
शची उभारे इन्द्रसेन सजि लड़िबे आये।
रवि,शशि,यम,अरु, वरुण देव हरि सकल हराये॥
अस्त्र हीन सुरपति भये, भगे भूमि-रन छोरिकें।
सतभामा कटु वचन बहु, कहे हँसी मुँह मोरिकें॥

अब सब समुझे शक्र संकुच तजि बोले बानी।
हैं अच्युत अखिलेश आप हौ अति अभिमानी॥
माया तुमरी प्रबल भूलिकें उरझ्यो स्वामी।
क्षमा करें अपराध अखिलपति अन्तरयामी॥
सुनत इन्द्रके वचन मृदु, भये सदय करुणायतन।
पुर आये सुरद्रुम लिये, थाप्यो सतभामा सदन॥

पुनि जो सोलह सहस एक सत कन्या आईं ।
बनवाये बहु भवन सकल सुखतैं ठहराईं ।।
विधिवत् कर्यो विवाह रूप उतने धरि लीन्हे ।
सबकूँ भूषन बसन दास दासी बहु दीन्हें ।
भवन भवनमहँ भुवनपति, पृथक पृथक निज तनु धरे ।
सुखद सास सुन्दर सतत, क्रीड़ा सबके सँग करें ।।

पूछें शौनक—सूत ! ब्याह हरि बहुत बताये ।
किन्तु पुत्र कै भये आपुने नाहिं गिनाये ।।
हँसिकैं बोले सूत—कहाँ तक पूत गिनाऊँ ।
मुख्य मुख्य जे भये तिनहिँ के नाम बताऊँ ।।
शौनक बोले—प्रथम तुम, श्रीप्रद्युम्न कहो कथा ।
शम्बरपुर मायावती, रतिने पाले वे यथा ।।

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें श्रीकृष्ण अन्य विवाह नामक चौथा अध्याय समाप्त ।



अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

कहे सून—सब सुद दयो शिशु रतिकूँ मनहर।
निज पतिकूँ पहिचान करे पालन छिपि भीतर॥
भये युवक पति सरिस भाव लखिवे घबराये।
रतिने तब सब पूर्वजन्मके वृत्त बताये॥
रति माया प्रद्युम्नकूँ, दीन्हीं वे निर्भय भये।
इक दिन शम्बरतैं स्वयं, विना बात ही भिडि गये॥

कहा सुनी कछु भई युद्धकी नौबत आयी।
ह्वैकैं दोनों कुपित परस्पर गदा चलायी॥
पुनि मायातैं लड़े असुर नभ गयो उड़ाई।
माया कीन्हीं बहुत श्याम सुतकूँ सुधि आई॥
सत्वमयी माया महा, छोड़ी शम्बर मरि गयो।
असुर सकल दुःखित भये, सुरगन हिय अति सुख भयो॥

मायावति लै संग चले प्रद्युम्न मुदित मन।
शोभित नभमहँ मनहुँ दामिनी दमकति सहघन॥
पहुँचि द्वारका गये भवन रानी सकुचायीं।
कृष्ण सरिस नर निरखि कामवश भईं लजायीं॥
तब आये घनश्याम तहँ, नारदतैं सब जानिके।
भईं सुखी अति रुक्मिनी, निज सुतकूँ पहिचानिके॥

पहिचाने वसुदेव देवकी बल हरि सबने ।
बन्दन सबको कर्यो बधू सँग हरिनन्दनने ।।
छातीतै चिपटाइ नेह सबने दरसायो ।
मृतक सरिस सुत पाइ हियो सबको हुलसायो ।।

वैदर्भीके प्रथम सुत, श्रीप्रद्युम्न कथा कही ।
अब आठनिके सुतनिकी, सुनहु कथा जो बचि रही ।।

वैदर्भीके पुत्र भये प्रद्युम्न-आदि दश ।
सतभामाने भानु आदि जनि पायो जग यश ।।
जाम्बवतीने शाम्ब सुमित्रादिक सुत जाये ।
नाग्नजितीके बीर चन्द्र वसु आदि सुहाये ।।

श्रीकालिन्दीके भये, श्रुत कवि आदिक तनय दश ।
जनि प्रघोष आदिक तनय, लह्यो लक्ष्मणाने सुयश ।।

वृक, हर्षादिक लाल मित्रविन्दाने पाये ।
भद्राने संग्रामजीत दश बेटा जाये ।।
कहूँ कहाँ तक नाम सबनि सुत दश दश मानो ।
एक लाख इकसठ हजार अस्सी सुत जानो ।।

भये पुत्र प्रद्युम्नके, श्रीअनिरुद्ध महारथी ।
रुक्मी जिनके ब्याहमहँ, मरे द्यूतके स्वारथी ।।

शौनक पूछे—सूत ! हने रुक्मी क्यों बलने ।
सूत कहे—मुनि ! रच्यो खेल यह काल प्रबलने ।।
करन ब्याह अनिरुद्ध भोजकट आये यादव ।
रुक्मी पौत्री संग ब्याह सम्पन्न भयो जब ।।

भयो द्यूतको खेल तहँ, बल रुक्मी दलपति भये ।
रूँगट रुक्मीने करी, कुपित देवबल ह्वै गये ।।

लाल लाल करि आँखि सर्प सम बल फुफकारे ।
रुक्मी सिरमहँ परिघ जमायो प्राण निकारे ॥
पुनि कलिङ्ग नृप पकरि तुरत बत्तीसी झारी ।
जो खल भूपति हँसे सबनिकी दशा बिगारी ॥

भलो बुरो नहिँ हरि कह्यो, शील बन्धु तियको कर्‌यो ।
यदुपति सोचत जात मग, भलो भयो सारो मर्‌यो ॥

यों अनिरुद्ध विवाह भयो आये निजपुर सब ।
हरि विनोद ज्यों कर्‌यो रुक्मिनी संग कहूँ अब ॥
इक दिन निरखी प्रिया हँसति हरिने ढिँग आवति ।
पग पगपै जनु सुखद मधुर रस-सो बरसावति ॥

अलक, पलक, मुख, नासिका, कंठ, जघन, कटिवर, हृदय ।
चुवत सबनितैं मधुर रस, मुख मनहर मुसकानमय ॥

देख प्रियाको रूप हँसीकी हरिकूँ सूझी ।
मंद मंद मुसकाय पहेली पिछली बूझी ॥
कहो प्रिये ! क्यौं छाँड़ि नृपति गण मम सँग आई ।
शूरवीर शिशुपाल सग तव भई सगाई ॥

हम निर्गुण निस्पृह परम, निष्किञ्चन निर्धन निपट ।
तातैं तजि हमकूँ अबहुँ, जाउ अपर नृपके निकट ॥

सुनि पति-वचन कठोर रुक्मिनी अति घबरायीं ।
मूर्छित ह्वै महि गिरी तुरत उठि श्याम उठायीं ॥
प्रेमालिङ्गन कर्‌यो पौंछि मुख केश सम्हारे ।
पलँग पास बैठाइ मधुर स्वर बचन उचारे ॥

अरे, प्रिये ! रूठी वृथा, हँसी हँसीमें हौं कही ।
नरक रूप घरमहँ सरस, है प्रसङ्ग सुखकर जिही ॥

सुनत रुक्मिनी हँसी शोक दुख हियको त्याग्यो।
प्रियको कठिन बिनोद दूष तातो सो लाग्यो॥
बोलीं—तुम अति गुनी निरगुनी हौं हूँ स्वामी।
हौं अबला अति अधम आप अज अन्तर्यामी॥

नित नित नूतन नारि हौं, तुम प्रभु पुरुष पुरान हो।
हौ तिरिया तिरगुनमयी, आप अजित भगवान हो॥

नाशवान नर छाँड़ि बरे तुम अज अबिनाशी।
जन्म जन्म हौं रहूँ चरन कमलनिकी दासी॥
त्वचा,रोम,नख, केश, मूत्र, मलयुत निन्दित तन।
तजि बिषयनिकूँ संग लगायो प्रभु चरननि मन॥

अब फिरि कबहूँ नहिं कहैं, बचन बज्र सम अति कठिन।
प्रानप्रियाको प्रेम लखि, हँसि बोले करुनायतन॥

मानिनि लीयो मोल प्रेम सेवा करि मोकूँ।
नहीं दै सकूँ कछू प्रिये! बदलेमें तोकूँ॥
पौत्र और निज ब्याह समय जो धीरज धार्यो।
तातैं हौं बनि गयो भामिनी ऋनी तिहारो॥

पति पत्नीमहँ प्रेमकी, बात भयी दोनों मिले।
पाइ परसपर परस तनु, उभय हृदय सरसिज खिले॥

ऐसे ही इक दिवस सत्यभामा सँग नटवर।
खेल खेलमहँ कह्यो पुण्य कातिक हरिबासर॥
नारदकूँ दै तुलादान सतभामा आईं।
पूछैं निज सौभाग्य भये कस श्याम गुसाईं॥

बोले हरि कातिक सदा, अरु व्रत हरिबासर कर्यो।
तातैं मम अर्धाङ्गिनी, प्रिया बनी मम मन हर्यो॥

प्राकृत पुरुष समान सबनिकूँ हरि सम्मानें।
तिनकूँ राजकुमारि स्ववश पति नर सम जानें॥
औरनिकी का कहें शम्भु ही लड़िवे आये।
बाणासुरको पक्ष लयो पीछे पछिताये॥
शौनक पूछें—सूतजी! क्यों हर श्रीहरितैं लड़े।
सूत कहें—मुनि! भक्त हित, वृषभध्वज प्रभुतैं भिड़े॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें प्रद्युम्नचरित रुक्मिणी-परिहास नामक पञ्चम अध्याय समाप्त।



अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

बैरोचनि शत पुत्र बड़े सबमें बाणासुर।
शूर बीर रणधीर दये तिनि हर इच्छित बर॥
शोणितपुरमहँ बसैं करैं हरपुर रखवारी।
कन्या ताकी परम सुन्दरी ऊषा प्यारी॥
तानै इक दिन स्वप्नमहँ, लखे बीर अनिरुद्ध बर।
पति समान क्रीड़ा करत, बेधत हियमहँ काम-शर॥

ऊषा बोली—बहिन! स्वप्नमहँ नर इक आयो।
मन मेरो लै गयो तनिक अधरामृत प्यायो॥
जो न मिलै वह बीर धीर हियमहँ नहिं धारूँ।
तजूँ प्रान बिष खाइ अगिनिमहँ तनकूँ जारूँ॥
चित्र चित्रलेखा लिखे, नर किंनर सुर असुर बर।
लखि यदुवर अनिरुद्धकूँ, बोली जिहि मम चित्तहर॥

समुझि कृष्णको पौत्र चित्रलेखा घबराई।
योग शक्तितैं उड़ी द्वारका छिनमहँ आई॥
देखे श्रीअनिरुद्ध सुखद शैयापर सोवत।
शशि सम करत प्रकाश कामिनिनिके मन मोहत॥
बिकल प्रियाके प्रेममहँ, लखि बाला बिस्मित भई।
शैया सहित उठाइकैं, शोणितपुरमहँ लै गई॥

शोणितपुरमहँ आइ सखीकूँ कुमर दिखायो।
कुमरि मुदित अति भई सुघर वर प्रियतम पायो॥
खान, पान, स्रक्, धूप दीपतैं पति सम्माने।
ऊषा सँग अनिरुद्ध नहीं दिन बीतत जाने॥

गर्भवती उषा भई, द्वारपाल सब जानिकैं।
बाणासुरतैं कह्यो जब, चल्यो असुर सर तानिकैं॥

आइ असुरने लख्यो कुवरि ढिँग नर इक कारो।
अति सुन्दर मनहरन सुघर वर अतिशय प्यारो॥
कछुक कहे कटु वचन न यदुवर सुनि घबराये।
तबई सैनिक समर साज सजि लड़िबे आये॥

लौह परघ अनिरुद्ध लै, लड़न लगे सैनिक डरे।
प्रबल प्रहार न सहि सके, कछु भागे कछु गिरि मरे॥

महाबली तब बाण कोप करि आयो रनमहँ।
करें युद्ध अनिरुद्ध न शंका कीन्हीं मनमहँ॥
सहसबाहुने नागपाशमहँ बाँधे लाला।
पतिको बन्धन निरखि भई अति विह्वल बाला॥

इति नारद द्वारावती, आयो कह्यो वृत्तान्त जब।
सुनत कुपित यादव भये, चले सेन सजि तुरत सब॥

राम, कृष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब आदिक सब आये।
शोणितपुरकूँ घेरि शस्त्र अरु पणव बजाये॥
सुनि पुररक्षक शम्भु षडानन सब गन गनपति।
करन युद्ध मिलि चले भिड़े रन भयो विकट अति॥

कार्तिकेय प्रद्युम्नतैं, सात्यकि बाणासुर लड़त।
भिड़े शम्भु श्रीकृष्णतैं, अद्भुत नरलीला करत॥

ब्रह्म वायु अरु अनल अस्त्र त्रिपुरारी छोडे।
जोड़ तोड़के छोड़ि श्यामने सबही तोड़े॥
जृम्भणास्त्र हरि छोड़ लिवाई जमुहाई पुनि।
आयो तबई बाण भगत अपनी सेना सुनि॥
आइ कृष्णतैं भिड़ि गयो, हरि हय सारथि मारिकैं।
कर्‌यो बिरथ तब मातु लखि, खड़ी नग्न ह्वै आइकैं॥

नग्न नारिको निरखि नयन हरि पीछे फेरे।
बाण गये पुरमाँहिं शम्भु सम्मुख हरि हेरे॥
छोड़्यो शिवज्वर उष्ण शीत ज्वर आइ दबायो।
करी कृष्णकी विनय उष्णज्वर पिंड छुडायो॥
बाण आइ हरि सँग लड़्यो, हार्‌यो सब सेना भगी।
कर काटन लागे हरी, आइ शम्भु इस्तुति करी॥

शिव-स्तुति

परब्रह्म जगदीस जगत्पति जगनिवास प्रभु।
ब्यापक नित्य निरीह निरामय निराकार विभु॥
नाभि कही आकाश अग्नि मुख बीरज जल है।
श्रवण दिशा सिर स्वर्ग पदुम पद ही सब थल है॥
सूर्य नेत्र मन चन्द्र अहं शिव जलधि उदर है।
ओषधि ही सब रोम इन्द्र भुज केशहु धन है॥
धर्म हृदय अज बुद्धि उपस्थहु कहे प्रजापति।
करन जगत उपकार होहिँ अवतरित रमापति॥
आदिपुरुष सरवेश सकल घट घटके वासी।
जग प्रपंचतैं सर्वगत अज अविनाशी॥

जो न पाइ नरदेह करे तुमरो नहिँ सुमिरन।
मायाने वह ठग्यो लगावै नहिँ तव पद मन ॥
हौ अज सुर-गन इन्द्र सकल तुम हो स्वामी।
हो सबके, पितु मातु सुहृद सत अन्तरयामी ॥
बाणासुर मम भक्त अभय अब जाकूँ दीजै।
जानि दासको पौत्र कृपा करुणानिधि कीजै ॥

छप्पय—इस्तुति सुनि हरि हँसे बाणपै दया दिखाई।
अजर अमर करि दयो प्रतिज्ञा प्रथम निभाई ॥
भयो बाणकूँ ज्ञान लाइ वर वधू दिखाये।
पाइ दान सम्मान सकल यादव हरषाये ॥
हरि हरतैं अनुमति लई, पुरी द्वारका चलि दये।
वधू सहित अनिरुद्ध लखि, अति प्रसन्न सब जन भये ॥

स्वयं सूत पुनि कहैं—चरित नृग नृपति सुनाऊँ।
कैसे हरि उद्धार कर्यो, सो वृत्त बताऊँ ॥
यदुकुलके कछु कुमर गये खेलन वनमाँहीं।
लगी प्यास इक लख्यो कूप जल तामें नाहीं ॥
परवत सम गिरगिट पर्यो, ताहि निकारत दयावश।
नहिँ निकस्यो तब आइ तहँ, कर्यो प्रकट प्रभु तासु यश ॥

करत कृष्ण कर परस तुरत सुर तनु सो धार्यो।
पूछ्यो परिचय श्याम कहे हौ दास तिहारो ॥
नृप इक्ष्वाकु कुमार नाम नृग मेरो स्वामी।
करूँ धेनु नित दान आपु तो अन्तर्यामी ॥
द्विज गैया इक भूलतैं, दूसर द्विजकूँ हौं दई।
दोऊ द्विज ममढिँग लड़े, तातैं मम दुर्गति भई ॥

मर्‌यो तुरत यमसदन गयो यम पूछ्यो हँसि तब ।
पाप पुण्यमहँ प्रथम आप भोगिहैं का अब ॥
प्रथम पाप हौं कह्यों मिल्यो गिरगिट तनु तबई ।
प्रभुपद परसत नस्यो पाप जग-बन्धन अबई ॥

यों कहि हरि अनुमति लई, दिव्य लोककूँ नृग गये ।
तब हरिने यदुवरनिकूँ, सदुपदेश सुखकर दये ॥

यादव ! कबहुँ न भूलि विप्रको धन तुम खाओ ।
जो नहिँ मानो सीख अवसि नरकनिमहँ जाओ ॥
अहिफन, पारो, भखि हलाहल बिषहु पचावें ।
किन्तु न द्विजधन पचै खाय दुख अधिक उठावें ॥

यों सबकूँ उपदेश करि, गये सबनि सँग श्यामपुर ।
इत इच्छा ब्रज गमनकी, उपजी श्रीबलदेव उर ॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें हरिहर समर नृगोद्धार नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

रथ चढ़ि ब्रजमहँ गये सुनत ब्रजवासी धाये।
मिले ललकि जनु प्रान मृतक तनमहँ पुनि आये॥
सिर सूँघन पितु मातु और सब हिये लगावें।
करि करि पिछली याद नयनतें नीर बहावें॥
प्रणय कोपयुत सब सखी, व्यंग वचन पुनि पुनि-कहैं।
कहो निगोड़े श्याम अब, रानिनि सँग सुखतें रहैं॥

जिन हित हम पितु, मातु,स्वजन,परिजन सब त्यागे।
तृन समानते तोरि नेह हमकूँ तजि भागे॥
कपट प्रेमको जाल रच्यो हम मृगीं फँसाईं।
कैसे तिनिको तहाँ करति विश्वास लुगाईं॥
प्रेम कोपमहँ भरि कहति, सबहिं श्याम रँगमहँ रँगीं।
हरि चितवनि बोलनि चलनि, सुमिरि सुमिरि रोवन लगीं॥

समुझाईं बलदेव करीं क्रीड़ा तिनि सँगमहँ।
मधु माधव द्वै मास सबनि लै विहरहिँ बनमहँ॥
कालिन्दी इक दिवस करन जलकेलि बुलाईं।
किन्तु समुझि उन्मत्त न तिनिके ढिंग सो आईं॥
संकर्षन अति कोप करि, हलतै खैचीं तानिकें।
डरीं तुरत चरननि परीं, आईं लोहो मानिकें॥

क्षमा करीं पुनि सखिनि सहित सुखतैं बल न्हाये ।
उलचि उलीचि जल प्रचुर परस्पर अङ्ग भिगाये ॥
ब्रज बनितनिको मान करैं सुख सबकूँ देवैं ।
पलक नयन कर देह सरिस ते तिनिकूँ सेवें ॥

नद गाँव बल निवसि इत, करत सतत क्रीड़ा मधुर ।
उत द्वारावति कृष्ण ढिँग, पौड्रक पठयो दूत बर ॥

दूत कहे कारूष नृपति सन्देश पठायो ।
बासुदेव हौ एक भार भू हरिवे आयो ॥
बासुदेव तू बनै चिह्न सब धारे मेरे ।
तजे नाम नहिँ करूँ दाँत खट्टे हौ तेरे ॥

पौण्ड्रकको सन्देश सुनि, श्याम हँसे सब हँसि गये ।
रथ चढ़ि लड़िबे ढीठतैं, पुर करूषकूँ चल दये ॥

रन हित हरि नृप लखे सेन सजि सम्मुख आयो ।
धारि शङ्ख चक्रादि विष्णु सम रूप बनायो ॥
लखिके भाँड़ समान हँसे हरि ललकार्‌यो ।
कीन्ही कछु दिन युद्ध अन्तमहँ ताँकू मार्‌यो ॥

काशिराज आयो लड़न, तासु काटि सिर श्यामघन ।
फैंक्यो सो काशी पर्‌यो, लखि रोवत सुत प्रजाजन ॥

यों दोउनकी करी मुक्ति हरि आये निज पुर ।
इत पितु बधतैं दुखी काशि नृप सुत सोचत उर ॥
पितु वध बदलौ लेऊँ कृष्णपुर सहित जराऊँ ।
शिव आराधन करूँ मनोवाँछित फल पाऊँ ॥

करत सुदक्षिण शैव मख, प्रकटित कृत्यानल भई ।
करन भस्म हरि द्वारका, कूँ कृत्या गर्जत गई ॥

कृत्याकूँ लखि डरे द्वारकावासी सब जन।
छोड़ि चक्र हरि दाह करायो नगर सुदच्छिन॥
पुर,द्विज,कृत्या,नृपति दग्ध करि सबनि अस्त्र हरि।
आयो द्वारावती निमिषमहँ सब कारज करि॥

काशिराजके दाहकी, कही कथा सुकदेवने।
सुनो द्विविद बानर चरित, ज्यो मार्यो बलदेवने॥

त्रेतायुगको द्विविद बली बानर चंचल अति।
नरकासुरको मित्र संगतैं भई दुष्ट मति॥
कृष्ण मित्र ध्रुक् मानि लैंन बदलो खल आयो।
जारे घर, पुर, गाँव दुष्ट अति दुंद मचायो॥
इक दिन गिर रैवतकपै, बलदाऊ मदपान करि।
हँसत हँसावत प्रेमतैं, विहरत बनितनिकूँ पकरि॥

तहाँ द्विविदने आइ करी अविनय घट फोर्यो।
हल मूसल बल लयो मारि बानर सिर तोर्यो॥
कपि तरु फेंकत काटि देहिं बल खल घबरायो।
द्वन्द युद्ध पुनि कर्यो पकरि बल गरो दबायो॥
हुच हुच करिबे लग्यो, भरि धड़ाम धरनी गिर्यो।
साधु साधु सुर मुनि कहत, सबने बल आदर कर्यो॥

अपर चरित बल सुनो कर्यो हथिनापुर जाई।
जाम्बवती सुत शाम्ब सुयोधन सुता उड़ाई॥
गही स्वयम्बरमाँहिं चल्यो प्रेर्यो कौरव पुनि।
पकरि बन्द करि दयो भये क्रोधित यादव सुनि॥
करिबे बीच बचाव बल, हथिनापुरकूँ चलि दये।
संकर्षन सन्देह सुनि, कौरव अति क्रोधित भये॥

बल बोले—सब सुनो, शान्तिके हित हौं आयो।
उग्रसेन भूपाल अधिपने मोइ पठायो॥
आज्ञा तुमकूँ दई शाम्बकूँ छोड़ो अब तुम।
कौरव यादव एक रहे चाहत यह सब हम॥
भूल समुझि माँगो क्षमा, बिगरी फिरि बनि जायगी।
तुरत पठावो बर बधू, नही बात बढ़ि जायगी॥

सुनिके कौरव कुपित भये बोले यादव सब।
भूपति बनिके पतित देहिं हमकूँ आयसु अब॥
नीच भगोड़े फिरें नेक नहिं इनकूँ लाजा।
मारे मारे फिरत भये अब माठू राजा॥
हमने ही ऊँचे करे, सग बिठाइ खवाइकें।
सत्य कहत मुनि विष बढत, पय पन्नगनि पिआइकें॥

यों कौरव कटु बचन कहत निज नगर सिधारे।
हल मूसल है कुपित तुरत बलदेव निकारे॥
मारी हलकी फार उखार्यो सब हथिनापुर।
तरनी सम डगमगे नगर भय व्याप्यो सब उर॥
कौरव, कुल, धन कुटुँबको, सब मद तजि सूधे भये।
तुरत साम्ब अरु बधू लै, बलदाऊके ढिँग गये॥

हाथ जोरिके कहे—प्रभो! हम अति अभिमानी।
आप अनादि अनंत शेष समुझें मुनि ज्ञानी॥
भूल चूककूँ भूलि करें अब अभय अखिलपति।
साम्ब बधू सँग खडे देहिँ हरषित आशिष अति॥
बिनव सुनत कौरव अभय—करे मुदित पुनि पुर गये।
सङ्कर्षनकी बिजय सुनि, यादव आनन्दित भये॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें बलदेवचरित नामक सप्तम अध्याय समाप्त।

अथ अष्टमोऽध्यायः

[८]

बसहिँ द्वारका श्याम सबहिं रानिन संतोषेँ।
सबके पुत्रनि प्रेम सहित नित पाले पोषेँ॥
नारद मन संदेह भयो हरि अति अलबेले।
रानी सोलह सहस किन्तु हैं आप अकेले॥
एक नारि मैंने बरी, भयो कछुक दिनमहँ विरत।
इतनिनिकूँ सन्तुष्ट करि, कैसे यदुनन्दन रमत॥

इच्छा मनमहँ भई लखूँ गृहचरिया हरिकी।
देखें चलिकैं हृदय भावना सब नारिनिकी॥
सोचि द्वारका चले घुसे पहिले इक घरमहँ।
प्रिया संग हरि हँसत लसत बनमाला उरमहँ॥
नारद लखि ठाढ़े भये, बैठाये सतकार करि।
करि इत उत दूसर महल, गये तहाँ हू लखे हरि॥

तहँ देखे घनश्याम प्रिया सँग चौसर खेलत।
देखि दाव निज हँसत प्रियाकूँ करतें ठेलत॥
नारद निरखे अतिथि कहे अनजान सरिस हरि।
करे कृतारथ देव! दये शुभ दरश दया करि॥
करि पूजा मिष्ठान्न अति, अधिक खवायो पेट भरि।
तुरत तहाँतैं चलि दये, नारद दइ प्रनाम करि॥

अपर भवन ऋषि गये तहाँ शिशु श्याम खिलावत ।
कानावाती कुर्र करैं हँसि तिन्हे हँसावत ॥
आटे बाटे खेल गुलगुली चपत लगावें ।
गोदीमें बैठाइ चूमि मुख हिय चिपटावें ॥
द्विज लखि शिशु दुलहिनि दये, बैठाये पग धोइकैं ।
रसगुल्ला आगे धरे, हँसे विप्र मुख जोइकैं ॥
खाइ भगे ऋषि तुरत न अब फिरि सम्मुख आवें ।
लखि चुरके हरि कृत्य अपर घरमहँ भगि जावें ॥
कहूँ निहारैं न्हात खात कहुँ हवन करत हैं ।
कहूँ प्रियनि सँग हँसैं कहूँ द्विज चरन परत हैं ॥
कहूँ करहिं सन्ध्या हवन, कहूँ दान व्रत हवन जप ।
कहूँ श्राद्ध तर्पन क्रिया, कहूँ बेद बिधि यज्ञ तप ॥
हरि कहुँ गर्भाधान आदि संस्कार करावे ।
जात कर्म पुंसवन कहूँ शिशु नाम धरावें ॥
कहुँ मुंडन उपनयन कहूँपै ब्याह रचावें ।
कहुँ पुत्रिनि करि ब्याह पतिव्रत पाठ पढ़ावें ॥
घर घरमहँ नटवर लखे, नरलीला बिधिवत् करत ।
नारद अति बिस्मय सहित, इततें उत छिपि छिपि फिरत ॥
इतनेमहँ इक नारि लखी अतिशय सुकुमारी ।
रुनुझुनु रूनुझुनु करत फिरत ऋषि दौरि निहारी ॥
कहैं पैर परि प्रभो ! नारि क्यौं रूप बनायो ।
हरि हँसि बोले—पुत्र तोय निज खेल दिखायो ॥
बेटा ! रत्ता धर्मकी, सहित योग माया करूँ ।
निज दासनिको शोक भय, भ्रम माया सबई हरूँ ॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें हरिगार्हस्थदर्शन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।

[मासिक पारायण—चौवीसवें दिवसका विश्राम]

अथ नवमोऽध्यायः

[९]

यों नारद हरि चरित निरखि ह्वै मुदित गये पुनि ।
अब दिनचर्या कृष्णचन्द्रकी शौनक मुनि सुनि ॥
हरि अति तरके उठें धोइ मुख ध्यान लगावें ।
न्हावें सन्ध्या हवन करें पुनि धेनु मँगावें ॥

पितर देव पुनि पूजिकें, करें दान बहु धेनु नित ।
जाइ सुधरमा सभामहँ, रथ चढ़ि उद्धवके सहित ॥

सिंहासन अति सुखद नृपतिके निकट बिराजें ।
जनु यादव नक्षत्र मध्य शशि सम हरि भ्राजें ॥
इक दिन बैठे सभामाँहिं तहँ नर इक आयो ।
जरासन्धतें दुखित नृपति सदेश सुनायो ॥

शरनागत रक्षक विभो, बन्दी हम खलने करे ।
प्रभु अनाथके नाथ हैं, कारागृहमहँ हम परे ॥

भक्तबछल भगवान् सबनिकी बिपदा टारो ।
फँसे फंदमहँ प्रभो ! कृपा करि हमें उबारो ॥
भयो दूत कहि मौन तबहिं नारद मुनि आये ।
करि स्वागत सत्कार श्याम मुनि निकट बिठाये ॥

बोले मुनि करुनायतन ! धर्मराज दरशन चहत ।
राजसूय मख करन हित, लग्यो चित्त तिनको सतत ॥

इत शरणागत काज सुहृद मख इच्छा जानी।
बोले श्रीघनश्याम मधुर मायायुत बानी॥
दुविधामहँ परि गये प्रथम हम कितकूँ जावें।
यादव रनकूँ कहें मुख्य मुनि मखहिं बतावें॥
उद्धवजी अब पञ्च हैं, ये ही दुविधा हरिङ्गे।
ये निर्णय जैसो करें, तैसो ही हम करिङ्गे॥

उद्धव सुनि हरि बचन सकुचिके बोले बानी।
हैं स्वामी सरबज्ञ कहूँ का हौं अज्ञानी॥
परि आयसु सिर धारि कहूँ मुनि बचन निभाओ।
इन्द्रप्रस्थमहँ प्रथम युधिष्ठिर मख हित जाओ॥
शरणागत रक्षा परम, धर्म कह्यो मख मुख्य अति।
तहाँ काज दोऊ बनें, कहूँ सुनो हे जगत्पति॥

जरासन्ध अति बली ताहि को रनमहँ मारे।
बिना दिग्विजय राजसूय ब्रतकूँ को धारे॥
प्रथम पहुँचि मखमाँहिं भीम अरजुन सँग लावें।
विप्र वेष धरि द्वन्द युद्धकी भीख मँगावें॥
यह खल छल होतैं मरै, प्रभुने तो बहु छल करे।
उद्धव सम्मति सुनि सकल, साधु साधु कहि हँसि परे॥

इन्द्रप्रस्थकूँ चले प्रथम निश्चय करि हरि तब।
आयसु सबकूँ दई चले हरषित ह्वैके सब॥
रानी सोलह सहस पाइ पति अनुमति आईं।
सजि बजि शिविकनि चढ़ी अधिक मनमाँहिं सिहाईं॥
चलें संग नट नर्तकी, पथमहँ नित नाटक करत।
सेवक सैनिक अश्व गज, रथ चढ़ि कछु पैदल चलत॥

करे पार आनर्त, मत्स्य, मरु देश सुघर वर।
लाँघि, नदी, नद, नगर निकट पहुँचे पाँडवपुर॥
सुन्यो श्याम आगमन पाडु-सुत अति हरषाये॥
करिबे स्वागत सकल नगरतैं बाहर आये॥
धरमराज पग परनहित, इत हरि दौरे ललकिकें।
हिय चिपटाये युधिष्ठिर, बाहु पाशमहँ जकरिकें॥

नयननि नीर बहाइ न्हवाये वस्त्र भिगोये।
तनु पुलकित चित मुदित भर्‌यो हिय पुनि-पुनि रोये॥
पुनि प्रभु सबतैं मिले प्रेम अतिशय प्रकटायो।
अति विह्वल सब भये मनुज तनुको फल पायो॥
करि स्वागत सम्मान अति, चली सवारी श्यामकी।
चढ़ि छज्जनि नारी लखें, शोभा शोभाधामकी॥

महलनि पहुँचे श्याम पैर कुन्तीके पकरत।
लीये हिये लगाय सुभद्रा कृष्णा रोवत॥
सबकी पूछी कुशल शिशुनिकूँ आशिष दीन्हीं।
प्रभु पत्निनि गृह लाइ द्रौपदी पूजा कीन्हीं॥
यों अति ई सम्मानयुत, इन्द्रप्रस्थमहँ प्रभु। रहत।
अरजुनके सँग सरस शुभ, सुखप्रद नित क्रीड़ा करत॥

धरमराज इक दिवस सभामहँ बैठे सब सँग।
शोभा लखि घनश्याम होहिं पुलकित सब अँग अँग॥
बोले—हम हरि! राजसूय मख करिकैं तुमकूँ।
पूज्यो चाहे विश्वनाथ! अपनावें हमकूँ॥
अति प्रसन्न सुनि हरि भये, बोले—यह संकल्प वर।
राजसूयमें तृप्त सब, होहिं, विप्र, सुर, पितर, नर॥

अच्युत अनुमति पाइ बन्धु दिग्विजय करन हित।
पठये चारिहु दिशनि गये सेना सँग उत इत ॥
सब नृप जीते किन्तु न जीत्यो जरासन्ध जब।
उद्धवजीकी युक्ति बताई बासुदेव तब ॥
हरि बहुविधि समुझाइके, धरमराज सहमत किये।
सग भीम अरजुन लिये, गिरिब्रजकूँ सब चलि दिये ॥

माला चन्दन धारि कपट द्विज वेष बनायो।
मगध देशमहँ पहुँचि अलख नृप द्वार जगायो ॥
जरासन्ध अति विप्र-भक्त सेवक अतिथिनिको।
अतिथि योग्य अति समुझि कियो बहु आदर इनिको ॥
छलिया कपटी कृष्णने, मगधेश्वरकूं ठगि लयो।
द्वन्दयुद्धको बर लह्यो, तब अपनो परिचय दयो ॥

बोले श्री भगवान—भीम नृप ! इनकूँ जानो।
दूसर इनके बन्धु बीर अरजुन लघु मानों ॥
हे मामाके ससुर ! और का बात बताऊँ।
मैं तुमरो हूँ शत्रु कृष्ण कंसारि कहाऊँ ॥
नृप हँसि बोल्यो—भगोड़े ! द्वन्द युद्ध का करेगो।
इन निरबल छोरनि सहित, बिना मौति तू मरेगो ॥

है तू तो अति भीरु हीनबल अरजुन छोटो।
भीम संग लड़ि लेउँ तुल्य बल मम सम मोटो ॥
हरि बोले—अब भूप ! होहि रन देर न लाओ।
सम्बन्धिनि ढिँग जाय भेंट अन्तिम करि आओ ॥
जरासन्ध सुनि मुदित मन, गदा युद्ध हित कर लई।
पुर बाहर रन थल बन्यो, एक भीमहू कूँ दई ॥

भिड़ैं मेषतें मेष साँड़तैं साँड़ लड़ैं ज्यों।
द्वै द्विप ह्वै मदमत्त लड़ैं वर वीर उभय त्यों॥
दाव पेच करि उभय प्रकरषन अरु अनुकरषन।
आकरषन करि लड़ैं करैं पुनि प्रबल विकरषन॥

यों सत्ताइस दिन लड़े, कहे भीम—हे कृपानिधि।
हौं हताश यह रिपु प्रवल, जीत्यो जावै कौन विधि॥

कहैं कृष्ण—यह जुर्यो मध्यतैं जाकूँ फारौ।
पैर पकरिकें चीरि बीचतैं रिपुकूँ डारौ॥
गये लड़न पुनि भीम कृष्णकी बात भुलाई।
छलियाने तृन फारि भीमकूँ सुरति कराई॥

तुरत भीम बलभीमने, पकरि शत्रुको पग लयो।
एक दबायो पग पकरि, एक करनितैं कसि गह्यो॥

दयो बीचतैं फारि फर्र टुकड़ा द्वै कीये।
तुरत दौरिकें श्याम पकरि कुन्तीसुत लीये॥
लीये हिये लगाइ बधाई भाई दीन्हीं।
कहैं—कृतारथ कोखि मातु कुन्तीकी कीन्हीं॥

जरासन्ध-सुत आइकें, प्रभु पैरनिमहँ परि गयो।
कर्यो प्यार सन्तोष दै, राजतिलक ताकौ कियो॥

मगधेश्वर सहदेव कर्यो पितु काज कराये।
चढ़ि रथ कारावासमाहिँ बन्दिनिढिँग आये॥
बन्दी भूपति दुखित सतत प्रभु पन्थ निहारैं।
कब भयभञ्जन श्याम आइकें हमहिं उबारैं॥

तबहीं निरखे भयहरन, कमलनयन प्रभु मन हरत।
कमल सरिस पग, कर, वदन, शीश मुकुट झिलमिल करत॥

निरखे नयनानंद निरामय नटवर नरपति।
भगी विपति भय भग्यो भये आनंदित सब अति॥
पुनि पुनि दरशन करें होहि संतोष न मनमहँ।
बहैं निरन्तर नयन पुलक होवै सब तनमहँ॥
दंड सरिस परि भूमिपै, पुनि पुनि प्रभु पैरनि परें।
अञ्जलि बाँधे विनय युक्त, गदगद स्वर इस्तुति करें॥

राजाओंकी स्तुति

देव देवेश्वर शोभाधाम। करें रक्षा नटवर घनश्याम।
यह संसार अपार अति, करें कृपानिधि पार।
तजि जगके नाते सकल, आये तुमरे द्वार॥
विपति भयभंजन तुमरो नाम॥१॥ करें रक्षा०
धन जन बल सरबसु समुझि, भजहिं तुमहिं सुख रूप।
धनमदमें मदमत्त है, कहे अकरि हम भूप॥
भयो मद चूर श्याम अभिराम॥२॥ करें रक्षा०
वासुदेव हरि कृष्ण विभु, प्रणतपाल जगदीश।
कृपा कृपामय करें अब, हे गोविंद गोपीश॥
परमप्रिय पदुमनि माहिँ परनाम॥३॥ करे रक्षा०
समुझि तुमहिँ सरबस्व सत, करें नाम नित गान।
बली धनी गुनवान हम, अब न होहि अभिमान॥
करें सब तुमरे ही हित काम॥४॥ करें रक्षा०

छप्पय—हरि दरशनतै मोद भयो मन प्रमुदित अतिशय।
करि इस्तुति बहु भाँति करें सब मिलिकें जय जय॥
शरनागत प्रतिपाल कृपा भूपनिपै कीन्हीं।
करि सबको सम्मान सुखद शिक्षा शुभ दीन्हीं॥
जाओ निज निज नगरकूँ, रटन नामकी नित करो।
त्यागि मान, मद, मोह नित, भजहु मोहि तो भव तरो॥

अब तुम सुखतैं सकल जाहु अपने अपने पुर ।
धारो श्रद्धा सहित मूर्ति मेरी अपने उर ॥
धर्मराज मख करहिं आइ तुम सेवा करिकें ।
द्रव्य सफल निज करहु भेंट बहु आगे धरिकें ॥

तब सबकूँ सहदेवने, असन बसन वाहन दये ।
प्रभु आयसु स्वीकार करि, सब निज निज नगरनि गये ॥

यों रिपुकूँ मरवाइ भूप बन्दी छुड़वाये ।
ह्वै सन्मानित श्याम भीम जय सँग पुर आये ॥
इन्द्रप्रस्थ ढिंग आइ सबनि निज शंख बजाये ।
लोग सुनत शुभ शङ्ख बिजय समुझी हरषाये ॥

धरमराज धुनि सुनि मुदित, भये लखे जय, भीम, हरि ।
अरघ अश्रु दै दौरिकें, मिले श्यामतैं अंक भरि ॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें जरासन्धवध नामक नवम अध्याय समाप्त ।

[पाक्षिकपारायण-द्वादश दिवस विश्राम]



अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

जरासन्ध-बध बृत्त सुनत नयननि जल छाये।
नृपति भये अति दीन बिनययुत बचन सुनाये॥
प्रभो! आप ई राजसूयकी दीक्षा लेवें।
अथवा सेवक समुझि दासकूँ आयसु देवें॥
बोले हरि—कुरुकुलतिलक! राजसूय मख करहु तुम।
भरे कोष जीते नृपति, सम्मुख सेवक सकल हम॥

हरि आयसु सिर धारि यज्ञके ठाठ रचाये।
करमकांडमहँ कुशल बेदबिद बिप्र बुलाये॥
सुनत कण्व,त्रित,कवस, असित,क्रतु,पैल, पराशर।
गौतम, अत्रि, बशिष्ठ, राम आदिक सब मुनिवर॥
आये मखमहँ मुदित मन, अति स्वागत सबको कर्यो।
चरन पखारत प्रभुहिँ लखि, नयन नीर सबके भर्यो॥

धूम धाम अति मची—लेहु धन भोजन पाओ।
मनमाने धन रतन बाँधिकें घर लै जाओ॥
कहैं नारि नर—यज्ञ न ऐसो देख्यो कबहूँ।
जल सम बरसत कनक चुकत नाहिँ तनिकहु तबहूँ॥
परब सोमरस-पान दिन, करि याजक पूजन नृपति।
प्रथम सभासद पूज्यको, जामें मच्यो बिवाद अति॥

बोले उठि सहदेव—सभामहँ स्याम विराजैं।
नभमहँ उडुगन मध्य शरद शशि सम हरि भ्राजैं॥
ये ही जगके पूज्य प्रथम पूजा अधिकारी।
अखिल भुवनपति सकल चराचरके दुखहारी॥

कर्यो समरथन पितामह, साधु साधु सब ई कहत।
धरमराजके प्रेमवश, नेह नीर नयननि भरत॥

पांडव कृष्णा सहित सुनत अति भये सुखारे।
पूजन प्रभुको कर्यो प्रेमतैं पाद पखारे॥
पूजाविधि सब भूलि करैं कछु कछू बतावैं।
कहि न सकें कछु बात कँपें कर हिय हुलसावैं॥

प्रभुपूजा शिशुपाल लखि, बोल्यो—कृष्ण अयोग्य अति।
जाति बरन कुलतैं रहित, कपटी कायर मंदमति॥

जनमभूमि तजि भग्यो ठग्यो मगधेश्वर छलतैं।
कोई जीत्यो नहीं भूमिपति जाने, बलतैं॥
क्षत्रिय कुलतैं हीन दीन अति जाकूँ प्यारे।
धनी न मानी जाहि, निहारें वैभव वारे॥

अंड बंड बहु काल तक, बकत रह्यो शिशुपाल जब।
दौरे पांडव हनन हित, रोकि कहे घनश्याम तब॥

बूआ मेरी श्रुतश्रवाको सुत यह पापी।
तीन नयन भुज चारि सहित जनम्यो संतापी॥
तब नभवानी भई गोद जाकीमहँ जावै।
गिरें नयन कर वही जाहि परलोक पठावै॥

मेरी गोदीमहँ गिरे, करी विनय बूआ बहुत।
दयो ताहि वर दयावश, क्षमा करहुँ अपराध शत॥

तबतैं हौं गिनि रह्यो भये अपराध अधिक शत।
अब हौं मारूँ जाइ होहि जामें सबको हित॥
यों कहिकें घनश्याम सुदरशन चक्र चलायौ।
करि धड़तैं सिर पृथक सभामहँ काटि गिरायौ॥

तेज निकसि शिशुपाल तन, तैं हरि तनमहँ मिलि गयौ।
तीन जन्ममहँ द्वेषतैं, भजि पुनि प्रभु पार्षद भयौ॥

चेदिराज बलि चढ़ी भयो मख पूरो तबहीं।
पाइ मान सन्तुष्ट भये आगत नृप सबहीं॥
दईं दछिना बिपुल कनक धन रतन लुटाये।
सब सुर नर गन्धर्ब, निरखि मख परम सिहाये॥

पूरन मख करि हरि सहित, धरमराज अति मुदित मन।
संग लिये नर नारि सब, चले न्हान अवभृत करन॥

गंगाजीपै जाय न्हानकी धूम मचाई।
घेरे रानिनि श्याम उलचि जल देह भिगाई॥
पिचकारी प्रभु मारि करें व्याकुल नारिनिकूँ।
हँसें हँसावें पकरि डुबावें सब साथिनिकूँ॥

रानिनि सँग होरी करत, मलत मुखनि केशरि ललित।
सुमन गिरत शिर कच खुलत, कृष्ण कलित क्रीड़ा करत॥

करि अवभृत इस्नान नृपति निज निज पुर गमने।
सुहृद बिछोहो निरखि धरमसुत भये अनमने॥
रहे प्रेमवश श्याम सुयोधन ठहर्यौ कछु दिन।
लखि पाडव धन बिभव तासु हिय जरत छिनहिँ छिन॥

एक दिवस मयसभामहँ, जल थल भ्रम ताकूँ भयौ।
थलकूँ जल लखि मोह वश, पग रपट्यो पुनि गिरि गयौ॥

लखि पांडव नृप हँसे धरमसुत वहुत निवारे।
किन्तु कौतुकी कृष्ण सेनमहँ सवहिँ उभारे॥
दुरजोधन अति दुखी भयो खीज्यो खिसियायो।
सवहिँ व्यंगतैं कहे—अधने अंधो जायो॥

भर्‌यो क्रोधमें चलि दयो, हथिनापुरमहँ आइकें।
छलें पांडवनि द्यूतमहँ, सोचै गुट्ट वनाइकें॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें धर्मराज सूययज्ञ नामक दशम अध्याय समाप्त।



अथ एकादशो अध्यायः

(११)

इत यदुबरतै रहित द्वारका शाल्व निहारी।
चढ़िकैं सौभ बिमान लड़ाई कीन्हीं भारी॥
करत नगर बिध्वंस लड़ै नहिं हारत अघमति।
यादव बंश बिनाश हेतु तप कीन्हों खल अति॥
औघरदानी शम्भुने, इच्छित फल ताकूँ दयो।
बायुयान बर मय-रचित, पाइ मत्त दुरमति भयो॥

इन्द्रप्रस्थ प्रभु गये, द्वारकापै चढि आयौ।
लैके सौभ बिमान नगरमहँ द्वन्द मचायौ॥
अस्त्र शस्त्र बरसाइ तुरत नभमहँ छिपिजावै।
जलमहँ उतरै फेरि सतत गोला बरसावै॥
हरिनन्दन प्रद्युम्न तब, सजि सेना रिपु दलनहित।
चले संग यादव सुभट, भये सौभ लखि चकित चित॥

डरे नहीं प्रद्युम्न प्रथम रिपु मायानाशी।
छोड़े अगनित बान कृष्णनन्दन सुखराशी॥
कीयो मूर्छित शाल्व सचिव ताको पुनि आयो।
देख्यो आवत शत्रु तबहिं रथ तुरत घुमायो॥
सहसा श्रीप्रद्युम्न हिय, गदा मारि गरज्यो सचिव।
बृज्र सरिस हियमहँ लगी, दुखी सारथी भयो तब॥

लै रथ रनतैं भग्यो चेत हरि-सुतकूँ आयौ।
युद्ध पलायन निरखि सारथी अति धमकायौ॥
करिकें पुनि पय-पान कवच बदल्यो रन आये।
गरजन भीषन करी शत्रु सैनिक घबराये॥
मंत्री शाल्व द्युमान बध, कर्‌यो फेरि आगे बढ़े।
करहिं बान बरसा असुर, बायुयानपै सब चढ़े॥

सत्ताइस दिन भयो युद्ध नहिं यादव हारे।
हय, गज, पैदल, रथी सौभपतिके बहु मारे॥
भगै न खल छल करै शस्त्र नभतैं बरसावै।
बन, उपबन, आराम, सभा घर तोरि गिरावै॥
पुरी सकल ऊजर करी, पुरवासिनि अति दुख दियो।
इन्द्रप्रस्थतैं आइ इत, श्याम परम विस्मय कियो॥

क्षत विक्षत निज पुरी निहारी कहे मुरारी।
आइ सौभपति अधम द्वारका सकल उजारी॥
बल पुररक्षा हेतु भेजि रिपु सम्मुख आये।
उभय परस्पर भिड़े क्रोधयुत वचन सुनाये॥
बाननिकी बरसा करी, शत्रु मान-मर्दन कर्‌यो।
रिपु मारे शर श्यामकर, सारँग धनु करतैं गिर्‌यो॥

सुर मुनि हाहाकार करे रिपु भये सुखारे।
शाल्व बढ़्यो अभिमान गरबयुत वचन उचारे॥
कृष्ण मारिकें तोइ मित्र ऋण आजु चुकाऊँ।
हँसि बोले भगवान—तोइ यमसदन पठाऊँ॥
मायापतिसँग सौभपति, विविध भाँति माया करत।
मायातैं वसुदेव रवि, काट्यो तिनको सिर तुरत॥

नरलीला कछु करी फेरि माया सब जानी।
सौभ करन बिध्वंस गदा श्रीहरिने तानी॥
भारी, गिर्‌यो बिमान टूटिकें चूर भयो सब।
लखि हरि सम्मुख शाल्व चक्रतैं सिर काट्‌यो जब॥
हाय हाय अरिदल मची, भये मुदित यादव अभर।
जय जय सुर नर मुनि कहहिं, सुघर श्याम जीत्यो समर॥

शाल्व और शिशुपाल मरन सब जगमहँ छायौ।
बदलौ लैवे दन्तबक्र द्वारावति आयौ॥
रनके बाजे बजे उभयदल चले हरषि पुनि।
मामा फूफी बन्धु लड़ैं लखि बिहँसत ऋषि मुनि॥
गदा श्याम सिर मारि खल, हँस्यो न हरि बिचलित भये।
तानि गदा कौमोदकी, कृष्ण असुरके ढिँग गये॥

मारी हियमहँ गदा गिर्‌यो मरि अति अभिमानी।
तनुतैं निकसी ज्योति श्यामतनुमाँहिं समानी॥
तीन जन्म जय विजय भये खल हरिने मारे।
शाप मुक्त अब भये तुरत बैकुन्ठ सिधारे॥
दन्तबक्रको बन्धु लघु, आइ बिदूरथ रन कर्‌यो।
सोऊ हरिके हाथतैं, समरमाँहिं सम्मुख मर्‌यो॥

बिजयी बनि घनश्याम पुरी अपनीमहँ आये।
सुन्यो द्यूतमहँ धरमराज कौरवनि हराये॥
राज पाट सब हारि बने पांडव बनबासी।
पहुँचे बनमहँ तुरत सुनत अच्युत अबिनासी॥
दई सान्त्वना सबनिकूँ, बनको प्रन पूरन भयो।
दुरयोधनने तऊ नहिं, राज पांडवनि फिरि दयो॥

भयो युद्ध उद्योग पक्ष पांडव प्रभु लीयो।
उदासीन बनि रहौं यही बल निश्चय कीयो॥
तीरथ व्रतके व्याज द्वारकातैं चलि दीये।
पहुँचे क्षेत्र प्रभास तृप्त सुर, नर, ऋषि कीये॥

करत पुण्य तीरथ सकल, नैमिषार आये मुदित।
स्वागत हित ऋषि आप सब, उठे अर्घ्य दीयो उचित॥

पिता न मेरे उठे रहे बैठे उच्चासन।
बल सोचें—यह धृष्ट करूँ हौं जाको शासन॥
ब्रह्म अस्त्रतैं तुरत पिताके काट्यो सिरकूँ।
ऋषि बोले—हम दियो ब्रह्म आसन बर इनकूँ॥

बल बोले—यह अघ भयो, भावी अति बलवान है।
उग्रश्रवा वक्ता बनैं, आत्मा पुत्र समान है॥

और कहे सो करूँ बतावें अपर प्राइचित।
ऋषि बोले—नित विघन करै बल्वल पापी इत॥
ताकूँ मारें अबहिं बरष भरि पुनि तीरथ करि।
यद्यपि आप विशुद्ध शुद्ध होवें द्विज दुख हरि॥

बल बोले—हे विप्र गन! बल्वलको वध करङ्गो।
द्विजद्रोहीकूँ नष्ट करि, सब सङ्कट दुख हरङ्गो॥

वक्ता मोकूँ कर्यो रहे कछु दिन यदुनन्दन।
कर्यो उपद्रव आइ परवपै बल्वल भीषन॥
हलतैं खैंच्यो असुर ताँनि मूसर सिर मार्यो।
करत भयङ्कर शब्द गिर्यो परलोक सिधार्यो॥

यों बल्वलकूँ मारिकें, तीरथ हित बल चलि दये।
तब तक कौरव खल नृपति, भारत रनमहँ मरि गये॥

भीम सुयोधन लड़ैं न बल बल बहुत लगायो।
किन्तु उभय हठ करी सुयोधन स्वर्ग सिधायो॥
नैमिषार पुनि आइ यज्ञ बलदाऊ कीन्हों।
यज्ञ दक्षिणा रूप ज्ञान तुम सबकूं दीन्हों॥
यों बध बल्बलको कर्यो, संकरषन अवतार बल।
सुनहु सुदामा चरित अब, परम सुखद अतिशय बिमल॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें शाल्वोद्धार बल्देव तीर्थ यात्रा नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण-पच्चीसवें दिवसका विश्राम]



अथ द्वादशोऽध्यायः

(१२)

हरि सहपाठी सखा सुदामा रहे विप्रवर।
मलिन वसन तन छीन दीन भिक्षुक फूस्यो घर॥
पतिनी तिनकी लटी दूबरी करुनामूरति।
हरि-साली घर हिली करी तिनकी अति दुरगति॥
भिक्षामें जो कछु मिलै, तातैं करि निरवाह नित।
हरि सुमिरन दोऊ करत, नहिं अधर्ममहँ देहिं चित॥

दारिद दुख अति दुसह भयो तब सती सुझायो।
हैं यदुनन्दन सखा देव! बहु बार बतायो॥
क्यौं न द्वारकानाथ निकट हे प्रियतम! जावें।
दीनबन्धु ढिंग जाइ दुसह दुख क्यौं न सुनावें॥
द्विज बोले—धन हेतु हरि, ढिंग कबहूँ नहिं जाउँगो।
विना अन्न मरिजाउँगो तऊ न उदर दिखाउँगो॥

विविध भाँति समुझाइ द्वारका भेजे द्विजवर।
चूरा मुट्ठी चार माँगि दीये अति सत्वर॥
दाबि बगलमहँ भेंट चले द्विज लठिया टेकत।
डगमग डगमग परैं पैर हाँपत मग देखत॥
तरु तर सोये श्रान्त ह्वै, तनु जरजर मग अति विकट।
लाइ सुवाये शक्ति हरि, पुरी द्वारकाके निकट॥

जागे, पूछें—कहाँ द्वारका कृष्ण रहे कित।
भौंचक्के से लखें परम बिस्मित ह्वै उत इत॥
लोगनि दयो बताइ रुक्मिनी महलनि आये।
द्विजनि सहित ह्वै द्वार लाँघि हिय अति हरषाये॥

मित्र मिलनकी चटपटी, लगो सबनितैं द्विज कहत।
कृष्ण हमारे सखा हैं, हम उनितैं मिलिबो चहत॥

सब सेवक सुनि हँसहिं व्यंग करि करि बतरावें।
भोरे भारे विप्र सरल चित बात बतावें॥
प्रिया सहित प्रभु पलँग पधारे दीठि परी जब।
दौरे ह्वै कें बिकल बिसारी तनु सुधि बुधि सब॥

दोऊ भुजा पसारिकैं, चिपटाये हियतैं तुरत।
मित्र मित्र पुनि पुनि कहत, नेह नीर नयननि बहत॥

स्वयं पकरि यदुनाथ पलँगपै विप्र बिठाये।
पूजाको संभार स्वयं करकमलनि लाये॥
करि पूजन सम्मान स्वादु भोजन करवाये।
करें प्रेम अति अधिक सुदामा बहु सकुचाये॥

नेह सहित बैठाइ ढिंग, पुनि पुनि पूछत कुशल हरि।
कहो लौटि गुरुसदनतैं, गृही बने नहिं ब्याह करि॥

भाभी कैसी मिली मिलै मन तुमरो वाते।
लड़ति भिड़ति तो नाहिं कान तो करे न ताते॥
कितने बालक भये सबनिके नाम बताओ।
सब घरको बृत्तान्त सुनाओ मति सकुचाओ॥

गुरुकुलके सुखमय दिवस, हाय! स्वप्न सम अब भये।
वा दिनकी कछु यादि है, ईंधन लैवै बन गये॥

घरमहँ ईंधन नाहिँ कह्यो गुरुआनी जाओ।
बेटा! वनमहँ जाइ तुरत ईंधन लै आओ॥
हम तुम दोऊ चले प्रबल वन आँधी आई।
बरषा भीषन भई नहीं मग परै दिखाई॥
राति बिताई वृक्ष तर, भोर भयो गुरु आइकैं।
कर्यो प्यार आशिष दई, हिय लीये चिपटाइकैं॥

जो गुरु दैकें ज्ञान मोक्षको मार्ग बतावैं।
ते हरि हर अज रूप सच्चिदानन्द कहावें॥
अच्छा भाभी कहा हमारे लीये दीयो।
अबही नहिं तुम दयो विलम काहेकूँ कीयो॥
कछु न कहे द्विज लाजवश, श्रीहरि वैभवतैं चकित।
बार बार यदुवर कहे, देहु उपायन प्रिय तुरत॥

दये रुकिमिनी कछुक प्रेममय हरिकूँ ताने।
तिनकूँ सुनिकें विप्र और सहमे सकुचाने॥
इत उत चित्त बँटाइ बगलतैं चिउरा खाँचे।
खाये मुट्ठी तुरत कहें—ये अम्मृत सींचे॥
लगे चबावन दूसरी, लयो रुकिमिनी पकरि कर।
कहैं—करो का कृपानिधि, मोहूकूँ कछु देउ वर॥

चिउरा मुट्ठी एक खाय सब सम्पति दीन्हीं।
मोकूँ हू अब दैंन आपुने इच्छा कीन्हीं॥
यों हरि सब कछु दयो न द्विजकूँ प्रकट दिखायो।
होत प्रात ही विप्र पूछि निज नगर सिधायो॥
कछुक दूरि पहुँचाइवे, आये हरि हिय लायकैं।
विदा करे अति विनयतैं, अति ही नेह जनायकैं॥

मगमहँ सोचत जात श्याम आदर अति कीयो ।
किन्तु न एक छदाम ब्राह्मनीकूँ धन दीयो ।।
नहीं दियो भल कियो अरथतैं अनरथ होवै ।
द्रव्य पाइकें पुरुष मनुजता ऋजुता खोवै ।।

सोचत सोचत नगर ढिँग, पहुँचि लगे विस्मय करन ।
निरखि अशन, पट, गज, तुरँग, बहु सम्पति मणिमय भवन ।।

दिव्य अपसरा बनी बस्त्र भूपनतैं सज्जित ।
बहु दासिनितैं घिरी निहारी नारी हरषित ।।
स्वरग सरिस सम्पत्ति सकल श्री हरिकी जानी ।
समुझि गये सब रहस कृपा यदुवरकी मानी ।।

सुमिरन करि करि कृपाको, पुलकित तनु बिनती करैं ।
जनम जनम हरि सखा बनि, ऐसें ही मम दुख हरैं ।।

प्रभु प्रसाद सब समुझि करें विषयनिको सेवन ।
मनमहँ धारे कृष्ण करें तिनि नित प्रति चिन्तन ।।
जगमहँ सब सुख भोगि अंत हरि लोक पधारे ।
भये सुदामा सखा श्यामके अतिशय प्यारे ।।

सुनें सुदामा चरित जे, ते न परैं भवकूप पुनि ।
गोपनि सँग हरि मिलन ज्यों, भयो कहूँ अब सुनहु मुनि ।।

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें सुदामाचरित नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ तृयोदशोऽध्यायः

[१३]

सूर्य्य-ग्रहन इक वार पर्यो सुनि सब नर नारी।
गये न्हान कुरुक्षेत्र सकल यादव बनवारी॥
इततैं गोपी गोप परबपै मिलि तहँ आये।
भेंट परस्पर भई सकल मिलि परम सिहाये॥
उभय ओर आनन्द अति, प्रमुदित यादव गोप-गन।
खिल्यो कमलमुख नयन जल, पुलकित तनु गद्गद वचन॥

राम कृष्णने दौरि नंद यशुमति पग पकरे।
शिशुसम गोद बिठाइ पुत्र कसिकें हिय जकरे॥
उभय नयन जलधार बहै करुना घबरानी।
भये कंठ अवरुद्ध न निकसै मुखतैं वानी॥
मातु पिताकी गोदमहँ, रोवत शिशुसम श्याम बल।
पट भिगवत सिसकत लिपटि, पुनि पुनि पौंछत नयन जल॥

शान्त भयो आवेग यशोदा भीतर आईं।
दौरि देवकी और रोहिनी हिये लगाईं॥
करि करि पिछली यादि अधिक आभार जतावैं।
ये तुमरी सुत-वधू सबनिके नाम बतावैं॥
राम श्यामकी बहुनिकूँ, लखि यशुमति प्रमुदित भईं।
नाती बेटा होहि बहु, मातु सबनि आशिष दईं॥

लखि बैभव ब्रज-बाल बहुत मनमहँ सकुचावैं ।
सोचें-कब एकान्त ठाँवमहँ हरिकूँ पावैं ॥
अति रहस्यमय बात होहिँ नहिँ सबके सम्मुख ।
निभृत निकुञ्जनिमाँहिँ मिलहिँ प्रिय तब होवै सुख ॥

समुझि भाव भगवान पुनि, सबतै निर्जन थल मिले ।
गाढ़ालिङ्गन कर्यो हरि, चन्द्रानन सबके खिले ॥

सकुची सहमी सखी श्याम सकोच छुड़ायो ।
मधुर मधुर मुसकाइ करनि मुख अधर उठायो ॥
पूछें—का रिस भई न हौं फिरि ब्रजमहँ आयो ।
जो नहिं चाहौं करन भाग्यने सो करवायो ॥

हैं प्रारब्ध अधीन सब, सुख दुख अरु बिछुरन मिलन ।
सार यही संसारमहँ, मोमें थिर है जाइ मन ॥

भरि नयननि जल कहें गोपिका—हरि ! तुम ज्ञानी ।
का समुझें हम योग ज्ञानयुत तुमरी बानी ॥
कीयो जो उपदेश साँच हम ताकूँ मानें ।
किन्तु न यशुमति-तनय छाँड़ि हम जग कछु जानें ॥

बरदाता ! बर देहु जिह, जाइ न हमरी अनत मति ।
तव मूरति हियमहँ बसै, चरन कमलमहँ होहि रति ॥

करी कृपा करुनेश सबनिकूँ धीर बँधायो ।
धरमराजने दरश हेतु सन्देश पठायो ॥
गोपिनिकूँ करि बिदा द्वारपै यदुबर आये ।
करि स्वागत सत्कार नृपति पांडव बैठाये ॥

कुशल क्षेम पूछी तबहिं, कहहिं धरम-सुत नयन भरि ।
भई कुशल अब दयामय, तव चरननिके दरश करि ॥

इत यदुनन्दन पांडुसुतनि सँग प्रेम दिखावें।
उत पाचाली प्रभु-पत्निनि सँग मिलि बतरावें॥
निज बिबाहकी बात चलाई सब उकसाई।
पूछें सबतैं—कहो कृष्ण तुम कस अपनाई॥

रुक्मिनि ! सत्ये ! लक्ष्मणे ! हे भद्रे ! हे जाम्बवति।
सतभामे ! रोहिनि ! कहो, अपनाई ज्यों जगत्पति॥

कृष्णातैं सब कहें ब्याहकी बिहँसि कहानी।
सत अरु सोलह सहस आठ श्रीहरिकी रानी॥
रुक्मिनिने निज हरन सत्यभामा मनि चोरी।
जाम्बवतीने कही मिली हरितैं ज्यों जोरी॥

कालिन्दी तपकी कथा, सत्याने वृष नाथिबो।
कह्यो मित्रबिन्दा स्वयं, बल-पूर्वक हथियायबो॥

भद्राने सच्चेपमाहिं सब बात बताई।
परम सरसतायुक्त लक्ष्मणा कथा सुनाई॥
पुनि जो सोलह सहस अधिक शत प्रभुकी पतिनी।
कही सबनि इक संग कथा करुनामय अपनी॥

हरि-पत्निनि अनुराग लखि, सब अति आनन्दित भई।
भाग्य सराहत सबनिके, सब निज-निज डेरनि गई॥

इत बाहर हरि दरश हेतु मुनिवर बहु आये।
करि स्वागत सत्कार कनक आसननि बिठाये॥
पुनि पुनि करी प्रनाम जोरि कर बोले श्रीहरि।
आज धन्य हम भये दये शुभ दरश दया करि॥

जप, तप, तीरथ, व्रत, सतत, सेवनतैं पावन करें।
किन्तु संत दरशननि ही, तैं सब दुख दारिद टरें॥

सुनी श्यामकी बिनय भये बिस्मित सब ऋषि-गन ।
समुझि लोक व्यवहार कर्‌यो पुनि सबने थिर मन ॥
कहे—देव ! करि दरश दुरित दुख टरे हमारे ।
प्रभु तुम अशरन शरन चरन लखि भये सुखारे ॥

हृदयकमलमहँ योगि जन, करहिँ ध्यान जिनको सतत ।
तिन पदपदुमनि ध्यानमहँ, रहहिं सदा हम सब निरत ॥

यों करि बहुबिधि बिनय चलन लागे ऋषि मुनि जब ।
तुरत जाइ वसुदेव चरन सिर धरि बोले तब ॥
करम धरमके हेतु करम बिनु नहीं नसावें ।
कौन करम करि होहिँ मुक्ति सो युक्ति बतावें ॥

मुनि हँसि बोले—कृष्ण पितु, ह्वै के हू शका करें ।
बसहिँ गंगके निकट नर, पय न पियें प्यासे मरें ॥

नारद बोले—मुनिगन ! जामें अचरज नाहीं ।
रहे संग नित होहि न श्रद्धा ताके माहीं ॥
सुनि मुनि बोले—प्रभु प्रसाद हित कर्म करें जे ।
होहि न तिनकूँ दोष बन्ध जग नहीं परें ते ॥

सुररिन, ऋषिरिन, पितृरिन, रहे सबनिपै तीन रिन ।
यज्ञ और अध्ययन सुत, करि होवें सब द्विज उरिन ॥

सुत सर्वेश्वर करे कर्‌यो अध्येन जथामति ।
कर्‌यो न मख अब करो शूर सुत सुनि हरषे अति ॥
मख करवावो मोहि मुनिनितेँ बिनती कीन्हीं ।
सब ऋषि ऋत्विज करे यज्ञकी दीक्षा लीन्हीं ॥

सजि बजि नर नारी फिरहिँ, मख हित लावहिँ फूल फल ।
हरि दरशनके लोभबश, रहे तहाँ ऋषि मुनि सकल ॥

अनुपम उत्सव भयो सबनिको स्वागत कीन्हों।
बहुत धेनु धन धान दान विप्रनिकूँ दीन्हों॥
मखमहँ सुर ऋषि पूजि शूर-सुत अति हरषाये।
पाइ मान सुर विप्र सकल निज धाम सिधाये॥
पूजित ह्वैके नंदजी, सब ई गोपी गोप-गन।
रहे कछुक दिन संग तहँ, पुनि कीयो ब्रजकूँ गमन॥

नित प्रति छकरा जोरि चलहिं जब गोप नयन भरि।
आजु नहीं अब काल्हि जाइयो कहि रोकें हरि॥
तीन मास यों रहे निकट जब वरषा आई।
भये विवश बल श्याम कष्टतैं करी विदाई॥
नंद यशोदा सुतनिकूँ, पुनि पुनि हिये लगाइकें।
कच भिगवत चूमत वदन, नयननि नीर बहाइकें॥

गोपी गोपनि हृदय प्रेमतैं अति भरि आये।
मन हरि चरननि छोरि मधुपुरी तनतैं धाये॥
इत यादव सजि सेन द्वारकामहँ आये जब।
कहीं कथा जो भई मिले ज्यों ब्रजवासी सब॥
मिले रहत बल्लभ सदा, गोपिनि हियमहँ बसहिँ नित।
मिलन भयो कुरुक्षेत्रमहँ, भयो न ब्रज सम मन मुदित॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें कुरुक्षेत्रमें कृष्ण ब्रजवासी संगम नामक तेहरवाँ अध्याय समाप्त।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

एक दिवस बल श्याम गये निज पितुके पाहीं।
निरखि ज्ञान जिह भयो पुत्र मेरे ये नाहीं॥
ऋषि मुनि भीषम व्यास इन्हें सर्वेश बतावें।
मानि मोइ निज जनक आइ पद शीश नवावें॥
बोले—तुम दोऊ सकल, या जगके आधार हो।
अज, अच्युत, अक्षर, अजिर, अखिलेश्वर अवतार हो॥

ववसुदे-स्तुति

जय कृष्ण कृपालो! भयत्राता।
जय संकरषन सब सुखदाता॥

दोऊ जा जगके रक्षक हो, निर्माता हो पुनि भक्षक हो।
तुम सकल ज्ञानके शिक्षक हो, नहिँ तुमरो जगतें कछु नाता॥१॥ जय०

चाहे जब जैसे बनि जावें, धरि रूप विविध जगमें आवें।
नहिँ पार निगम आगम पावें, तान्यो जगमायाको छाता॥२॥ जय०

हैं जगमें जितने शक्तिमान, अधिपतिं स्वामी अरु तेजवान।
भगवान ज्ञान अरु बुद्धिमान, तुमही सबके हो गुनदाता॥३॥ जय०

हैं पुरुष पुरातन आपु उभय, रवि, शशि, तारा, ग्रह सदा सभय।
नित करें सरग, थिति आपु प्रलय, सब जगके तुमही पितु माता॥४॥ जय०

मोपै किरपा करो शरन तुमरी हौं आयौ।
इन्द्रिय विषयनि फँस्यो समय सब व्यर्थ गँवायौ॥
सुनिकें पितुके वचन श्यामसुन्दर सकुचाये।
आत्मज्ञान युत मधुर विहँसि वर वचन सुनाये॥

सब भगवतके रूप हैं, मैं तुम बल ये चराचर।
आत्मा अद्वय एक रस, नित्य निरंजन परावर॥

सुनि हरिको उपदेश भये वसुदेव सुखारे।
तब ई आईं मातु मुदित बल श्याम निहारे॥
बोलीं माता—प्रथम मृतक गुरु सुत तुम आन्यो।
योगेश्वर तुम उभय मुनिनितैं मखमहँ जान्यो॥

मेरे छै सुत कसने, जनमत मारे सुवर सब।
तुम समर्थ सर्वज्ञ हो, तिनहिँ दिखाओ लाइ अब॥

माता इच्छा समुझि सुतल बल हरि उठि धाये।
बलितैं पूजित भये कुमर माया तैं लाये॥
सुतनि पाइ अति मुदित भई जननी सुख पायो।
पय पिआइ मुख चूमि सूँघि सिर हिय सरसायो॥

छै मरीचि सुत विधिहिँ जब, कामातुर लखि हँसि गये।
असुर भये ते शाप बश, प्रभु प्रसाद पुनि सुर भये॥

सूत कहें—अब हरन सुभद्रा सुनहु मुनीश्वर।
करहिँ भक्त अभिलाष सकल पूरन परमेश्वर॥
वन प्रसङ्गमहँ पार्थ सुभद्रा इच्छा लखि उर।
बनि बाबाजी रहें छद्मतैं छिपिकें हरिपुर॥

बल छलकूँ समुझे नहीं, करे निमंत्रित कपट मुनि।
करति सुभद्रा पूर्व ही, प्रेम पार्थको सुयश सुनि॥

मौनी बाबा बने सुयश पुरमाहीं छायो।
बल बुलाइ घर प्रेम सहित भोजन करवायो॥
कुमरि सुभद्रा बार वार व्यजन बहु परसे।
अति सुन्दर मनहरन रूप लखि पुनि पुनि हरषे॥
द्वै द्वै मिलिकें चार जब, भईं आँखिं दोऊ ठगे।
कपटी मुनि मोहित भये, प्रणय सहित देखन लगे॥

वेष बदलिकें चार मास अरजुन तहँ निवसे।
करत प्रफुल्लित सबनि शारदी शशि सम बिकसे॥
कुमरि हरन हरि संग योजना बैठि बनाई।
रथ चढ़ि उत्सव माँहिं सुभद्रा बाहर आई॥
वासुदेव निज रथ दयो, छद्म वेष तजि पांडुसुत।
गये सुभद्राके निकट, पकरि बिठाई रथ मुदित॥

सुनि बल यादव कुपित चले लड़िवे अरजुनतें।
हँके हरि गम्भीर प्रेमयुत बोले तिनतें॥
है अजेय जग पार्थ बात मत व्यर्थ बढ़ाओ।
करो सुभद्रा ब्याह नेहतैं नगर बुलाओ॥
हरिकी सम्मति समुझि बल, जय बुलाय कन्या दई।
पाइ परसपर बर बधू, अति प्रसन्नता मन भई॥

अब इक मुनिवर कहूँ कृपा युत कलित कहानी।
मिथिलापुरमहँ बसहिं विप्र श्रुतदेव अमानी॥
भूपति तहँ बहुलाश्व भक्तवर हरिके प्यारे।
दोउनि करन कृतार्थ कृष्ण पुरमाँहिं पधारे॥
पहुँचे मिथिला नगरमहँ, बहु ऋषि मुनि हरि संगमहँ।
सुनत विप्र नृप हरषतै, नहीं समाये अंगमहँ॥

दोउनिने इक संग निमंत्रित श्रीहरि कीन्हें।
दोउनि करन कृतार्थ रूप द्वै हरि धरि लीन्हे ॥
एक रूपतैं गये ऋषनि सँग नृप महलनिमहँ।
अपर रूप धरि गये द्विजनि लै विप्र भवनमहँ ॥

भूपति हरि-पद गोद धरि, सुहरावे पुनि पुनि कहे।
करें कृपा करुणेश कछु, काल जनकपुरमहँ रहे ॥

इत द्विज देखे देव दीनके द्वारे आये।
चरण कमल सिर नाइ विनययुत वचन सुनाये ॥
नित्य निरञ्जन नाथ निरन्तर निकट हमारे।
अति अनुकुम्पा करी अश अनुचर उद्धारे ॥

करें कहा करुणायतन ! विधिवत बात बताइ दें।
होहिं द्रवित जाते तुरत, साधन सुखद सिखाइ दें ॥

हँसि हरि बोले—विप्र वेद जगमाहिँ प्रचारें।
शम, दम, संयम, नियम साधि तिनिकूँ ते धारें ॥
मेरे हू ते पूज्य करें जो अर्चन तिनिको।
समदर्शी ह्वै जाय भक्त होवे जो उनिको ॥

यों सिख दीन्हीं द्विज नृपहिँ, कछु दिन रहि पुनि पुर गये।
सुनो कथा अब शम्भुकी, विकल असुर वरदै भये ॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें मातृपितृमैथिलानुग्रह नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

[१५]

पूछैं शुकतैं भूप—प्रभो ! हर मरघटबासी ।
चिता भस्म तन मलैं दिगम्बर विषय उदासी ।।
तिनिके सबई भक्त धनी मानी भोगी अति ।
बने ठने हरि रहे सुघर सुन्दर कमलापति ।।
लक्ष्मीपति-प्रिय धन रहित, शैव धनी बनि जात हैं ।
बैष्णव बनि माँगत फिरहिँ, ये का उलटी बात हैं ।।

बोले शुक—सुनु नृपति शम्भु अज औघर दानी ।
होहिँ शीघ्र सन्तुष्ट लहहिँ बर खल अभिमानी ।।
पाइ अमित ऐश्वर्य करैं अपमान सबनिको ।
प्रकृति परे प्रभु विष्णु टिकै नहिँ चित्त खलनिको ।।
करैं विष्णु जापै कृपा, निष्किञ्चन ताकूँ करैं ।
सबकी आशा छोड़ि जब, आवे तब सब दुख हरैं ।।

सुनो एक इतिहास परे हर संकट दै बर ।
आशुतोष शिव समुझि करै तप उग्र बृकासुर ।।
तनुको काटै मांस अग्निमें होमै ताकूँ ।
बसै तीर्थ केदार भये छै दिन यों वाकूँ ।।
शिव दरशन जब नहिँ दये, सतवें दिन गहि खड्ग खल ।
सिर काटन लाग्यो जबहिँ, प्रकटे शंकर शिव विमल ।।

कहैं—अरे, च्यौं मरै माँगु बर मत घबरावै।
माँग्यो बर—कर धरूँ जासु सिर सो मरि जावै॥
आशुतोष ह्वै विमन दयो बर खल सुख पायो।
भयो विमोहित शिवा रूप लखि चित्त चलायो॥
करूँ परीक्षा शम्भु सिर, कर धरि यदि मर जायँगे।
मिलै सुन्दरी शिवा अरु, सबरे सुर डर जायँगे॥

धरन शम्भुपै हाथ बढ्यो हर अति घबराये।
भागे मुट्ठी बाँधि लोकपालनि पुर आये॥
वृक हू बरतैं बढ्यो भगै सँग शिवके मगमहँ।
कौन अन्यथा करै शम्भुके बरकूं जगमहँ॥
और उपाय न देखि हर, भागि चले वैकुन्ठपुर।
रमारमन जहँ रमा सँग, करहिं कलित क्रीडा सुघर॥

हरि सब समुझि रहस्य रूप बटु धरि मग आये।
वृकतैं बोले—वीर! फिरौ च्यों तुम घबराये॥
कह्यो असुर सब वृत्त बताई अपनी इच्छा।
बोले हरि—निज शीश हाथ धरि करहु परीक्षा॥
सुनि खल निज सिर कर धर्‌यो, भयो भस्म शिव बचि गये।
ऐसो बर फिरि देहि नहिं, हरि हरतैं कहि हँसि गये॥

सोरठा—सूत कहे मुनिराज, वेदस्तुति बरनन करूं।
वे ही कारन काज, ज्ञान रूप हरि एकरस॥

छप्पय—हरि सब जगके ईश सृष्टि सब जिही बनावें।
जे ही रक्षा करें प्रलयमें लेट लगावे॥
बन्दी बनिकें वेद विनययुत बोलें बानी।
बानी श्रुति कहलाइँ भेद समुझें मुनि ज्ञानी॥
प्रलय अन्तमें श्रुति सकल, करहिं विनय ह्वैकें मगन।
इस्तुति नृपकी करहिँ ज्यों, बन्दी मागध सूत-गन॥

शौनक बोले—सूत ! वेद इस्तुति कछु भाखें ।
भेदभाव निज भक्त समुझि मनमहँ नहिं राखें ॥
कहैं सूत—मुनि विषय गूढ़ कैसे हौं भाखूँ ।
आपु सकल सर्वज्ञ भेद तनिकहु नहिं राखूँ ॥
ब्रह्मसत्र जनलोकमें, भयो कुमारनिको प्रथम ।
नारदतैं हरिने कह्यो, कहूँ ताहि अब सुनहु तुम ॥

बने सनन्दन व्यास भये श्रोता सब भाई ।
प्रकट्यो ब्रह्म विचार ज्ञानकी नदी बहाई ॥
कहैं सनन्दन—प्रलयकाल अवसान समुझि सब ।
श्रुति इस्तुति मिलि करें कहूँ ताहीकूँ हौं अब ॥
सोवैं सुखतें प्रलय-पय, में परमेश्वर श्रुति जगीं ।
हाथ जोरि सर्वेशकी, यों इस्तुति करिबे लगीं ॥

वेद-स्तुति

चौपाई

जाते जनमें जे सब भूता, सब जग जाको प्यारो पूता ।
जानें पूरब अज उपजाये, जानें चारिहु वेद बनाये ॥
बुद्धि प्रकाशक देव अनन्ता, शरण गहूँ जो आत्मनि सन्ता ।
ब्रह्म सत्य अरु ज्ञान अनन्ता, जो सरबज्ञ सर्वविद् सन्ता ॥
कथन मात्र हैं सकल विकारा, ज्यों घटमें मिट्टी ही सारा ।
ब्रह्मरूप है सब जग भाई, मिथ्या नाना जो दिखलाई ॥
कमलपत्र जल नहिं ठहरावै, त्यों ज्ञानी अघ नहिं लिपटावै ।
द्वैत न जाके मनमहँ आवै, पाप पुन्यतैं सो बिलगावै ॥
नाम असुर्या लोक अनन्ता, तमतें घिरे नहीं जिनि अन्ता ।
आत्माघाती जे नर अहहीं, मरिकें तिनि लोकनिमें रहहीं ॥

आत्मज्ञान जानें नहिँ कीयो, ताने मनि तजि लोहो लीयो।
ब्रह्म अमृतकूँ जो नर पीवें, मरें न कबहूँ ते नित जीवें॥
जे विषयनिमहँ नर फँसि जावें, भ्रमें जगतमहँ दुख बहु पावें।
अन्न प्रानमय वही ब्रह्म है, वही बुद्धि मन परब्रह्म है॥
कोई उदर ब्रह्म करि मानें, कोई हृदय ब्रह्म ही जानें।
कोई दहर उपासन करहीं, दहर अन्त आकाशहिँ भरहीं॥
एक देव सब भूतनिमाहीं, छिप्यो गूढ़ है दीखत नाहीं।
साक्षी सबके हृदय विराजैं, केवल निगुँन ह्वैके राजै॥
सबरे जगकूँ वही बनावें, रचि पचि पुनि तामें घुसि जावें।
जो पुतरिनिमहँ पुरुष दिखावै, सोई सूरजमाहिँ लखावै॥
एक अनेक प्रकार लखाई, अन्य नहीं सो तू ही माई।
नमें जाहि सब देव पितरगन, ज्ञानी और मुमुक्षु हरिजन॥
सब प्रतिबिम्ब देखि हरषावें, पतो विम्बको नहीं लगावें।
घड़ा देखि विस्मय सब मानें, कुम्भकारकूँ नहिँ पहिचानें॥
देखो सुनो मनन करि ध्याओ, आत्मामें ही चित्त लगाओ।
मन बानी जहँतैं फिरि आवें, ब्रह्म ताहि सब वेद बतावें॥
जाको सब ई जगत् पसारो, जातें नहीं जगत् कछु न्यारो।
पहिले सत ही सत जगमाहीं, कहो असत कछु हानी नाहीं॥

ब्रह्म ब्रह्म ही ब्रह्म लखावै, ब्रह्म बिना कछु दृष्टि न आवै।
मूरख फँसे अविद्या भीतर, समुझि विज्ञ दें मन्त्र निरन्तर॥
अन्धे अन्धनि गैल दिखावें, दोऊ गिरि कूआमें जावें।
अद्वय एक ब्रह्म सत चित है, भूत भूतमें वह व्यवथित है॥
एक अनेक वही कहलावै, जैसे जलमें चन्द लखावै।
आत्माको ही सकल पसारो, आत्मातें कोई नहिँ न्यारो॥

ब्रह्म सत्य अरु ज्ञान अनन्ता, नाना नहीं एक ही पन्था।
जो नानापन जगमें देखै, मृत्यु द्वार मरिके वह पेखै॥

ता बिनु वस्तु बहुत नहिँ थोरी, बँधे नाम दामहुकी डोरी।
हाथ पैर नहिँ इन्द्रिय मन हैं, चलें फिरें सब करें करम हैं ॥
जाके डरतें भूत, चन्द्र, रवि, करें करम सो सर्वेश्वर कवि।
अग्नि पतङ्गा ज्यों उपजावै, त्यो आत्मा जग अखिल बनावै ॥
मैं सब जानूँ जो यह मानै, सो मानों किञ्चित नहिँ जानै।
जल बुद् बुद्वत जनम मरन है, वही करम अरु वही करन है ॥
सुमन भिन्न सब रस मिलि जावै, सब मिलि जुलि सो मधु कहलावै।
ज्यों सरिता सागर मिलि जावें, नाम रूप तजि सकल बिलावें ॥
त्यों विद्वान असत्य भुलावै, पुरुष पुरातनमहँ मिलि जावै।
मायामे फँसि जीव भुलावै, पुनि पुनि जनमै पुनि मरि जावै ॥
जनम मरन भक्तनिकूँ नाहीं, परैं नहीं ते माया माहीं।
चित चंचल हयके सम अहहीं, होहि समाहित गुरुपद गहहीं ॥
जे गुरु बिनु भव तरिबौ चाही, ते बिनु केवट उदधि तराहीं।
जे रति सुखकूँ बड़ सुख मानें, ते नहिं आत्मतत्त्व पहिचानें ॥
सत्संगति जिनकूँ मिलि जावै, तिनिकूँ रति-सुख घर नहिँ भावै।
स्वरग नरक दोऊ दुखकारन, आत्मज्ञान ही है सुख भाजन ॥
जे गृह तजि पुनि रति सुख चाहे, ते पुनि पुनि नरकनिमें जावें।
हरि ही है या जगमें सारा, हरि हीको यह सकल पसारा ॥
हरि ही जग जगही सब हरि है, हरि हरि कहि नर जगतें तरि है।
हरि ही नारी हरि ही नर है, हरि ही भीतर हरि बाहर है ॥
हरि भजु सब तज हरि गुन गाओ, हरि हीमें नित चित्त लगाओ।
ऊपर हरि हैं नीचे हरि हैं, और कछू नहिँ हरि ही हरि हैं ॥
उठें नाथ सब जगहिँ उठावें, अपनो गुन कीर्तन करवावें।
जो तुमरो नितप्रति गुन गावें, ते तुमरे ही पदकूँ पावें ॥

दोहा—वेद स्तुति सनकादि सुनि, भये प्रसन्न महान।
सम्माने श्रीसनन्दन, पुनि कीयो प्रस्थान ॥

गूढ़ ज्ञान मुनिवर परम, धारें हियमें आप।
श्रवन मनन निदिध्यासतें, मिटैं जगत संताप ॥

छुप्पय—और सुनो इक चरित चली चरचा मुनिमाहीं।
करहिं यज्ञ ऋषि विशद सरस्वति तटके पाहीं ॥
हरि, हर, अजके बीच कौन सुर श्रेष्ठ कहावें।
भृगु मुनि करे नियुक्त परीक्षा लैवें जावें ॥
प्रथम गये ते अज निकट, करी न दंड प्रणाम मुनि।
सुत अविनय लखि अति कुपित, भये न बोले ब्रह्म पुनि ॥

भृगु शिवसन पुनि गये शम्भु दौरे मिलिवे हित।
कह्यो अघोरी आपु न भेंटूँ है यह अनुचित ॥
मारन दौरे रुद्र सती पग परि लौटाये।
क्रोधी शिवकूँ समुझि फेरि मुनि हरिपुर आये ॥
सिर धरि लक्ष्मी अंकमहँ, सोवत हरि मुनि जायके।
उरमहँ मारी लात कषि, उठे विष्णु घबरायकें ॥

लात लगत ही उठे चरन मुनिके सुहलावें।
पुनि पुनि करें प्रणाम दीन ह्वै बचन सुनावें ॥
द्विजवर ! मोतें भूल भई स्वागत नहिं कीन्हों।
सेवा कछु नहिं बनी, कष्ट ऊपरतें दीन्हों ॥
तव पद हैं अतिशय मृदुल, हिय कठोर मम वज्र सम।
पहुँची पग पीड़ा प्रभो ! भये दूरि मम दुरित भ्रम ॥

हरिकी सुनिकें विनय भये भृगु अतिशय लज्जित।
प्रेम न हिये समात कण्ठ गदगद अति विस्मित ॥
आइ सत्रमहँ सकल, वृत्त विप्रनि सन भाख्यो।
विष्णु सबनितें बड़े सबनि यह निश्चय राख्यो ॥
हरिलीला संवरणको, भास होहि जामे यथा।
कहूँ विप्र अरु पार्थकी, अति अद्भुत अब सो कथा ॥

रहे द्वारका पार्थ कृष्ण इक चरित दिखायौ ।
मृतक पुत्र लै बिप्र द्वार राजाके आयौ ॥
शपै यादवनि कहै—मरैं क्यौं मेरे बालक ।
हैं सब यादव पतित अधरमी कुलके घालक ॥
एक एक करि नौ मरे, पुनि पुनि रोवत आइकें ।
अन्तिम द्विज सुत मृतक लखि, अरजुन कहे रिस्याइकें ॥

कहो बिप्र ! का यहाँ न कोई क्षत्रिय निवसै ।
बिलपै ऐसे बिप्र न कोई घरतें निकसै ॥
तव सुत रक्षा करूँ देव ! अब नहि घबरावें ।
होहि प्रसवको समय आइ पुनि मोइ बतावें ॥
सुत रक्षा यदि नहिं करूँ, जरूँ अगिनिमहँ हँस्यो द्विज ।
प्रसव काल आयो जबहिं, गये पार्थ लै धनुष निज ॥

छोंडि शरनि घर घेरि बनायो पिंजरा सम तिन ।
जनम्यो शिशु करि रुदनभयो अन्तरहित तत्छिन ॥
अरजुन लज्जित भये बिप्र कटु वचन सुनाये ।
द्विजसुत ढूँढ़न हेतु लोकपालनि पुर धाये ॥
कहूँ मिल्यो बालक नहीं, लागे अरजुन तब जरन ।
तोइ दिखाऊँ द्विज तनय, चल बोले अशरनशरन ॥

दै अरजुरकूँ धीर ताहि रथमहँ बैठार्यो ।
पच्छिम दिशि करि लक्ष्य दिव्य रथ तुरत सिधार्यो ॥
पर्वत, द्वीप, समुद्र सात सब लंघन करिकें ।
कर्यो घोरतम नाश सुदर्शन आगे बढ़िकें ॥
देख्यो तमके पार अति, दिव्य तेजमय लोक तहँ ।
परे सहस फन अहि प्रबल, दिव्य उदधिके भवनमहँ ॥

तिनकी शैया सुखद ताहिपर श्याम विराजैं।
भूमा, अज, अखिलेश अस्त्र आयुध सह भ्राजैं॥
पार्थ कृष्णने जाइ चरन वन्दन तिनि कीन्हें।
भूमा पुरुष निहारि तनय दश द्विजके दीन्हें॥

बोले भूमा पुरुष पुनि, नर नारायण उभय तुम।
आओ भू को भार हरि, तुरतहिं आयसु देहिं हम॥

करिकें दंड प्रनाम द्वारका दोऊ आये।
द्विजके दशहू तनय दये दोऊ हरषाये॥
समुझे अरजुन भेद करन हारे सब हरि हैं।
कोई करि नहिं सकै कछू कारे सब करिहैं॥

यों लीला संवरणको, यदुनन्दन निश्चय कर्यो।
भावमयी हरि भामिनिनि, को आपुहि हीयो भर्यो॥

इति श्रीभागवतचरितके षष्ठाहमें हर भृगु अर्जनानुग्रह नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

भाग्यवती हरि प्रिया रिझावैं हरिकूँ नित प्रति ।
रहैं सुखी सब सदा सुमिरि श्रीहरि चितवन गति ॥
कमलनयन सुख दयो सरसतामहँ सब पागीं ।
अब सबकूँ अति बिरहमयी लीला ते लागीं ॥
कुररी, चकवी, नीरनिधि, चन्द्र, मलय मारुत, सरित ।
कोकिल, भूधर, सजल घन, कहहिं सबनि लखि कछु दुखित ॥

प्रथम गीत

कुररी क्यौं रोवति सुनिशा में ।
सोवत श्याम सुखद शय्या पै बिघन करति तू तामें ॥१॥

बात बताइ बीर ! बिपदाकी, डूबी बिरह बिथामें ।
ये सुखदैनि रैंनि प्रिय सँगमहँ हँसि हँसि बहिन ! बितामे ॥२॥

नींद नहीं आवति है तोकूँ यादि प्रान प्रिय आमें ।
कुटिल कटाच्छ कमल दल लोचन सर हियमहँ धँसि जामे ॥३॥

तो फिर भूख नींद सुख सजनी निशि बासर न सुहामे ।
हमहूँ व्यथित दुखित निशि रोवति तोकूँ का समुझामे ॥४॥

द्वितीय गीत

चकवी ! किन मूरति तू ध्यावै ।
पति वियोगतैं व्याकुल बनिकें बार बार बिललावै ॥१॥
निशि नहिं नींद नीर भोजन तजि नयननि नीर बहावै ।
समुझि श्याम दासी तू हमकूँ मत सौभाग्य सरावै ॥२॥
दासभावमहँ दुख पग पगपै बनि पाछैं पछितावै ।
हरि चरननिपै अरपित माला जो तू शीश चढ़ावै ॥३॥
तो सजनी ! सब ई फिर जीवन यों ही बिलपत जावै ।
निपट निठुर नर कपटी सब ई मत तू नेह बढ़ावै ॥४॥

तृतीय गीत

सागर ! क्यौं गरजत निशिवासर ।
नींदलोपको रोग भयो का जागत रहत निरन्तर ॥१॥
का चितचोर चुराई तुमरी कौस्तुभमणि अति सुन्दर ।
अथवा शंख हरनके कारन कोपत हो नित नटवर ॥२॥
अथवा प्रिया वियोग जनित दुख उमड़ि घुमड़ि उर अन्तर ।
प्रलपत रहत प्रेमके कारन है अति प्रेम भयकर ॥३॥
हमरो चित्त चुरायो हरिने हम तुम एक बराबर ।
प्रभुकी करनी प्रभु ही जाने प्रेम गली अति सांकर ॥४॥

चतुर्थ गीत

शशि क्यौं सुन्दर वदन मलीन ।
तम तव रिपु तव निकट विराजत करन न ताकूँ छीन ॥१॥
राजरोग क्षय दुख अति दारुन तातैं तुम हो दीन ।
अथवा तुमहू ठगे श्यामने जो सब कला प्रवीन ॥२॥

सुनि सुनि सरस श्यामकी बतियाँ छतियाँ छेद नबीन ।
बिंधिकें भयो हियो छननी सम कान्ति भई सब छीन ॥३॥
तुम सम हमहूँ परम दुखित शशि ! भईं निठुर आधीन ।
प्रभु बिनु जग सूनो सब दीखत, कृष्ण पक्ष अति हीन ॥४॥

पंचम गीत

मलयानिल ! क्यौ दुखी बनाओ ।
हम अबला जगमहँ अति निरबल क्यौं हिय चोट चलाओ ॥१॥
आपुहिँ दुखी श्याम दुख दीनो नमक कटे बुरकाओ ।
हरि कटाक्ष सर कसकत उरमहँ तुम ताकूं करकाओ ॥२॥
मदन दहत हियकूँ परि तुम नहिँ सखा समुझि समुझाओ ।
बहि बहि मंद सुगन्धित शीतल रतिपतिकूं उकसाओ ॥३॥

षष्ठ गीत

घन ! तुम यदुनन्दनके प्यारे ।
नेह रोग तुमहूकूँ लाग्यो चित्त चढ़ि गये कारे ॥१॥
करिके प्रेम कौन सुख पायो सब ई भये दुखारे ।
छिन छिन पल पल रोवत बीतत नयननि बहत पनारे ॥२॥
हमने फँसि जो जो दुख पाये सो तुम नाहिँ बिचारे ।
अब झर झर आँसू बरसावत कपटी कृष्ण हमारे ॥३॥

सप्तम गीत

कोकिल ! कुहू कुहूका बोलति ।
रसमें सनीं सुधा सम बानी बोलति तरुपै डोलति ॥१॥
ऐसे ही ये श्याम निगोड़े प्रेम पिटारो खोलत ।
नेह तुलामहँ हियकूँ धरि के राग बाटतै तोलत ॥२॥

कूजति तू कल कंठ कोकिले ! प्रियकी सुरति दिवावति ।
का प्रिय करें बहिन ! तेरो हम तव चरननि सिर नावति ॥३॥
गोविंदके गुन खग गन गावन उड़ि उड़ि इत ई रोवत ।
तूतो प्रभुके प्रेम छीरमहँ मधुरव मिसिरी घोरति ॥४॥

अष्टम गीत

भूधर ! प्रेम समाधि लगाओ ?
नहिँ डोलत नहिँ बोलत बाबा आसन अचल जमाओ ॥१॥
का सोचत का चाहत तप करि अपनी साध बताओ ।
अतिशय मृदुल चरन यदुबरतैं शिखरनि परसन चाओ ॥२॥
परसि प्यास नहिँ बुझै बावरे ! मत तिनकूँ ललचाओ ।
प्रथम होहिँ सुख अतिशय अनुपम परि पीछे पछिताओ ॥३॥
हम बिललावति रोवत डोलति हरितैं हमे मिलाओ ।
बज्र समान कठिन हिय हमरे प्रभु पदतैं पिघलाओ ॥४॥

नवम गीत

सरिता ! क्यौं सूखत तव गात ।
नहिँ पय भ्रमर हिलोर तरंगहु तट मर्याद दिखात ॥१॥
देखी प्रथम फली फूली तू सजि बजि पिय ढिँग जात ।
अब न पदुम श्री, मीन पीन, पय, चन्द्र वदन कुम्हिलात ॥२॥
हमहूँ दुखित प्रणय सर हरि हिय घुसि पीड़ा पहुँचात ।
बनि दुरबल भटकति इत उत निशि दिवस कछू न सुहात ॥३॥
ज्यों तुम पति-पथ तैं अब बंचित त्यौं हमहू घबरात ।
प्रभु मुखकमल सुरति करि रोवति जग सब सून दिखात ॥४॥

दशम गीत

हंसा ! हरिके दूत जनाओ !
लैके सरस सँदेश श्यामको हमरे ढिंग मत आओ ॥१॥

होहि न तोष सँदेशनितें प्रिय, यदुवर हमहिं मिलाओ ।
देखो परि न जलमुही कमला सौति संग मत लाओ ॥२॥

लिपटी रहत श्याम अँगमहँ नित ताको मुँह न दिखाओ ।
हम सबहू कछु लगैं तिहारी एक बार फिरि आओ ॥३॥

जाओ जाओ यदुनन्दनढिंग प्रिय संदेश सुनाओ ।
करवाओ प्रभु परस प्रेमतें तनकी तपन बुझाओ ॥४॥

छप्पय—गावैं महिषीं गीत कबहुँ नहिं श्याम भुलावैं ।
तिनिके भागनि इन्द्र, शम्भु, अज सकल सरावैं ॥
जगपतिकूँ पति पाइ भये तिनिके सुत दश दश ।
सबमें श्रीप्रद्युम्न ज्येष्ठ जिनिको व्यापो यश ॥

तिनिके श्रीअनिरुद्धजी, शूरवीर-वर सुत भये ।
वज्र भये तिनिके तनय, यदुकुलक्षयतें बचि गये ॥

वज्र तनय प्रतिबाहु, सुबाहू सुतहू तिनिके ।
शान्तसेन तिनि पुत्र भये शतसेनहु उनिके ॥
यादव कोटि असंख्य सबनिकी संख्या नाहीं ।
यों यदुकुल पुनि बढ़्यो छीन कलियुगके माहीं ॥

जब सब सुरगन, धेनु, द्विज-अघरम तै ह्वैकें दुखित ।
हरिढिंग जावें दीन ह्वै, होहिं अवतरित तब अजित ॥

सब सारनि को सार श्याम गुन सुनें सुनावें।
ह्वैकें तन्मय सतत नाम हरि चरितनि गावें॥
सुखद सरस शुभ चरित जगत दुख दूर भगावे।
सुनत सुनत हरि कथा कृष्ण हियमाहिं समावें॥
पावन परम चरित्र जे, नेम प्रेमतें-गायँगे।
ते पहुँचहिं प्रभु पदनिमहँ, पुण्य परम पद पायँगे॥

इति श्रीभागवतचरित के षष्ठाहमें महिषीगीत नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त

[मासिक पारायण-छब्बीसवें दिन का विश्राम]

इति षष्ठाह।



अथ सप्ताह

प्रथमोऽध्यायः

[१]

छप्पय—हे यदुनंदन कृष्णचन्द्र सब जगके शासक।
बासुदेव भगवान भक्त वत्सल भयनाशक॥
हे हरि ज्ञान स्वरूप मोहनाशक दुखभंजन।
हे शोभाके धाम भुवनपति देवकिनंदन॥
हे उद्धव मैत्रेय अरु, विदुर ज्ञानदाता प्रभो।
हम अज्ञानिनिपै कृपा, दृष्टि वृष्टि होवै विभो॥

भटकि रहे भवमाँहिँ पन्थ दीखै नहिं सूधो।
हमहू कूँ मिलि जायँ विदुर सम ब्रजमें ऊधो॥
लेहिं मधुर तव नाम सरस कछु कथा सुनावें।
कैसे पावैं तुम्हे . सरल-सी गैल बतावें॥
संतनिकेढिँग बैठिके, कथा कीरतन करहि नित।
अरचन वन्दन देहतें, तव चरननिमे रमहि चित॥

दोहा—सूत कहे शौनक मुनिहिं, हरि गुन चरित अपार।
कछु रसमय लीला कही, सुनो ज्ञानको सार॥
ललित ललित लीला करीं, प्रभु लैके अवतार।
जो गावे ध्यावे सुने, ते पावे भवपार॥

यों लैकें अवतार श्याम बल असुर सँहारे।
भारभूत भूपाल महाभारतमहँ मारे॥
भूको भार उतारि जानि निज कुलकूँ दरपित।
ताहूको संहार करन हरि सोचत हरषित॥
विप्रनि कुपित कराइकें, यदुकुल शाप दिवाइकें।
गमने प्रभु निज धामकूँ, लीला ललित दिखाइकें॥

शौनक पूछें—सूत! शाप विप्रनि क्यों दीन्हों।
क्यौं हरिने संहार स्वयं निज कुलको कीन्हों॥
सूत कहे—व्रत चतुर मास हित आये ऋषि मुनि।
पिंडारकमहँ रहे, गये यादवकुमार सुनि।
नारि वेष करि शाम्बको, पूछत—प्रसव करै कहा।
कहैं क्रोध करि मुनि—जनै, कुलनाशक मूसल महा॥

द्विजनि शाप सुनि कुमर भये अति दुखित डराये।
साम्ब उदरतैं मुसल भयो लखि सब घबराये॥
थर थर काँपत आइ नृपहिं सब वृत्त बतायो।
उग्रसेन सुनि सकल मुसल तुरतहिं रितवायो॥
चूरौ अरु लोहो बच्यो, फेंक्यो सागरमहँ जबहिं।
चूरौ बहि तटपै लग्यो, भये एरका तृन तबहिं॥

जो लोहेकी कील बची सो सफरी खाई।
उदर फारि सो जरा व्याध सर नोंक लगाई॥
यदुकुलको संहार साज सबरो ई साज्यो।
महाकालको कठिन क्रूर अब घंटा बाज्यो॥
सखा और निज जनककूँ, तत्व ज्ञान अन्तिम दयो।
नारद मुनि वसुदेवतैं, उद्धवतैं आपुहिं कह्यो॥

अब नारद बसुदेव सुनहु सम्बाद प्रथम मुनि।
भजै मोह भ्रम सकल सरल उपदेश सुखद सुनि॥
एक दिवस बसुदेव भवन नारद मुनि आये।
सब विधि करि सत्कार मृदुल आसन बैठाये॥
बोले श्रीवसुदेव जी—मुनिवर! अब हम का करें।
देहु सुगम उपदेश बर, अनायास जगतैं तरें॥

माया मोहित भयो कर्यो मैंने तप सुत हित।
अब समुझ्यो यह रहस लगायो प्रभुचरननि चित॥
बोले नारद—नृपति! प्रश्न अति सुन्दर कीयो।
कृष्णपिता ह्वै मोइ प्रश्न करि आदर दीयो॥
नव योगेश्वर जनकको, भयो सुखद संवाद बर।
जो सब देशनि सब समय, है सबकूँ कल्याणकर॥

ऋषभतनय शत भये, इक्यासी बिप्र कहाये।
नव द्वीपनि नव नृपति भूप बड़ भरत बनाये॥
कवि, हरि, आविर्होत्र, पिप्पलायन, करभाजन।
अन्तरिक्ष अरु चमस, द्रुमिल अरु प्रबुध योगिगन॥
नव योगेश्वर विदित जग, जनक सभामहँ सब गये।
मैथिल मन अति मुदित ह्वै, परमारथ पूछत भये॥

बोले विज्ञ विदेह—विप्रगन! बात बतावें।
जा जगमहँ का सार भागवत धर्म सुनावें॥
जिनि धरमनिकूँ पालि, जगत्के बन्धन टूटें।
लोक और परलोक जीवके भय सब छूटें॥
जनक प्रश्न सुनि मुनिनिमें, तैं जो कवि मुनि ज्येष्ठ हैं।
भूपतितैं कहिबे लगे, जो सब ई बिधि श्रेष्ठ हैं॥

कवि बोले—नृप ! अजित चरन चिन्तन ही भयहर ।
सुगम भागवत धरम राजपथ सुन्दर सुखकर ॥
तन, मन, बानी, बुद्धि आदितैं करै करम जो ।
कृष्णार्पण करि देइ न फिरि बन्धन कारक सो ॥

प्रभु लीला नितनित सुनै, नाम गान निरभय करै ।
नाचै गावै नेह भरि, हँसि रोवै गिरि गिरि परै ॥

लोक लाजकूँ त्यागि पुकारै प्रभु अब आओ ।
हरि ! नारायन ! कृष्ण ! कृपालो ! दरश दिखाओ ॥
ह्वैकें सदा असंग त्यागि संकोच सबनिको ।
करै मधुर स्वर सतत कीरतन हरि नामनिको ॥

करत करत कीर्तन कलित, होहि प्रेम प्रभु पदनिमहँ ।
तब निरखै निज इष्टकूँ, जीव चराचर सबनिमहँ ॥

वृत्त, नीरनिधि, नदी, सरोवर, पुर, वन, भूधर ।
पृथिवी,जल,अरु अनिल,अनल,नभ,नखत चराचर ॥
सबकूँ प्रभुको रूप समुझि निज शीश नवावैं ।
आदर सबको करै भेद मनमहँ नहिँ लावैं ॥

भगै भूख भोजन करत, तुष्टि पुष्टि हू होहि ज्यों ।
भजन करत प्रभु प्रेम अरु, होहि ज्ञान वैराग्य त्यों ॥

पुनि नृप कहैं विदेह—भागवत कैसे जानें ।
हैं ये भगवद्भक्त कौन विधितैं पहिचानें ॥
सबई देहिँ बताइ भागवत लच्छन भगवन ।
भक्त आचरन,चलन,मिलन, बोलन अरु चितवन ॥

सुनि कवि भूपति प्रश्न सुनि, निरखे मुनिवर हरि जबहिँ ।
समुझि बन्धु संकेत हरि, लगे दैंन उत्तर तबहिँ ॥

हरि बोले—नृप ! श्रेष्ठ भक्त हरि सबहिँ निहारैं ।
अपनेमहँ लखि सबनि न कबहूँ असत् उचारें ॥
ये तो उत्तम भक्त मध्य कछु भेद जनावैं ।
खलनि उपेक्षा, नेह भक्त, हरि प्रेम दृढ़ावैं ॥

अधम न पूजहिँ भक्तकूँ, प्रभुहिँ न निरखैं सबनिमहँ ।
प्रतिमा पूजन करहिँ नित, लहैं सिद्धि कछु दिननिमहँ ॥

करै सकल व्यवहार होहि आसक्त न तबहूँ ।
समुझै माया सबहिँ करै नहिं सुख दुख कबहूँ ॥
जो सांसारिक धर्म न मोहित तिनिमहँ होवै ।
हँसै न लखि अनुकूल निरखि प्रतिकूल न रोवै ।

जनम, करम, आश्रम, बरण, जाति भेद मनतैं तजैं ।
ते ई भगवत् भक्त बर, प्रेम सहित प्रभुकूँ भजैं ॥

परमभागवत मैं मेरीमहँ नाहिं भुलावैं ।
हरि सुमिरनके हेतु राज वैभव ठुकरावैं ॥
सुमिरन निशि दिन करैं नहीं प्रभु पद बिसरावैं ।
समदरसी बनिजायँ परमपद तबई पावैं ॥

पल पल सेवहिँ हरि चरन, शरन गहैं सब कछु सहैं ।
तिनकूँ ऋषि मुनि बेदवित्, भक्त-मुकुटमणि बर कहैं ॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताहमें यदुकुल शाप नारद वसुदेव सम्बाद नामक प्रथम अध्याय समाप्त ।

[पाक्षिक पारायण—तेरहवें दिवसका विश्राम]

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

बोले मैथिल भूप—नाथ ! मम रोग मिटाओ।
कृष्ण कथामृत मधुर सरस कछु अधिक पिआओ॥
होहि न मेरी तृप्ति चारु प्रभु चरित सुनावें।
माया अति बलवती बताई तिहि समुझावें॥

अन्तरिक्ष बोले तबहिँ, त्रिगुनमयी माया प्रबल।
सर्ग स्थिति लयकारिनी, सृजत बायु, भू, जल, अनल॥

हरि स्वरूप निज जीव भोग अरु मोक्ष करनकूँ।
पंच भूततैं रचे दीर्घ अरु लघु प्रानिनिकूँ॥
तिनि सबमहँ प्रभु प्रविशि करन मन बनि भोगनिकूँ।
भोगैं ह्वै आसक्त आतमा मानै इनिकूँ॥

करम बासना युक्त ह्वै, कैं भटकै संसारमहँ।
पुनि पुनि जनमै पुनि मरै, पर्यो प्रबाह अपारमहँ॥

प्रकृति और महतत्व, अहं तैजस रज तममय।
तामसतैं सब भूत करन राजसतैं निश्चय॥
करननिके सब देव और मन तैजस संभव।
ह्वैकैं सब उत्पन्न, रहे फिरि प्रलय होहि जब॥

तब ये सब प्रतिलोमतैं, मिलै जाय अव्यक्तमहँ।
यह माया भगवानकी, रहै सदा परतत्वमहँ॥

कैसे माया तरें, नृपतिने पूछ्यो जब ई।
सुनि मुनिप्रवर प्रबुद्ध भूपतैं बोले तब ई॥
समुझै घर, धन, करम, नाशयुत गुरु चरननि ढिँग।
जावै सीखै धरम भागवत भक्तनिके सँग॥

सतसंगति, मैत्री, दया, बिनय शौच तप तितिक्षा।
बिनय बड़नि प्रति नेह सम, दीननिके प्रति सदिच्छा॥

रहै मौन स्वाध्याय सरलता चितमहँ धारै।
ब्रह्मचर्यव्रत धारि न काहू जीवहिँ मारै॥
सुख दुखमहँ सम रहै निहारे सब थल हरिकूँ।
रहै सदा एकान्त न समुझै अपनो घरकूँ॥

पट पवित्र पहिनै परम, यथालाभ सतोष नित।
सतत भागवत- धर्मके, ग्रथनिमें ही देहि चित॥

करै न निंदा भूलि अन्य शास्त्रनिकी कबहूँ।
चाहैं सरबसु मिलै अनृत बोलै नहिँ तबहूँ॥
सयम मन अरु बचन करमतैं नित ई राखै।
शम दमको आचरन करै हरि चरितनि भाखै॥

जनम करम गुन गन श्रवन, श्रीहरिके नित नित करै।
कथा कीरतन ध्यानमहँ, रहै मगन माया तरै॥

यज्ञ करै मख, दान, मंत्रजप, तप सब नियमित।
सुत, दारा, गृह, प्रान करै सब हरिकूँ अरपित॥
हरि भक्तनि सरबस्व समुझि सेवै सुख पावै।
हरि चरचाकूँ त्यागि अनत नहिँ चित्त चलावै॥

इन धरमनि आचरनतैं, प्रेम भाव होवै उदित।
भक्ति भाव भावित भगत, नित नाचत रोवत हँसत॥

नारायन हरि कौन, नृपति ने प्रश्न कर्यो जब।
सुनिके बोले बिहँसि पिप्पलायन मुनिवर तब ॥
जगकी उतपति प्रलय अकारन ह्वैके कारन।
बाहर भीतर रहैं सबनिमहँ हरिनारायन ॥

स्वयं प्रकाशित परावर, नेति निगम आगम कहैं।
प्रान, करन, अन्तःकरन, नित जिनतैं जीवन लहैं ॥

त्रिवृत् और महतत्त्व, सूत्र, हंकार, सकल सुर।
करन, अरथ, सत, असत ब्रह्म ही सब थल अक्षर ॥
साक्षी चेतन शुद्ध नित्य कूटस्थ कहावै।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति सबनिको दृश्य दिखावै ॥

इच्छा जब उत्कट बढ़ै, कब पाऊँ प्रभु पद कमल।
करमयोगतैं होहि मन, शुद्ध ब्रह्म दीखै अमल ॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताहमें नवयोगेश्वरोपदेश नामक द्वितीय अध्याय समाप्त।



अथ तृतीयोऽध्यायः

[३]

करमयोग अब कहैं, जनक जब बोले मुनितैं ।
मुनिवर आविर्होत्र बिहँसिके बोले तिनितैं ॥
करमयोग अति कठिन होहिँ मोहित हू ज्ञानी ।
करमफंदमें फँसे न समुझै नर अज्ञानी ॥
करम करै निष्काम नित, वेद बिहित प्रभु प्रीति हित ।
प्रतिमापूजन प्रेमतैं, करै होहि तब शुद्ध चित ॥१

भीतर बाहर करन शुद्ध करि प्रतिमा सम्मुख ।
बैठे प्राणायाम करै तजि जगके सुख दुख ॥
पूजाकी सब वस्तु जथा क्रम सब ईं धरिकें ।
स्वयं अङ्ग करन्यास करै, प्रतिमामहँ करिकें ॥
मूलमंत्र पढ़िकें करै, प्रतिमा पूजन प्रेमतैं ।
अङ्ग उपाङ्ग सपार्षदहिँ, पूजै नित प्रति नैमतैं ॥२

पाद्य, अरघ, आचमन, स्नान, नाना पट, भूषन ।
गन्ध, पुष्प, तिल, हार, धूप, दीपक, बर व्यंजन ॥
पुङ्गीफल, तांबूल, दच्छिणा, नीराजन, करि ।
चमाप्रार्थना स्तोत्र दंडवत पृथिवीपै परि ॥
यों तन्मय ह्वैकें करै, पूजन प्रभु परमेशको ।
होवै तबहीं नाश सब, जगके दुख भय क्लेशको ॥३

श्रीहरिको निरमाल्य गन्ध माला सिर धारै।
पूजित विग्रह यथाथान धरि नाम उच्चारै॥
यों जल, थल, रवि, अनल, अतिथि,प्रतिमाकेमाहीं।
यजन कृष्णको करै मुक्ति पद दुरलभ-नाहीं॥
अरचन, पूजन, कीरतन, अवतारनिको नित करै।
त्रिभुवनकूँ तारै स्वयं, इकिस पीढ़िनि सँग तरै॥

भूप कहे—अवतारचरित सब देव! सुनाओ।
द्रुमिल कहे—अब चित्त नृपति मम ओर लगाओ॥
हैं अवतार अनन्त अन्त वेदहु नहिं पावैं।
तोऊ कछु कछु गुननि सहित हरि चरित सुनावैं॥
प्रथम पुरुष वे ई भये, अज, हरि, हर नर नरायन।
बदरीवनमहँ तप करत, काम क्रोधतैं विगत मन॥

हंस और सनकादि ऋषभ हयग्रीव मत्स्य हरि।
कियो अवनि उद्धार वेद बाराह रूप धरि॥
पुनि प्रभु कछुआ बने पीठ मंदर गिरि धार्‌यो।
बनि हरि गजकूँ ग्राह वक्त्रतैं खैंचि उबार्‌यो॥
बालखिल्य उद्धार करि, इन्द्र शाप रक्षा करी।
असुर वन्दिनी बनी बहु, सुर-ललननि विपदा हरी॥

कलप कलप मनु भये लयो अवतार सबनिमहँ।
लयो सुरनिको पक्ष सुरासुर सबहिं रननिमहँ॥
लै बामन अवतार छले बलि त्रिभुवन पाल्‌यो।
परशुराम बनि गये क्षत्रकुल पापी मार्‌यो॥
रामरूपतैं उदधिपै, कर्‌यो सेतु रावन हन्यो।
जग-उद्धारक मुक्तिप्रद, चरित-सेतु तातैं बन्यो॥

कृष्ण रूप धरि करे, कलित क्रीड़ा कंसारी।
बुद्ध रूपतैं निरदय हिंसा नाथ निवारी ॥
कल्कि लेहि अवतार अंत करि कलिको केशव।
सतयुगको आरम्भ करे करि क्रूरनि निज बश ॥
अवतारनिकी कछु कथा, कही अधिक संक्षेपमहँ।
हरि फिरि के ये ही चरित, सब पुरान अरु बेदमहँ ॥

निमि पूछें—प्रभु ! भक्तिहीन गति कैसें पावें।
कहें चमसमुनि—नृपति ! प्रश्नको मरम बतावें ॥
बर्णाश्रम उत्पन्न करे हरिजनक कहावें।
आदर तिनि नहिँ करे भजैं नहिं तिनि गिरि जावें ॥
जो भोरे अनपढ़ बिबस, भक्त तिनहिँ अपनाइकें।
कथा कीरतन सुलभ करि, तारें नाम सुनाइकें ॥

कछु पाखंडी अज्ञ अंटकी संट सुनावें।
फलश्रुति बाणी मधुर कहे बहु बात बनावें ॥
कामी, क्रोधी, क्रूर, काम्य कछु करम करावें।
भक्ति, भक्त, भगवान सबनिकूँ ढोंग बतावें ॥
धन, वैभव, कुल, रूप, बल, बिद्याके अभिमानमें।
भरे रहैं मन देहिँ नहिँ, भक्त-बछल भगवानमें ॥

मैथुन मदिरा मास बेद बिधि मूर्ख बतावें।
बेद निवृत्ति हित कहे ताहि बिधि कहि समुझावें ॥
इच्छा नियमित करन ब्याह मख बिबिध बताये।
सुत हित कह्यो बिबाह यज्ञ आलभन जताये ॥
सौत्रामणि मखमहँ सुरा, सूँघि नियम पूरो करै।
जो बिधान इनकूँ कहै, सो नर नरकनिमहँ परै ॥

धरम अरथ अरु काम नरक, भू, नाक घुमावैं।
पाये विनु पद परम शान्ति नर कबहुँ न पावैं॥
नित प्रति नव नव सुघर मनोरथ महल बनावैं।
तजि घर, सुत, धन सुहृद् मृत्युके मुखमहँ जावैं॥
होवै दुरगति भक्तिविनु, उभय लोकमहँ नरनिकी।
भक्ति भवनमहँ प्रविसिकैं, होइ सुगति इन सबनिकी॥

निमि पूछैं—युगधर्म सविधि मुनिवर समुझावैं।
युग युगमहँ हरि रूप, नाम अरु वरन बतावें॥
करभाजन मुनि कहे—चारि युग चारि रूप धरि।
सतयुगमहँ बटु बनैं चतरभुज शुक्ल वरन हरि॥
तपतैं तब तिनिकूँ भजैं, प्रेम करैं तपधाम तैं।
करैं कीरतन हंस, मनु, ईश्वर आदिक नाम तैं॥

त्रेतामहँ मख रूप त्रयीमय स्रुक स्रुव धारी।
रक्त बरन भुज चारि रूप धरि रहैं मुरारी॥
पृश्निगर्भ, उरुगाय, वृषाकपि, विष्णु उरुक्रम।
यज्ञ आदि लै नाम करैं कीर्तन नर अनुपम॥
द्वापरमहँ कारे बने, पीताम्बर आयुध सहित।
तन्त्र बेद विधितैं तिनहिं, पूजैं नर चित-समाहित॥

नर नारायन बासुदेव संकर्षन आदिक।
नाम कीरतन करै पूजि प्रभु श्रेष्ठ उपासक॥
कृष्ण कान्ति मय कृष्ण बरन कलि काल सपार्षद।
करिकैं कीर्तन यज्ञ सहजमहँ पाहिँ परमपद॥
राम कृष्ण अवतार गुन, नामनिको कीर्तन करैं।
केवल कीर्तन ही करत, नर भवसागरतैं तरैं॥

या कलि-गुनतैं रीझि जनम कलिमहँ चाहैं सुर।
होवैं कलिमहँ भक्त करैं कीर्तन धरि हरि उर॥
तजि सब बिषय बिलास शरन हरिकी जे जावैं।
सब रिनतैं ह्वै उरिन श्यामके धाम सिधावैं॥

अशुभ करम यदि भूलतैं, कबहुँ भक्ततैं बनि परैं।
तिनकूँ शरनागत बछल, अघहारी श्रीहरि हरैं॥

नव योगेश्वर दयो ज्ञान निमिकूँ ह्वै प्रमुदित।
अति प्रसन्न नृप भये गये ह्वै कैं मुनि पूजित॥
नारद मुनि बसुदेव प्रश्नको उत्तर दीन्हों।
शूर-तनयने ब्रह्मतनयको आदर कीन्हों॥

मुनि बोले—बसुदेवजी! तुम सहपत्नी धन्य अति।
जगमहँ जिनके सुत भये, बासुदेव श्रीजगतपति॥

यों दैकैं उपदेश गये नारदमुनि इत उत।
मोह छोड़ि बसुदेव देवकी दयो कृष्ण चित॥
सूत कहे—यह सुखद चरित निरमल अति पावन।
मोह बिनाशक मुक्तिकरन जग दुःख बिनाशन॥

यों नारद बसुदेवको, प्रश्नोत्तर मुनिवर भयो।
कहूँ ज्ञान अब अति बिषद, जो प्रभु उद्धवतैं कह्यो॥

इति श्रीभगवतचरितके सप्ताहमें नारद वसुदेव सम्बाद समाप्ति नामक तृतीय अध्याय समाप्त

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[४]

एक दिवस बसु,रुद्र,पितर, ऋषि मुनि,शिव,सुरगन।
सब मिलि-प्रभुढिँग गये द्वारका सँग चतुरानन॥
नन्दन वनके सुमन विपुल प्रभुपै बरसाये।
नव जलधर सम छटा निरखि सब अति हरषाये॥
करि दरशन घन श्यामके, दुःख शोक सबके भगे।
सुललित पद अति मधुर स्वर, तैं इस्तुति करिवे लगे॥

करि विनती अज कहैं नाथ! भू भार उतार्यो।
पापी असुरनि मारि देव द्विज दुःख निवार्यो॥
हम सब प्रभुवर खड़े कृपा करि हमे निहारें।
अब न रह्यो कछु काम धाम धनश्याम पधारें॥
हँसि बोले, रुक्मिनि-रमन, शेष अबहिं कछु काम अज।
यदुकुलको संहार करि, तब आऊँ पुनि धाम निज॥

हरि आयसु सिर धारि देव निज धाम सिधारे।
पुरी द्वारकामाँहि सबनि उत्पात निहारे॥
बोले सबतैं श्याम—नित्य अपशकुन दिखावें।
सब मिलि चलो प्रभास पितर सुर पूजि नहावें॥
करिवे शान्ति अनिष्टकी, सब चलिवे उद्यत भये।
हरि हियकी सब समुझिकें, उद्धवजी प्रभु ढिँगगये॥

बोले हे विश्वेश ! आपुकी इच्छा जानी।
तजि पृथिवी निजलोक गमनकी मनमहँ ठानी ॥
रहूँ तुम्हारे बिना नाथ ! नहिं जगके पाहीं।
तजैं न मोकूँ देव ! संग लै चलैं गुसाईं ॥
प्रभु, प्रसाद पट, गंध स्रक्, सिर धरि कीर्तन करिङ्गे।
तव चरितनि चिन्तन करत, दुस्तर माया तरिङ्गे ॥

उद्धवकी सुनि बिनय बिहँसि बोले बनवारी।
हाँ, मैंने निजलोक गमनकी करी तयारी ॥
यदुकुल होवै नाश धरम अब होहिँ तिरोहित।
तुम तजिके सब मोह जाउ बदरीवन तप हित ॥
जो मन इन्द्रिय बिषय हैं, मायामय सब मानिकैं।
त्यागो गुन अरु दोष भ्रम, आत्मरूप जग जानिकैं ॥

आत्मा अद्वय अजर अमर व्यापक सब थलमें।
जगमहँ एक समान रहे रवि शशि नभ जलमें ॥
जाकूँ ऐसो ज्ञान न सो जगमहँ दुख पावै।
दृश्य चराचरमाँहिँ सबनिमहँ ब्रह्म लखावै ॥
ज्ञानी बालकके सरिस, भेद भावतें रहित है।
नहिं सोचैं वह स्वप्नमें, यह अविहित यह विहित है ॥

कर्म त्याग संन्यास धरम सुनि बोले उद्धव।
विषय गहन हौं अज्ञ सरलतातैं कहु केशव ॥
काकी जाऊँ शरन आपु सम और न पाऊँ।
आयो तुमरी शरन चरनमहँ शीश नवाऊँ ॥
उद्धवकी सुनिके विनय, बोले प्रभु परमातमा।
उपदेशक, गुरु, सुहृद रिपु, है अपनी ही आतमा ॥

नाना योनि बनाइ सबनिमहँ निवसूँ भाई।
किन्तु मोइ नरयोनि सबनितैं अति सुखदाई॥
करिकैं मनुज विचार भेद मेरो सब जानें।
इन्द्रिय मन धी परें मोइ साधक पहिचानें॥

नृप यदु अरु अवधूतको, भयो सुखद संवाद जो।
अति पावन अति ज्ञानमय, कहूँ प्रेमतैं सुनहु सो॥

एक दिवस यदु गये निहारे वनमहँ ज्ञानी।
थूल, नगन निरभीक युवक कवि सरल अमानी॥
नित्य मगन अवधूत देखि नृप पूछहिं मुनिवर।
विचरो बालक सरिस बुद्धिकहँ पाई सुखकर॥

दच्छ मधुरभाषी सुघर, तोऊ जड़ उनमत्त सम।
निरधन ह्वै विचरो सुखी, काम अगिनिमहँ तपहिँ हम॥

हँसि बोले अवधूत-भूमि,नभ,अनिल, अनल, जल।
रवि, शशि, अजगर, जलधि, कबूतर, हरिन, रुदनबल॥
मधुमक्खी, करि, मीन, पिंगला वेश्या, कुररी।
शरकृत, भृंगी, सरप, कुमारी कन्या, मकरी॥

मधुहारी अरु पतङ्ग, गुरु चौबीस बनाइकें।
सबईतैं शिक्षा लई, इन सबके ढिंग आइके॥

होवें नित उत्पात अवनिपै सब ई खोदें।
कहँ चाँदी कहँ कनक खोदिकें नर नित सोदे॥
तऊ न होवै कुपित धीरता मनमहँ धारै।
ज्ञानीको सत्कार करे चाहे तो मारै॥

माला मेली कण्ठमें, काहूने गारी दई।
रहे सदा ई एक रस, यह शिक्षा भूतैं लई॥

परकारजमहँ निरत रहैं सब अँगतै नग गिरि।
पत्र, पुष्प, फल, मूल, काष्ठ बलकल, छाया करि॥
देहिँ सबनि विश्राम करैं निज जीवन अरपित।
आश्रय, जल, आहार, दान करि होवैं प्रमुदित॥

नित प्रति पर उपकारकी, शिक्षा गिरि वृक्षनि दई।
कहूँ ताहि जो बायुकूँ, गुरु बनाइ शिक्षा लई॥

केवल करि आहार प्रान सन्तुष्ट रहे नित।
है सुन्दर रसयुक्त पदारथ नहिँ देवै चित॥
प्रान बायुतै लीनी मैंने. संयम शिक्षा।
मिलै भाग्यवश रूखी सूखी जैसी भिक्षा॥

ताकूँ पावै प्रेमतै, प्रान मात्र धारन करै।
कबहुँ न रसना स्वादके, चक्करमहँ योगी परै॥

गन्ध बहन नित करै रहै निरलेप अनिलहू।
परस न ताकूँ करै गन्ध दुरगन्ध तनिकहू॥
यों ही योगी रहै विरत विषयनितैं नित नित।
तनके आश्रय रहै देहि नहिँ तिनके गुन चित॥

होहि गंधमहँ लिप्त नहिँ, अनल सर्वगामी सतत।
शिक्षा लई असगकी, विज्ञ बायुवत नित विरत॥

करिकें गुरु आकाश लई जो शिक्षा भूपति।
कहूँ ताहि अब सुनहु आतमा है असङ्ग अति॥
व्याप्त चराचरमाँहिँ सर्वगत अनुगत सबके।
सूत्र व्याप्त सबमाँहिँ रहै मनिका बश तिनके॥

सीखी अपरिछिन्नता, आत्मा देह असङ्गता।
इन भूननितें आतमा, की होवै नहिँ एकता॥

तेज किरन आकासमाँहिँ चहुँ दिशितैं आजैं।
जल सीकर नित व्याप्त वायु सरवत्र विराजैं॥
पृथिवी जनित पदार्थ रहे सब ताकेमाहीँ।
भरे रहे नित मेघ लिप्त तिनमहँ नभ नाहीँ॥
ह्वैकें मुनि नित समाहित, करै भावना गगनमहँ।
आत्मा शुद्ध अनादि अज, फँसै न तीनिहु गुननिमहँ॥

जल गुरुतैं गुन चार भूप सीखे अति सुन्दर।
नित स्वभावतैं शुद्ध रहै मुनि बाहर भीतर॥
स्नेहयुक्त बनि सबनि प्रेममहँ नित्य न्हावावै।
कहिकें कडबे वचन चित्त नहिं कबहुँ दुखावै॥
तीर्थ रूप सबकूँ बनै, सदा तृप्त सबकूँ करै।
हँसै हँसावै सरल चित, दुखियनिके दुखकूँ हरै॥

दरशन दैके करै सबनिकूँ शुद्ध सरल चित।
परस प्रेमतैं करै करैं नित सब प्रानिनि हित॥
कृष्ण कीरतन करै कथा हरि सुनै सुनावै।
परस्वारथमहँ निरत सबनिकूँ धीर बँधावै॥
जीवन ही जलकूँ कह्यो, सृष्टि प्रथम जलतैं भई।
उत्तम शिक्षा नीर गुरु, तै राजन ! मैंने लई॥

तेजस्वी मुनि रहै अग्निके सरिस निरन्तर।
तपतैं ह्वै देदीप्य प्रकाशित भीतर बाहर॥
क्षुभित होहि नहिँ कबहुँ, पेट ही पात्र बनावै।
भिक्षामें जो मिलै ताहि ताही छिन खावै॥
रहै सर्वभक्षी तऊ, कबहुँ न मल धारन करै।
कहूँ गुप्त कहुँ प्रकट ह्वै, भिक्षादातनि अघ हरै॥

भेद भाव नहिँ करै अन्न सब ईको खावै।
जामें प्रबिसै अनल रूप ताके ह्वै जावै॥
लेवै शिक्षा यही आतमा सबकेमाहीँ।
प्रबिसै ह्वै तद्रूप लिप्त तिनिमहँ सो नाहीँ॥
लये आठ गुन अगिनितैं, तातैं ते मम गुरु भये।
कहूँ तिनहिँ अब चन्द्र गुरु, करि तिनतैं जो गुन लये॥

चन्द्र एक रस रहै स्वयं निजलोक प्रकाशित।
कृष्णपक्षमहँ घटै शुक्लमहँ बढ़ै कला नित॥
सोचै योगी जिही आतमा अजर अमर अज।
गरभ, जनम अरु जरा मृत्यु तनके सब कारज॥
छिन छिन पल पल जगत्महँ, परिवर्तन होवै सतत।
चलत रहत तातै कहत, जाकूँ सब मुनिजन जगत॥

अग्नि शिखा छिनमाँहिँ प्रकट ह्वैकें छिपि जावै।
एक नष्ट ह्वै जाय दूसरी तत्छिन आवै॥
जल उद्गमतैं निकसि बहै फिरि नूतन पुनि पुनि।
वहै ग्रहन तब करै थान पुनि बीते बिन्दुनि॥
जग परिवर्तनशील है, असत् अभद्र अनित्य है।
परिवर्तन तनमहँ सकल, आत्मा चेतन नित्य है॥

अब जो शिक्षा लई सूर्य्यतैं ताहि सुनाऊँ।
गुरु सूरज च्यौं कर्यो हेतु ताकौ समुझाऊँ॥
निज किरननितैं खींचि सलिल ग्रीषममहँ लेवै।
वरषामहं वरसाइ फेरि प्रानिनिकूँ देवे॥
इन्द्रिनितैं स्वीकारिकैं, त्यों ही त्रिगुन पदार्थ सब।
समय पाइ त्यागत तुरत, होहि न हर्ष बिषाद तब॥

जलपात्रनिमहँ पृथक सूर्य बहु रूप लखावै ।
टेढ़े मेढ़े गोल पात्र अनुरूप दिखावै ॥
प्रतिबिम्बित लखि अज्ञ पात्रमहँ रविहिँ जनावैं ।
कहे अज्ञ परिछिन्न बहुत कहि ताहि बतावैं ॥
सूर्यबिम्ब सम मुनि कहैं, आत्मा अद्वय सर्वगत ।
अब कपोततैं लयो गुन, कहूँ ताहि नृप देउ चित ॥

काऊ बनके सघन वृक्षपै रहै कबूतर ।
पत्नी ताकी रूपवती गुण तामें सुन्दर ॥
करैं परस्पर प्रेम राग नव नित्य दृढावैं ।
मिलि जुलि सँग सँग फिरैं संगमें सोवैं खावैं ॥
कछुक कालमें चार सुत, जने नेह दम्पति करैं ।
शिशु कलरव कोमल परस, तैं दोउनिके हिय भरै ॥

दोऊ इक दिन गये चुगन खगघाती आयौ ।
सुन्दर शावक निरखि डारि कण जाल बिछायौ ॥
बालक कणके लोभ जालमहँ फँसि घबराये ।
तब ईं लैकें चुगो तुरत दोऊ तहँ आये ॥
लखि कबूतरी बन्ध-शिशु, स्वयं फँसी पति फँसि मर्यो ।
करै मोह मुनि कबहुँ नहिं, दिव्य ज्ञान हियमहँ धर्यो ॥

अजगर गुरु करि लई सीख माँगन नहिं जावै ।
रूखो सूखो अधिक न्यून पावै सो खावै ॥
यदि भोजन नहिं मिलै याचना करै न कबहूँ ।
होहि चाहिं उपवास करै चिन्ता नहिं तबहूँ ॥
चिन्तातै कारज न कछु, कबहुँ बनै चितमहँ धरै ।
रच्यो उदर सो भरैगो, मूरख च्यौ चिन्ता करै ॥

भाग्यमाँहिँ जो होहि देह सुख दुःख प्रबलहू।
इन्द्रिय, मन, बलयुक्त होहि शारीरिक बलहू ॥
तबहुँ न चिन्ता करै तानिकैं सोवै चादर।
यह शुभ यह है अशुभ कर्मको करै न आदर ॥
काहूतें कड़वो बचन, हित अनहित कबहुँ न कहै।
अजगर सम निद्रित सतत, निर्व्यापार बन्यो रहै ॥

जलनिधि कीन्हीं कृपा दया करि दीक्षा दीन्ही।
निस्तरंग जलराशि निरखि शुभ शिक्षा लीन्हीं ॥
शान्त और गम्भीर रहै सागर सम ज्ञानी।
थाह न समुझै मनुज पार नहिं पावहिँ मानी ॥
चाहैं बहु पूजा करहिँ, अथवा ताड़न करहिँ जन।
घटना कैसीहू घटै, कबहुँ न होवै क्षुभित मन ॥

ज्यों अगनित जलराशि सहित सरिता सागरमहँ।
जावैं तऊ न बृद्धि होहि पयनिधिके पयमहँ ॥
ग्रीषममहँ सुखि जायँ घटै नहिं तबहूँ पानी।
त्यौं प्रिय पाइ पदार्थ होहि हर्षित नहिँ ज्ञानी ॥
सुख दुखमहँ सम भावकी, शिक्षा सागरतैं लई।
लखि समता गम्भीरता, ममता मेरी नसि गई ॥

अब पतङ्ग गुरु कर्‌यो कहूँ कारन सो भूपति।
देखि दीपकी लोय फँसै तामें खल दुरमति ॥
त्यों ही कुंडल कनक कामिनी पद अति सुन्दर।
भोग बुद्धि करि फँसै दैवकी माया दुस्तर ॥
रूप अगिनिमहँ भसम तनु, करै होहि आसक्त अति।
सुन्दरतामहँ सुख समुझि, जगमहँ होवै नहिं सुगति ॥

तातैं सुन्दर नारि निरखि नहिँ चित्त चलावै।
नर सुवेष लखि नारि कबहुँ मन नाहिँ डिगावै॥
जो धारै नहिं सीख व्यर्थ नर देह गँवावै।
ह्वै पतङ्ग सम पतित मृत्युके मुखमहँ जावै॥

यह सुन्दर शिक्षा सुखद, लई पतँग गुरु स्वयं करि।
मधुमक्खी ज्यों गुरु करी, सुनहु ताहि अब धीर धरि॥

पुष्पनितैं मधु लेइ न तिनिको रूप बिगारै।
त्यौं ही मुनि मधुकरी वृत्ति भिक्षाहित धारै॥
सुमननितैं गहि सार स्वार्थ नित अपनो साधै।
त्यौं शास्त्रनिको सार समुझि हरिकूँ आराधै॥

इत उततै अति यत्न करि, मक्खी मधु छत्ता धरै।
त्यों यति कबहूँ भूलतैं, सञ्चय नहिं कबहूँ करै॥

करपै भिक्षा लेइ उदरमें जितौ समावैं।
जलके तटपै जाइ प्रेमतैं ताकूँ पावै॥
बचै अन्न कछु शेष अन्य प्रानिनिकूँ देवैं।
कल या सायंकाल हेतु नहिँ यति धरि लेवै॥

त्यागी बनि संचय करै, सो पीछे पछिताइगो।
मधुमक्खी मधुहित मरै, त्यों यतिहू गिरि जाइगो॥

इक दिन घूमत फिरत गयो नृपवर हौं बनमें।
सोचूँ लखिके बनी काठकी हथिनी मनमें॥
कौनें यह धरि दई खिलौंना बड़ौ बनायो।
इतनेमें मदमत्त युवक इक हाथी आयो॥

प्रबल कामके वेगतैं, अन्धो ह्वै आगे बढ़्यो।
फँस्यो पैर हथिनी सहित, अन्वे कूआमें गिर्‌यो॥

जब कछु आगे बढ़्यो यूथ हाथिनिको आयौ।
पर हथिनी सँग निरखि युवक गज मारि गिरायौ॥
गुरु गज करिकें लई सीख अतिई उपयोगी।
बनी काठकी नारि पैरतें छुये न योगी॥
परनारी है अगिनि सम, काम नेहतें नित जरै।
जो पकरै सो मृत्युको, आलिङ्गन करि बत करै॥

जोरि जोरिकें धरै लोभबश लोभी धनकूँ।
स्वय खाइ नहिँ देहि अतिथि गुरु बन्धु स्वजनकूँ॥
भेद भेदिया लेइ एक दिन चुपके आवै।
मधुहारी सम आइ निकारै मधु सब खावै॥
रचि पचिकें संग्रह करैं, ते देखत रहि जात हैं।
राम भरोसे जे रहैं, मेवा मिश्री खात हैं॥

मैं मेरी करि पहिन लेइ बेड़ी नर पगमहँ।
धन काहूको भयो न होगो है नहिँ जगमहँ॥
मधुमक्खी करि कष्ट राति दिन शहद जुटावै।
भोग करि सकै नहीं काम औरनिके आवै॥
मधुहारी गुरु करि सदा, भिक्षा माँगन जात हूँ।
गृही संग्रहीतें प्रथम, बाबा बनिके खात हूँ॥

बीहड़ बनमें व्याध बिलोक्यो बीन बजावत।
ढिंगमहँ जाल बिछाय मधुर स्वर राग अलापत॥
सुनि बीनाकी तान राग-प्रिय मृग तहँ आयो।
ग्राम-गीत सुनि फँस्यो अज्ञ निज प्रान गँमायो॥
श्रवनेन्द्रिय आधीन है, पछितावै अरु सिर धुनै।
बनवासी यति भूलिकें, विषय गीत कबहुँ न सुनै॥

कोकिलकंठी नारि गाइकें चित्त लुभावै।
विषय प्रशंसा करै स्वार्थतैं तुरत गिरावै॥
व्याधिनि जाल बिछाय मनुजमृग तुरत फँसावै।
ऋष्यश्रृङ्ग दृष्टान्त शास्त्र प्रत्यक्ष बतावै॥
मृग गुरु करि शिक्षा लई, करै राग ब्रजचन्दमहँ।
विषयराग सुनि मृग सरिस, फँसै न जगके फन्दमहँ॥

मत्स्य कर्यो गुरु लई सीख रसना वश राखै।
लोलुपता वश कबहुँ न अनुचित रसकूँ चाखै॥
माँस लोभतैं मत्स्य निगलि काँटेकूँ-जावै।
फेरि उगलि नहिं सकै लोभमहँ प्रान गमावै॥
होवैं विषय निवृत्ति जब, शिथिल होहिं इन्द्रिय सकल।
केवल रसना छोड़िकें, यह इन्द्रिय अतिशय प्रबल॥

ह्वै इन्द्रिय आधीन समय सब योंहीं बीतै।
इन्द्रियजित नहिं होहि न जब तक रसना जीतै॥
रसना संयम सीख लई सफरीतैं राजन्।
वेश्या गुरु ज्यौं करी कहूँ ताको अब कारन॥
मिथिलापुरमहँ पिंगला, वेश्या अति सुन्दर रहति।
आवै कोई नर धनी, बैठी नित आशा करति॥

इक दिन बैठी रही न कोई कामी आयो।
ह्वै निराश वैराग्य भयो मन अति पछितायो॥
सोचति—हौं अति पतित मनुज तन व्यर्थ गमायो।
नित्य कमाऊँ पाप न हरिमहँ चित्त लगायो॥
करैं कामना पूर्ण का, ये कामी अति क्षुद्र नर।
क्यों न भजूँ प्रभुकूँ सतत, जो विश्वम्भर गुणाकर॥

करि करि पश्चाताप पिंगला अतिशय रोयी।
आशा छूटी सुखी भई अति सुखतैं सोयी॥
आशामें ही दुःख निराशा सुखकी जननी।
पावै फल नर अवशि होहि जाकी जस करनी॥

शुभ शिक्षा निरपेक्षता, की वेश्या गुरुतैं लई।
कहूँ कुरर पक्षी कथा, जो मेरे सम्मुख भई॥

मासखंड लै कुरर वेगतैं नभमहँ जावै।
मेरो है जिइ मांस सोचि अति हिये सिहावै॥
इतनेमें कछु बली बिहँग उड़िकें इत आये।
निरखि मांस हिय लोभ बढ़्यो छीनन सब धाये॥

मार परै तोउ न तजै, क्षत विक्षत तनु ह्वै गयो।
कर्‌यो त्याग जब बिवश ह्वै, तब अति आनन्दित भयो॥

शिक्षा मैंने लई करै नहिँ यति संचय धन।
जो जो संचय करै रहै ताहीमहँ निज मन॥
चिन्ता शंका लोभ होहि भय धनतैं नित नित।
धनलोभी बहु रहैं धनीके पीछे उत इत॥

कुरर सरिस संग्रह करै, मार खाइगो सो अवसि।
निष्किञ्चन अति सुख लहै, ब्रह्मामृत सागर प्रविसि॥

बालककूँ अपमान मानको भान न होवै।
सोवै लागे नींद भूख लगिवेपै रोवै॥
घर फूटै या गिरै रहै धन चाहैं जावै।
जो मुखमहँ धरि देउ ताहि भावै तो खावै॥

भेद भाव चिन्ता नहीं, रहै करत क्रीड़ा सतत।
यों ज्ञानी यति हू रहै, आत्मभावमहँ नित निरत॥

द्वै ई जगमहँ सुखी और सब दुखी भूमिपति ।
एक गुननितैं पार ज्ञान विज्ञान निपुण यति ॥
दूसर छलतैं रहित सरल शिशु भोरो भारो ।
अधकचरे नित रहे दुखी चिन्तित हिय धारो ॥
बालक गुरु करि जगतमहँ, विचरूँ ह्वै निःशङ्क नित ।
निज पर भेद भुलाइकेँ, समझूँ सबकूँ आत्मवत ॥

निरखी कन्या एक अकेली बैठी आँगन ।
खोजन माता पिता गये घर पहुँचे पाहुन ॥
चावल घर नहिँ रहे धान वह लागी कूटन ।
पहिनें करमहँ चुरी शङ्खकी लागीं बाजन ॥
पृथक् करीं करतैं कछू, रहीं बजी द्वै शेष जो ।
एक उतारी नहिँ बजी, हौं गुरु कीन्हीं तुरत सो ॥

शिक्षा यातैं लई—कलह होवै बहुतनिमहँ ।
यदि सँग द्वैऊ रहैं—समय बीतै बातनिमहँ ॥
भीड़ भाड़में भिक्षु भूलिकेँ कबहुँ न आवै ।
रखै न दूजो संग अकेलो समय बितावै ॥
एकाकी चिन्तन करै, खटपटतैं नित ही बचै ।
नर नारिनिकी संगता, जनम मरन पुनि पुनि रचै ॥

गुरु कीयो इषुकार बान पथमाँहिँ बनावै ।
ह्वै कें तन्मय चित्तवृत्ति सरमाहिँ लगावै ॥
राजा सेना सहित गयो चित नाहिँ चलायौ ।
इततैं भूपति गयो कह्यो कछु नहिँ रुकुचायौ ॥
विषयनितैं वैराग्य करि, नित नितके अभ्यासतैं ।
चित्त मिलावै लक्ष्यतैं, आसन प्राणायामतैं ॥

रज तम रूपी मैल त्यागि जग बन्धन तोड़ै।
प्रविशि परम पद चित्त धूलि करमनिकी छोड़ै॥
आत्मामहँ चितरोध होहि हियमहँ सुख पावै।
भीतर बाहर फेरि न कछु जग बस्तु दिखावै॥
बाणकारके सरिस नित, करै चित्त एकाग्र यति।
देहि ध्यान नहिं जगतमहँ, तब पावै त्यागी सुगति॥

अहि सम विचरै भिच्छु अकेलो सबतैं छिपिकैं।
एक थान नहिं रहै गुहामें सोवै लुकिकैं॥
कबहुँ न करै प्रमाद समयकूँ व्यर्थ न खोवै।
जन संग्रह नहिं करै अल्पभाषी नित होवै॥
परै न मठके फेरमें, कंकर पत्थर जोरिकैं।
पर्‌यो रहै एकान्तमें, सबतैं नातो तोरिकैं॥

आम-घड़ा सम देह पलकमहँ फटतैं फूटै।
कच्चे काँच समान आँच लागत ही टूटै॥
जा अनित्य तनु हेतु भवन अति बिषद बनावै।
हरि सुमिरन नहिं करै व्यर्थमहँ पाप कमावै॥
पावै सूनो भवन जहँ, अहि सम रैनि बिताइकैं।
चलै फेरि शिक्षा लई, अहि गुरुदेव बनाइकैं॥

मकड़ीतैं शुभ सीख महेश्वर-लीला लीन्हीं।
नित्य सृजन थिति प्रलय करै गुरु तातैं कीन्हीं॥
हियतैं मुखके द्वार जाल विस्तृत फैलावै।
तामें करै बिहार लीलि पीछेतैं जावै॥
कल्प आदिमहँ जगतकूँ, रचै मध्य क्रीड़ा करैं।
कल्प अन्तमहँ निज रचित, सबकूँ हर बनि संहरैं॥

ईश्वर आत्माधार अकेले पुनि रह जावैं।
मायाकूँ करि लुब्ध सूत्रकूँ फेरि बनावैं॥
जामें ओत प्रोत जगत्‌के जीव चराचर।
प्रकृति पुरुषके ईश करें नित खेल परावर॥

रचै हरे रक्षा करै, हरि समान क्रीड़ा करति।
जगबन्धनमें नहिं परै, समुझि खिलारी खेल यति॥

रचि घर भृङ्गी कीट पकरि कीड़ाकूँ लावै।
करिकें घरमें बन्द निरन्तर शब्द सुनावै॥
ताकौ सुनि सुनि शब्द ध्यान भृङ्गीको करिकें।
भृङ्गी ही बनि जाय एक ही तनतैं हरिकें॥

ध्यान धरत तद्‌रूपता, होवै निश्चय यह भई।
गुरु करि भृङ्गीकूँ तुरत, उपयोगी शिक्षा लई॥

काहूमें भय द्वेष नेह वश चित लगि जावै।
भृंगी कीड़ा सरिस तुरत तन्मय बनि जावै॥
तन गुरु कर्‌यो विवेक होहि वैराग्य भूपवर।
उतपति और विनाश होय दुख सहै निरन्तर॥

यद्यपि जातैं तत्वको, चिन्तन हौं नितप्रति करूँ।
जानि परायो मोह तजि, ह्वै असंग निर्भय फिरूँ॥

दारा, सुत, धन, भृत्य, कुटुम घर संचय करिकें।
परहित श्रम नित करै वृक्ष सम दुख बहु सहिकें॥
अपनी अपनी ओर खेंचि इन्द्रिय लै जावैं।
जैसे पतिकूं सौति पकरिकें बहुत नचावैं॥

परमारथ जातैं सधै, वर नर तनकूं पाइकें।
मोक्ष हेतु श्रम नहिं करै, सरबसु जाइ गमाइकें॥

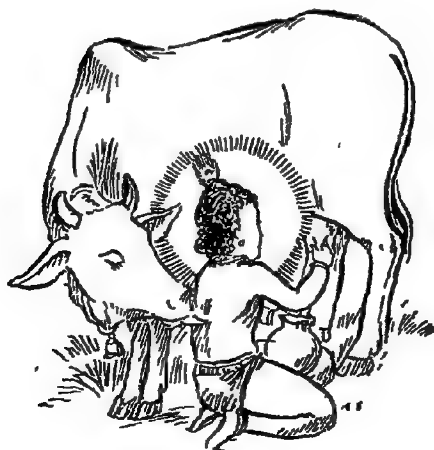
हरिने नाना योनि रचीं परितोष न पायो।
सुखी भये लखि मनुज मोक्षको द्वार बतायो ॥
पाइ मनुजको जनम जनम को अंत न कीयो।
बिषयनि फँसि मरि गयो अमृत तजिकें बिष पीयो ॥

सब योनिन्निमहँ बिषय सुख, मिलै करै क्यौं श्रम अरे।
छनिक दुखद सुख तजि सरस, नित्य सुखहिं भजि बावरे ॥

नहिँ सीमित मम ज्ञान लैहुँ जो होहि सबनिपै।
सबतैं लै उपदेश फिरूँ निःसंग अवनिपै ॥
ब्रह्म एक ही मुनिनि निरूपन बहु बिधि कीयो।
जातैं जो मिलि गयो ज्ञान ग्वाईतै लीयो ॥

कहे कृष्ण—उद्धव ! सुनो, यों कहिके अवधूत मुनि।
पूजित ह्वै नृपतै गये, भये मुदित यदु ज्ञान सुनि ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीतान्तर्गत अवधूतगीता नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त।



अथ पञ्चमोऽध्यायः

[५]

उद्धव ! निज निज धरम पालि पावैं सुख प्रानी ।
आश्रम कुल अरु बरन धरमकूँ त्यागहिं ज्ञानी ॥
भक्त शौच संतोष आदि नियमनिकूँ पालहिं ।
गुरुकूँ पूजहिं सदा साधना सत सब साधहिं ॥
है मिथ्या संसार सब, सत्य समुझि नर दुख सहैं ।
मोकूँ काल स्वभाव सब, वेद जीव, धरमहु कहैं ॥

उद्धव बोले—बद्ध मुक्त अरु भक्तनि लच्छन ।
कहे प्रभो ! सरवेश, सुनत हरि बोले ततृछिन ॥
गुनतैं ही है बद्ध मोच्छ माया-मूलक गुन ।
विद्यातैं है मोच्छ अविद्यातैं जगबन्धन ॥
जीव ईश पच्छी सखा, तनु तरुपै बैठे उभय ।
फल खावै सो भय लहै, निराहार नित ही अभय ॥

कर्त्तापनतैं बँधै अकर्त्ता बँधै न कबहूँ ।
ज्ञानीकूँ दुख देउ विकृत होवै नहिं तबहूँ ॥
ब्रह्मभावमहँ लीन परम अम्मृत नित चाखै ।
इस्तुति निन्दा रहित बुरौ अरु भलौ न भाखै ॥
कीर्तन नामनिको करै, भाखै मेरे गुन करम ।
भक्ति करै मोमें सतत, पाइ उपासक पद परम ॥

पावन मेरी कथा सुनै गावै ध्यावै नित।
लीला अभिनय करै लगावै मम चरननि चित॥
धरम अरथ अरु काम करै है मेरे आश्रित।
पावै निश्चल भक्ति कटै जगकी यह ससृत॥

साधुनिके सतसंगतैं, भक्ति मुक्ति पावै सबहिँ।
पुण्य पुरातन उदय जब, होवैं साधु मिलैं तबहिँ॥

होवें साधु कृपालु तितिच्छू द्रोहरहित नित।
सत्यशील सम भाव हितैषी मृदुल शुद्ध चित॥
कामरहित संयमी सदाचारी निष्किञ्चन।
निस्पृह युक्ताहार शांतचित शरणागत जन॥

धीर गँभीर प्रमाद बिनु, षड रिपुजित थिरधी मुनी।
मान रहित मानद सबहिं, मिलनसार समरथ गुनी॥

करुनामय कवि होहिँ साधु हरि भक्त दृढ़ावैं।
जो शुभ साधन करैं भक्ति ते प्रभुकी पावैं॥
प्रभु-प्रतिमा अरु साधु दरस पूजन पद परसन।
सेवा इस्तुति बिनय सहित गुन नामनि कीर्तन॥

ध्यान दास्य मम पर्व तिथि, उत्सव गायन नित्य नित।
कथा श्रवन अरपन सकल, मेरे हित सब करहिं ब्रत॥

मम हित यात्रा करै देवमन्दिर बनवावै।
स्वयं शक्ति नहिँ होहि यत्न करिकैं करवावै॥
उपवन अरु उद्यान सभायल शाला सुन्दर।
ह्वै कैं निश्छल नित्य करै लेपन मम मन्दिर॥

करी निवेदित वस्तु जो, लेइ न अपने काममहँ।
करै समर्पित वस्तु प्रिय, होहि प्रेम मम नाममहँ॥

विप्र, धेनु, रवि, अनिल, अनल भू वैष्णव पानी।
आत्म अरु आकाश चराचर जगके प्रानी॥
ये सब आश्रय कहे देव पूजाके प्यारे।
उपस्थानतैं सूर्य्य अग्नि घृत आहुति डारे॥
पूजै द्विज आतिथ्य करि, धेनु घास तृन डारिकैं।
वैष्णवकूँ सत्कार करि, पूजे अति प्रिय मानिकैं॥

मुख्य प्राणतैं वायु हृदय आकास ध्यान धरि।
पुष्पादिकतैं नीर भूमि वेदी थापन करि॥
अन्तरातमा करै तुष्ट भोगनितैं नियमित।
पूजैं करि समदृष्टि सकल प्रानिनिमहँ नित नित॥
शान्त चतुरभुज रूपको, करै ध्यान ह्वै समाहित।
करै करम मेरे निमित, मोमैं राखै नित्य चित॥

भक्तियोग सत्संग विना सुख नहिँ नर पावैं।
चाहें जप तप करें योग करि ध्यान लगावैं॥
सत्संगतितैं तरे दैत्य अन्त्यज अघकारी।
असुर, गीध, गज, गाय, गोपिगन, कुब्जा नारी॥
नहीं करी सेवा महत, वेद पढ़े नहिं व्रत करे।
करि सत्संगति जगत्महँ, जीव चराचर वहु तरे॥

योग, दान, व्रत, सांख्य, यज्ञ, जप, तप, सब साधन।
श्रवन, मनन, संन्यास आदितैं होवै बश मन॥
किन्तु न ये सब सरस सरल हियकूं नहिं पकरैं।
साधन च्युत यदि भये फेरि जग वन्धन जकरैं॥
भक्तिभाव सत्संगतैं, होहि सरस तन्मय हियो।
व्रजवनितनि मोमें मधुर, प्रेमभाव अनुपम कियो॥

रूपसुधामहँ छकीं निरंतर मोकूं ध्यावैं ।
प्रेमडोरिमहँ बँधी सुनत वंशी धुनि आवैं ।।
तजि वृन्दावन गयो मधुपुरी वे घबरायी ।
मन मोईमहँ फँस्यो सकल सुधि बुधि बिसरायीं ।।
मेरे सँगमहँ छिन सरिस, निशा बितायीं जो सुखद ।
भईं कलप सम मो बिना, मम बियोगमहँ अति दुखद ।।

ज्यों समाधिमहँ सिद्ध मिलैं सागरमहँ सरिता ।
त्यों ह्वैकें आसक्त मिलीं मोमें ब्रजबनिता ।।
मोमें मन फँसि गयो सकल तन सुधि बुधि भूलीं ।
नहि समुझीं सरबेश रमन सुन्दर लखि फूलीं ।।
परम धन्य जगमहँ भईं, मोमें करि आसक्ति अति ।
तुम हू उद्धव ! त्यागि सब, भजो मोइ पावो सुगति ।।

हौं ही जग बनि गयो बीज ज्यों तरु बनि जावै ।
वृक्ष कर्म मय मोक्ष भोग फल फूल कहावैं ।।
पाप पुण्य द्वै बीज बासना जड़ गुन तन हैं ।
इन्द्रिय शाखा ईश जीव द्वै बैठे खग हैं ।।
सुख दुख ही द्वै फल लगे, खावै दुख भोगी सतत ।
योगी सुख चाखत रहत, ब्रह्मभावमहँ नित निरत ।।

गुन ही बन्धन हेतु प्रथम रज तमकूँ त्यागै ।
सत्व वृद्धितैं भक्ति होहि श्रद्धा हिय जागै ।।
आगम, जल अरु कुदुम-देश, संस्कार करम पुनि ।
काल, जनम अरु ध्यान मंत्र ये कारन दश सुनि ।।
तत्वज्ञान होवै नहीं, सेवै तब तक सत्यकूँ ।
ज्ञान अगिनि अज्ञान भखि, प्राप्त करै एकत्वकूँ ।।

उद्धव बोले—प्रभो ! सबहिँ मानैं विषयनि दुख ।
फिरि क्यौं तिनकूँ भजैं करैं तिनमें अनुभव सुख ॥
हँसि बोले भगवान्-अहंतातैं मूरख जन ।
फँसैं रजोगुणमाँहिं कामना वश होवै मन ॥

कबहुँ विवेकी हू फँसैं, किन्तु होहिँ आसक्त नहिँ ।
चित्त समाहित करन हित, करै प्रान संयम नितहिँ ॥

सब विषयनितैं खैंचि चित्त मम चरननि लावै ।
करै योग अभ्यास निरन्तर ध्यान लगावै ॥
सनकादिककूँ हंस रूपतैं शिक्षा दीन्हीं ।
वे मेरे प्रिय शिष्य योगमहँ निष्ठा कीन्हीं ॥

उद्धव पूछे—जगत्गुरु ! हंस रूप कैसे धर्यो ।
सनकादिककूँ योगमय, ज्ञान दान शुभ कब कर्यो ॥

प्रभु बोले—इक बार कुमर सुत अज ढिँग आये ।
जिज्ञासा तिनि करी वन्दि पद वचन सुनाये ॥
विषयनिमहँ चित जाइ विषयचितमहँ घुसि जावैं ।
कैसें करि तिनि पृथक मुक्ति पद प्रानी पावैं ॥

निरनय नहिँ कछु करि सकी, कर्ममयी अज बुद्धि जब ।
प्रश्न पयोनिधि पार हित, कर्यो ध्यान मम चरन तब ॥

तबई मैं बनि हंस कुमारनिके ढिँग आयो ।
करि आगे अज सबनि चरन मेरे सिर नायो ॥
पूछें—को हैं आप !" कही हँसिकें हौ बानी ।
काकूँ करि उद्देश प्रश्न कीन्हों मुनि ज्ञानी ॥

आत्मा अद्वय एक है, बनहिं न तामें प्रश्न यह ।
पञ्चभूतके देह सब, प्रश्न न जामें उठहि जिह ॥

जो सोचो जो लखो सुनो सो मैं ही सबहूँ।
प्रथमहु मैं ही रह्यो रहौंगो मैं ही अबहूँ॥
विषयनि चित अनुसरे विषय हू प्रबिशैं तामें।
जीव उपाधी उभय नहीं ते रूप कहावें॥

सेवै विषयनिकूँ सतत, चित्त होहि आविष्ट तहँ।
बनै वासना चित्तकी, जीव ब्रह्म द्वै पृथक् कहँ॥

दोऊ जीव उपाधि शुद्ध निज रूप निहारौ।
बुद्धि अवस्था तीनि आतमा इनतें न्यारौ॥
सो तुरीयमहँ पहुँचि जगत् बन्धन नहिं लागै।
चित्त विषय नसि जायँ अहंता अपनी त्यागै॥

भेद बुद्धि जब तक नहीं, नसै न तब तक बुद्ध है।
जग-प्रपञ्च मिथ्या असत्, ब्रह्म सत्य शिव शुद्ध है॥

सर्व नियामक नित्य निरञ्जन आत्मा सत्‌चित।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति सबहिं मायामहँ कल्पित॥
ज्ञान खड्गकूँ धारि तीक्ष्ण युक्तिनितें करि करि।
अहंकारकूँ काटि मोह भजि जगकूँ परिहरि॥

नश्वर दृश्य प्रपञ्च जिह, भासै नाना रूपमहँ।
दीखै मायामय त्रिविधि, मिथ्या स्वप्न स्वरूपमहँ॥

निजानन्दमहँ पूर्ण मौन गहि तृष्णा त्यागौ।
स्वप्न जगत्‌महँ फँसे मोह निद्रातें जागौ॥
स्वप्न-पदारथ याद होहिं जागतमहँ जबई।
करैं न कछू अनर्थ बिश समुझै त्यों सबई॥

मदिरातें उनमत्त नर, मोरीमहँ गिर जातु है।
नंगो ह्वैके हँसि परै, सुधि बुधि सकल भुलातु है॥

योंही ज्ञानी करै कर्म पीवै अम्मृत रस।
तनमहँ नहिं आसक्त होहि तन काज दैव वश॥
द्विजगन! मोकूँ परम पुरुष परमेश्वर मानौ।
सांख्य सत्य श्री कीर्ति परम गति सबकी जानौ॥

सब मुनि मिलि पूजा करी, हंस तहाँतैं उड़ि गये।
सुन्यो हंसगीता विमल, अज मुनि गन प्रमुदित भये॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीता हंसावतार कथा नामक पञ्चम अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण—सत्ताईसवें दिवस का विश्राम]



अथ षष्ठोऽध्यायः

[६]

कहें कृष्ण—यह हंस ज्ञानमय गीता उद्धव।
सखा समुझिकें कह्यो कहूँ का कथा अपर अब॥
उद्धव पूछें—प्रभो! तुम्हे बुध बहुत बतावें।
श्रेय सिद्धि के भिन्न मार्ग ऋषि मुनि बहु गावें॥
कही ज्ञानगाथा बिमल, तृप्ति न मेरी भई हरि।
कहें भक्ति महिमा सुखद, सरस मधुर प्रभु कृपा करि॥

तब बोले भगवान्—वेद ही मेरी बानी।
मुख्य भागवत धर्म जाहि धारैं बिज्ञानी॥
आदि सर्गमहँ कह्यो ब्रह्मतैं मनुढिँग तिननें।
तिनि सप्तर्षिनि दयो कह्यो फिरि सबतैं उनने॥
ग्रहन कर्यो निज मत सरिस, सबके भिन्न स्वभाव हैं।
प्रकृति भेदतैं भिन्न पथ, भिन्न क्रिया अरु भाव हैं॥

धर्म एक परमार्थ बतावें यशकूँ दूसर।
अपर कामकूँ कहे सत्यमहँ कोई तत्पर॥
शम दम कोई कहे अपर ऐश्वर्य बतावैं।
दान भोग ही स्वार्थ अपर तप मख मन लावैं॥
कहे दान ब्रत यम नियम, भिन्न भिन्न पुरुषार्थ हैं।
किन्तु न शाश्वत नित्य ये, क्षुद्र कर्ममय स्वार्थ हैं॥

शुभ कर्मनितैं लोक मिलैं जाओ सुख पाओ।
पुण्य छीन है जायँ गिरौ उलटे जग आओ॥
मोहजनक दुख हेतु तुच्छ सुख दैवेवारे।
दुख परिनामी लगैं तनिक इन्द्रिनिकूँ प्यारे॥

जो सुख मेरी भक्तिमहँ, वह सुख विषयनिमहँ नहीं।
मिश्रीमहँ जो सुख मिलै, लौटामहँ पावैं कहीं॥

निष्किञ्चन समबुद्धि शान्त सन्तोषी त्यागी।
निस्पृह निर्मम नित्य तुष्ट मम पद अनुरागी॥
निरखैं सबमहँ मोइ द्वैत दीखे नहिं जिनिकूं।
दुखको नहि लवलेश दिशा सुखमय सब तिनिकूँ॥

तन, मन, धन, मम पदनिमहँ, सौंपि न चाहैं इन्द्रपद।
राज्य पाट ऐश्वर्य सुख, लेवैं नहिं ते ब्रह्मपद॥

उद्धव जैसे मोइ भक्त निष्किञ्चन प्यारे।
तैसे प्रिय नहिं राम रमा अज डमरूवारे॥
निरवैरी निरपेक्ष भक्तके पीछे घूमूँ।
पदरजतैं कृत्यकृत्य बनूं चरननिकूँ चूमूँ॥

विषयवासना कामसुख, की इच्छा मनमहँ नहीं।
उनि भक्तनि आनन्दकूँ, विषयी का पावैं कहीं॥

भूलै मेरो भक्त विषयभोगनि फँसि जावै।
मम पद तजिकैं नारि वदनमहँ चित्त लगावै॥
कछु दिन होवै पतित यादि सुमिरन सुख आवै।
भूलि भटकि पछिताइ मोइ फिरितैं अपनावै॥

बढ़ी अग्निमहँ नीर हू, भस्म होहि जरि जाइ पुनि।
भक्ति होहि फिरितैं सजग, मधुमय मेरी कथा सुनि॥

पाप पहाड़नि भक्ति जरावै उद्धव मेरी।
तू चिन्ता मति करै परम निर्मल मति तेरी॥
योग, साङ्ख्य, जप, दान, धर्मतैं ही रीझूँ नहिं।
भक्तिमार्ग ही श्रेष्ठ जाहि कामी नहिं समुझहि॥

धर्म सत्य अरु दयायुत, तप भावित बिद्या बिमल।
पूर्ण पवित्र न करि सकैं, भक्तिहीन नरकूँ सकल॥

उद्धव! सोचो प्रेम अश्रु बिनु गद्गद बानी।
बिनु तनु पुलकित भये मोइ पावैं क्यौं प्रानी॥
ह्वैके भक्त बिभोर प्रेममें नाचैं गावें।
करि करि प्रेम प्रलाप हँसैं रोवें गिरि जावें॥

भक्तियोग साधन सरल, सुलभ शुद्ध अञ्जन सरिस।
कथा कीरतनतैं नसै, हियमहँ संचित बिषय बिष॥

जो सोचो सो बनो होहि जैसो जाको सँग।
श्वेत वस्त्र समचित्त रँगो जैसो होवै रँग॥
बिषयनि चिन्ता करै बिषयमय मन बनि जावै।
मेरी चिन्ता करै भक्त मेरो पद पावै॥

साधन सबरे असत हैं, स्वप्न मनोरथ सम सकल।
तातैं सब तजि मोइ भज, मम चिन्तन साधन सफल॥

तिरियनिको तजि नेह संग बिषई पुरुषनिको।
धीर बीर गंभीर बनैं प्रिय जब जीवनिको॥
भजन हेतु घर तजै समय नहिं ब्यर्थ बितावै।
निरखि शान्त एकान्त पुण्य थल ध्यान लगावै॥

करै न आलस भजनमहँ, कथा कीरतनमहँ निरत।
अथवा प्राणायाम करि, करै ध्यान मेरो सतत॥

उद्धव बाँधौ गाँठ मोक्ष मारग अति दुस्तर।
पग पगपै अति क्लेश देहिं ये विषय निरन्तर॥
जैसो होवै क्लेश कामिनी अरु कामिनितैं।
तैसो होवै नहीं लोभ मोहादि रिपुनितैं॥

संसृतिको ही हेतु है, कामधुराको संग नित।
तातैं तजि अविलम्ब नर, मम चरननिमहँ देहिं चित॥

बोले उद्धव—नाथ! ध्यान विधि मोइ बतावैं।
कौन भाव किहि भाँति रूप तव कैसो ध्यावैं॥
हरि बोले—सुनु सुहृद! प्रथम शुभ आसन बाँधै।
पुनि पुनि प्राणायाम करै प्राणनिकूँ साधै॥

कमलनाल सम प्रणव ध्वनि, घंटा नाद समान स्वर।
तीन काल दश बेर करि, होहि सहजमहँ चित्त थिर॥

हृदय कमल दल अष्ट प्रफुल्लित साधक ध्यावै।
सूर्य्य चन्द्र अरु अग्नि कर्णिकामाहिं बिछावै॥
चिन्तै मम मुख मधुर बाहु वर चार विशाला।
शंख चक्र अरु गदा पदुम पहिने वनमाला॥

मकराकृत कुंडल कलित, श्रीनिवास पटपीतवर।
भुज अंगद कटि करधनी, नूपुरयुत पद अति सुघर॥

भाल,नयन,मुख हृदय, नाभि, कटि,ऊरु, चरनतल।
सुघर मनोहर निरखि करै थिर मनकूँ शुभ थल॥
केवल मुखकूँ ध्याइ अन्तमहँ ताकूँ त्यागै।
निराकार निरबीज चित्त आत्मामहँ लागै॥

समुझै आत्मा सर्वगत, सबकूँ मोमें मोइ सब।
ज्ञान कर्म अरु द्रव्य भ्रम, योगीको नसि जाय तब॥

योगी ध्यावै मोइ सिद्धि सब तिहिं ढिंग आवैं।
उद्धव बोले—नाथ ! सिद्धिके भेद बतावैं ॥
हरि बोले—सब सिद्धि अठारह मुनिनि गिनाईं।
तिनिमहँ दश हैं गौण आठ ही मुख्य बताईं ॥

अणिमा महिमा अरु लघिम, आश्रय इनको देह है।
प्राप्ति सिद्धि उत्तम कही, इन्द्रिय जाको गेह है ॥

सिद्धि कही प्राकाश्य ईशिता बशिता उद्धव।
दूरश्रवन परकायप्रविसि तनु सुघर मनोजव ॥
गति आज्ञा अनिबार देवक्रीड़ा अनुदरशन।
अग्नि सूर्य्य जल गरल आदि वस्तुनि को स्तंभन ॥

करै धारना जाहिमें, होहि सिद्धि तैसी तहाँ।
भक्तियोग बिनु सिद्धि सब, पावैं कामी नर कहाँ ॥

जितनी होवें सिद्धि जन्म ओषधि अरु तपतैं।
ते सब पावें भक्त नाम मेरेके जपतैं ॥
सब सिद्धिनिको ईश बेदबिद मोहि बतावैं।
तातैं सब तजि चित्त भक्त मम चरन लगावैं ॥

हौं ही सबमहँ रमि रह्यो, देहुँ सिद्धि सबकूँ सकल।
मम तजि सिद्धिनिमहँ फँसैं, मेरी माया अति प्रबल ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीतान्तर्गत भक्तियोग ध्यान तथा सिद्धि वर्णन नामक छठवां अध्याय समाप्त।

अथ सप्तमोऽध्यायः

[७]

बोले उद्धव—सुनीं सिद्धि सब नाथ बखानी।
अब विभूति निज कहँ मोइ निज सेवक जानीं ॥
मुनि बोले विश्वेश—पार्थतें मैंने रनमहँ।
कछु विभूति निज कहीं कहूँ तिनि धारो मनमहँ ॥

जीव, काल, गति, गुन, प्रनव, गायत्री, सुरपति, अनल।
विष्णु, नीललोहित, भृगू, मनु, नारद, कपिला, कपिल ॥

प्रजापतिनिमहँ दक्ष अर्यमा हौं पितरनिमहँ।
दैत्यनिमहँ प्रह्लाद वरुन हौं जलवासिनिमहँ ॥
ऐरावत, रवि, नृपति, अहिप, यम, कनक, अश्ववर।
शेष, सिंह, सन्यास, गंग, जलनिधि, धनु, शङ्कर ॥

गिरिप मेरु, अश्वत्थ, यव, कार्तिकेय, अज बृहस्पति।
मुनि बशिष्ठ, जल, अनल, रवि, मनु, शतरूपा विष्णु यति ॥

हौं ही सनत्कुमार त्याग अरु मौन प्रजापति।
संवतसर, सुवसन्त, मास अगहन अरु अभिजिति ॥
सतयुग, देवल असित, व्यास द्वैपायन, भार्गव।
वासुदेव, हनुमान, सुदर्शन, गोघृत, उद्धव ॥

कमलकोश, कुश, पद्ममणि, गुण सत्त्वादिक, तेज रस।
पूर्वचित्ति विश्वावसु, हौं ही सबमहँ कीर्ति यश ॥

हौं ही ईश्वर, जीव, सत्व, रज और तमोगुन ।
प्रकृति, पुरुष, गति, काल, भूमि, जल, नभ रवि, त्रिभुवन ॥
कहूँ कहाँ तक तेज, कीर्ति, श्री जहँ जहँ जानों ।
पुरुषारथ, बल, कान्ति अंश सब मेरे मानों ॥
अपनी कहीं विभूति कछु, सब ये मनोविकार हैं ।
परमारथ ये ही नहीं, जगके सब व्योहार है ॥

उद्धव बोले—मोइ वतावहिँ बर्णाश्रम हरि ।
करि जिनको आचरन जाहि जगतैं मानव तरि ॥
हौ प्रभु सर्व समर्थ बेद सब तुमरी बानी ।
मूर्तिमान हौ धरम कहैं मुनि पंडित ज्ञानी ॥
बर्णाश्रमको प्रश्न सुनि, हरि बोले—उद्धव कहूँ ।
हौं ही चारिहु युगनिमहँ, धरम रूपतै नित रहूँ ॥

आदि कल्पमहँ भयो प्रथम सतयुग हौं जामे ।
हंसरूपतैं रहौं ध्यानतैं पूजैं तामें ॥
मखतैं त्रेतामाहिं करैं पूजा द्वापरमहँ ।
नाम कीरतन करहिं पाहिं प्रानी कलियुगमहँ ॥
मुखतैं द्विज, भुज क्षत्र उरु, वैश्य शूद्र मम चरनतैं ।
चारि बरन प्रकटित भये, जानहिं निज निज करमतैं ॥

बरन सरिस ही चार भये आश्रम विराट्तैं ।
मस्तकतैं सन्यास धर्म प्रकटित स्वराट्तैं ॥
गृह आश्रम वटु धर्म जघन अरु हियतैं जानों ।
वक्षस्थलतैं वानप्रस्थ उतपति तुम मानों ॥
चार चार आश्रम बरन, सबके पृथक् स्वभाव हैं ।
पावैं फल सब कर्म करि, जिनिके जैसे भाव हैं ॥

पहिले सुनो स्वभाव विप्रको उद्धव ! उत्तम ।
शम दममहँ नित निरत रहैं ध्यावै चरननि मम ॥
तत्परताके सहित शौचके पालै नियमनि ।
यथालाभसंतोष करै नहिं संग्रह वस्तुनि ॥
अपकारीके दोषकूं, शक्तिवान ह्वैकें सतत ।
क्षमा करै निष्कपट ह्वै, परकारजमहँ नित निरत ॥

होवैं मृदुल स्वभाव भक्ति मेरी हिय धारैं ।
सब जीवनि पै दया करैं नहिं जीवनि मारैं ॥
सदा सत्य व्यवहार विप्रके येही सब गुन ।
इन गुनतैं ही करैं जगत्कूँ वशमहँ द्विजगन ॥
द्विजस्वभाव मैंने कहे, ब्राह्मण तनमहँ रहहिं सब ।
करै वृत्ति कैसी रहै, सुनो विप्रको धर्म अब ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वर्ण द्विज तीनि कहावैं ।
यज्ञ दान अध्ययन तीनिको धर्म बतावैं ॥
पढ़ैं विप्र सब वेद द्विजनिकूँ फेरि पढ़ावैं ।
स्वयं यज्ञ नित करैं द्विजनिकूँ यज्ञ करावैं ॥
देहिं दान श्रद्धा सहित, लेहिँ विवश ह्वै वृत्ति हित ।
रहैं तपस्यामहँ निरत, परमारथमहँ रखहिं चित ॥

विप्र वृत्ति तजि नहीं नीच कारज अपनावै ।
गौ कृषि अरु व्यापार वृत्तितैं काज चलावै ॥
अथवा लैकें शस्त्र युद्धमहँ लड़िबे जावै ।
धर्मयुद्धतैं कबहुँ पैर पीछे न हटावै ॥
आपद धर्म अनेक हैं, सदाचार कबहुँ न तजै ।
कर्म वचन मनतैं सदा, अघहारी हरिकूं भजै ॥

क्षत्रिय बर्ण स्वभाव सुनौ उद्धव मोतैं अब।
तेजस्वी, बलवान, धीर अति सहै दुःख सब॥
शूरबीर रणधीर दानमहँ रुचि नित राखै।
होवै परम उदार दीन बाणी नहिं भाखै॥
करत रहै उद्योग नित, थिरता रखि कारज करै।
दीन दुखिनिके दुःखकूँ, स्वयं दुःख सहिकें हरै॥

यदि होवै सामर्थ्य विप्रकूँ सुख पहुँचावै।
जो माँगे सो देहि नहीं घरतैं लौटावै॥
दै विप्रनिकूँ दान अमर बहु भये नृपति गन।
बहुतनि दीयो बिप्र बचनतैं सरबसु तन धन॥
क्षत्रिनिको ऐश्वर्य नित, रहै, सत्य अरु धरमतैं।
बढ़ैं पुण्य यश जगतमहँ, शास्त्र बिहित शुभकरमतैं॥

सुतवत पालै प्रजा दूर भय करै सबनिको।
छटवों लेवै अंश हरै दुख नरनारिनिको॥
दण्डशुल्क कर क्षात्र बृत्ति ऋषि बेद बतावैं।
दस्युनि देहि भगाइ नृपति अति पुन्य कमावैं॥
बैश्य वृत्तिहू बिपतिमहँ, धारि करै निर्बाह नृप।
अथवा बिचरै बिप्र बनि, नहिं त्यागै तप नियम जप॥

क्षत्रिय धर्म प्रधान प्रजापालन रणथिरता।
दुष्टनिको संहार करै रिपुतैं नहि मृदुता॥
भाईहू रिपु होहि समरमहँ ताहि पछारै।
जगको होवै अहित ताहि बिनु सोचे मारै॥
क्षत्रिय वृत्ति स्वभाव कछु, उद्धव यह तुमतैं कह्यो।
बैश्यवृत्ति वर्णन करूं, जो स्वभाव इनने लह्यो॥

वैश्य कहावैं श्रेष्ठ सरल होवैं आस्तिक अति।
यथाशक्ति नित दान पुण्यमहँ स्वाभाविक मति॥
विप्रनि सेवा करैं पर्वनै न्योति जिमावैं।
करैं विप्रजो क्रोध ताहि चितमहँ नहिं लावै॥

शत, सहस्र, दश लक्ष वा, अरब खरब हू होहि धन।
चाहे जितनौ नित मिलै, तबहुँ न होवै तुष्ट मन॥

खेतीतैं निर्वाह करै गोपालन नित प्रति।
वस्तुनिको व्योपार करै जोरै धन सम्पति॥
शूद्र वृत्ति हू वैश्य विपतिमहँ परि अपनावै।
किन्तु न ताकूँ धर्म समुझि नित काज चलावै॥

पालै अपने धर्मकूँ, नृप द्विज देवनितैं डरै।
पूजै द्विज, गौ, अतिथि, सुर, सन्ध्या वन्दन नित करै॥

स्वाभाविक रुचि रहै शूद्रकी सेवा माहीं।
कहैं करन द्विज काज करै नहिं कबहूँ नाहीं॥
विप्र, धेनु, सुर पूजि नित्य कर्तव्य निभावै।
सेवातैं जो मिलै ताहितैं काम चलावै॥

गुरुकुलवास न शौच तप, सेवा तिनिको कर्म है।
सेवा ही तप दान व्रत, शूद्रनिको यह धर्म है॥

शूद्र विपतिके समय करै गोपालन खेती।
अथवा धारै वृत्ति कारु पुरुपनिकी जेती॥
चर्म, चटाई, सूप, ऊनकी वस्तु बनावै।
वनतैं लावै वस्तु बेचिकें काम चलावै॥

आपद ही में सब करै, पुनि आपद मिटि जायं जब।
नीचवृत्तिकूँ त्यागि के, अपनावै निज धर्म तब॥

नारिहरन करि उच्चवर्णकी जे लै जावैं।
दस्यु म्लेच्छ ते अधम नीच चांडाल कहावैं॥
रहैं सदा अपवित्र करैं खल मिथ्या भाषन।
दैं चोरीमहँ चित्त न मानहिं देव पितर गन॥
शिखा सूत्र बिश्वास नहिं, व्यर्थ कलह सबतें करैं।
कामी, क्रोधी, लालची, ते मरि नरकनिमहँ परैं॥

म्लेच्छ दस्यु हू धर्म पालिकेंसद्गति पावैं।
अधम वृत्तिकूँ त्यागि करे शुभ शुचि ह्वै जावैं॥
उद्धव! मैंने वर्ण धर्म सब तोइ सुनाये।
जे पुरान, इतिहास, बेद, शास्त्रनिने गाये॥
यह विशेष सब वर्णके, धर्म कहे मैंने सकल।
कहूँ धर्म सामान्य अब, जो सब वर्णनिकूँ बिमल॥

सत्य, अहिंसा शुद्ध चित्ततैं मनमहँ धारैं।
कबहुँ न चोरी करैं, काम बड़ रिपुकूँ मारैं॥
क्रोध लोभतैं रहित होहिं प्रिय करहिं सबनिको।
प्राणिमात्रतैं प्रेम करैं, हित सब जीवनि को॥
सुखी होहिं पर सुख निरखि, पर संपति लखि नहिं जरैं।
स्वयं न प्रिय व्यवहार जो, तिहि औरनि सँग नहिं करैं॥

द्विज शूद्रनि अरु सर्व वर्णको धर्म बतायौ।
सबकी वृत्तिनि सहित तोइ संक्षिप्त सुनायौ॥
अब जो इच्छा होहि कहूँ जो पूछौ उद्धव।
बोले उद्धव—कहो धर्म आश्रमको केशव॥
हरि बोले—आश्रमनिमहँ, ब्रह्मचर्य आश्रम प्रथम।
द्विज बालक उपनयन युत, बसै तहाँ पालै नियम॥

गुरुकुलमहँ नित बास करै भिक्षा करि लावै ।
गुरु सम्मुख धरि देहि देहिं जो सोई खावै ॥
धारै नित उपवीत मेखला अरु मृगछाला ।
दण्ड, कमण्डलु, जटा अक्षकी उरमहँ माला ॥
अलंकार हित दंत पट, रँगे न उज्वल करै अति ।
भोजन, मज्जन, होम, जप, महँ नहिँ बोले धीरमति ॥

पंचकेशकूँ रखै शिखा ही अथवा धारै ।
जग विषयनितैं विरत रहै नित मनकूँ मारै ॥
गो, गुरु, द्विज, रवि, अग्नि, अतिथिकूँ पूजै नित प्रति ।
समुझै गुरु ममरूप करै सेवा निश्चल मति ॥
तजै अष्ट मैथुन सदा, भिक्षापै निरवाह करि ।
पढि गुरुकूँ दै दक्षिणा, बनै गृहस्थी व्याह करि ॥

कन्या सुघर सवर्ण सुशीला सद्गुन वारी ।
ताके सँग करि व्याह वृत्ति धारै हितकारी ॥
घरमहँ अतिथि समान वसै रागादिक त्यागै ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, तृष्णातैं भागै ॥
सबकूँ स्वप्न समान लखि, सुत, दारा, धन, बन्धु जन ।
ऊपरतैं कारज करै, राखै मो में सदा मन ॥

देव, पितर अरु अतिथि करै सेवा प्रानिनिकी ।
देवै सबको भाग जीविका जैसी जिनिकी ॥
जो कछु कारज करै भाव मोईमहँ राखै ।
जीवनि दुख नहिं देहि अनृत बानी नहिँ भाखै ॥
सब भूतनिमहँ मोइ लखि, निरभिमान घरमहँ बसै ।
घर त्यागै अथवा चतुर, बानप्रस्थ बनि तनु कसै ॥

कन्द मूल फल खाइ मूँछ, नख जटा बढ़ावै।
बनमहँ जो मिलि जाइ ताहितैं काम चलावै॥
पञ्च अग्नि तप करै कुटीमहँ सोवै नाहीं।
सिरपै बरषा सहै, शरदमहँ जलके माहीं॥
करै अग्नि सेवा सतत, स्वय दास बनिकैं रहै।
बरषा गरमी ठंडकूँ, जथाशक्ति नित नित सहै॥

करै दर्श अरु पौर्णमास मख मोकूँ उर धरि।
बन्य कन्द फल मूल आदि चरु पुरोडास करि॥
तुच्छ स्वर्गके हेतु व्यर्थ नहिं देह तपावै।
रुग्ण वृद्ध असमर्थ होहि तनु अनल जरावै॥
यदि होवै वैराग्य तो, अग्नि लीन करि प्रानमहँ।
सन्यासी बनि सम रहै, सदा मान अपमानमहँ॥

सन्यासी तजि अग्नि काम्य कर्मनिकूँ छोरै।
सबकी तजि आसक्ति जगत्तैं मुखकूँ मोरै॥
दण्ड कमण्डलु रखै बस्त्र कौपीन लगावै।
दृष्टिपूत पग धरै माँगिकैं भिक्षा खावै॥
षडवर्गनिकूँ जीतिकैं, राखै मोमें सतत चित।
अनुभव परमानन्द करि, बिचरै ह्वै स्वच्छन्द नित॥

समुझै नहिँ सत् कबहुँ दृश्यकूँ यति वैरागी।
अनासक्त नित रहै काम्य कर्मनितैं त्यागी॥
मन बानी सघात रूप जग माया मानै।
नित परिवर्तनशील असत् नश्वर सब जानै॥
नेति नेतितैं बाध करि, नहिँ माया चक्कर परै।
थिर ह्वै नित्य स्वरूपमहँ, ब्रह्म एक निश्चय करै॥

जगतैं होहि विरक्त ज्ञानमहँ अथवा थिरमति।
चाहैं होवै भक्त कृष्ण चरननिमहँ दृढ़रति॥
तजि वरणाश्रम चिन्ह मिलै भिक्षा जहँ खावै।
विधि निषेधतैं रहित मुक्त बन्धन ह्वै जावै॥

बालकवत क्रीड़ा करै, जड़वत् अरु उनमत्तवत।
पशुवत हू चर्या करै, रहै न जग कारज निरत॥

यदि होवै जिज्ञासु सिद्ध गुरुके ढिंग जावै।
मन इन्द्रिनिकूँ रोकि हृदयकूँ शुद्ध बनावै॥
शान्ति अहिंसा ज्ञान धारि वैराग्य जगततैं।
मोमें राखै चित्त, मोरिकें मुखकूँ इततैं॥

वर्णाश्रमके धर्म सब, पालै मम सेवा करै।
काहू आश्रममहँ रहै, अनायास जगतैं तरै॥

परमहंस सब त्यागि कर्ममय वेदवाद रति।
रहै धीर गम्भीर अमानी सहनशील यति॥
सुख दुखमहँ सम रहै रहूँ जैसे हौं माधव।
लीला सम सब करै दैव आधीन समुझि सब॥

भिक्षाकूँ औषधि समुझि, खाइ उदर केवल भरै।
फट्यो पुरानो जो मिलै, पट ताकूँ धारन करै॥

शौच आचमन नियम करै नहिं विधिमहँ बँधिकें।
केवल लीला समुझि करै सब नियमनि तजिकें॥
ज्ञानीकूँ संसार स्वप्नवत् असत लखावै।
होहि प्रतीती कबहुँ समुझि मिथ्या हँसि जावै॥

जब तक तनु तब तक कबहुँ, यदि भासै जग नहिं हिलै।
होहि पतन जब देहको, होहि एक मोमें मिलै॥

ज्ञानी तो सर्बस्व एक मोईकूँ मानै।
मो प्रभुतैं अतिरिक्त स्वर्ग अपवर्ग न जानै ॥
ज्ञानी अति प्रिय मोइ निरन्तर मोकूँ ध्यावै।
तत्व ज्ञान बिनु सिद्धि कबहुँ साधक नहिं पावै ॥

बोले उद्धव—जगत्पति ! होहि ज्ञान कैसे बिमल।
भक्तियोग बरनन करैं, सुनिबेकी इच्छा प्रबल ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीतान्तर्गत विभूतियोग तथा वर्णाश्रमधर्म नामक सप्तम अध्याय समाप्त।



अथ अष्टमोऽध्याय

[८]

हरि बोले—जो ज्ञान भीष्म पाडवकूँ दीयो।
ताहीकूँ हूँ कहूँ प्रश्न तुमने जो कीयो॥
नौ ग्यारह अरु पाँच तीन अट्ठाइस ये सब।
कहे तत्व इनमाँहि एक अनुगत हौं उद्धव॥

ज्ञान कह्यो अपरोक्ष है, दृढ़तर सो विज्ञान है।
नेति नेतितैं जो बचै, वही ब्रह्म भगवान है॥

परिणामी सब कर्म लोक परलोक अशाश्वत।
जानि असत् सब तजै जगतकूँ ज्ञानी विषवत॥
भक्तियोग अब कहूँ समुझिकें तुमरी रुचि अति।
कथा सुनै अरु करै नाम कीर्तन मम तित प्रति॥

मेरी पूजामहँ सतत, रहै भक्त संलग्न नित।
त्यागि जगत् व्यौहार सब, समुझै सेवामाहिँ हित॥

ह्वैकें अति ई आर्त करै स्तव मेरो सादर।
परम दीनता प्रकट करै मेरे प्रति आदर॥
करुनामय इस्तोत्र कंठ गद्गद ह्वै गावै।
मम मन्दिरमहँ भक्तिभावतैं जाइ सुनावै॥

मेरी सेवामहँ सदा, प्रेम रखै सेवा करै।
मेरे सम्मुख दण्डवत्, प्रेम सहित भूपै परै॥

सब अङ्गनितैं करै बन्दना मम भक्तनिकी।
पूजा मोतैं। अधिक करै श्रद्धातैं उनिकी॥
नित पूजाकूँ निरखि होहुँ नहिं उतनों हरषित।
जितनो पूजित भक्त निरखि होवै अँग पुलकित॥

थावर जंगम जीव सब, अचर सचर चैतन्य जड़।
निरखै मोकूँ सबनिमहँ, जगमहँ सोई भक्त बड़॥

चेष्टा मेरे हेतु करै अङ्गनिकी सब ई।
करै गान गुन सतत उचारै बानी जब ई॥
जो कछु कारज करै मोइमहँ चित्त लगावै।
मनसा बाचा कर्म सदा मोईकूँ ध्यावै॥

जगकी जितनी कामना, तिनि सबकूँ मनतैं तजै।
जगके नाते तोरि सब, केवल मोईकूँ भजै॥

मम हित धन अरु भोग तजै सुख सबरे मनतैं।
करै यज्ञ व्रत दान हवन जप तप जो तनतैं॥
मम अरपन करि देइ न अपनेमहँ कछु राखै।
मैंने यह शुभ कर्‌यो न कबहूँ मुखतैं भाखै॥

जो इन धरमनिको करैं, पालन श्रद्धा सहित सुनि।
होवै प्रकटित भक्ति मम, का तिनिकूँ अवशेष पुनि॥

बढ़ै सत्व चित शान्त होहि आत्मामहँ जावै।
धर्म ज्ञान बैराग्य और ऐश्वर्यहि लावै॥
यदि चित जगमहँ लगै विषय भोगनिमहँ भटकै।
जनम मरन अरु रोग शोक दुःखनिमहँ पटकै॥

भक्ति बढ़ै सो धर्म है, सबमहँ आत्मा ज्ञान है।
अणिमादिक ऐश्वर्य है, बिषय बिरत बैराग्य है॥

उद्धव बोले—प्रभो ! प्रश्न कछु पूछूँ पावन ।
'पूछो' बोले कृष्ण—देहुँ उत्तर मन भावन ॥
यम कितने हैं नाथ ! कहे उद्धव ! बारह सुनि ।
सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अभय पुनि ॥
आस्तिकता, ह्री, मौन अरु, क्षमा, असङ्गय दश भये ।
थिरता, विषय-असंगता, यों सब बारह ह्वै गये ॥

'नियम बताओ नाथ !' कहें बारह ते सज्जन ।
भीतर बाहर शौच, होम, जप, तप, मम पूजन ॥
श्रद्धा, अरु सतोष, तीर्थ, गुरु-सेवा उद्धव ।
परकारज आतिथ्य, भये बारह पूछौ अब ॥
'शम, दम, धीरज तितिक्षा, अर्थ बतावें रिपुदमन ।'
शम-मम धी, गो-दमन दम, कहे तितिक्षा दुख सहन ॥

जिह्वा और उपस्थ विजय धृति वेद बतावें ।
उद्धव बोले—दान, वीरता, तप समुझावें ॥
सत्य और ऋत, त्याग, इष्ट धन यज्ञ अर्थ विभु ।
नरबल, भग, बड़ लाभ, दक्षिणा, विद्या ह्री प्रभु ॥
हरि बोले—है दान बड़, भूतद्रोह तजिबो सतत ।
मन वश करिबो शूरता, सत प्रिय वानी कहहिं ऋत ॥

सम दरशन ही सत्य शौच कर्मनि आशक्ति न ।
करम त्याग सन्यास धरम ही कह्यो इष्ट धन ॥
हौं ही उत्तम यज्ञ ज्ञान उपदेश दच्छिना ।
बल बड़ प्राणायाम लाभअति भक्तिभावना ॥
आत्मा अरु परमातमा, महँ अभेद विद्याकही ।
भगही मम ऐश्वर्य है, दुष्करमनिको त्यागही ॥

उद्धव बोले—कहैं आप 'श्री' काकूँ स्वामी !
सुख-दुख, पंडित, मूर्ख अर्थ का अन्तरयामी ! ॥
कौन कुपथ का सुपथ स्वरग अरु नरक बताओ ।
बन्धु कौन, घर कहा कौन निरधन समुझाओ ॥

को ईश्वर बिपरीत को, धनी कौन को कृपन हैं ।
मेंटैं मेरे मोहकूँ, प्रभु तो अशरन-शरन है ॥

सम सुख दुख-सुख कह्यो कही श्री सद्गुण संचय ।
बिषय अपेक्षा दुःख काम ही रिपु अति दुर्जय ॥
बन्ध मोक्षतैं बिज्ञ होहि सो पंडित ज्ञानी ।
मैं मेरीमहँ फँस्यो कह्यो मूरख अज्ञानी ॥

बढ़ै सत्व गुन स्वर्ग सो, मर्माढँग लावै सो सुपथ ।
बढ़ै तमोगुण सो नरक, चित चञ्चलकर सो कुपथ ॥

हौ ही गुरुवर बन्धु मनुज तनु घर अति मनहर ।
गुणी धनी ही सत्य, बिषय निर्लिप्तहि ईश्वर ॥
बिषयी ईश्वर नहीं तासु चित नहीं समाहित ।
निरधन जो नहिं तुष्ट कृपन जो नहिं इन्द्रियजित ॥

सब प्रश्ननि उत्तर दयो, उद्धव ! अब अति सार सुन ।
गुन दोषनिको देखिबो, दोष न देखन उभय गुन ॥

सुनिकें प्रभुके बचन प्रश्न कीयो उद्धव पुनि ।
भगवन् ! मनभ्रम भयो बात गुन दोषनिकी सुनि ॥
यह गुन है यह दोष सतत श्रुति बचन बतावें ।
बिधि निषेधके हेतु कर्म गुण दोष दिखावें ॥

द्रव्य, देश, वय, काल अरु, स्वरग नरक उत्तम अधम ।
बेद भेद प्रतिपद कहैं, कैसें फिरि तजि देहिँ हम ॥

पुनि श्रुति ही यों कहैं—दोष गुन नहीं निहारै।
त्यागि दोष गुन भक्ति करौ या ब्रह्म विचारै॥
लखि विरोध भ्रम भयो बुद्धि मेरी चकराई।
मम भ्रम मेंटौ नाथ भक्तवत्सल यदुराई॥

तब बोले भगवान—सुनु, उद्धव! तू अति तत्ववित।
तीन योग मैंने कहे, पुरुषनिके कल्यान हित॥

ज्ञान कर्म अरु भक्तियोग ये तीनि पुरानन।
जो विरक्त निष्काम ज्ञान तिनि हेतु सनातन॥
अधिकारी ते कर्मयोगके जो सकाम जन।
नहिँ विरक्त अति रक्त न तिनिको भक्ति परम धन॥

जब तक विषय विराग नहिँ, मम गुन करमनि श्रवन रुचि।
तब तक तजि फल कर्म करि, होवै अन्तःकरन शुचि॥

भक्ति ज्ञानकी प्राप्ति मनुज तनुतैं ही होवै।
पाइ मनुज तनु विषय भोगमहँ ताकूँ खोवै॥
सो अति मूरख अधम अमृत तजि विषकूँ पीवै।
मृतक सरिस सो अज्ञ देखिबेको ही जीवै॥

नौका नरतनु अति सुदृढ, करनधार गुरुके चरन।
होहिँ अज्ञ भवपार नहिँ, मम प्रेरित पावन पवन॥

होवै विषय विराग तबहिँ इन्द्रिय संयम करि।
चितकूँ करि थिर चञ्चलता सब मनकी परिहरि॥
चञ्चल हयके सरिस चित्तकूँ सीख सिखावै।
हौलें करि अनुरोध योगमहँ नित्य लगावै॥

साख्ययोगतैं उदय लय, कौ मनतैं चिन्तन करै।
यों अनात्ममहँ आत्मधी, की जड़ताकूँ परिहरै॥

मेरी पूजा करै कथा सुनि मम गुन गावै।
होहि कर्म आसक्ति ताहि नित निन्द्य बतावै॥
भजन भावकूँ नित्य बढावै कर्मनि त्यागै।
करत करत अभ्यास बासना हियकी भागै॥
भक्ति मार्ग अति सुगम सुठि, है निरपेक्ष निकाम नित।
त्यागि स्वर्ग अपवर्ग सुख, मेमें राखै भक्त चित॥

ज्ञान करम अरु भक्ति कहे साधन परमारथ।
जे तजि इनकूँ क्षुद्र विषय सुख साधैं स्वारथ॥
पुनि पुनि जनमें मरें बारते नरकनि जावैं।
पाइ मनुज तनु विषय निरतते पुनि पछितावैं॥
चौरासीके चक्रमहँ, घूमि पाहिँ पुनि मनुज तन।
तब छूटैं संसारतैं, यदि साधनमहँ देहिँ मन॥

जो जाको अधिकार सुदृढता तामें गुन है।
अनधिकार विपरीत कर्म सो ई अवगुन है॥
परिभाषा गुनदोष विवेचन जिही बताई।
वस्तु सकल सम किन्तु भिन्नता बेद जताई॥
शुद्धि अशुद्धि विचार है, धर्म हेतु पुनि दोष गुन।
कहे सकल व्यवहार हित, यात्रा हित शुभ अशुभ दिन॥

पञ्चभूतमय देह कहे अजतैं नग द्रुम तक।
भिन्न-भिन्न हैं नाम रूप तनके सब साधक॥
करमनि नियमित करन देशकालादि बखाने।
शुद्ध देश कछु कहे कछुक अति शुद्ध न माने॥
द्रव्य सँयोग स्वभावतै, होहिँ कर्म जिह कालमहँ।
वही शुद्ध, नहिं कर्म जब, होहि अशुद्ध त्रिकालमहँ॥

कहे हेतु कछु शुद्धि अशुद्धि पदार्थनि मधिमहँ ।
द्रव्य, वचन सस्कार, काल, बहु स्वल्प सबनिमहँ ॥
शक्ति बुद्धि अरु वित्त विभव कारन कछु भाखे ।
होहिं दोष गुन, देश काल अनुसारहिं राखे ॥
स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, कर्म, संस्कारतैं ।
चित्त शुद्ध होवै अवसि, सुमिरन मम पद प्यारतै ॥

परिज्ञानतैं मन्त्र शुद्धि कर्महु अरपनतैं ।
देश, काल अरु वस्तु, कर्म, कर्त्ता, मनु इनतैं ॥
धर्म शुद्धिमहँ हेतु कहे छै ये सब उद्धव ।
शुचितैं होवै धर्म अशुचितैं अधरम यादव ॥
कबहुँ दोष गुनके सरिस, गुन होवैं कछु दोष सम ।
कह्यो बली सामान्यतैं, अधिक विशेष निगम नियम ॥

जो जाको कुल धरम दोष नहिं ताकूँ तामें ।
चाहे होइ सदोष पतिततें नहिं हों ग्वामें ॥
होइ प्रवृतितैं दुःख निवृतितैं सुख निरभयता ।
विषयनि सुखप्रद लखै होइ तब तिनिमहँ ममता ॥
होहि कामना कलह पुनि, क्रोध मोह अज्ञान हू ।
सिमृतिनाश मृतवत् बनै, नसै ज्ञान विज्ञान हू ॥

करम बन्धके हेतु सकामिनि हित वेदनि महँ ।
कहे प्रशंसा परक बचन नर फँसिहैं तिनिमहँ ॥
दै मीठेको लोभ शिशुनि कटु ओषधि प्यावैं ।
त्यों श्रुति कहि श्रुतमधुर बचन मखमाहिं लगावैं ॥
अज्ञ न समुझैं रहसकूँ, सब कछु समुझैं करमकूँ ।
हिंसामहँ न्ति निरत है, तजैं मोक्ष मुख धरमकूँ ॥

स्वप्न समान अमान मधुर श्रुत स्वरग आदि सुख।
तिनिहित हिंसा करें अन्तमहँ पावें बहु दुख॥
गुनमय देवनि भजें गुननिमहँ ही फँसि जावें।
ते निरगुन परमात्म-तत्व मोकूं नहिं पावें॥
सुनि करमनिकी प्रशंसा, गूढ़ रहस नहिं धरहिं हिय।
ऋषि परोक्ष बरनन करें, है परोक्ष अति मोइ प्रिय॥

शब्द-ब्रह्म दुरबोध पार सब ताहि न पावें।
पश्यन्ती अरु परा मध्यमा त्रिबिधि बतावें॥
नाद रूपतें प्रथम फेरि बनि बरन सुहाये।
बरन छन्द बनि गये भेद बहु मुनिनि बताये॥
गायत्री उष्णिक् बृहति, जगती त्रिष्टुप पंक्ति सब।
अतिच्छंद अत्यष्टि ये, अति जगती बीराट तब॥

छन्दनिमें ही भये व्यक्त सब भाव जगतके।
कर्म उपासन ज्ञानकाड प्रकटित इत उतके॥
आदि मध्य अरु अन्त कह्यो हौं ही बेदनिमहँ।
हैं सब मायामात्र पदारथ सत् हौं इनिमहँ॥
तत्वनिको निश्चय करौ, परमतत्वकूँ पुनि लहौ।
उद्धव बोले—तत्व कै, यदुनन्दन! मोतें कहौ॥

अट्ठाइस प्रभु! कहे तत्व कछु चार बतावें।
कछु नौ, छै, छब्बीस, सात पचीस गिनावें॥
क्यौं इतनो मतभेद रहसका जाके भीतर।
उद्धव शङ्का सुनी बिहँसिके बोले यदुबर॥
बिज्ञ बिप्र जो कछु कहें, युक्तियुक्त सब तात! है।
मेरी मायामहँ कहो, कौन असंभव बात है॥

तत्व परस्पर मिले जुले कछु पृथक बतावैं।
कछु एकहि महँ कहैं कछू द्वै चार मिलावैं॥
प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, अहं, मन, मात्रा इन्द्रिय।
पञ्चभूत पचीस भये अट्ठाइस गुन त्रय॥

छब्बिस ईश्वर सहित हैं, कहूँ भूत इन्द्रिय अलग।
कहुँ आत्मा परमात्मा, एक कह्यो कहुँ सो बिलग॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीतान्तर्गत विविध प्रश्नोत्तर नामक आठवाँ अध्याय समाप्त।



अथ नवमोऽध्यायः

[९]

बोले उद्धव—तत्व ज्ञान तो सुन्यो मुरारी।
प्रकृति पुरुषको भेद बतावैं भवभयहारी॥
हरि बोले—है प्रकृति पुरुषमहँ भेद परमप्रिय।
मायातै जग होहि पुरुष सत चैतन निष्क्रिय॥

भेद त्रिविध गुन तीन हैं, सब प्रपञ्च इनितैं भयो।
आत्मा ज्ञान स्वरूप नित, अविकारी वेदनि कह्यो॥

उद्धव पूछें—"प्रभो! विमुख जे तुमतैं प्रानी।
का तिनकी गति होहि कर्मके जे अभिमानी॥
आत्मज्ञानतैं रहित पुरुष यह भेद न जानें।
जग प्रपञ्चमहँ फँसे देहकूँ सब कछु मानें॥

फँस्यो मोहमहँ दयानिधि! गहे कृपामय तव चरन।
उद्धवकी सुनिके विनय, बनवारी बोले बचन॥

प्रियवर! मन है करमयुक्त इन्द्रियतैं संयुत।
जीव संग लै फिरै लोक लोकनिमहँ इत उत॥
मनने जो कछु सुन्यो कर्यो तिहि नित्य विचारै।
जाइ जहाँ तहँ रमै पूर्व निज रूप बिसारै॥

अहंभाव स्वीकार ही, यही जीवको जनम है।
नहीं जीव जनमैं मरै, यही यथारथ मरम है॥

करैं स्वप्नमहँ भेद भाव त्यों बहु बिधि प्रानी।
त्यों आश्रय करि करण बनै आत्मा अज्ञानी॥
प्रति पल होवै जनम मरन मूरख नहिं जानैं।
परिवर्तित तनु होहि अबुध नित नहिं पहिचानैं॥

गरभ, वृद्धि, उत्पत्ति, शिशु, कुमर, युवक, पुनि प्रौढ़ वय।
जरा, मरन नव अवस्था, तनुकी जीव सदा अभय॥

बोयो पौवा भयो काठिके बीज निकारौ।
द्रष्टा इनतैं पृथक् जीव त्यौ तनुतैं न्यारौ॥
प्रकृति पुरुषको भेद समुझि जे नहीं विचारैं।
भटकैं योनिनिमाहिं मरैं पुनि पुनि तनु धारैं॥
धाई माई शिशु करैं, कहैं—भूमि घूमै फिरै।
त्यौं कर्त्ता नहिं जीव है, भ्रम वश चक्करमहँ परै॥

होहि अर्थ नहिं तऊ जगत चिन्तन है अनरथ।
स्वप्नमाहिं जो लखै तिनहिं सत् समुझै स्वारथ॥
भ्रमवश भासित होहि सत्य जगकूँ मत जानों।
खल जो कछु कटु कहैं बुरे ताको मत मानों॥

उद्धव बोले—'प्रभु ! नहीं, सह्यो जात अपमान है।
कैसे समदर्शी बनैं, हियमहँ बड़ अज्ञान है॥

हरि हँसि बोले—'सखे ! सहन अपमान कठिन अति।
बाक्य-बानतैं बिंधे व्यक्तिकी बिगरै गति मति॥
सुनो एक दृष्टान्त अवन्ती नगरी नामी।
तामें द्विज एक बसै कृपन अति क्रोधी कामी॥
भयो नाश धन कृपनको, दान भोग नहिं कछु कर्‌यो।
हर्‌यो चोर, नृप, स्वजन, खल, जोरि जोरि जो धन धर्‌यो॥

भयो कृपन धन रहित बात अब कोइ न बूझै।
मार्यो मार्यो फिरै न मारग सुखकर सूझै॥
आशा करिकैं जाइ जहाँ तहँ धक्का पावै।
ह्वै चिन्तामहँ ग्रस्त नयनतैं नीर बहावै॥

अब पछितावत कृपन अति, लई भक्त-चरननि शरन।
गहि पद गद्‌गद कंठतैं, बिकल बिलखि बोल्यो बचन॥

मैं नहिँ कीयो धरम करम कछु द्रव्य कमायौ।
सोऊ सब नसि गयो काम मेरे नहिँ आयौ॥
कृपननिको धन धरम भोगमहँ काम न आवै।
दुखको कारन बनै लोक परलोक नसावै॥

धन अर्जन,ब्यय, नाशमहँ, श्रम, भ्रम, भय, मद होहि दुख।
चित चिन्तित सब जन कुढ़ैं, कहो द्रव्यमहँ कौन सुख॥

चोरी, जारी, काम, क्रोध, मिथ्या भाषन अति।
इस्मय, मद, पाखण्ड वैर अरु भेद ब्यसन मति॥
इस्पर्धा, बिश्वासहीनता, हिंसा, अनरथ।
होहिँ अर्थतैं सकल सधै का धनतैं स्वारथ॥

सब ब्यसननिको जनक धन, तृष्ना अब नहिं करुङ्गो।
करैं कृपा करुनायतन, तो सब तजि हरि भजुङ्गो॥

यों निश्चय करि विप्र भयो दन्डी सन्यासी।
प्रान, करन, मन साधि बन्यो भगवत विश्वासी॥
भिक्षाकूँ जब जाइ करैं अपमान असज्जन।
छीनैं कन्था, दन्ड, कमन्डलु, माला, आसन॥

करन लगै भिक्षा जबहिँ, त्यागि देहिं मल मूत्र खल।
देहिँ त्रिबिध बिधि यातना, तऊ न होवै द्विज बिकल॥

डाटे डपटैं दुष्ट बाँधि कपि सरिस नचावैं ।
नित कटु कहँ कुवाक्य धूर्त, खल, चोर बतावैं ॥
कहँ—द्रव्य हित कृपन फिरै नित वेष बनाये ।
तजै मौन खल करैं यतन नहिं डिगै डिगाये ॥

दैविक दैहिक परहिँ दुख, भाग्य समुझि सबकूँ सहै ।
गीत गाइ समुझाइकैं, बार बार मनतैं कहै ॥

देवै दुख सुख कौन दैव गतितैं सब होवै ।
अमुक देहि दुख समुझि अज्ञ पछितावै रोवै ॥
स्वजन, देवगन, काल, करम कारन सब नाहीं ।
मनही सुख दुख रचै घुमावै जगके माहीं ॥

गुन वृत्तिनि उपजाइ मन, त्रिविध करम करवाइकैं ।
आत्मा नित्य निरीह परि, बँधै गुननि मन पाइकैं ॥

दान, धरम, यम, नियम, वेद पढ़िबो, व्रत धारन ।
बरनाश्रम शुभकरम सकल मन बशके कारन ॥
यदि मन वशमहँ भयो न फिरि आवश्यक साधन ।
हैं साधन सब व्यर्थ होहि नहिँ वश जिनितैं मन ॥

यह मन अति बलवान रिपु, सकल करन प्रेरक प्रबल ।
जाके वशमहँ सब रहैं, करहिं जाहि वश नर विरल ॥

अज्ञ न जीतैं जाहि विजय हित इत उत अटकैं ।
बिनु मन जीते पुरुष विविध योनिनिमहँ भटकैं ॥
यदि सुख दुखको हेतु मनुजकूँ ही तुम मानों ।
देह परस्पर लड़ैं आत्मा निष्क्रिय जानों ॥

सोचो यदि निज दाँततैं, कटै जीभ भोजन समय ।
करौ क्रोध फिरि कौनपै, कौन करै अनुनय विनय ॥

देहि देवता दुःख लड़ैं यदि स्वयं परस्पर।
आत्माकी का हानि गिरै जल जलके ऊपर॥
सुख दुखतें है परे आतमा का दुख देवै।
निजानन्दमहँ तुष्ट नहीं विषयनिकूँ सेवै॥

यदि ग्रहगन ही देहिँ दुख, सहै देह आत्मा नहीं।
स्वप्न कालको अहि कहो, काटे जाग्रतमहँ कहीं!॥

नहीं करम सुख दुःख देहिँ आत्मा है न्यारो।
जड चेतन हैं भिन्न नहीं दुख देहि, विचारो॥
काल! कहा दुख देहि अश आत्माको जानों।
आत्मा अज, निर्द्वंद्व प्रकृतितैं पर पहिचानों॥

अहंकार संसृति जनक, भ्रम-वश होहि प्रतीत दुख।
समुझै जो जा ज्ञानकूँ, होवै ताकूँ नित्य सुख॥

नहीं दुःख सुख देहि कबहुँ काहूकूँ कोई।
दुखको कारन, अन्य बतावे तिनि मति खोई॥
मारें बाँधें चाहि देहि दुख मोकूँ सब जन।
समुझि दैव गति कबहुँ होहुँ नहिँ दुखित मलिन मन॥

कहैं कृष्ण—"उद्धव! सुनो, भिक्षु कृतारथ ह्वै गयो।
सहीं यातना खलनिकी, गाय गीत प्रमुदित भयो॥

उद्धव बोले—'प्रभो! सांख्य अब मोइ सुनावें।
कितने हैं सब तत्व! भये कैसें! समुझावें॥
हरि बोले—हौं प्रथम एक ही अद्वय सत चित।
द्रष्टा दृश्य स्वरूप प्रकृति अरु पुरुष भये इत॥

प्रकृति पुरुष संयोगतैं, क्षोभ भयो जब गुननिमें।
एकादश अरु देव मिलि, भयो अंड इनि सबनिमें॥

सलिलमाँहिं सो रह्यो विराज्यो तामें हौं जब।
भयो नाभितैं कमल प्रकट अज भयो स्वयं तब॥
तप करि त्रिभुवन रचे चतुरदश लोक बनाये।
मनुज, भूत, सुर, असुर लोक सबमाहिं बसाये॥

प्रकृति पुरुषतैं होहि जग, काल पाइ होवै सकल।
रहूँ ब्रह्म हौं ही सदा, मोतैं नहिं कोई प्रबल॥

प्रलयकाल जब होहि कार्य कारन मिलि जावै।
देह अन्नमहँ मिलै बीजमहँ अन्न समावै॥
बीज भूमिमहँ भूमि गंध सो जल जल रसमहँ।
यों क्रमतें सब भूत लीन ह्वै जावैं नभमहँ॥

इन्द्रिय मात्रा भूत गन, अहंकारमहँ होहिं लय।
अहंकार महतत्वमहँ, प्रकृतिमाँहि सोऊ विलय॥

प्रकृति कालमहँ विलय जीवमहँ काल समावै।
हौं अव्यक्त अनादि जीव मोमें मिलि जावै॥
नहिं काहूमें मिलूँ अवधि सबकी हौं उद्धव।
अति समासतें कही सृष्टि लय कहूँ कहा अब॥

बोले उद्धव—नाथ! अब, गुन वृत्तिनि बरनन करें।
क्यों प्रानिनिमहँ विषमता, नटनागर संशय हरें॥

सुनि हरि बोले—भेद होहि गुनकी वृत्तिनिमहँ।
शम, दम,दया, विवेक, नहीं इच्छा विषयनिमहँ॥
त्याग, तितिक्षा, दान, सत्य, श्रद्धा अरु इस्मृति।
मन प्रसाद अरु मौन सत्व गुनमाहिं आत्म रति॥

इच्छा, तृष्णा, विषय सुख, भेद बुद्धि अभिमान, मद।
आत्मप्रशंसा, हास्यबल, वृत्ति रजोगुनकी दुखद॥

क्रोध, लोभ, पाखंड, कलह, श्रम, शोक, मोह भय।
मिथ्याभाषन, नींद, याचना, हिंसा अपचय॥
पीडा, और विषाद, व्यर्थ आशा नित मनमहँ।
अनुद्योग ह्वै रहै अधिक ममता निज तनमहँ॥

बढ़ै तमोगुन देहमहँ, होवैं ये सब वृत्ति तब।
पृथक् कहीं गुन वृत्ति सब, सन्निपात गुन सुनहु अब॥

अहंकार सुन उद्धव! होवै तीनिहु गुनमहँ।
इन्द्रिय, मन अरु विषय प्रान तीनिहु गुन इनमहँ॥
धरम, अरथ, अरु काम होइ इच्छा जब मनमहँ।
सन्निपात गुन होहि चित्त श्रद्धा, रति धनमहँ॥

गृह रति रुचि कर्तव्यमहँ, करम कामनाके सहित।
समुझहु खिचरी गुननिकी, सुनु स्वभाव गुन लाइ चित॥

बढ़ै सत्व सम आदि बढ़ैं गुन चित प्रसन्न अति।
ज्ञानादिक सम्पन्न होहि सुख धरममाहिँ मति॥
जब रज अति बढ़ि जाय काम सुखई प्रिय लागै।
चित चंचल मति भ्रमित द्रव्य यश इच्छा जागै॥

तमकी होवै प्रबलता, हिंसा निद्रा शोक भय।
बढ़ै ग्लानि मन शून्यवत, खिन्न चित्त अज्ञानमय॥

देव असुर अरु यातुधान बल बाढ़ै क्रमतैं।
सत्व रजोगुन और ज्ञाननाशक गुन तमतैं॥
स्वरग भूमि अरु नरक देवत्रय तीन अवस्था।
वात, पित्त, कफ सबनि माँहि गुन तीन व्यवस्था॥

भोग, धरम, व्रत, नियम, फल, काल, करम, करता, करन।
द्रव्य, देश, निष्ठा, क्रिया, ज्ञान, अवस्था अरु असन॥

सबई हैं त्रिगुनात्म प्रकृति अरु पुरुष अधिष्ठित ।
देखे समुझे सुने बुद्धि द्वारा जो निश्चित ॥
होहिं करम बश बन्ध भक्तितैं गुन भगि जावैं ।
मोमें राखे भाव भक्त ते मोकूँ पावें ॥
रज, तमकूँ जय सत्वतें, करै सत्व मम भजनतें ।
होवै त्रिगुनातीत तब, लिपटै सो मम चरनतें ॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताहमें भिक्षुगीत सांख्ययोग नामक नवमोऽध्याय समाप्त ।

[पाक्षिक पारायण चौदहवें दिनका विश्राम]



अथ दशमोऽध्यायः

[१०]

मानव तनु लहि रहे चरन मेरे लिपटानों।
नर जीवन फल लह्यो यथारथ ताने जानों॥
होवै जब ई ज्ञान जगत माया नसि जावै।
अज्ञानिनिको संग करै विषयनि फँसि जावै॥

फँसे उरबशी मोहमहँ, ऐल नृपति सम्राट जब।
भयो ज्ञान पछिताइ पुनि, सुखकर गाये गीत तब॥

ऐल-गीत

प्रथम गीत

हाय! यह जीवन वृथा गँवायौ।
मोहमयी मदिरा पी-पीकें, कामिनि हाथ बिकायौ॥१॥ हाय।
मृगनयनी बधिकिनि बनि सम्मुख, मोहक जाल बिछायौ।
डारि रूपको चुगो चहूँ दिशि, चचल चित्त फँसायौ॥२॥ हाय।
हौं नरपति भूपति-पद वन्दित, खग मृग सरिस नचायौ।
त्यागि मोइ ठगिनी चलि दीनी, नेंक न नेह निभायौ॥३॥ हाय।
ह्वैके विकल त्यागि पट भूषण, पीछे नंगो धायौ।
तेज, ओज, बल, पौरुष त्यागो, हौ नहिं नीच लजायौ॥४॥ हाय।
भयो दुखी कातर अति विह्वल, अतिशय नेह जतायौ।
गदही झारत जात दुलत्ती, खर वत पीछे धायौ॥५॥ हाय।

द्वितीय गीत

वृथा ताको जप तप अरु दान ।
जाके हियमहँ धँसी नारिकी, मंद मृदुल मुसकान ॥१॥ वृथा ।
पढ़े शास्त्र, फल फूल खाय बन, कर्यो वेद को गान ।
व्यरथ सकल साधन यदि चाहै, मन अधरातमृत पान ॥२॥ वृथा ।
तब तक शील, सँकोच, सरलता, जानि, बरन कुल कान ।
जब तक हियमहँ चुभे न चोखे, नारि नयन बर बान ॥३॥ वृथा ।
बार बार धिक्कार जारकूँ, कुलटा रूप लुभान ।
मानत सुख जा हाड़चाममहँ नहिं सुमिरत भगवान ॥४॥ वृथा

तृतीय गीत

हाय ! मन मूढ़ न मेरो मान्यो ।
जो अति अशुचि मूत्र मल आलय, ताकूँ सुखकर जान्यो ॥१॥ हाय०
खग, मृग सरिस समुझि मोह अधिकिनि, निज कटाच्छ सर तान्यो ।
अपने आप फँस्यो फदामें, भयो न दुखी रिस्यान्यो ॥२॥ हाय०
सुरा समुझि विष वेलि अधम पशु, पाइ ताहि हरषानो ।
अति उनमत्त भयो मद पीकें, नहिं पहिले पहिचान्यो ॥३॥ हाय०
चन्द्रवदन कजरारे नयना, अँग अँग निरखि लुभानो ।
देखि रूप भरमायौ कामी, विष अमिरतमहँ सान्यो ॥४॥ हाय०

चतुर्थ गीत

त्रियाकी देह परम प्रिय जानी ।
जो मल मूत्र रुधिर मज्जा अरु, कफ खकारकी खानी ॥१॥ त्रिया०

रुधिर राधि मल कफके कीरा, सुधा सरिस इनि जानी।
कुलबुलात हरषात इनहिंमहँ, हौ तैसो ही प्रानी ॥२॥ त्रिया०
जोहत रहत नयन मुख पल-पल, समुझि आपनी रानी।
तृन सम तोरि नेहकी डोरी, छिनमहँ भई बिरानी ॥३॥ त्रिया०
भ्रमवश सरपिनि गर लपटानी, मनहर माला मानी।
कब आई कब गई सयानी, अब रहि गई कहानी ॥४॥ त्रिया०
माया नाना नाच नचावै, ठगिनी परम पुरानी।
हे मायेश बचाओ गिरिधर, यदुबर सारंगपानी ॥५॥ त्रिया०

पञ्चम गीत

जगतके विषय बड़े बलवान।
इनतें रहो सचेत सदाई, जो चाहो कल्यान ॥१॥ जगत०
विषयी विषय बात बतरावहिँ, करत विषय गुनगान।
तातें तजो संग विषयिनिको, बिघन रूप इनि जान ॥२॥ जगत०
मन अरु करमनि मति पतिआवो; ये रिपु अति बलवान।
गहो चरन प्रभु भली करिंगे, दीनबन्धु भगवान ॥३॥ जगत०

छप्पय—यों बहु बिधि पछिताइ उरबशी पुर तजि आये।
मनमहँ मोकूँ धारि शान्त ह्वै अति हरषाये ॥
भयो यथारथ ज्ञान मोहको नातो तोर्यो।
सब जगतैं मुख मोरि प्रेम मोई तें जोर्यो ॥
जो चाहै कल्यान निज, जाइ न कबहुँ कुसँगमहँ।
कामी कामिनि सङ्ग तजि, रहे सदा सत्संगमहँ ॥

समदरशी शुचि संत सरलचित शान्त अमानी ।
भोरे ममताशून्य अकिंचन निरमम ज्ञानी ॥
होवें तिनिके यहाँ कथा नित हरिकी मनहर ।
सुनत होत अघ नाश होहि हिय निरमल सुखकर ॥

संतनिके ढिंग बैठिकें, सुनें कथा जे चावतें ।
ते पावें ध्रुव परमपद, करें कीरतन भावतें ॥

शरन हुताशन लेत शीत, तम, भय भगि जावे ।
त्यो संतनि सँग पाप ताप तम सब नसि जावें ॥
सत्‌संगति फल समुझि ऐल नृप सुखी भयो अति ।
करि उद्धव ! सत्‌संग लगाओ मम चरननि मति ॥

उद्धव बोले—दयानिधि, क्रियायोग मोतें कहे ।
कैसे तुमकूँ पूजि हम, नित पदपद्मनिमहँ रहे ॥

इति श्रीभागवत चरितके सप्ताहमें ऐलगीत नामक दशम अध्याय समाप्त ।

[मासिक पारायण अट्ठाईसवें दिनका विश्राम]



अथ एकादशोऽध्यायः

[११]

हरि बोले—यह क्रियायोग है बिस्तृत भारी।
अति समासतें कहूँ सबनिको जो हितकारी॥
बैदिक, तान्त्रिक, उभय तीनि बिधि पूजा मम प्रिय।
पंचभून, द्विज, अतिथि, मूर्तिमहँ अथवा निजहिय॥
करै नित्यकरमनि निबटि, प्रतिमा सुघर बनाइकें।
पत्र, पुष्प, फल, नीरतें, मोमें चित्त लगाइकें॥

जो मिलि जावै वस्तु अल्प वा बहु पूजनकी।
साङ्ग सहित परिवार करै पूजा इनि सबकी॥
पाद्य अरघ इस्नान धूप दीपादिक दैकें।
नाना बिधि नैवेद्य धरै अति हरषित ह्वैकें॥
दै मुखशुद्धी प्रदच्छिन, छमायाचना बहु करै।
भोग लेहि, निज शीशपै, चंदन चरनामृत धरै॥

बेदी सुघर बनाइ अगिनिमहँ पूजै बिधिवत।
करि पुनि मेरो ध्यान समिध आहुति दे घृतयुत॥
आज्यभाग आघार देहि शाकल्य आज्यमय।
मूलमन्त्र पढ़ि देहि स्विष्टकृत् करै सदाशय॥
रबि उपासना अरघ दै, जलमहँ जल तरपन करै।
अतिथि बिप्र नैवेद्यतैं, पूजै यों करमनि करै॥

धनको सत-उपयोग जिही मम पूजा होवै।
धरमहीन धन जोरि व्यरथ नर आयुष खोवै॥
मन्दिर सुन्दर बनाइ भोग नित नव लगवावै।
बाँटै प्रभु परसाद स्वयं बन्धुनि सँग पावै॥

खेत, नगर, आजीविका, पूजा-हित अरपन करै।
करि धन व्यय सेवा निमित, भवसागर नर ध्रुव तरै॥

उद्धव बोले—प्रभो! करें परमार्थ निरूपन।
हरि बोले—'नहिँ लखै कबहुँ परगुन अरु दूषन॥
निन्दा इस्तुति करैं जीवकी, जो जड़ प्रानी।
परमारथतैं गिरें द्वैत करिकें अज्ञानी॥

का जगमें शुभ अशुभ है, ये सब गुनके खेल हैं।
जगत पदारथ असत है, विकृत गुननिके मेल हैं॥

हरिही सब बनि गये करन अरु कारन कर्ता।
वेही पालक पाल्य बने संहृत संहर्ता॥
होवै त्रिबिधि प्रतीति गुनमयी माया मानों।
निज अनुभव प्रत्यक्ष वेदतैं जाकूँ जानों॥

उद्धव पूछें—देह जड़, आत्मा स्वयं प्रकाश है।
होइ प्रतीती कौनकूँ, कामें भ्रमको वास है॥

हँसि बोले भगवान—"असत जग आत्मा है सत।
देह, करन, मन, प्रान रहें जब तक सम्बन्धित॥
तब तक यह अज्ञान रहै नहिं छूटै - बन्धन।
ज्यों नहिं छूटै स्वप्न होहि अनरथ नहिं छिन्दन॥

देह, करन, मन प्रानको, अभिमानी ही जीव है।
अहं अविद्यातैं रहित, स्वयं प्रकाशित शीव है॥

एकतत्व नित नयो बिबिध रूपनिमहँ भासै।
वही प्रकास प्रकाश्य दृश्यकूँ नित्य प्रकासै॥
आदि अन्त जग नाहिं मध्यमें हू न रहेगो।
क्यौं ज्ञानी फिरि सोच करै क्यौ दुःख सहेगो॥

अन्वय अरु व्यतिरेकतें, आत्मतत्व निश्चय करै।
जब तक दृढ़ता होहि नहिं, तब तक शुभ साधन करै॥

रोग उपेक्षा करो उभरि वह पुनि पुनि आवै।
त्यों बिषयनि आसक्त चित्त साधकहिं डुबावै॥
काम करम बश होहि स्वयं कर्त्ता बनि जावै।
जो कर्त्ता बनि जाय अन्तमहँ सो फँसि जावै॥

रहै कमल जलमें यथा, त्यौं ज्ञानी जगमहँ रहै।
करै प्रकृति बश काज सब, किन्तु न बन्धन दुख सहै॥

है बिकल्पतें रहित आतमा चित्त मोह बश।
करै द्वैतको भान भेद करि राजस तामस॥
अर्थबाद जो कहे अज्ञ ते पंडित मानी।
भोगनिमहँ सुख लहैं असत् कर्मनि अभिमानी॥

करै साधना योगकी, बिघ्न डिगावैं आइकें।
तौ विघ्ननिकूँ नाश करि, बढ़ै फेरि हरषाइकें॥

होइ शीत संताप सूर्य शशि करै धारना।
बात आदि बढ़ि जाइँ करै आसननि कल्पना॥
होहिं भाग्य बश पाप तिनिहिँ तप करिके जारै।
बात, पित्त, कफ बढ़ैं औषधिनितें सहारै॥

कोप क्रूर ग्रह करहिं यदि, तौ मन्त्रनिको जप करै।
कामबासना यदि उठै, ध्यान सतत मेरो धरै॥

है विघ्ननिके नाश हेतु प्रभु नाम कीरतन।
काम क्रोध नसि जायँ करै जो मेरो सुमिरन॥
नश्वर समुझै देह न जामें मोह लगावै।
यदि है जावै सुदृढ़ तऊ नहिं लखि इतरावै॥
सिद्धि पाइकें योगकी, मन न फँसै जगमहँ कहीं।
जे आश्रय मेरो गहैं, होहि विघ्न तिनिकूँ नहीं॥

उद्धव बोले—विभो! योग अति दुष्कर मानूँ।
मैं तो लीला, धाम, नाम अरु रूपहिँ जानूँ॥
कोई सुगम उपाय कृपा करि और बतावें।
अनायास सब सिद्धि सरलतातें मिलि जावें॥
कमल सरिस कोमल सुखद, परम मृदुल अति अरुन वर।
गही शरन तव चरनकी, जो कमलासंतापहर॥

सुनिकें उद्धव विनय बिहँसि बोले बनवारी।
है अति पावन परम विमल मति तात तुम्हारी॥
विषय वासना फँस्यौ व्यरथ वय प्रानी खोवै।
मम धरमनि अनुराग भाग्य ही तें प्रिय! होवै॥
अब फिरितें अपने धरम, कहूँ सुमङ्गल शान्तिमय।
करि जिनको आचरन शुभ, करै मृत्युपै नर विजय॥

मोमें मन चित लाइ करै सुमिरन मेरो नित।
असन बसन जो करम करै तिनिकूँ मेरे हित॥
रहैं भागवत जहाँ तहाँ ही समय वितावै।
भक्तनिको नित करै आचरन तिनि गुन गावै॥
मेरे पर्वनिपै करै, महा महोत्सव प्रेमतें।
धूम धाम अरु ठाटतें, करै काज सब नेमतें॥

आत्मा गगन समान समुझि नित नेह बढ़ावै ।
करि सबको सत्कार द्वैत मनमाहिँ न लावै ॥
विप्र, श्वपच, खर, धेनु करै डंडौत सबनिकूँ ।
मेरे अरपन करै सकल तन मन करमनिकूँ ॥
अपनो कछु समुझै नहीं, तन, मन, जन, गृह, वित्तकूँ ।
या अनित्य तनतैं चतुर, पावै मो अज नित्यकूँ ॥

ज्ञान सारको सार कह्यो उद्धव ! यह तोतैं ।
शङ्का यदि कछु रही पूछि ल्याकूँ तू मोतैं ॥
जे श्रद्धायुत सुनहिँ हियेमें जाकूँ लावैं ।
ते पावें मम भक्ति अन्त मम धामहिँ आवैं ॥
अब उद्धव तुमरो कहो, शोक मोह का नसि गयो ?
मेरो मायातें रहित, रूप हियेमें बसि गयो ?

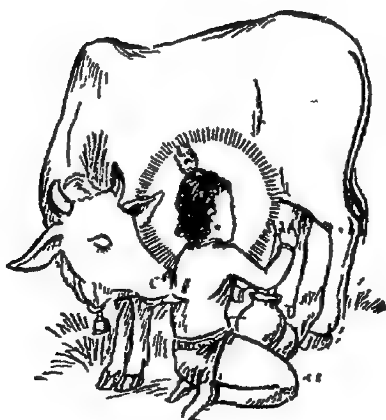
उद्धव सुनि प्रभु प्रश्न चरन कमलनि लिपटाये ।
कंठ भयो अवरुद्ध नयन जलतैं भरि आये ॥
पुनि कछु धरीके धीर कहैं—प्रभु ! सब कछु जानों ।
भयो यथारथ ज्ञान मोह मद मान नसानों ॥
भयो नाथ ! जीवन सफल, पुनि पुनि पदपद्मनि परूँ ।
कृष्ण ! कृपा करिकें कहैं, हौं कृतार्थ अब का करूँ ॥

सुनि बोले यदुनाथ—वत्स ! बदरीवन जाओ ।
कन्द, मूल, फल खाइ अलकनन्दामें न्हाओ ॥
शीत उष्णको सहन करो नित ध्यान लगाओ ।
तो तुम तजि भवबन्ध अन्तमहँ मोकूँ पाओ ॥
श्याम सीख सुखमय सुनी, पुनि पदपद्मनि परि गये ।
प्रभु चरननि बिछुरन सुमिरि, उद्धव अति विह्वल भये ॥

चरनपादुका लईं धरीं सिर प्रभुपद सुमिरत ।
पुनि पुनि करत प्रनाम चले बदरीवन बिलखत ॥
हरि निज सेवक सखा समुझि सब सीख सिखाई ।
शुभ शिक्षा हिय धारि परमगति उद्धव पाई ॥

पूछें शौनक—सूतजी, पुनि यदुनन्दन का कर्यो ।
कैसें कुल सहार करि, शेष भार भूको हर्यो ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें उद्धवगीता उपसंहार नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ द्वादशोऽध्यायः

(१२)

कहँ सून—अपशकुन पुरीमहँ नित नित होवैं।
करि करि करकस शब्द सियारिनि दिनमहँ रोवैं॥
काक कंक अरु गीध अशुभ खग इत उत डोलैं।
उल्लू श्वान कपोत भयंकर बोली बोलैं॥
हरि बोले—यादव सुनहु, इन उत्पातनि शमन हित।
सब प्रभास मिलिकैं चलो, दान धरममहँ देहु चित॥

साधु साधु कहि सबनि हरषि अनुमोदन कीन्हों।
सब प्रभास चलि दये पुण्य हित धन बहु लीन्हों॥
अस्त्र शस्त्र लै संग चले, सब तुरँग भगावत।
पहुँचे पुण्य प्रभास उदधि लखि सब हरषावत॥
विधिवत करि उपवास पुनि, पूजि प्रेमतैं सुरनिकूँ।
धेनु, धान, धन, गज, तुरँग, दई वस्तु सब द्विजनिकूँ॥

तीरथको करि कृत्य यथारुचि भोजन कीयो।
भावी वश फिरि सबनि द्रव्य मादक बहु पीयो॥
करन लगे सब कलह परस्पर देवैं गारी।
सकल भये मदमत्त भाग्यने बुद्धि बिगारी॥
धनुष, बान, तोमर, खडग, लै लै सब लरिबे लगे।
हरि-माया मोहित भये, नहिँ कोई रनतैं भगे॥

धनुष गये सब टूटि बान तूनीर रहे नहिँ ।
तटपै सम्मुख मुसल चूर्णके सरपत निरखहिँ ॥
तिनिकूँ तुरत उखारि परस्पर सबई मारे ।
बज्र सरिस बनि जायँ सकल यादवनि सँहारे ॥

राम श्याम बरजन लगे, इनकूँ हू मारन लगे ।
ये हू सरपत लै भिड़े, गिने न सम्बन्धी सगे ॥

सब कटि कटि गिरि गये बच्यो नहिं कोई यादव ।
लखि निज वंश बिनाश भये प्रमुदित अति माधव ॥
बल अन्तरहित भये, भये अहि तजि मानुष तन ।
उदधि तीर अश्वत्थ तहाँ पहुँचे यदुनन्दन ॥

रूप चतुर्भुज दिव्य अति, दिशनि करत आलोकमय ।
श्याम-बरन श्रीवत्सयुत, धारें कुंडल बर बलय ॥

बाम चरनकूं धरें दाहिनी जंघापै हरि ।
पीपल पीठि सटाइ बिराजे वंश नाश करि ॥
शंख चक्र अरु गदा पद्म सशरीर बिराजें ।
कुंडल कंकन मुकुट करधनी अंगनि भ्राजें ॥

जरा व्याध वनमें छिप्यो, मुसल कीलको बान करि ।
सुखासीन मृगके सरिस, परे दूरितें दृष्टि हरि ॥

हरिन समुझि तकि बान चरनमहँ व्याधा मार्यो ।
दौर्यो पकरन तुरत निरखि हरि ज्ञान बिसार्यो ॥
पद पद्मनिमहँ पर्यो कहै—नहिं नाथ रिस्यावें ।
मार्यो उनि पद बान जिनहिं मुनि योगी ध्यावें ॥

माधव ! मोकूँ मारिकैं, देहिं दंड दानव-दलन ।
पुनि न करूँ अपराध अस, शिक्षा पावें अपर जन ॥

यदुनन्दन हँसि कहें--जरा ! भय मत कछु खाओ ।
मम इच्छातैं भयो उठो सुरलोकनि जाओ ॥
विनती बहु विधि करी दिब्य तनु व्याधा धार्‌यो ।
चढ़िकैं दिव्य विमान बन्दि पद स्वरग सिधार्‌यो ॥

इत दारुक नहिं लखे प्रभु, खोजत खोजत चलि दयो ।
चरन-चिह्न पहिचानिकैं, कछु कछु आशान्वित भयो ॥

चरन सहारे आइ लखे पीपर तर यदुवर ।
रथतैं उतर्‌यो तुरत पर्‌यो चरननिमें आतुर ॥
रोय रोय यों कहै—नाथ ! सूनो तुम विनु जग ।
भई नष्ट मम दृष्टि घिर्‌यो तम नहि सूझत मग ॥

इत रोवत सारथि सतत, उत गरुड़ध्वज रथ तुरत ।
उड़्‌यो गगन घोड़नि लिये, लीन भयो आयुध सहित ॥

रथ आयुध जब गये कहे तब हरि दारुकतैं ।
सूत ! द्वारका जाउ वृत्त यह कहो सबनितें ॥
मेरी त्यागी पुरी डुबोवै जलनिधि अबई ।
इन्द्रप्रस्थकूँ जाउ संग अरजुनके सबई ॥

सदा भागवत धर्म तुम, करि पालन निरपेक्ष बनि ।
जग प्रपञ्च माया रचित, समुझि असत मानों सबनि ॥

हरि आयसु सिर धारि चल्यो द्वारावति दारुक ।
इत अज, शिव, सुर, शक्र श्याम ढिँग आये उत्सुक ॥
परमधाम प्रभु गमन निहारन इच्छा मनमहँ ।
नयन कमल हरि मूँदि विराजे सुख आसनमहँ ॥

अंतरहित निज तनु कर्‌यो, गमने श्याम स्वधाम जब ।
धर्म, धैर्य, धी, कीर्ति, श्री, सत्य आदि सँग गये सब ॥

अज हू गति नहिं लखी भये कब हरि अन्तरहित ।
ज्यों घनतें घनमाँहिँ न विद्युत दीखत अविशत ॥
सब सुर निज निज लोक गये प्रभुके गुन गावत ।
यों करि क्रीड़ा कृष्ण करुन अति दृश्य दिखावत ॥

द्विजसुत, गुरुसुत, मातुसुत, मृतक जिवाये परीचित ।
नहीं प्रकट चिर तनु रख्यो, योगिनिके उपदेश हित ॥

प्रभुलीला संवरन करी दारुक इत आयौ ।
पहुँचि द्वारका सकल यथावत वृत्त सुनायौ ॥
सुनि प्रभास सब लोग विकल है दौरे आये ।
रोहिनि अरु वसुदेव देवकी प्राण गँवाये ॥

हरि, बल अरु वसुदेव सब, यदुवंशिनिकी कुलवती ।
निज निज पति हिय लाइकें, भईं नारि सबई सती ॥

सती भईं सब नारि निरखि अरजुन अति रोये ।
सम्बन्धी प्रिय सुहृद सखा सरवसु हरि खोये ॥
करिकें सबके श्राद्ध नारि बालक सँग लीये ।
इन्द्रप्रस्थ मग चले पराजित चोरनि कीये ॥

धरमराज प्रभु-गमन सुनि, नृपति बज्र ब्रजमें करे ।
हथिनापुर नृप परीचित, करे हिमालयमें गरे ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें यदुवंश विनाश भगवत्स्वधाम गमन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

[१३]

शौनक पूछें—सूत! भये को कलिमें भूपति।
सूत कहें—मुनिराज! न कलिमें कोई नरपति॥
सहस पाँच या सात और राजा कछु क्रमतें।
फिरि कुलीन नहिं भूप रहे सब आवृत तमतें॥
जरासन्धके बशमें, शत्रुञ्जय राजा भयो।
जाहि पुरञ्जय हू कहे, शुनक सचिव ताको कह्यो॥

शुनक स्वामि निज मारि कर्‌यो प्रद्योत पुत्र नृप।
ताको पालक पुत्र भयो पुनि सो मगधाधिप॥
तासु विशाखायूप पुत्र राजक पुनि नरपति।
राजकके बिख्यात नन्दिबर्धन सुत भूपति॥
पाँच भये प्रद्योतके, बंशज नृप अवनीश ये।
भये नृपति गण सब बरस, एक शतक अड़तीस ये॥

तदनन्तर शिशुनाग भये नृप काकबर्ण सुत।
क्षेमधर्म सुत तासु तासु क्षेत्रज्ञ प्रभायुत॥
ताके सुत बिधिसार बिम्बसारहु कहलावें।
ताके पुत्र अजात-शत्रु पितु तक भय खावें॥
जिनिने कौशल नृपतितें, समर राजहित अति कर्‌यो।
भयो ब्याह कौशल सुता,—तैं तातैं दर्भक भयो॥

दर्भकके सुत अजय नन्दिवर्धन सुत ताके।
महानन्दि तिन भयो शुद्ध नहिं सुत पुनि ग्वाके॥
है अन्तिम शिशुनाग-वंशको महानन्दि नृप।
वरष तीन सौ साठ राज्य कीयो सब इनि नृप॥
शूद्रातैं उतपन्न इक, महानन्दिको सुत बली।
महापद्म धनको अधिप, नन्द परम भूपति छली॥

महापद्म नृप नंद क्षत्र कुलको संहारक।
शूरवीर अति बली सकल पृथिवीको पालक॥
भये तासु सुत आठ कहाये नवनंदहु सब।
अति व्यभिचारी वृषल, विप्र प्रकट्यो क्रोधी तब॥
परम कुटिल कौटिल्य मुनि-को आदर तिनि नहिं कियो।
युक्ति सहित तिनि नंदको, नाश राज्य कुल करि दियो॥

शकटारक निज सचिव नंद बन्दी करि राख्यो।
कर्‌यो मुक्त सुनि उक्ति हास्य कारन जब भाख्यो॥
सचिव वैर मन राखि विप्र चाणक्य बुलायौ।
युक्ति सहित अपमान कराय नंदतैं कुपित करायौ॥
चन्द्रगुप्त निज पक्षमें, करि भीषन षडयन्त्र द्विज।
मरवाये नवनंद हू, करी प्रतिज्ञा पूर्ण निज॥

कूटनीति द्विज करी यवन राजा बुलवाये।
युक्ति सहित मरवाइ हराये कछुक भगाये॥
कुटिल विप्र-चाणक्य जथारथ नृप अधिनायक।
चन्द्रगुप्त नृप प्रथम मौर्य-कुलके संस्थापक॥
चन्द्रगुप्त द्विज कृपातैं, विश्व विदित नृप है गये।
द्वितिय मौर्य सम्राट् नृप, वारिसार तिनि सुत भये॥

वारिसार या बिन्दुसार नृप भद्रसार वर।
चन्द्रगुप्त-सुत इनि नामनितै भयो उजागर॥
शत्रुसँहाती विदित पितासम देश विदेशनि।
रहे विदेशी दूत सभामें भूप असंख्यनि॥
तिनिके पुत्र अशोक नृप, भये यशस्वी जग विदित।
मानें नृप आज्ञा सकल, नित्य अहिंसामें निरत॥

शिलालेख खुदवाइ जीव हिंसा हटवाई।
भिक्षु धर्म स्वीकारि दया सबपै दरसाई॥
बिप्र, भिक्षु सम्मान दान सबकूँ ही देवें।
सदाचार सम्पन्न भिक्षु ज्ञानिकूँ सेवें॥
तिनिको सुत सुयशा भयो, सुयशा सुत संगत अजय।
शालिसूक संगत तनय, तासु सोमशर्मा तनय॥

शतधन्वा सुत भयो सोमशर्माको नामी।
भये बृहद्रथ तासु तनय अति सरल अकामी॥
अंतिम राजा भये मौर्य कुलके ये नरपति।
सेनापति छल कर्यो भूपकी कीन्हीं दुरगति॥
पुष्यमित्र सेना अधिप, राज्य लालची अति भयो।
करिकें वध भूपालको, स्वयं भूप खल बनि गयो॥

अग्निमित्र सुत तासु सुजेष्ठ हु ताको सुत नृप।
भये फेरि बसुमित्र भद्रकहु पुनि पुलिंद नृप॥
सुत पुलिंदके घोष घोषके बज्रमित्र सुत।
भये भागवत तासु देवभूती तिनि श्रीयुत॥
देवभूतिकूँ मारिकें, बासुदेव भूपति भयो।
तासु पुत्र भूमित्र तिनि, नारायण नृप ह्वै गयो॥

पुत्र सुशर्मा तासु चार ये कण्व वंश नृप।
फेरि अन्ध्र बलि बन्यो सुशर्मा मारि महीधिप॥
भ्राता बलिको कृष्ण भयो नृप अतिशय बलयुत।
तासु पुत्र श्रीशान्तकर्ण तिनि पौर्णमास सुत॥

उन्निस भूपनि अन्तमें, भयो गोमतीपुत्र नृप।
भयो सलोमधि नवम पुनि, तीस अन्ध्रवंशी अधिप॥

भये सात आभीर कुशन वंशी कहलाये।
करत दिग्विजय यहाँ देश देशनिकूँ आये॥
इनमें नृप वास्केष्क कनिष्कहु भयो वीर वर।
नृप वासिष्क हुविष्क बासुदेवहु सुयशस्कर॥

फेरि भये नृप गर्दभी, गुप्तवंशके नामतें।
अति प्रसिद्ध भूपति भये, प्रजा हितैषी कामतें॥

गुप्त घटोत्कच चन्द्रगुप्त ये भूपति अनुपम।
नृप समुद्र पुनि चन्द्रगुप्त दूसर ये पंचम॥
गुप्त कुमार नृपाल भये इस्कंद सातवें।
पुनि कुमार बुध भानु आठवें नववें दशवें॥

फेरि गर्दभी वंश नहिँ, रह्यो कंक भूपति भये।
राजवंशके पुत्र मिलि, सब एकत्रित ह्वै गये॥

कं कं करिकें कुमर राज सब भये भूमिपति।
ये सब सोलह वश भये राजा शुभ मति अति॥
राजपूत सब सूर्यचन्द्रवंशी मिलि आये।
देशविदेशी भेदभाव तजि छात्र कहाये॥

कक्च कुमरने एक करि, यवननितें रक्षा करी।
यों वर्णाश्रम धर्मकी, कछु भावी विपदा हरी॥

यवननि कर्यो प्रवेश नष्ट मठमन्दिर कीये।
लूट्यो अगनित द्रव्य विधरमी कछु करि लीये॥
तुरक गुलामनि सौंपि गयो अपनी रजधानी।
मर्यो जाय-फिरि बने गुलामहु भूपति मानी॥
यवननिके कछु वश पुनि, बने आततायी नृपति।
अति ई निरदय दस्यु सम, अन्यायी अति क्रूर मति॥

हौंनी ह्वैके रही यवन भारत चढ़ि आये।
देवालय करि नष्ट, लूट धन देश सिधाये॥
पुनि यवननि अधिकार कर्यो कुल आठ भये नृप।
फिरि क्रमतें कछु तुरक भये जब छीन भयो तप॥
फेरि फिरंगी नृप भये, पश्चिम दिशितें आइकें।
वनियाँते राजा भये, यवननि आर्य लड़ाइकें॥

ये दश भये गुरुंड फिरगी नृप व्योपारी।
छल करि कीयो राज सबनिकी बुद्धि बिगारी॥
होवें ग्यारह मौन चार किलिकिलके नृप सुनि।
तेरह बाह्लिकहोंहिं छात्र ह्वै आन्ध्र सात पुनि॥
मगध पुरञ्जयक्रूर नृप, यदु पुलिन्द अरु मद्रमें।
क्षत्रिय, द्विज अरु वैश्यकूँ, सबनि मिलावै शूद्रमें॥

फिरि, सुराष्ट्र, आभीर, शूर, अर्बुदके द्विजगन।
म्लेच्छ सरिस बनि जायँ व्रात्य ह्वै जावें सब जन॥
म्लेच्छ व्रात्य अरु शूद्र सिन्धु कश्मीर पंच नद।
इनि देशनि बनि नृपति देहिँ म्लेच्छनिकूँ सब पद॥
खण्ड खण्ड बनि देशके, पृथक नृपति बनि जायँगे।
द्विजद्रोही लोभी परम, प्रजनि क्लेश पहुँचायँगे॥

नाममात्रके नृपति द्रव्य हित सबकूँ मारैं।
पर-धन दारा हरैं धेनु द्विज शिशुनि सँहारैं॥
क्रियारहित अल्पायु हीन बल विषई कामी।
होहिं कलियुगी भूप प्रपञ्ची परतियगामी॥
कलि प्रभाव बढ़ि जायगो, सद्गुन सबहिं बिलायँगे।
धर्म, शौच, बल, आयु, सत, रहित पुरुष बनि जायँगे॥

कलिमें धन ई मुख्य धनी ही पडित-मानी।
बली करै-सो न्याय शूर-रति सो ई ज्ञानी॥
वेष शेष रहि जाय छली सब आश्रम धारी।
जातें मन मिलि जाइ वही नारी अति प्यारी॥
पंडित जे बकबक करैं, रँगें वस्त्र स्वामी बनें।
संसकारतें रहित नर, निरदय जीवनिकूँ हनें॥

जो भर लेवैं पेट कुशल समरथ कहलावैं।
धरम करें यश हेतु विज्ञ जे बात बनावैं॥
वर्णाश्रम कछु रहै न मानै सकल समाजा।
जो होवै अति बली वही बनि जावै राजा॥
लोभी लम्पट क्रूरमति, धन दारा सब हरिङ्गे।
सबहिं दुखित ह्वै भागिकें, वास वननिमहँ करिङ्गे॥

कन्द, मूल, मधु, मांस खाइ निरबाह करिङ्गे।
अनावृष्टि दुष्काल आदितैं बहुत मरिङ्गे॥
आधि व्याधि बहु होहिं चलै अति करकश वायू।
वरष बीस या तीस होहि कलिमें परमायू॥
धरम वरन आश्रम मिटैं, दुरगुन अति बढ़ि जायँगे।
सबहिं गुननितैं रहित नर, पशुवत समय बितायँगे॥

अति अधर्म जब बढ़ै कल्कि प्रकटैं संभलमहँ ।
विष्णुयशा द्विज गेह सिद्धि अणिमादिक सँगमहँ ॥
लीये कर करबाल अश्व चढ़ि दुष्टनि मारैं ।
सब पापिनिकूँ हनैं सकल शत्रुनि संहारैं ॥

दिव्य गन्ध हरि देहकी—तैं सबकी हो विमल मति ।
बढ़ै धरम अधरम घटै, सतयुग पुनि शुचि होइ अति ॥

सूर्य चन्द्रके भये, होहिँ, हैं भूप बताये ।
तब ई तैं कलि लग्यो श्याम जब धाम सिधाये ॥
ऐसे ही सब वंश होहिँ युग युगमें मुनिवर ।
समय पाइकें नसैं कालकी क्रीड़ा कटुतर ॥

मैं मेरी कहि नृप गये, नहिँ वसुधा तिनिकी भई ।
मिल्यो धूरिमें सब विभव, कथा शेष ई रहि गई ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें कलियुगी नृपतिगण वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

[१४]

नृपनि विजयकूँ व्यग्र निरखि वसुधा हँसि जावै।
करि करि उनपै व्यंग मरमयुत वचन सुनावै॥
नृपति खिलौना-काल मोह का ये जीतिङ्गे।
बीते अगनित नृपति काज्ञि येहू बीतिङ्गे॥
कहो, कहा तिनिने लह्यो, कीयो जिनिने मोह वश।
जानें कहँ मरि ते गये, हौं तब जैसी अबहुँ तस॥

वसुधा-गीत

वसुधा भूपनिकूँ समुझावै।
अरे, व्यरथ क्यौं कटत मरत हो, हाथ कछू नहिं आवै॥१॥ वसुधा०
कितने भये होहिँगे अब हैं, मोह कौन लै जावै।
विजय करत रथ हय गज लैकें, को विजयी कहलावै॥२॥ वसुधा०
चार दिवस अभिमान बढ़ायौ काल बली पुनि आवै।
मैं ज्यों की त्यों ई रहि जाऊँ, नृप निज तनु तजि जावै॥३॥ वसुधा०
पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष नृप, को इनिको पद पावै।
सगर, राम, गय, नल, ययाति, रघु, केवल अब सुधि आवै॥४॥
जब इन सबकी नहीं भई हौं, तो तू क्यौं ललचावै।
मूरख मोमें ममता तजिकें, क्यौं हरिपद नहिँ ध्यावै॥५॥

छप्पय—ऐसे भूपति भये नई जे सृष्टि बनावें।
सूरजपथकूँ रोकि रैनिके तमहिँ भगावें॥
रथतैं करैं समुद्र भूमिपै बान चलावें।
सप्तद्वीप नवखंड विजय करि भूप कहावें॥
किन्तु कालके गालमें, तेऊ घुसेकें नसि गये।
करि जगतैं वैराग्य हरि—शरन गये ते तरि गये॥

पूछें शौनक—सूत ! युक्ति अब सरल बतावें।
जातें कलिके दोष दूरि सबरे ह्वै जावें॥
सूत कहे—'युग चारि धरम पद चारि बताये।
सत्य, दया, तप, दान, प्रथम युग सकल सुहाये॥
घटत घटत घटि जायँ गुन, कलिमें होवै कलह नित।
काम, क्रोध, मद, लोभमहँ, सब प्रानिनिको फँसै चित॥

जहँ देखो तहँ ढोंग विषयमें रत सब प्रानी।
राजा क्रोधी, क्रूर, कुटिल, कामी अज्ञानी॥
सती न होवैं नारि कामिनी कुलटा घर घर।
काम वासना हेतु करैं साहस अति दुष्कर॥
पुरुष काम लोलुप अधिक, कुलटनिकी सेवा करें।
यहाँ दुखी नित शोकतें, पुनि मरि नरकनिमें परें॥

कलियुगमें पाखण्ड पुजैं पथ पुण्य न सूझै।
हाय ! अभागी पुरुष प्रेमतैं प्रभुहिँ न पूजैं॥
जिनिके अघहर नाम नासि सब दोषनि देवैं।
कलियुगके अति अधम पुरुष तिनिकूँ नहिँ लेवैं॥
मरन समय ह्वैकें विवश, राम, कृष्ण, गोविँद कहैं।
तो फिरि पाप पहाड़ हू, नाम लेत छिनमें ढहैं॥

नामी नाम प्रभाव हियेमें ततछिन आवैं ।
सकल पाप सन्ताप श्यामके नाम नसावैं ॥
भूपतितैं गुरुदेव कहैं—नृप ! मत घबराओ ।
मरन समय हरि नाम लेउ निश्चय तरि जाओ ॥
अवगुन ही अवगुन भरे, परि जा कलिमें एक गुन ।
ध्यान, यज्ञ, पूजानिके, मिलें सकल फल नाम सुन ॥

शौनक पूछें—सूत ! प्रलयको मरम बताओ ।
प्रलयनिके कै भेद सरलतातैं समुझाओ ॥
कहे सूत—मुनि ! प्रलय चारि विधि वेद बतावैं ।
नैमित्तिक अज दिवस निशामहँ सो-सो जावैं ॥
पूर्ण होहि अज आयु जब, होहि लीन प्रकृती सबहिं ।
भुवन चतुरदश प्रकृतिमें, मिलैं प्रलय प्राकृत तबहिं ॥

आत्यंतिक इक प्रलय मोक्षहू जाकूँ भाखैं ।
ज्ञानी निज पर भेद आतमामें नहिं राखैं ॥
होहि ज्ञान परिपूर्ण द्वैत सबरो नसि जावै ।
जगको पुनि अस्तित्व रहै नहिं ब्रह्म लखावै ॥
छिन छिन पल पलमें सकल, जग पदार्थ बदलत रहत ।
जल प्रवाह लौ दीपसम, नित्य प्रलय ताकूँ कहत ॥

इतनी कथा सुनाइ कहें शुक नृपतैं मुनिवर ।
कह्यो भागवत धर्म, मोक्षप्रद नृपवर ! सुखकर ॥
'अहि काटै मरि जाउँ' भूप ! जा भयकूँ त्यागौ ।
मोहनींदकूँ त्यागि ज्ञान बेलामें जागौ ॥
अमर अजनमा आतमा, अजर एकरस नित रहत ।
देह देहतें प्रकट है, मरत जियत जन्मत रहत ॥

माया मन रचि देह, करम, गुन मनहिं बनावै।
मायारूप उपाधि जीव जगमाहिँ भ्रमावै॥
तैल, पात्र अरु वर्ति अग्नि मिलि दीप कहावै।
इनितैं ह्वैकैं भिन्न सर्वगत पुनि कहलावै॥
उतपति थिति अरु प्रलय सब, तीनि गुननिको काज है।
रहै देह तब तक जगत, मोह नसैं नसि जात है॥

ज्यों दीपक नसि जाइ तेजको नाश न होवै।
त्यों सब जग नसि जाइ आतमा सुखतैं सोवै॥
नहीं व्यक्त अव्यक्त सकल आधार निरन्तर।
आतमा अखिल अनन्त अनामय अच्युत निजर॥
अन्वय अरु व्यतिरेकतैं, द्रष्टा दृश्य विचारतैं।
वासुदेव चिन्तन करो, हटो जगत् व्यवहार तैं॥

आत्मचिन्तना करो अहं सतचित कहलाऊँ।
परमधाम हौं ब्रह्म परमपद ब्रह्म कहाऊँ॥
परमात्मामें जबहिं आतमाकूँ तुम देखो।
फिरि तक्षक, जग, देह सकल आत्मामें पेखो॥
सात दिवसमें यथामति, भव भयहर सुखकर सुकर।
कही विष्णुगाथा कछुक, कहूँ कहा अब भूपवर॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें वसुधागीत ब्रह्मोपदेश नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

[मासिक पारायण-उन्नीसवें दिनका विश्राम]

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(१५)

श्रीशुकको सुनि प्रश्न नयन नृपके भरि आये।
ह्वैके अति ई दीन चरन-कमलनि लिपटाये॥
पुनि पुनि करैं प्रनाम न निकसै मुखतैं बानी।
पुनि कछु धरिकें धीर कहे नृप सरल अमानी॥

प्रभो! कृतारथ हौं भयो, सुनिकें श्याम चरित्रकूँ।
जनम मरनको भय भग्यो, थापूँ हरिमें चित्तकूँ॥

तव मुख निस्सृत श्याम चरित अति मधुमय लाग्यो।
श्रवन पुटनि करि पान शोक अरु भय मम भाग्यो॥
पाइ ब्रह्म निरवान भयो हौं देव! कृतारथ।
भयो दूर अज्ञान लह्यो अब ज्ञान यथारथ॥

आयसु देवैं दयानिधि, करूँ मौन धारन अबहिं।
सुनि शुक अति हरषित भये, गिरे सुमन नभतें तबहिं॥

शुककी पूजा करी सविधि नृप विह्वल ह्वैकें।
मुनिनि संग शुक गये नृपतिकूँ आशिष दैकें॥
बैठे कुशा बिछाय विचारें तक्षक आवै।
आतमा तो है नित्य देहकूँ कोई खावै॥

इत शृंगी ऋषि शापतें, सर्प नृपहिं डसिबे चल्यो।
विषहारी कश्यप गुनी, तक्षककूँ मगमें मिल्यो॥

तक्षक पूछै—आपु पधारे द्विजवर ! कितकूँ ।
तक्षक नृपकूँ डसै उतारें ताके विषकूँ ॥
बोल्यो तक्षक—आपु मंत्रबल मोइ दिखावै ।
काटि भस्म वट करूँ मंत्रतैं आपु जिवावैं ॥

स्वीकार्यो जब विप्रने, भस्म गरलतें वट कर्यो ।
कर्यो विप्रने मंत्रतें फिरि, ज्यों को त्यों तरु हर्यो ॥

निरख्यो मंत्र प्रभाव अधिक आदर अहि कीन्हों ।
विविध भाँति समुझाइ बहुत धन द्विजकूँ दीन्हों ॥
धन लै द्विज फिरि गयो नृपतिढिँग तक्षक आयौ ।
तज्यो यथारथ रूप विप्रको वेप बनायौ ॥

फलमें कीड़ा बनि घुस्यो, डस्यो भूपकूँ भूलमें ।
भयो भस्म तनु भूपको, मिली धूरि पुनि धूरिमें ॥

जगमें हाहाकार मच्यो सब अश्रु बहावैं ।
भये चकित सुरवृंद सुमन नभतें बरसावैं ॥
साधु साधु सब कहें धन्य कुरुकुलके भूषन ।
भये मुक्त मुनि कथा मिट्यो द्विजकृत-अघदूषन ॥

जनमेजय नृपके तनय, कुपित नाग कुलपै भये ।
सर्पसत्र करिबे लगे, नष्ट नाग बहु करि दये ॥

विप्र मंत्र जब पढ़ैं सर्प चहुँदिशितैं आवैं ।
होहिं विवश अति बली कुंडमें गिरि मरि जावैं ॥
तक्षक है भयभीत शरन सुरपतिकी लीन्हीं ।
क्यौं नहिँ तक्षक मरै नृपति जिज्ञासा कीन्हीं ॥

रक्षा सुरपति करतु है, जब विप्रनि उत्तर दियो ।
इन्द्र सहित स्वाहा करो, सुनत स्रुवा द्विज कर लियो ॥

लागे पढ़िवे मंत्र इन्द्र सिंहासन हाल्यो।
सुरगुरु मखमहँ आइ नृपहिँ समुझाइ निवार्‌यो ॥
मानी मुनिकी सीख सर्पमख नृपने त्याग्यौ।
दियो द्विजनि उपदेश हिये भूपतिके लाग्यौ ॥
हरिमाया अतिशय प्रबल, पावैं पार अनन्य हैं।
वैरभाव तजि हरि भजहिँ, ते नर जगमें धन्य हैं ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें परीक्षित् निर्वाणनामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ षोडशोऽध्यायः

[१६]

शौनक पूछें—सूत ! वेदके कै आचारज ।
कैसे करयो विभाग पैल आदिक मुनि आरज ॥
सूत कहें—अवतार व्यास धरि भूपै आये ।
एक वेदके चारि करे मुनि चारि बुलाये ॥

दयौ वेद ऋक् पैलकूँ, वैशम्पायन यजु दयौ ।
जैमिनि मुनिकूँ सामश्रुति, मुनि सुमन्तु चौथो लह्यौ ॥

पाइ संहिता सकल मुनिनि पुनि शिष्य बनाये ।
करि करि शाखा पृथक् सबनिकूँ मन्त्र पढ़ाये ॥
शिष्यनिके हू शिष्य भये विस्तार भयो अति ।
शाखा सबकी पृथक् भईं तिनिकी तिनिमें रति ॥

वैशम्पायन शिष्य इक, याज्ञवल्क्य अति तेजयुत ।
यजुरवेदमहँ अति निपुण, देवरातको सौम्यसुत ॥

अपर शिष्य इक दिवस करै व्रत गुरुहित दुष्कर ।
याज्ञवल्क्यने कह्यो—करै का यह व्रत गुरुवर ॥
हौं तवहित व्रत करूँ अल्प वीरज यह बालक ।
भये कुपित गुरुदेव, कहे—'तू द्विजकुलघालक ॥

मेरी विद्या त्यागि दै, तू अब मेरौ शिष्य नहि ।
उगलि दई विद्या सकल, कठिन वचन नहिं गये सहि ॥

उगले सगरे मन्त्र दिव्य दीमक बनि जीये।
तित्तिर बटु बनि गये लोभवश सब चुगि लीये॥
तैत्तिरीय सो भई वेदकी शाखा सुन्दर।
याज्ञवल्क्यने करे तुष्ट तप करिकें दिनकर॥

अश्वरूप धरि सूर्यने, शिक्षा द्विजवरकूँ दई।
वाजसनेयी पृथक् यह, यजुरवेद शाखा भई॥

ऐसे ही पुनि सामवेदकी शाखा अगनित।
बहु अथर्वके भये महामुनि चित्त-समाहित॥
पुनि दश आठ पुरान, बनाये अतिही सुखकर।
दश लक्षणतैं युक्त जगत-हितकारक मुनिवर॥

ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव महा, शैव भागवत नारदी।
मार्कण्डेय पुरान पुनि, अग्नि, भविष्य सुशारदी॥

ब्रह्मविवर्त पुरान लैङ्ग, वाराह पुरातन।
पुनि इस्कंध पुरान हु बामन कूर्म सनातन॥
मत्स्य, गरुड, ब्रह्माण्ड अठारह सब मिलि होवैं।
पढ़ैं सुनैं नर नारि सहस जनमनि अघ धोवैं॥

वेद पुराननि भेदकूँ, नाम मात्र हू जे रटैं।
पढ़ैं प्रेमतैं नियमयुत, तिनिके सब पातक कटैं॥

शौनक बोले—सूत! होहु चिरजीवी भाई।
भटकि रहे जगमाहिँ गैल अति सरल दिखाई॥
मार्कण्डेय चिरायु तात! कैसे कहलावें।
कल्प प्रलय नहिँ भई प्रलय जल कस तैरावें॥

सूत कहें—शौनक! सुनहु, मायामें संभव सकल।
मायाकी ही प्रलयमें, भये महामुनि अति विकल॥

मुनि मृकण्डुके तनय पुष्पभद्रा तट तपहित ।
रहैं करैं व्रत सदा लगावैं हरिचरननि चित ॥
छै मन्वन्तर करी तपस्या मन न डिगायौ ।
देखि घोर तप इन्द्र हृदयमें भय अति छायौ ॥

मलयानिल अरु अप्सरा, काम, लोभ, मद, मुनि निकट ।
भेजे मुनि आश्रम जहाँ, करहिं महामुनि तप विकट ॥

सब मिलि कीयो यत्न मोह मुनि मन नहिं आयौ ।
काम सेन सँग लौटि इन्द्रकूँ वृत्त सुनायौ ॥
भयौ इन्द्र निस्तेज मनहिं मन मुनिहिं सरावै ।
ब्रह्म तेजतैं डरै निकट मुनिके नहिं आवै ॥

मुनि तपतैं सन्तुष्ट है, नर नारायन आइकैं ।
दयो दरश जब स्वयं-मुनि, विनय करें सिर नाइकें ॥

मार्कण्डेय-स्तुति

जगके प्रभु ! तुम एक सहारे ।
माता पिता सगे सम्बन्धी, लगें न तुम बिनु प्यारे ॥१॥ जगके०

जगहित नर नारायन बनिकें, कठिन नियम व्रत धारे ।
अज, सुर, नर, हर थर थर काँपें, भ्रुकुटि विलास तिहारे ॥४॥ जगके०

गुनके जनक, सर्वगत, सब थल, विविध रूप तुम धारे ।
सत्वमूर्ति हे सुखमय स्वामिन्, पकरे चरन तुम्हारे ॥३॥ जगके०

माया मोहित जीव न जानें, जानें श्रद्धावारे ।
वेद भेद तुमरौ नहिँ पावैं, नेति नेति कहि हारे ॥४॥ जगके०

जानि अकिञ्चन दरशन दीयो, सब अघ कटे हमारे ।
चरन कमल प्रभु पुनि पुनि बन्दत, दीन दरशतें तारे ॥५॥ जगके०

मुनिकी इस्तुति सुनी कहन नारायन लागे।
सिद्ध भये मुनिराज तिहारे सब भय भागे॥
माँगो जो वरदान देहिं हम जो तुम चाओ।
हमकूँ कछु न अदेय न मनमें मुनि सकुचाओ॥
भये दरश सब वर मिले, परसे पद पुनि का कहूँ।
तुमरी माया मोहिनी, कमलनयन! देखन चहूँ॥

एवमस्तु कहि भये तिरोहित नर नारायन।
मुनि प्रसन्न अति भये कर्यो व्रतको पारायन॥
अति उत्कंठित भये निहारूँ माया अब ई।
बरषा भई प्रचण्ड चराचर डूबे सब ई॥
सुत मृकण्डुके ही बचे, बहत प्रलय जलमें सतत।
सबरो जग जलमय भयो, भूख प्याससैं मुनि दुखित॥

निरख्यो तब वट वृक्ष फिरत जब इत उत भटकत।
मरकत मनिके सरिस सुघर शिशु तापै विहरत॥
परे पत्रपुट श्याम चरनकूँ मुखतैं चूसत।
चितवत है अति चकित प्रभातैं सब अँग विकसत॥
करि दरसन संताप भ्रम, शोक मोह सब नसि गये।
श्याम सलौने सुघर शिशु, मुनिके मनमें बसि गये॥

ज्यों ही सम्मुख गये श्वाँस तब शिशुने लीन्हीं।
घुसे नासिका द्वार सृष्टि भीतर सब चीन्हीं॥
भू, नभ, ग्रह, गिरि, द्वीप, असुर सुर सबहिं निहारे।
मुनि अति विस्मित भये श्वाँस तजि फेरि निकारे॥
देख्यो पुनि वट प्रलय जल, शिशु मनहर क्रीड़ा करत।
दौरे आलिंगन निमित, लीन भयो वट शिशु तुरत॥

प्रलय-सलिल नहिं रह्यो पूर्तवत जगत लखायौ ।
माया दरशन समुझि श्याम चरननि सिर नायौ ॥
अक्षयवट पुट पत्र करें क्रीड़ा शिशुके सम ।
उदरमाँहिं सब दृश्य होहिं मायातैं जग भ्रम ॥
माया लखी महेशकी, भये फेरि मुनि भ्रम रहित ।
तब वृष चढ़ि शङ्कर तहाँ, आये पारबती सहित ॥

शिवा कहे—"सरबेश ! भक्त मुनिकूँ वर देवैं ।
शिव बोले—"ये भक्त मोक्ष तककूँ नहिं लेवैं ॥
हरि हिय धारे इननि फेरि का इनिकूँ दुञ्जो ।
साधु समागम लोभ बात कछु सुखद करञ्जो ॥
मुनि ध्यावैं सरबेशकूँ, इष्ट नहीं जब हिय लखे ।
खोलि नयन सम्मुख तबहिं, शिवा सहित शंकर दिखे ॥

सोरठा—सहसा लखे महेश, भौचक्के-से मुनि भये ।
सानुकूल सरबेश, निरखि लगे इस्तुति करन ॥

शिवस्तुति

करें हर ! कैसे विनय तिहारी ।
सुख स्वरूप सर्वज्ञ सर्वगत, सब जगके संहारी ॥१॥ करें०
ज्ञान रूप तुम घट घट बासी, सीमित बुद्धि हमारी ।
दया दृष्टितैं हरो अविद्या, हे शङ्कर त्रिपुरारी ॥२॥ करें०
निरगुन शान्त त्रिगुनमय स्वामी, हो तुम लीलाधारी ॥
पालो रचो फेरि संहारो बनि अज, रुद्र, मुरारी ॥३॥ करें०
पुनि पुनि चरन सरोरुह बन्दौं, माँ गिरिराजकुमारी ।
जननी जनक स्वयं शिशु सम्मुख,आये जग सुखकारी ॥४॥ करें०

छप्पय—हर प्रसन्न अति भये भक्ति वर मुनिकूँ दीयौ।
बाढ्यो मुनि मन मोद यथोचित पूजन कीयौ॥
महिमा शिवने अधिक भक्त संतनिकी गाई।
शिव मुखतें सुनि विनय लाज मुनिकूँ अति आई॥
पूजित ह्वैकें शिवा सँग, पुनि शिव अन्तरहित भये।
बिना प्रलय ही ध्यानमें, मुनि माया दरशन किये॥

शौनक पूछें—सूत! पाञ्चरात्रादि वन्दना।
अङ्ग उपाङ्गनि सहित करें कस कृष्ण अर्चना॥
क्रियायोगको फेरि हमें विस्तार बतावें।
सूत कहे—मुनि कर्मकाण्डको पार न पावें॥
हरिमय जगकूँ जानिकें, करें कल्पना अङ्गमें।
तत्तत भावनिके सहित, पूजै सबकूँ सङ्गमें॥

अण्डमाहिँ जो रहैं वही ब्रह्माण्ड बनावें।
रचि पचि जगकूँ फेरि स्वयं तामें घुसि जावें॥
द्वापर युगमें क्रियायोग बहु विधितैं गायौ।
केवल कलिमें कृष्णनाम अति सुगम बतायौ॥
करें ध्यान भगवान्‌को, जे नामनिकूँ गायँगे।
ते मख, पूजा, पाठको; सबहिं सहजफल पायँगे॥

शौनक पूछें—सूत! कहे द्वादश रवि तुमने।
सबके सप्तक कहो सुने पहिले हू हमने॥
कहें सूत—प्रतिमास रहैं रवि सात सहायक।
नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, ऋषि, सुर, गायक॥
चैत्र मास धाता रहें, माधवमें रवि अर्यमा।
ज्येष्ठ मित्र नामक तपें, वरुन तपें आषाढ़मा॥

श्रावनमें रवि इन्द्र भाद्रमें विवस्वान् रवि।
त्वष्टा आश्विन रहें विष्णुकी कातिकमें छवि॥
मार्गशीर्षमें अंशु पौषके भग हैं नामी।
फागुनके परिजन्य माघके पूषा स्वामी॥
सब मासनिके पृथक रवि, पृथक पृथक गन सबनिके।
स्वयं सच्चिदानंद हरि, स्वामी सबई गणनिके॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें वेद पुराण शाखा मार्कंडेय चरित पूजा रवि-सप्तक नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ सप्तदशोऽध्यायः

[१७]

निज मतिके अनुसार कथा मुनिवर शुभ भाखी।
अन्तरयामी श्याम सकल जीवनिके साखी॥
भई कथा तो पूर्ण विषय-सूची अब भाखूँ।
सब मिलि देहिँ अशीष सदा हियमें हरि राखूँ॥

धर्म, कृष्ण अरु व्यास शुक, सबके पुनि पुनि पग परूँ।
पुण्य भागवत-चरितकी, अनुक्रमिका वरनन करूँ॥

मेरो तुमरो मिलन व्यास नारद सम्वादा।
फेरि भीष्मकी कही कथा जो सबके दादा॥
तिनि परलोक प्रयान द्वारका पुनि प्रभु आये।
भयो परीक्षित जनम राजमें बजे बधाये॥

विदुर और धृतराष्ट्रको, गृह तजि पुनि हरिपुर गमन।
कह्यो कृष्ण निरयान पुनि, पाण्डुसुतनिको हिम निधन॥

विजय परीक्षित् फेरि कर्यो कलि जैसे वशमें।
दीयो द्विजने शाप गये नृप गंगा तटमें॥
श्रीशुक भूपति मिलन कर्यो ज्यों नृप अभिनन्दन।
पूजा विधिवत करी लगायौ माथे चन्दन॥

अवतारनिके चरित शुभ, सृष्टि कथा संक्षेपमें।
विदुर और उद्धव मिलन, कही सृष्टि पुनि शेषमें॥

कश्यप दिति सम्वाद गर्भ ज्यों दितिने धार्यो।
भये असुर जय विजय कुमारनिकूँ ज्यों ताड़्यो ॥
हिरनकशिपु हिरनाक्ष जन्म तिनि विजय करी ज्यों।
धरिकैं शूकर रूप सुरनि हरि विपति हरी ज्यों ॥
हिरन्याक्षकूँ मारिकें, अभय करे सुर मुनि यथा।
यहाँ तलक पूरन भई, प्रथमआहकी शुभ कथा ॥

द्वितियआहमें देवहूति करदम सँग ब्याही।
प्रकटे हरि बनि कपिल मातुकूँ सीख सिखाई ॥
मनु पुत्रिनिको वश दक्ष शिव शापा शापी।
सती देहको त्याग दक्ष मार्यो सन्तापी ॥
भई पूर्ति ज्यों यज्ञकी, वंश अधर्म बताइकें।
कह्यो चरित ध्रुव विष्णु ज्यों, दरशन दीये आइकें ॥

ध्रुव चरित्र करि पूर्ण बेनको चरित बखान्यों।
पुनि पृथुराज चरित्र प्रचेतनि मुनि सम्मान्यों ॥
कही पुरञ्जन कथा भूपकूँ शिक्षा दीन्ही।
पुनि प्रियव्रतको चरित ऋषभ ज्यों लीला कीन्ही ॥
ऋषभ चरित अति ही सुखद, मुनि समास ही तें कह्यो।
यहाँ तलक सप्ताहमें, द्वितिय आह पूरन भयो ॥

तृतियआहमें प्रथम भरत जड़ चरित बखान्यो।
कह्यो फेरि भूगोल ध्यानतें मुनिवर जान्यो ॥
नरकनिको कछु वृत्त अजामिल चरित बतायौ।
नाम महातम कह्यो विविध विधितें समुझायौ ॥
नारदजीकूँ दक्षने, दयो शाप पुनि सो कथा।
विश्वरूप सुर पुरोहित, सुरपति काट्यो सिर यथा ॥

पूर्व वृत्रको चरित चरित मरुतनिको भाख्यौ ।
पुनि प्रह्लादचरित्र पिता ज्यों गुरुगृह राख्यौ ॥
दीये ज्यों बहु कष्ट कर्‌यो कीर्तन ज्यों हरिको ।
प्रकटे श्रीनरसिंह उदर फार्‌यो ज्यों अरिको ॥
नारद मुनिने धर्मसुत, तैं जैसे यह सब कह्यौ ।
धरमराज सम्वाद तक, तृतियश्राह पूरन भयौ ॥

अब चतुर्थमें प्रथम ग्राहगज चरित मनोहर ।
सुर विनती पुनि मथन पयोनिधि पान गरल हर ॥
धन्वन्तरि अवतार मोहिनी चरित रँगीलौ ।
देवासुर संग्राम भयो दैत्यनि बल ढीलौ ॥
मिलन मोहिनी शम्भुको, करी विजय बलिने यथा ।
यों बलि छलिवेकी कही, छलिया बटु वामन कथा ॥

कह्यो चरित सुद्युम्न पुत्र मनु चरित कहे तब ।
च्यवन सुकन्या व्याह नभग नाभाग चरित सब ॥
पुनि इक्ष्वाकु चरित्र सौभरी चरित मनोहर ।
भये त्रिशंकू पुत्र नृपति हरिचन्द धरमधर ॥
भये भस्म सुत सगरके, श्रीगंगाजी आगमन ।
रघुवशी भूपनि कथा, ज्यों दशरथ नृप गुरु-शरन ॥

राघवेन्दुकी कथा प्रथम ही बाल-चरित है ।
व्याह-चरित है द्वितिय तृतिय वनवास-चरित है ॥
सीताहरन चतुर्थ कह्यो संयोग पाँचमो ।
राज तिलक है छटो, कह्यो सिय त्याग सातमों ॥
अष्टम है उत्तरचरित, नवमेमें महिमा रही ।
यों इनि नौ अध्यायमें, राघवेन्दुलीला कही ॥

निमिको कहिकें वंश कथा दण्डककी भाखी ।
चन्द्रवंश पुनि कह्यो उरवशी इल-सुत राखी ॥
परशुराम अवतार ऐलको वंश सुनायौ ।
नृप ययातिको चरित पुराननिमें जो गायौ ॥
पुरु अनु आदि ययाति सुत, वंश कह्यो यदुवंश पुनि ।
चतुर्थाह पूरन भयो, पञ्चमाह अब सुनहु मुनि ॥

पञ्चमाहमें प्रथम ब्याह वसुदेव बखान्यों ।
नभवानीतें कंस देवकी-सुत रिपु जान्यों ॥
चिन्ता व्यापी कंस कृष्ण अवतार कह्यो है ।
गोकुलमें प्रभु गये तहाँ आनन्द भयो है ॥
आइ पूतना विष दयौ, मरी बकीकूँ गति दई ।
कही कथा शकटादि तृन, मुक्ति खलनिकी ज्यों भई ॥

विश्वरूप माँ दरश बाललीला मृद्भक्षन ।
माखन चोरी ललित बँधे ज्यों नटखट मोहन ॥
गोकुल गोपनि संग त्यागि वृंदावन आये ।
करे खेल बक, वत्स, असुर अघ मारि गिराये ॥
ब्रह्माजी मोहित भये, धेनुक कालियकी कथा ।
नाग निकार्यो नाथिकें, दावानल पीयो यथा ॥

पुनि प्रलम्बकी मोक्ष वेनुको गीत मनोहर ।
वस्त्र चुराये दये कुमारिनिकूँ वर सुखकर ॥
द्विज पतिनिनिपै कृपा श्याम गोवरधन धार्यौ ।
इन्द्र, सुरभि अरु वरुन सबनि दरशनतें तार्यौ ॥
फेरि रास इच्छा भई, वेनु बजाई रसभरी ।
ब्रजवनिता धुनि सुनि चलीं, कछु न कानि कुलकी करी ॥

कीयो रास विलास भये अन्तरहित गिरिधर।
विलपीं वनिता बहुत भये पुनि परगट नटवर॥
महारास पुनि भयो सरसता अँग अँग छायी।
यों पुनि पूरन भई रासकी पञ्चाध्यायी॥
शंखचूड़ अजगर असुर, केशी व्योमासुर मरन।
फेरि कह्यो अति भावमय, श्वफलक-सुत व्रज आगमन॥

व्रज तजि पुनि बल सग श्याम मथुराकूँ धाये।
गोपी व्याकुल भयीं अश्रु अति सबनि बहाये॥
श्वफलकसुतपै करी कृपा मरि रजक तर्‌यो है।
कुब्जाकूँ करि सुघर धनुषको भग कर्‌यो है॥
आये गज अरु मल्ल जे, मरे कंस मामा मर्‌यौ।
नन्द गये व्रजकूँ बिलखि, जननि जनकको दुख हर्‌यौ॥

फिरि गुरुकुलको वास मृतक गुरु-सुत ज्यों लाये।
व्रज उद्धवके हाथ आइ सन्देश पठाये॥
उद्धव देखे दुखी गोप गोपी गौ बछरा।
अस्त व्यस्त सब वस्तु परे टूटे घर छकरा॥
भ्रमरगीत, कुब्जाकृपा, कुन्तीढिँग श्वफलकतनय।
पञ्चमाह पूरन भयो, अब षष्ठाह सुनहु सदय॥

जरासन्ध आक्रमन सेन लै मथुरा घेरी।
पुर तजि भगि रनछोर यवन करवाई ढेरी॥
रुक्मिनि संग विवाह पुत्र प्रद्युम्न भये हैं।
पुनि स्यमन्त आख्यान ब्याह हरि सहस किये हैं॥
ज्यों अनिरुद्ध विवाहमें, बल रुक्मीको वध कियो।
फिरि विवाह अनिरुद्धको, बाण-सुताके सँग भयो॥

कृष्ण-बाण संग्राम शम्भु-हरि संग लड़ाई।
राजा नृगकी कथा कही अति परम सुहाई॥
बलदाऊ ब्रज-गमन पौण्ड्र-बध साम्ब-सगाई।
गृहचर्या अति दिव्य श्याम नारदहिँ दिखाई॥

जरासन्ध बध भीमतैं, राजसूयको वृत्त सब।
शाल्व और शिशुपाल बध, कह्यो सुदामा चरित तब।

कुरुक्षेत्रमें भयो मिलन ब्रजवासिनितैं ज्यों।
ललकि मिले घनश्याम पिता माता बल सँग त्यों॥
कृष्णा महिषी बात सरसता छाई सबपै।
जनक, जननि, द्विज तथा कृपा मैथिल भूपतिपै॥

हर, भृगु, अर्जुनपै कृपा, करी सबनिको दुख हर्‌यौ।
गायौ महिषीगीत पुनि, षष्ठअाह पूरन कर्‌यौ॥

सप्तमाहमें शाप दिवायो निज कुल गर्वित।
नारद अरु वसुदेव कह्यो संवाद सुशोभित॥
नवयोगेश्वर ज्ञान कह्यो अवधूत सु-गीता।
उद्धवगीता कह्यो सुनत छूटै भव-भीता॥

हंस-ज्ञान पुनि भक्ति अरु, ध्यान, सिद्धि सबईं कहीं।
पुनि हरि कछु बरनन करीं, जो विभूति उनिकी रहीं॥

वर्णाश्रमको धरम विविध प्रश्ननिको उत्तर।
भिक्षुगीत कहि कही सांख्यकी महिमा सुखकर॥
नृपति ऐलको गीत उद्धवहिँ शिक्षा दीन्हीं।
पुनि यदुवंश विनाश संवरन लीला कीन्हीं॥

कहि कलियुगके नृपनिकूँ, भूमिगीत हू पुनि कह्यौ।
फेरि ब्रह्म उपदेश शुक—ने नरपतिकूँ ज्यों दयौ॥

त्यागि परीच्छित देह परमपद पायौ जैसें।
शाखा वेदनि कहीं पढ़ी विप्रनिने कैसें॥
मार्कंडेय चरित्र कही पूजाविधि उत्तम।
कहि रवि-सप्तक कही विषय-सूची मुनिसत्तम॥
फेरि भागवत सार सब, कह्यो महातम नाम पुनि।
पुण्य भागवत चरितको, पूर्ण भयो सप्ताह मुनि॥

जो न भागवतचरित पूर्ण पढ़िवेको अवसर।
विषय अनुक्रम पढ़ै एक अध्याय पुण्यकर॥
अति समास सप्ताह निकार्यौ सार सार सब।
करैं कण्ठको हार होहिँ नहिँ तिनि बन्धन-भव॥
जो, अध्याय विशेषकूँ, सुनहिँ पढ़हिँ गावैं रटैं।
होहिं मनोरथ सफल सब, तिनिके भवबन्धन कटैं॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें सप्ताह विषय-अनुक्रमणिका नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।



अथ-अष्टादशोऽध्यायः

(१८)

जो जो कीये प्रश्न यथामति सकल बखाने।
सब चरितनिमें सार श्याम शुभ नामहिँ जाने॥
रपटत ठोकर खात गिरत छींकत जमुहावत।
'हरये नम' ये शब्द पाप पर्वतनि ढहावत॥
ज्यों रवि तमकूँ पवन ज्यों, छिन्न भिन्न मेघनि करै।
त्यों कीर्तन हरि नामको, हियके सब कल्मष हरै॥

सो बानी है व्यर्थ नाम हरिके नहिँ गावै।
है वह कथा कलंक कृष्ण चरितनि न सुनावै॥
हैं अति पावन वचन सुयश हरि हीके बोलें।
ते पद पावन परम पुण्यतीर्थनिमें डोलें॥
कथा कीरतन कृष्णको, तुलसी हरिसेवा जहाँ।
स भक्त निरमल परम, नियम सहित निवसहिँ तहाँ॥

जामें नहिँ हरि नाम भागवत चरित न जामें।
काक तीर्थ सो निन्द्य न्हायँ कौआ बक तामें॥
होवै कविता सुघर रसीली गुन प्रसादयुत।
कृष्णकथातें रहित घृणित नीरस अति निंदित॥
नित नव नव नटवरचरित, सुखद सरस अतिशय विमल।
कहत पढ़त गावत सुनत, होवै विकसित हृद्कमल॥

मिलै न छंद प्रबन्ध न उपमा अनुप्रास गुन।
यमक न मात्रा शब्द मिलै नहिं तुक सब अवगुन ॥
रहैं श्यामके नाम सुयशयुत यदि मनभावन।
तो वह अघहर छंद गाइ होवै जगपावन ॥
भगवद्भक्ति विहीन यदि, होहि ज्ञान करमनि रहित।
नहिं फल हरि अरपित किये, उत्तम नहिं सो दुख सहित ॥

तप बरनाश्रम धरम-आचरन श्री यश देवैं।
प्रभु-पद सुमिरन सतत होहि तिनि जे हरि सेवैं ॥
हरिलीला गुन श्रवन नित्य हरिभक्ति बढ़ावैं।
इस्मृति हरिपद रहै अमङ्गल सकल नसावैं ॥
करै शान्ति विस्तार नित, चित्त शुद्धि होवै अवसि।
भक्ति, ज्ञान, बैराग्य सब, मिलैं होहिं हिय प्रभु प्रविसि ॥

बड़भागी सब आपु कहाँ तक करूँ बड़ाई।
तजि सब जगत प्रपञ्च कृष्ण-पद भक्ति दृढ़ाई ॥
निन्दा इस्तुति त्यागि भजनमें चित्त लगायौ।
तुमने ही मुनिवृन्द मनुज जीवन फल पायौ ॥
मैं हूँ अतिशय धन्यहूँ, तुमरी संगति पाइकें।
कर्यो कृतारथ कुमतिहू, हरि-यश यादि दिवाइकें ॥

नृपति परीक्षित् त्यागि राज गंगातट धाये।
भावी अति ही प्रबल तहाँ मम गुरु शुक आये ॥
हौं हूँ पहुँच्यो तहाँ कथा गुरुदेव सुनाई।
सकल मुनिनि नृप सग सुनी मैंने सुखदाई ॥
श्रीगुरुमुखतें जो सुनी, कही यथामति सो सकल।
कलि कलूमष नाशन निमित, अनल सरिस यह अति विमल॥

प्रतिदिन समय निकारि भागवतचरित सुनिंगे।
सुनिकैं सब नरनारि अवसि चित विमल करिंगे॥
हरिवासर व्रत करै प्रेमते सब पढ़ि जावै।
आयु बढ़ै अघ घटै अन्तमें प्रभु-पद पावै॥
पुष्कर, मथुरा, द्वारका, काशी, पुन्य प्रयाग थल।
पाठ करेंतें भय छुटैं, होहिं बुद्धि अतिशय विमल॥

शुद्ध चित्ततें मनुज गाइके जाइ सुनावें।
तिनिके अति अनुकूल पितर, ऋषि, सुर ह्वै जावें॥
सिद्ध, पितर, सुर, भक्त देहिं इच्छित फल ताकूँ।
भुक्ति, मुक्ति, सब सिद्धि सहजमें मिलिहैं ताकूँ॥
पढ़ै भागवत चरितकूँ, ते सब ई फल पाइँगे।
द्विज धी, नृप भू, वैश्य धन, शूद्र शुद्ध ह्वै जाइँगे॥

सब ग्रथनितें श्रेष्ठ भागवतचरित मनोहर।
भक्त भागवत वृत्त कहे पद पदपै सुदर॥
अवतारनिकी कथा चरित भक्तनिको अघहर।
भगवन्नाम महात्म्य छोड़ि जामे नहिं दूसर॥
जो अच्युत अखिलेश हैं, जिनिके अगनित नाम हैं।
तिनिके पद पाथोजमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं॥

जीव चराचर रचैं प्रकृति अरु विकृति बनावैं।
आचारज बनि स्वय साधना सीख सिखावैं॥
सत्य सनातन धाम भुवनपति अज विश्वम्भर।
जिनिकी सत्ता बिना रहैं नहिं जंगम थावर॥
रचना पालन नासिवौ, जिनिको नित नित काम है।
तिनिके पावन पदनिमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है॥

आत्माराम, निरीह निरामय मुनि मम गुरुवर।
भेद भावतें रहित ज्ञान निष्ठा जिनि दृढ़तर॥
हरि गुन सुनिके बँधे भागवत चरित सुहाये।
निमित परीक्षित करे, जगत हित हरि प्रकटाये॥

परमहंस अवतंस मुनि, श्रीशुक जिनिको नाम है।
तिनिके पावन पदनिमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है॥

जिनिकी इस्तुति करें वरुन, अज,इन्द्र, मरुद्गन।
सस्वर गावें जिनहिं वेदविद मुनि योगीजन॥
गाइँ न जिनिको अन्त शारदा, अज, चतुरानन।
शेष, सुरेश, महेश, दिनेशहु देव असुर गन॥

जिनिके अगनित नाम हैं, रूप अनूपम श्याम हैं।
तिनिके पदपाथोजमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं॥

जब कच्छप बपु धर्‌यो पीठ धार्‌यो प्रभु मन्दर।
अगनित योजन कूट फिरै ऊपरतें घरघर॥
तिनि ऐसौ सुख होइ नारि जनु पद सुहरावै।
मन्दर ज्यों ज्यों फिरै नाथकूँ निँदिया आवै॥

जिनिके श्वास प्रश्वासतैं; अब तक उदधि अशान्त अति।
तिनि पद जे वन्दन करैं, तिनिकी होवै शुद्ध मति॥

दश अरु आठ पुरान सार सब शास्त्रनि लीये।
कहे भागवत चरित भक्तिके सम्पुट दीये॥
शौनक पूछें—सूत! पुराननि संख्या कितनी।
सबकी संख्या कहो, छन्द संख्या है जितनी॥

सूत कहैं—सब अठारह, सुनी पिता अरु मुनिनितें।
चार लाख हैं छन्द सब, श्रेष्ठ भागवत सबनितें॥

कथा भागवत लगै भाग्य शालिनिकूँ प्यारी।
यह पुरान सिर तिलक जगत जीवनि हितकारी॥
प्रथम कह्यो श्रीविष्णु ब्रह्मतें करुना करिकें।
पूरन ज्ञान विराग भक्तिहू प्रतिपद भरिकें॥
परब्रह्म जाकौ विषय, कह्यो प्रयोजन पावनों।
अतिही अनुपम ग्रन्थ है, विषय परम मनभावनों॥

ब्रह्मसूत्रको अर्थं सार वेदनिको अनुपम।
दुह्यो उपनिषद् दूध शर्करा तामें शम दम॥
एक बार जिनि पियो शास्त्र सब फीके लागें।
छोड़ि अमृत नर मधुर व्यरथ विष पीवें भागें॥
ज्यों सरितनिमे गङ्ग हैं, शिव उत्तम वैष्णवनिमें।
क्षेत्रनिमे वाराणसी, श्रेष्ठ भागवत सबनिमें॥

अति ही निरमल चरित भागवत भक्तनिको धन।
जामें ज्ञान विशुद्ध भक्ति भगवतको वरनन॥
करम, त्याग, वैराग्य यथाथल सबई भाखे।
अति समास सब कहे शेष कोई नहिँ राखे॥
श्रवन मनन अरु पाठ नित, करैं प्रेमतें नारि नर।
देहिँ भक्ति अरु मुक्ति तिनि, प्रभु परमेश्वर परावर॥

हरिने अजतें कह्यो प्रथम अज नारद पाहीं।
नारदतें मुनि व्यास व्यास शुक दिये पढ़ाहीं॥
नृपति परीक्षित् निकट कह्यो शुक हौं सुनि लीयौ।
जैसो कछु बनि पर्‌यो ताहि तुम सबकूं दीयौ॥
जिनितें निकस्यो चरित यह, सो हरि सुखके धाम हैं।
मोइ दयो गुरुदेवनें, उभय पदनि परनाम हैं॥

है देवेश्वर ! दयित ! दयानिधि ! दाता ! दानी ।
है सेवक प्रभु-दत्त अल्पमति अवगुनखानी ॥
धन, जन, वैभव, राज, विषय सुख नाथ न चाहूँ ।
पदपद्मनिकी भक्ति जनम जनमनिमें पाऊँ ॥
का कहिकें विनती करूँ, अज्ञ अकिञ्चन दीन हूँ ।
कृपा प्रतीक्षा करि रह्यो, सब विधि साधनहीन हूँ ॥

संकीर्तन जिनि नाम पापके पुञ्ज जरावै ।
जिनिकूँ कर्यो प्रनाम सकल अघशोक नसावै ॥
जिनिके मधुमय चरित सुधा श्रवननिमें घोरें ।
हरे मुरारे नाथ नाम अघ कूटनि तोरें ॥
कलिमें कीर्तनतैं मिलैं, सुनि कीर्तन रमि जात हैं ।
चरन शरन तिनिकी गहौ, जो प्रभुके पितु मात हैं ॥

दोहा—मात्रा अक्षर हीन पद, यदि अशुद्धहू कोउ ।
करें क्षमा राधारमन, प्रभु प्रसन्न अब होउ ॥

इति श्रीभागवतचरितके सप्ताहमें सारातिसार सिद्धान्त भगवन्नाम माहात्म्य नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

इति सप्ताह

[पाक्षिक पारायण-पन्द्रहवें दिनका विश्राम]
[मासिक पारायण-तीसवें दिनका विश्राम]

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

॥ श्री हरिः ॥

श्री भागवतचरित

[सप्ताह]

माहात्म्य

छप्पय—सब जगके जो बीज विश्वद्रुम जिननि बनायौ ।
जिननि मोहको जाल सकल भुवननि फैलायौ ॥
ब्रह्मा, विष्णु, महेश बनें करि पालें नासें ।
त्रिविधि ताप सताप सबनिके सपदि बिनासें ॥
सत चित आनँद रूप जे, कृष्णचन्द्र जिनि नाम है ।
सर्व प्रथम मम इष्ट जे, तिनि पदपदुम प्रनाम है ॥

लौकिक वैदिक करम त्यागि जन्मत बन भागे ।
जिनिकूँ नहिं धन, धरम, काम कछु अच्छे लागे ॥
सुत सुत कहि पितु भगे द्रुमनिमें सुत दरसायौ ।
पितु पितु सब तरु कहे व्यासको मोह नसायौ ॥
तरुन अरुन वर नयन तनु, सुन्दर सुगठित श्याम है ।
गुरुवर श्री अवधूत मुनि, शुक-पदपदुम प्रनाम है ॥

शौनक बोले—सूत ! भागवतचरित सुनायौ ।
किन्तु न कह्यो महात्म्य चित्त ता हित ललचायौ ॥
जिओ बहुत दिन सूत ! महातम हमें सुनावें ।
वस्तु महातम सुनत भक्ति श्रद्धा हिय आवें ॥

सूत कहे—कहँ तक कहूँ, मुनि ! महात्म्य अति अकथ है ।
जलनिधि अगम अथाह जिह, तामे तैरत थकत है ॥

प्रभु-प्रसाद यह चरित संत भक्तनिकूँ भावै ।
कलि कराल विष-व्याल भागवत सुनि नसि जावै ॥
सुधा अमृत रस सकल सरिस जाके कछु नाहीँ ।
जनम करम जगबन्ध सपदि सुनिकें कटि जाहीँ ॥

देवनि शुककूँ सुधा घट, दै बदले चाह्यो चरित ।
सुरनि अनधिकारी समुझि, दयो न; है यह जग विदित ॥

जगमें सबई सुलभ खलनिकूँ धन मिलि जावै ।
पुण्य करत नर ब्रह्मलोक तक हू चलि जावै ॥
किन्तु भागवतचरित होहि रति दुरलभ अति है ।
धन्य धन्य ते मनुज कृष्ण चरननि जिनि मति है ॥

धरम तुला अजने करी, एक ओर साधन सबहिँ ।
एक ओर भगवतचरित, भयो गरू पलड़ा इतहिँ ॥

जाको सुनि सप्ताह पिघलि हिय अघ बहि जावें ।
निरमल मन ह्वै जाइ तबहिँ प्रभुजी तहँ आवें ॥
नारदकूँ सन्ताप भयो सनकादि मिटायौ ।
कर्यो न कछु उपचार भागवतचरित सुनायौ ॥

बूढ़े ज्ञान विरागहू, युवक भये सप्ताह सुनि ।
भक्ति नृत्य करिवे लगी, प्रकट भये अखिलेश पुनि ॥

स्वयं भागवत बने कृष्ण संशय मत लाओ।
तजि कुतर्क बकवाद भागवतचरितनि गाओ॥
सुनिकें शुभ सप्ताह धुंधकारी अघ छूटे।
सात बाँसकी गाँठ फटीं बन्धन सब टूटे॥
प्रेतयोनि तजि देव बनि, चढ़ि विमान सुरपुर गयो।
सप्ता शुभ गोकर्णने, जगहित करुना करि कह्यो॥

जामें भाव प्रधान भावहीतें फल पावैं।
भावहीन नर सुनहिं न गावें नहिं ढिंग आवैं॥
सुनत सुनत बनि जाइँ भाव संशय मत लाओ।
जैसे तैसे बने सुनो अरु सबनि सुनाओ॥
विधि निषेध जामें नहीं, सकल सुनें सब कालमें।
नित्य नियमतें जे पढ़ें, ते न फँसें जगजालमें॥

उत्सव पूर्वक करें हर्ष हियमें अति लावैं।
मंडप अति रमणीक पुण्य थलमाँहि बनावैं॥
देहिं निमन्त्रण सबनि विज्ञ पण्डित बुलवावैं।
वीना, वेनु, मृदंग, मजीरा बाद्य बजावैं॥
कल कंठनितें भक्त मिलि, प्रेम सहित सब गाइँगे।
निश्चय प्रभुके प्रेममें, सब विभोर है जाइँगे॥

का सुख जगकेमाँहिं बैठिकें आपु बिचारें।
सुत, कलत्र अरु मित्र दुखी सब ई करि डारें।
होहि चित्त अति शान्त नीर नयननि जब छावै॥
स्वर गद्गद ह्वै जाइ दृश्य परपंच भुलावै॥
यह समाधि आनंद है, चित हरि चरननिमें फँसै।
सुनत भागवत चरित हिय, मन मोहन मूरति बसै॥

सात दिवस तक महामहोत्सव विशद मनावै।
करै सबनि सत्कार कृतनता मन नहिं लावै॥
निन्दा इस्तुति त्यागि जगतकी चिन्ता छोड़ै।
ब्रह्मचर्य व्रत धारि दुर्जननितै मुख मोड़ै॥
मंडप सुघर सजाइकैं, समाधान सबको करै।
आवै भगवत्भक्त मुनि, दौरि सबनिके पग परै॥

करै अल्प आहार नींद आलस नहिं आवै।
निराहार रहि सुनै चाहिँ जल, पय, फल खावै॥
अथवा व्यजन विविध भोग श्रीहरिहिँ लगावै।
भक्तनि सँग परसाद प्रेमतै प्रतिदिन पावै॥
कथाश्रवनकर्ता करै, हरि गुरु भक्तनि अर्चना।
कृष्ण कीरतन गुन-मनन, प्रभुपद सुमिरन वन्दना॥

गायक अरु हरिभक्त बुलावै गाम गामतें।
पूजन प्रभुको करै प्रथम दिन धूमधामतें॥
ता दिन करि अधिवास महात्तम सुनि सुख पावै।
यदि बनि सकै अखण्ड कृष्णकीर्तन करवावै॥
दूसर दिन सप्ताहकूँ, पूजन करि विधिवत सुनै।
सुनै कथा जो दिवसमें, पुनि ताकूँ निशिमें गुनै॥

नित्य करमतें निवटि प्रात मिलि सब सँग गावै।
करि भोजन पुनि सुनै, शेष यदि कछु रहि जावै॥
ताकूँ निशिमें सुनै कीरतन सम्पुट दैकैं।
मुक्तकण्ठतें गाइ कृष्ण नामनिकूँ लैकैं॥
सात दिवसमें सात थल, सुनै फेरि पूरन करै।
पुनि पूजन अरचन हवन, करै जाहितें मन भरै॥

यदि न करै सप्ताह करै पाक्षिक पारायन।
पन्द्रह दिनमें होहि सरलताते सब गायन॥
यदि मासिक मिलि करै कीरतन अधिक बढ़ावै।
अथवा सम्पुट नाममत्रको मग लगावै॥
ऐसे उत्सव जे करें, ते जग यश सुख पाइँगे।
जगभोगनिकी का कथा, स्वय कृष्ण तहँ आइँगे॥
विमल भागवतचरित स्वय श्री हरिने गायौ।
शुद्ध सनातन ज्ञान मनुजने नहीं बनायौ॥
मुनिवर! सोचें आपु मनुजका चरित बनावें।
यह समाधिको चरित चलित चित कैसे ध्यावें॥
हरि, अज, नारद, व्यास, शुक, क्रम क्रमतें विस्तृत वर्न्यो।
लिखवायौ प्रभु-दत्ततैं, भाषामें मैंने भर्न्यो॥
नैमिषके मुनि धन्य धन्य हौं हूँ बड़भागी।
धन्य भयो प्रभुदत्त वृत्ति जाकी इत लागी॥
श्रोता वक्ता धन्य धन्य जे पाठ करिंगे।
धन्य धन्य नर नारि हियेमें जाइ धरिंगे॥
ग्रन्थ प्रचार प्रसारमें, देहिं योग ते धन्य हैं।
नहीं कलियुगी जीव ते, प्रभुके भक्त अनन्य हैं॥
विक्रम सम्बत सात सहस द्वै अति ही पावन।
मार्गशीर्ष शुभमास अष्टमी कृष्णा भावन॥
तीरथराज प्रयाग गग उत्तर तट सुखकर।
प्रतिष्ठानपुरमाँहिं भागवत चरित मनोहर॥
ग्रन्थ भयो पूरन सकल, अब न मोइ है मृत्युभय।
बोलो मिलिकें भक्त सब, कृष्णचन्द्रकी जय॥

इति श्रीभागवतचरित माहात्म्य समाप्त।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

भागवत चरितकी आरती

भागवतचरित अमृत पीजे ।
आरती सब मिलिके कीजे ॥

दयाके सागर हैं यदुचन्द, गहे अजने तिनि पद अरविन्द ।
कमल-मुख झरें सुधाके बिन्दु, तिनहिं पीपीके नित जीजे ॥१॥आरती०

नामको रसना करिके गान, करै मन मोहन मूरति ध्यान ।
नयन निरखें सब थल भगवान, कृष्णको कीर्तन नित कीजे ॥२॥आरती०

यादि जब चरितनिकी आवै, पुलक तनु सबरो ह्वै जावै ।
प्रेम सब अंगनिमें छावै, भावमें भक्त रहे भीजे ॥३॥आरती०

हियेपै चढ़ै भक्तिको रंग, मिलै भक्तिनिको नित सतसंग ।
काज सब करें कृष्णहित अंग, व्यरथ नर जीवन नहिं छीजे ॥४॥आरती०

प्रेम अरु लयतें सब गाओ, पार भव-सागर ह्वै जाओ ।
पदुम-पद-रज प्रभुकी पाओ, आरती भक्त वृन्द लीजे ॥५॥आरती

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीबद्रीनाथ-दर्शन

(श्रीब्रह्मचारीजी का एक अपूर्व महत्वपूर्ण ग्रन्थ)

श्रीब्रह्मचारीजीने चार पाँच बार श्रीबदरीनाथजीकी यात्रा की है। यात्रा ही नहीं की है, वे वहाँ महीनों रहे हैं। उत्तराखण्डके छोटे बड़े सभी स्थानोंमे वे गये हैं। उत्तराखण्डके कैलास, मानसरोवर, शतोपन्थ लोकपाल और गोमुख ये पाँच स्थान इतने कठिन हैं कि जहाँ पहाड़ी भी जाने से भयभीत होते हैं। उन स्थानों में ब्रह्मचारीजी गये हैं। वहाँ का ऐसा सुन्दर सजीव वर्णन किया गया है, कि पढ़ते-पढ़ते वह दृश्य आँखों-के सम्मुख नृत्य करने लगता है। उत्तराखण्ड के सभी तीर्थों-का इसमें सरस वर्णन है, सबकी पैराणिक कथाएँ हैं। किवदन्तियाँ हैं, इतिहास हैं और यात्रावृत्त है। यात्रा सम्बन्धी जितनी उपयोगी बातें हैं सभीका इस ग्रन्थ में समावेश है। बदरीनाथजीकी यात्रापर इतना विशाल महत्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ। आप इस एक ही ग्रन्थसे घर बैठे उत्तराखण्डके समस्त पुण्यस्थलोंके रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़ सकते हैं। अनुभव कर सकते हैं। यात्रा-में आपके साथ यह पुस्तक रहे, तो फिर आपको किसी से कुछ पूछना शेष नहीं रह जाता। लगभग सवा चार सौ पृष्ठ की सचित्र सजिल्द पुस्तक का मूल्य ५) मात्र है। थोड़ी ही प्रतियाँ अवशिष्ट हैं, शीघ्र मँगावें।

शोक-शान्ति

(श्रीब्रह्मचारीजीका एक मनोरञ्जक और तत्वज्ञान-पूर्ण-पत्र)

(द्वितीय संस्करण छपकर तैयार है)

इस पुस्तक के पोछे एक करुण इतिहास है। मद्रासके गुन्टूर प्रान्तका एक परम भावुक युवक श्रीब्रह्मचारीजी का परम भक्त था, अपने पिताका इकलौता—अत्यन्त ही प्यारा दुलारा—पुत्र था। वह त्रिवेणी सङ्गमपर अकस्मात् स्नान करते समय डूबकर मर गया। उसके संस्मरणोंको श्रीब्रह्मचारीजीने बड़ी ही करुण भाषा-में लिखा है। पढ़ते-पढ़ते आँखें स्वतः बहने लगती हैं। फिर एक वर्षके पश्चात उसके पिताको बड़ा ही तत्वज्ञान-पूर्ण ५० । ६० पृष्ठोंका पत्र लिखा था। उस लिखे पत्रकी हिन्दी तैलगू और अँग-रेजीमें बहुत-सी प्रतिलिपियाँ हुईं उसे पढ़कर बहुत-से संतप्त प्राणि-योंने शान्ति लाभ की। इसमें मृत्यु क्या है इसका बड़े ही सुन्दर ढँग से—मनोरञ्जक कथाएँ कहकर—वर्णन किया गया है, लेखकने निजी जीवनके दृष्टान्त देकर पुस्तकको अत्यन्त उपादेय बना दिया है। अक्षर-अक्षरमें विचारक लेखककी अनुभूति भरी हुई है। उस-ने हृदय खोलकर रख दिया है। प्रत्येक घरमें इस पुस्तकका रहना आवश्यक है। ६४ पृष्ठकी सुन्दर पुस्तक मूल्य ।–) पाँच आने हैं।

"श्री श्री चैतन्य चरितावली"

(ले०—श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी)

श्रीब्रह्मचारीजीने श्रीमहाप्रभुके पावन चरितको बड़ी ही हृदयग्राही एवं रोचक भाषामें ५ खण्डोंमें वर्णन किया है। जिसे आजसे १४, १५ वर्ष पूर्व गीताप्रेसने प्रकाशित किया था। सभी कोटिके पुरुषोंने इसे हृदयसे अपनाया और इसके दो संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो गये। इसका तीसरा संस्करण संकीर्तन-भवन, झूसीसे निकल रहा है। प्रथम खण्ड छपकर तैयार है, शेष छप रहे हैं। मू० १॥=)) प्रथम खण्ड।

॥ श्री हरिः ॥

श्री ब्रह्मचारीजी महाराज की कुछ अन्य पुस्तकें

जो हमारे यहाँ से मिलती हैं।

१—भागवती कथा (१०८ खडोंमें) (३८ खण्ड छप चुके हैं) प्रति खण्डका मूल्य १।) छै आना डाकव्यय पृथक्। १५=) मे एक वर्ष के बारह खंड डाकव्यय रजिष्ट्री सहित।

२—श्री चैतन्य चरितावली (प्रथम खड) मूल्य १।।=) यह ग्रंथ पहिले गीता प्रेस गोरखपुरसे पाँच भागोंमें छपा था। अब अप्राप्य है। एक खड हमारे यहाँ से छप गया है और छपने वाले हैं।

३—बदरीनाथदर्शन—बदरी नाथजी पर खोजपूर्ण महाग्रथ मूल्य ५)

४—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन ३४५ २।।)

५—मतवारी मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप। मूल्य १)

६—नाम संकीर्तन महिमा—भगवन्नाम संकीर्तनके सम्बन्धमे उठने वाला तर्कों का युक्ति पूर्ण विवेचन मूल्य ।।)

७—श्री शुक—श्रीशुकदेवजीके जीवनकी झाँकी (नाटक) मूल्य ।।)

८—भागवती कथा की बानगी—आरभ के कुछ पृष्ठों की बानगी मूल्य ।-) पृष्ठ संख्या ८५

९—शोक शान्ति—शोकशान्ति कराने वाला रोचक पत्र पृ० ६४ इसे पढकर अपने शोक सतप्त परिवार को धैर्य बँधाइये। मूल्य ।-)

१०—मेरे महामना मालवीयजी और उनका अंतिम संदेश—पृष्ठ १३० मालवीयजीके जीवन सुखद संस्मरण। मूल्य ।)

११—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दु हिन्दु बन सकते हैं इसका शास्त्रोय विवेचन। पृष्ठ सं० ७५ मूल्य ।-) पाँच आना।

१२—प्रयाग माहात्म्य—पृष्ठ ६४ मूल्य -) एक आना

१३—वृन्दावन माहात्म्य मूल्य -)

१४—श्री भागवत चरित—(आपके हाथ में ही है) मूल्य ५।)

१५—राघवेन्द्रचरित (भागवतचरित से ही पृथक् छापा जा रहा है) मूल्य ।-)

पता—संकीर्तन भवन प्रतिष्ठानपुर (झूसी) प्रयाग